कवि कर्णपूरकृत

[आन]न्द-वृन्दावन-चम्पू

[हिन्दी-भावानुवाद]

डॉ० गोपालचन्द्र मिश्र जी
वेदा[चार्य]
सम्पूर्णानन्द संस्कृत [वि]श्व[विद्याल]य वाराणसी
द्वारा प्रदत्त



—डॉ० बाँके बिहारी

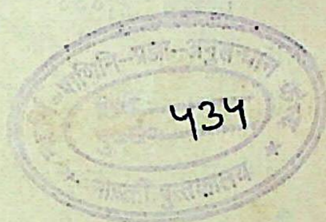
आनन्द-वृन्दावन-चम्पू

गुरु गङ्गेश्वर-ग्रन्थमाला : प्रसून—५

कवि कर्णपूर कृत

आनन्द-वृन्दावन-चम्पू

[हिन्दी भावानुवाद]



लेखक

डॉक्टर बाँके बिहारी

[अनेक हिन्दी-अंग्रेजी ग्रन्थों के निर्माता]

प्रकाशक

श्री गोविन्दराम सेऊमल

वसन्तोत्सव, २०२३ वि०

प्रकाशक :
श्री गोविन्दराम सेऊमल,
२८७, घोड़बन्दर रोड,
वान्द्रा, बम्बई

●

प्रथम संस्करण : १,०००
मार्च, १९६७
मूल्य : चार रुपये

●

मुद्रक :
विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनवर, वाराणसी

●

प्राप्ति-स्थान :
१. उदासीन संस्कृत महाविद्यालय, ढुण्ढिराज, वाराणसी
२. गङ्गेश्वर-धाम, १३, पार्क एरिया, करोलबाग, दिल्ली-५
३. उदासीन सद्गुरु गङ्गेश्वर जन-कल्याण ट्रस्ट, 'तुलसी-निवास', तीसरा माला, फ्लैट नं० ३१, डी रोड, चर्च गेट, बम्बई-१
४. राम-धाम, रतनचन्द रोड, अमृतसर

५३५

प्रकाशकीय

परम करुणावरुणालय, अशरणशरण, गो-गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र की निरुपधिक कृपा से कृपालु पाठकों को यह हिन्दी 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' भेंट करते हुए हम अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। हम जैसे साधारण जन को भी कवि कर्णपूर की इस वाणी ने मोह लिया, तो सहृदय विद्वज्जनों का कहना ही क्या ? हिन्दी-संसार को यह बहुमूल्य रत्न सुलभ करानेवाले इसके अनुवादक युगल-सरकार के अनन्य सेवक श्रद्धेय डॉक्टर बाँके विहारीजी के प्रति हम कितनी कृतज्ञता व्यक्त करें, यही समझ में नहीं आता।

दूसरी दृष्टि से देखने पर यही कहना पड़ता है कि प्रभु ऐसे ही महापुरुषों को हम लोगों पर अपना अनुग्रह करने का माध्यम बनाते हैं। यह उनका कोई गूढ़ सङ्केत होता है। नहीं तो कहाँ इलाहाबाद हाईकोर्ट में डॉक्टर कैलाशनाथ काटजू की अध्यक्षता में वकालत करनेवाले, बाद में स्वतन्त्र रूप से वहाँ एडवोकेट रहकर अनेक राजे-रजवाड़ों के मुकदमे लड़नेवाले, विश्वप्रसिद्ध 'मेरठ कान्स्प्रेसी केस' लड़नेवाले और कानून की अनेक पुस्तकों के लेखक डॉक्टर बाँके विहारीजी और कहाँ भावुकों के सर्वस्व 'आनन्द-वृन्दावन' के अनुवाद में कवि से तन्मय हो युगल-सरकार का पाद-सेवन करते जीवन-यापन करनेवाले बाँके विहारी के परम भावुक भक्त बाँके विहारीजी !

प्रभु का ऐसा कुछ अकल्प्य सङ्केत हुआ कि डॉक्टर साहब की दृष्टि कानून के दायरे से आगे बढ़कर आध्यात्मिकता और रहस्यवाद की ओर मुड़ी। फिर क्या था, इसका नशा कुछ और ही होता है ! डॉक्टर साहब ने भारत के अनेक पुण्य-क्षेत्रों की यात्राएँ कीं और सन्तों का सत्सङ्ग पाया। महात्मा गांधी, रमण महर्षि, गुरुदेव टैगोर, अरविन्द घोष, कृष्णमूर्ति आदि महापुरुषों के निकट सम्पर्क के बाद आपने सारा व्यावहारिक प्रपञ्च छोड़ संन्यास-आश्रम ग्रहण कर लिया।

इसके बाद आठ वर्ष तक मौन एकान्तवास करते हुए आप कठिन साधना में लगे रहे। इस बीच विभिन्न धर्मों के मौलिक ग्रन्थों का अध्ययन, मनन, पारायण, अन्वेषण भी चलता रहा। आपके अध्ययन में ईसाई-मत, बौद्ध मत और सूफी-सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान रहा। १६ वर्ष तक गम्भीर शोध के फल-

स्वरूप आपने 'Doctor of Theology' (धर्मतत्त्वाचार्य) की उपाधि प्राप्त की।

पश्चात् सन् १९४० से आप स्थायी रूप से श्री वृन्दावन में ही निवास कर रहे हैं। मानो, व्रज में आपने क्षेत्र-संन्यास ही ले लिया है। वहीं सिद्ध महात्माओं की सन्निधि में जीवन-यापन करते हैं। आपके यहाँ नित्य प्रातः-सायं सत्सङ्ग होता रहता है। श्रीमद्भागवत और गीता का पाठ एवं सङ्कीर्तन ही आपकी मुख्य साधना है तथा जीवन का मुख्य ध्येय बन गया है, श्री श्यामा-श्याम का साक्षात् दर्शन ! ऐसे परम भक्त की लेखनी से प्राप्त यह हिन्दी 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' कितना प्रौढ़, सरस और भावभावित होगा, यह अलग बताने की आवश्यकता नहीं।

सौभाग्य की बात है कि डॉक्टर साहब की लेखनी से हिन्दी-अंग्रेजी के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निकले हैं, जिनमें से कितने ही प्रकाशित हो चुके हैं और कई प्रकाशन के पथ पर हैं। उनमें से कतिपय ग्रन्थों के नाम निम्नलिखित हैं :

अंग्रेजी

1. Revival of Religious Sciences.
2. Minstrels of God, Vol. I, II.
3. Sufis Mystics and Yogis of India.
4. Yoga of Divine Name.
5. Bhakta Mira.
6. Sighs of Gopi.
7. Geeta-Govind.
8. Mysticism in Upanishadas.
9. Songs of Bhartrihari.
10. Nand Das—A Study in Braj Mysticism.

हिन्दी

१. ईरान के सूफी कवि।
२. श्री व्रजचन्द्र-चकोरी मीरा।
३. विरही सूर।
४. उन्मत्त श्री राधा।
५. अष्टसखा भक्तमाल।
६. वृन्दावन-माहात्म्य।

वंगला, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी आदि के विभिन्न प्रमुख आध्यात्मिक ग्रन्थों के विशद अध्ययन से प्रौढ़ विद्वान् एवं विवेचक होने के साथ आपमें भावपक्ष का भी जो अपूर्व सङ्गम हो गया है, उसकी झाँकी इन ग्रन्थों में तो मिलती ही है, हिन्दी 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' में भी, अनुवाद होते हुए भी, वह जगह-जगह पायी जाती है।

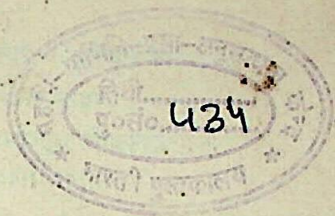
युगल-सरकार के भक्तों का दासानुदास मैं भी अपने वृन्दावन-निवासकाल में डॉक्टर साहब के सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त करता आ रहा हूँ। इसी सन्दर्भ में उन्होंने महती कृपा कर मुझे इस ग्रन्थरत्न की अपनी पाण्डुलिपि ही भेंट कर दी। उनकी स्वान्तःसुखाय इस साधना का इस तरह मेरे पास अनायास, अकल्पित रूप में पहुँच जाना सचमुच आश्चर्य की बात है। मेरी दृष्टि में इसका एकमात्र बाह्य कारण मेरी युगल-सरकार के प्रति थोड़ी-सी उन्मुखता ही हो सकती है। फिर, मैं इसे लेकर परम पूज्यनीय गुरुदेव महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी महाराज के पास पहुँचा और नैनीताल के ग्रीष्म-निवास में उन्हें पढ़ सुनाया। जब-जब मैं इसे पढ़ता तो आत्मविभोर हो उठता। सुनने के साथ ही गुरुदेव की भी तत्काल आज्ञा हुई कि इसे शीघ्र छपवा दो। महात्मा की कृपा, स्वात्मरस की अपरोक्ष अनुभूति और गुरुदेव का आदेश— तीनों मङ्गलमयी धाराओं की वेणी बँध जाने से इस जङ्गम तीर्थराज की उपलब्धि का यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

अन्त में हम कृपालु पाठकों से सप्रेम आग्रह करेंगे कि आप भावुक हृदय से इसमें गहरा गोता लगायें और कवि एवं अनुवादक के श्रम को सफल करते हुए भगवल्लीला-गान से जीवन कृतार्थ करें।

२८७, घोड़बन्दर रोड, बान्द्रा, बम्बई
वसन्तोत्सव, २०२३ वि०

—गोविन्दराम

अनुक्रम



आ मु ख

[आनन्द-वृन्दावन चम्पू : एक अध्ययन]

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥

व्याकरण दर्शन के परम मान्य आचार्य भर्तृहरि कहते हैं कि अनादि-अनन्त, अविनाशी, परब्रह्मरूप शब्द ही विवर्त (अवभास : रज्जु का सर्प की तरह) अर्थ है और उसी शब्दार्थ से यह सारा जागतिक व्यवहार चल रहा है। महाकवि कालिदास भी अपने रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में इसी शब्द-अर्थ की अटूट जुगल-जोड़ी को अर्धनारी-नटेश्वर का उपमान बना पर्यायतः इस जोड़ी का उनसे भी उत्कर्ष स्थापित करते हैं। वे कहते हैं :

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ ॥

शब्द-अर्थ की तरह परस्पर नित्य संयुक्त, अतएव जगत् के सर्जन की अलौकिक सामर्थ्य रखनेवाले अर्धनारी-नटेश्वर पार्वती-परमेश्वर को, शब्दार्थ के बोधार्थ, मेरे नमस्कार समर्पित हों।

काव्य का स्वरूप

इन्हीं शब्द-अर्थ के माध्यम से चौदह विद्या-स्थानों की रचना करके भी अतृप्त पितामह ब्रह्मदेव ने पन्द्रहवाँ विद्या-स्थान साहित्यशास्त्र बनाया और उसके विस्तारार्थ इन्हीं शब्दार्थरूप उपादानों से सम्भाव्य काव्यपुरुष का शरीर गढ़ा। शब्द और अर्थ काव्यपुरुष का शरीर, आकृति या बाहरी ढाँचा माना गया। फिर उसमें रस को आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित कर उसे ओज, प्रसाद और माधुर्यरूप गुणों से सदा के लिए सम्पन्न कर दिया गया। अन्ततः शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कारादि विविध अलङ्करणों से उसका ऊपरी ढाँचा, आकृति भी अलङ्कृत कर दी गयी। 'अलङ्कार-चिन्तामणि'-कार (१-७) कवि को ऐसा ही काव्य ग्रथित करने का निर्देश देते हैं।

शब्दार्थालङ्कृतीद्धं नवरसकलितं रीतिभावाभिरामं
व्यङ्ग्याद्यर्थं विदोषं गुणगणकलितं नेतृसद्वर्णनाढ्यम् ।
लोकद्वन्द्वोपकारि स्फुटमिह तनुतात् काव्यमग्र्यं सुखार्थी
नानाशास्त्रप्रवीणः कविरतुलमतिः पुण्यधर्मोरुहेतुम् ॥

अर्थात् पुण्यतम श्रेष्ठधर्म सद्धर्म के प्रचारार्थ नानाशास्त्र-प्रवीण और अतुल-नीय मतिमान् क्रान्तदर्शी कवि यदि सुख की कामना करता हो तो इस जगतीतल पर उस काव्य-गङ्गा की धारा बहाये, जो शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कारों से समृद्ध हो, शृङ्गारादि नौ रसों से आप्लुत हो, वैदर्भी, पाञ्चाली आदि रीतियों, भावों और स्थायी-सञ्चारी आदि ध्वनित भावों से अभिराम (सुन्दर—दर्शनीय) हो, जिसमें किसी तरह का दोष-लेश न हो, विविध गुणगणों तथा नेताओं के सरस वर्णनों से सम्पन्न हो, जिसके करते सुख-दुःख, शीत-उष्ण, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति जैसे समस्त द्वन्द्वों के परितापों से प्राणी को शान्ति सुलभ हो सके। संक्षेप में ब्रह्मरूप अधिष्ठान (मूल) से विकसित सच्छायी 'काव्यरूप' महावट-वृक्ष का यही लक्षण साहित्य के मूर्धन्य आचार्यों की परम्परा में मान्य होता आ रहा है।

काव्य के भेद

'अग्निपुराण' (३३७.२९) में महर्षि वेदव्यास इस काव्य के तीन भेद बतलाते हैं : १. श्रव्य, २. अभिनेय और ३. प्रकीर्ण, तो भामह प्रथम गद्य और पद्य दो भेद बताकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश को अवान्तर भेदों में गिनाते हैं। दण्डी 'काव्यादर्श' (१.११) में गद्य, पद्य और मिश्र, इस प्रकार काव्य के भेद करके अग्निपुराण का ही अनुकरण करते हैं। वामन 'काव्यालङ्कार-सूत्र' (१.३.२१, २९) में भामह की तरह ही प्रथम गद्य और पद्य ये दो भेद कर बाद में गद्य के वृत्तगन्धी, चूर्णक और उत्कलिका, ये तीन भेद और पद्य को अनेक प्रकार का मानते हैं। रुद्रट ने भी भामह जैसे ही गद्य और पद्य, ये दो भेद मानकर उन्हें प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और अपभ्रंश, इन छह भाषा-भेदों में विभक्त किया है। हेमचन्द्र ने काव्य को प्रथम प्रेक्ष्य (दृश्य) और श्रव्य, इन दो भेदों में विभक्त कर प्रेक्ष्य के पाठ्य और गेय, तो श्रव्य के महाकाव्य, आख्यायिका, चम्पू और अनिबद्ध, ये चार भेद किये हैं। मम्मटाचार्य ने 'काव्यप्रकाश' में उत्तम, मध्यम और अधम, ये काव्य के तीन भेद किये, तो पण्डितराज जगन्नाथ ने उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम, ये चार भेद माने हैं। विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में काव्य

के प्रथम दृश्य और श्रव्य, ये ही दो मौलिक भेद किये हैं। दृश्य का एक भेद १० प्रकार का रूपक है, तो दूसरा भेद १८ प्रकार का उपरूपक। पुनः श्रव्य के गद्य और पद्य दो भेद करके उन्होंने गद्य को ४ प्रकार का, तो पद्य को १० प्रकार का माना है।

चम्पू-काव्य का स्वरूप

किन्तु जिस प्रवन्ध का रूप गद्य और पद्य उभय-मिश्र हो, उसका भी एक भेद होना आवश्यक रहा, अतः उसे 'चम्पू' नाम दे दिया गया :

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।

सम्भवतः इस 'चम्पू' प्रकार के काव्य की रचना जन-रुचि का ध्यान रखकर ही चल पड़ी हो। कारण, कुछ लोग गद्य ही पसन्द करते हैं तो कुछ लोग पद्यमात्र। चम्पू में दोनों का रस मिलने से दोनों प्रवृत्तियों के रसिक चित्तों का सहज आवर्जन वन पड़ता है। प्रसिद्ध जैन-चम्पू-काव्य 'जीवन्धर-चम्पू' (१.९) के महाकवि हरिश्चन्द्र बड़े सरस शब्दों में चम्पू का निम्न-लिखित चित्र खींचते हैं :

गद्यावलिः पद्यपरम्परा च
प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्।
हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा
द्राग् बाल्य-तारुण्यवतीव कान्ता॥

अर्थात् जव प्रत्येकशः गद्य-आवली या पद्य-परम्परा भी रसिकों को आनन्दप्रद हुआ करती है तो दोनों का मेलन (चम्पू) ठीक उसी तरह अति-शीघ्र आनन्द का उल्लास करेगा, जिस प्रकार शैशव के अन्त के साथ तारुण्य का उद्भव होने की स्थिति में कामिनी! ध्यान देने की वात है कि कवि किसी गद्य या पद्य के विशेष प्रेमी को भला-वुरा न कहकर अपनी वात की कितनी सरस प्रस्थापना करता है!

चम्पू-काव्य का इतिहास

प्रायः ईसा की १०वीं शताब्दि तक चम्पू-काव्य की परम्परा देखने को नहीं मिलती। चम्पू-काव्य की रचना गद्य-रचना-काल के बहुत वाद की प्रतीत होती है। यद्यपि गद्य-काव्यों में बीच-बीच में कहीं-कहीं कुछ श्लोक भी मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप बौद्धों की 'जातकमाला' बतायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त चतुर्थ शताब्दि के 'हरिषेण के शिलालेख' में भी इस तरह

के कुछ नमूने मिलते हैं। फिर भी अधिक-से-अधिक उन्हें 'चम्पू के बीज' माना जा सकता है। आज दीखनेवाले आकार-प्रकार के चम्पू-काव्यों में सबसे प्राचीन उपलब्ध चम्पू-काव्य **नल-चम्पू** है, जिसके लेखक त्रिविक्रम भट्ट ईसा की ९१५ ईसवी के माने जाते हैं। शब्दार्थालङ्कारों की छटाओं और सरस कोमल-कान्त पदावलियों द्वारा इस काव्य में नल-दमयन्ती की मनोहर कथा गुम्फित है। इसी कवि की दूसरी रचना **मदालसा-चम्पू** है। पश्चात् ९५९ ईसवी की रचना में आचार्य सोमदेव का **यशस्तिलक-चम्पू** मिलता है। सोमदेव सूरि का चतुरस्र पाण्डित्य और लोकोत्तर सरस भावपक्ष इस चम्पू में प्रतिबिम्बित हो उठा है। इसके बाद महाकवि हरिश्चन्द्र का **जीवन्धर-चम्पू** भी बड़ा ही अलङ्कृत और सरस काव्य है। तदनन्तर भोजराज का **चम्पू-रामायण**, अभिनव कालिदास का **भागवत-चम्पू**, कवि कर्णपूर का **आनन्द-वृन्दावन-चम्पू**, जीव गोस्वामी का **गोपाल-चम्पू**, शेष कृष्ण का **पारिजात-हरण-चम्पू**, नीलकण्ठ दीक्षित का **नीलकण्ठ-चम्पू**, वेङ्कटाध्वरि का **विश्वगुणादर्श-चम्पू**, अनन्त कवि का **चम्पू-भारत**, केशव भट्ट का **नृसिंह-चम्पू**, रामनाथ का **चन्द्रशेखर-चम्पू**, श्रीकृष्ण कवि का **मन्दार-मरन्द-चम्पू** और पन्त विट्ठल का **गजेन्द्र-चम्पू** उपलब्ध होता है। चम्पू-रचना की परम्परा इनके परवर्ती काल से अब तक चली आ रही है। यहाँ तो हमें प्रस्तुत 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' के विषय में ही कुछ विचार करना है।

कवि कर्णपूर

यों 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' नाम के दो चम्पू-काव्य मिलते हैं, किन्तु एक के लेखक हैं केशव, तो दूसरे के कवि कर्णपूर। यहाँ कवि कर्णपूर का 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' ही विवेचनीय है। कवि की 'कर्णपूर गोस्वामिन्' तो उपाधि है, अपर नाम या वास्तविक नाम 'परमानन्द दास सेन' है। नवद्वीप (नदिया) के काञ्चनपल्ली स्थान में बंगाल के वैष्णव-सम्प्रदाय के वैद्य-कुल में ईसवी सन् १५२४ में प्रस्तुत कवि का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम श्री शिवानन्द सेन, तो गुरु का नाम श्रीनाथ बताया जाता है। पिताजी श्रीनाथ चैतन्यदेव के शिष्य थे।

कवि के जीवन के सम्बन्ध में और विशेष तो पता नहीं चलता, फिर भी इतना अवश्य स्पष्ट है कि ये चैतन्य महाप्रभु के परम भक्त रहे। 'आनन्द-वृन्दावन-चम्पू' से अतिरिक्त ९ अन्य ग्रन्थ भी कवि ने रचे हैं, जिनके नाम

और समय इस प्रकार है : १. आर्याशतक, २. चैतन्यचरितामृत महाकाव्य (१५४२ ई०), ३. चैतन्यचन्द्रोदय नाटक (१५७२ ई०), ४. गौराङ्ग गणोद्देशदीपिका या गौरगणोद्देश-दीपिका (१५७६ ई०), ५. अलङ्कार-कौस्तुभ, ६. अलङ्कार-कौस्तुभ की टीका 'किरण', ७. चमत्कार-चन्द्रिका, ८. वर्णप्रकाश (कोष) और ९. बृहत् कृष्णगणोद्देशदीपिका या कृष्णलीलोद्देश-दीपिका। १०वाँ ग्रन्थ आनन्द-वृन्दावन-चम्पू है, जिस पर 'सुखवर्तिनी' नामक व्याख्या है, जो ग्रन्थकार द्वारा ही रची गयी है। वास्तव में इसी ग्रन्थ से कवि के पाण्डित्य की प्रसिद्धि हुई।

कवि ने प्रस्तुत चम्पू की कथा-वस्तु बनायी है, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण-लीला; उसमें भी मुख्यतः जन्मोत्सव से रासलीला तक की लीलाएँ। अन्त में व्रज-बालाओं और श्रीकृष्ण के होला (होलिका) और दोला (झूलन), ये दो उत्सव भी जोड़ दिये हैं, जिससे रस-रङ्ग की एक समा बँध जाती है। संक्षेप में इसका विषय-विभाग तीन प्रकारों में किया जा सकता है : १. पहले स्तवक में श्रीमद् वृन्दारण्य का मनोरम प्राकृतिक वर्णन। २. दूसरे से सातवें स्तवक तक प्रभु की बाल-लीलाओं का वर्णन। ३. आठवें से बाईसवें स्तवक तक १५ स्तवकों में प्रभु की कैशोर-अवस्था की विभिन्न सरस लीलाओं का वर्णन। कहना न होगा कि मानव-जीवन में बाल्य की समाप्ति और तारुण्य के उद्गम की सन्धि की यह (कैशोर-) अवस्था, 'पौगण्डावस्था' बड़ी ही मधुर, अतुलनीय उत्साह से भरी, मदमाती हुआ करती है। कवि ने अपनी लेखनी का अधिकांश प्रवाह इसी दिशा में बहाया है। फिर बाल्यावस्था का तो पूछना ही क्या ? इतना निरागस, निरपवाद जीवन किसी अवस्था में कहाँ सुलभ है ? 'अजातशत्रु' शब्द का प्रायोगिक अर्थ यदि कहीं पूर्ण रूप में निखरा दीखता है, तो इसी अवस्था में। उसमें भी जब उसके द्वारा लोकोत्तर, अकल्पनीय, विश्वमङ्गलकारी विधान घटित कर दिखाये जाते हैं, तो वह सोने में सुहागे का काम कर जाता है। कवि तरह-तरह के अलङ्कारों एवं उद्भावनाओं के माध्यम से इन घटनाओं के वर्णन में बड़े ही सफल सिद्ध हुए हैं। थोड़े विस्तार से इन स्तवकों के वर्ण्य-विषयों पर दृष्टि आवर्जित करें, तो यह बात और स्पष्ट हो जायगी :

प्रथम स्तबक में मङ्गलाचरणादि के बाद वृन्दावन के स्वरूप का वर्णन प्रारम्भ होता है। उसी प्रसङ्ग में षड्ऋतुओं का वर्णन चल पड़ता है, जो वृन्दावन में एक ही समय में सदैव आ मिलते हैं। उसके बाद कालिन्दी की

कमनीयता, गिरिराज की गभीरता और नन्दग्राम की नयनाभिरामता की झाँकी दीखती है। नन्दग्राम में नन्दनन्दन के सखागण, गोपीगण, परम प्रेयसी श्री राधा, पुरवासी जन, धेनुवृन्द और विपणियों (बाजारों) का वर्णन देखते बनता है।

द्वितीय स्तबक में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की कथा के साथ उनके लावण्यमय अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वर्णन और पुत्रजन्मोत्सव के आनन्द से सारा नन्दग्राम रसाप्लुत होने का वर्णन है।

तृतीय स्तबक में दुष्ट कंस द्वारा प्रेषित पूतना राक्षसी की माया का विस्तार समेट बालमुकुन्द भगवान् ने उसे स्वर्ग पहुँचाया और 'पूत के लच्छन पलने में' दिखा दिये।

चतुर्थ स्तबक में शकट-भञ्जन की लीला करते हुए भगवान् बालगोविन्द ने शकटासुर को सद्गति दी। तृणावर्त असुर द्वारा बाल कृष्ण का उड़ा ले जाना, माता के वात्सल्य का बाँध फूट पड़ना और अन्ततः प्रभु द्वारा उस असुर का नाश कर व्रजवासियों को प्रसन्न करना—सचमुच किसी उपन्यास की तिलस्मी घटना से कम रोचक नहीं।

पञ्चम स्तबक में अपने लाल के ऐसे-ऐसे अद्भुत कृत्य देख असमंजस में पड़ी माता को प्रभु ने कुछ दिनों तक प्राकृत बालक की तरह रेंगने की लीला दिखाते हुए मोह लिया। इसी प्रसङ्ग में उनके नामकरण-संस्कार का भी प्रसङ्ग उपस्थित कर कवि ने गर्गाचार्य द्वारा बालक की लोकोत्तरता की बात माता-पिता को भलीभाँति जता दी। प्रभु ने माता के विनोदार्थ माखन-चोरी की मधुर लीला की और सारी व्रज-बालाओं सहित माता को स्नेहाप्लुत कर छोड़ा। अपनी चोरी की सफाई की प्रभु की उद्भावनाएँ सचमुच अद्भुत हैं। अन्ततः प्रभु ने अपने मुख में माता को विश्वरूप दिखाकर अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन से उसके ज्ञान-नेत्र खोल दिये।

षष्ठ स्तबक में दही के मटके फोड़ने की लीला में चराचर के नियन्त्रक बाल कृष्ण माता की छड़ी से भयभीत होकर वात्सल्य की असीम शक्ति की साक्षी देते हैं। रज्जु-बन्धन-लीला ने यह सिद्ध कर दिया कि संसार को माया-बन्धन से मुक्त करनेवाला किसी लौकिक बन्धनों से बाँधा नहीं जा सकता। हाँ, प्रेम-रज्जु से बाँध लेना चाहें तो सहज बँध जाता है। यमलार्जुन-मोक्ष की लीला भी नन्दनन्दन की लोकोत्तरता की एक उज्ज्वल कड़ी है। फलक्रय-

लीला के बाद प्रभु के रक्षार्थ नन्दराज के साङ्ग-सपरिवार वृन्दावन-प्रयाण की शोभा भी परम ऐश्वर्य से परिपूरित वर्णित है।

सप्तम स्तबक में बाल कृष्ण अपने बड़े भैया बलदाऊजी तथा ग्वाल-वालों के साथ वन में वत्स-चारण के लिए जाने लगे, तो उस लीला में उन्होंने वत्सासुर, बकासुर, अघासुर जैसे बड़े-बड़े मायावी असुरों को पछाड़ मुक्त कर दिया। अपने साथी ग्वाल-वालों को वन-पुलिन-भोजन का दिव्य रस चखाया। पितामह ब्रह्मदेव को बाल ब्रह्म की इन प्रचण्ड लीलाओं को देख उसकी सामर्थ्य के प्रति शङ्का हुई और उन्होंने इसकी परीक्षा करना ठान गोपाल-वालों के वत्सों का हरण कर लिया। किन्तु कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ बाल ब्रह्म ने नये वत्सों के सर्जन आदि से परीक्षक बूढ़े पितामह को हतप्रभ कर अपनी क्षमा माँगने के लिए विवश कर दिया। ब्रह्मदेव की स्तुति के साथ कवि इस स्तबक को पूर्ण करते हैं।

अष्टम स्तबक में बाल्य-अवस्था के अन्त और पौगण्ड-अवस्था के सन्धि-काल के लीला-विलास का प्रारम्भ होता है। भगवान् श्रीकृष्ण और श्री राधा प्रभृति व्रज-कुमारियों के पूर्वराग का उत्सुकताभरा वर्णन, परस्पर का आकर्षण, चेष्टाएँ और राग-वृद्धि के प्रगतिशील कदम साधारण सहृदय का भी हृदय बलात् आकृष्ट कर लेते हैं। इसी बीच श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव, कन्दुक-क्रीडा, धेनुकासुर का वध भी पूर्वरागभरी वन-लीला में एक रोचक पृष्ठभूमि निर्माण करते हैं।

नवम स्तबक में जहाँ कालिय-दमन और नागराज द्वारा सोपहार प्रभु की शरणागति का मनोरम चित्र देखने को मिलता है, वही धधकते दावानल का पान कर वे अपनी दूसरी प्रचण्ड शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। आग और विष के साथ बाल कृष्ण का यह खिलवाड़ सच्चे अर्थ में उन्हें अन्तकस्यान्तकोऽहम् सिद्ध कर देता है।

दशम स्तबक में गोप-बालाओं के हृदय में बोये गये कृष्ण-प्रेम के बीज अङ्कुरित होने लगते हैं। प्रभु के नर्मसखा कुसुमासव के माध्यम से व्रज-बालाओं द्वारा श्रीकृष्ण को निमन्त्रण दिया जाता है। वृषभानुनन्दिनी के कहने पर उनके पिता नन्दराज को सपरिवार निमन्त्रण देते हैं। वहाँ का भोजन, वहाँ का आनन्द, राधाजी का परोसना, सब कुछ अद्भुत रसमय होता है। गोप-बालाओं के श्रीकृष्णानुराग में इससे एक कड़ी और जुड़ जाती है, यह अलग बताने की आवश्यकता नहीं।

एकादश स्तबक में गोपबालाओं व गोपबालों सहित श्रीकृष्ण के विहार की लीला का वर्णन है। प्रारम्भ में भाण्डीर-वन में प्रलम्बासुर का वध और दावानल-पान की लीला का वर्णन कर कवि वर्षा-ऋतु को निमन्त्रण देता हुआ शब्दों के साज-सामान से उसकी अगवानी करता है। गोपबालाओं के अनुराग को यह ऋतु और भी उन्मुख कर देती है। इसी बीच कवि ने गोदोहन-लीला की भी झाँकी दिखायी है। वर्षा-ऋतु की समाप्ति के बाद कवि शरद्-ऋतु की अगवानी करता है। इसी शरद् की एक रात्रि में भगवान् की योगमाया अतिउत्सुक राधा आदि व्रज-बालाओं को वन में लिवा लाती है। वहाँ उनके प्रणय-प्रसङ्ग देखते ही बनते हैं। भगवान् की वंशी की धुन से वे आत्मविभोर हो उठती हैं। पूर्वराग के सन्दर्भ का प्रसिद्ध वेणु-गीत कवि यहाँ चित्रित करता है। प्रभु की रूप-माधुरी पर मुग्ध व्रज-बालाएँ शरद् का भव्य स्वागत करती हैं। इस तरह शरद् भी बीती और हेमन्त-ऋतु ने चरण बढ़ाये। अब तो नित्यसिद्धा व्रजसुन्दरियों के अन्तर में नन्दनन्दन से पतिभाव में ही मिलने का सङ्कल्प उदित हुआ और तदर्थ उन्होंने कात्यायनी-व्रत प्रारम्भ कर दिया।

द्वादश स्तबक में कवि ने पूरे विधि-विधान के साथ कात्यायनी-व्रत चित्रित कर दिखाया है। गोपबालाओं की समग्र व्रतचर्या भी चित्रित की है। एक मास व्रत के बाद उसके पूर्त्यर्थ प्रभु ने जो वस्त्रहरण-लीला की, उसका सरस वर्णन इस स्तबक की अपनी विशेषता है।

त्रयोदश स्तबक में प्रभु के प्रति अनन्यभाव रखनेवाली यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह का वर्णन है। प्रभु की मुरली की धुन सुन उनके पास दौड़ जाने को प्रस्तुत यज्ञपत्नियों को जब उनके कर्मजड पतियों ने रोका, तो कितनी ही यज्ञपत्नियाँ यज्ञशाला में रहकर भावप्रवणता से श्रीकृष्ण में लीन हो गयीं। कवि ने यहाँ कर्म की अपेक्षा भाव-साम्राज्य का भव्य उत्कर्ष दिखाया है।

चतुर्दश स्तबक में श्रीकृष्ण-सखा मधुमङ्गल बड़ी ही मधुर कूटनीति से वृद्धा सासों द्वारा व्रज-युवतियों को वन में कुञ्जदेवता वृन्दा की आराधना के लिए भिजवाते हैं। वहाँ वे कुञ्जेश्वर की प्रणय-पूजा करती हैं। इसी बीच वसन्त-ऋतु आकर चारों ओर वसन्त-श्री छिटक जाती है। योगमाया विहार का सारा आयोजन जुटा देती है। सङ्गीत-विद्या अपने परिवार और साज-सामान के साथ उपस्थित हो जाती है और गोपबालाओं, अष्टसखियों सहित राधारानी और साथी गोप-बालों एवं बड़े भैया के साथ श्रीकृष्णचन्द्र वसन्त-ऋतु की विविध लीलाएँ करने लगते हैं। वसन्तोत्सव का यह चित्र बड़ा ही लुभावना बन पड़ा है।

पञ्चदश स्तबक में गिरिवर गोवर्धन-धारण की लीला वर्णित है। इन्द्र का कोप मूसलधार वर्षा के रूप में प्रकट होता है। अन्त में देवराज विफल हो जाते और प्रभु की स्तुति करते हैं। सभी देवी-देवता नन्दनन्दन के गुणगान गाते हैं। ब्रह्मदेव देवी-देवताओं, सुरभि आदि सहित श्रीकृष्ण का अभिषेक और 'महाराजाधिराज' का राजतिलक कर उनका 'गोविन्द' नामकरण करते हैं।

षोडश स्तबक में एकादशी की पारणा के दिन भ्रमवश बड़ी भोर में शास्त्र-विरुद्ध स्नान करते समय ब्रजराज को वरुण के भृत्यगण पकड़कर वरुण-लोक ले जाते हैं और साथी स्नानार्थी गोपों में एक ही आतङ्क छा जाता है। फिर श्रीकृष्ण वहाँ जाकर उन्हें लिवा लाते हैं। जब ब्रजवासी जन ब्रजराज के मुख से वरुणदेव के ऐश्वर्य और उनके द्वारा किये गये अपने पुत्र के भव्यतम स्वागत की कथा सुनाते हैं, तो उनमें भी नन्दनन्दन का परब्रह्मस्वरूप देखने का सङ्कल्प जाग उठता है। तत्काल प्रभु योगिदुर्लभ अपने ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करा देते हैं। किन्तु भक्तहृदय ब्रजवासियों को वह ब्रह्म-सुख और वैकुण्ठ-वास भी नहीं भाता तथा वे साग्रह पुनः ब्रजराज-किशोर के रूप में ही उन्हें देखकर तृप्ति पाते हैं। 'भक्ति' के समक्ष 'मुक्ति' की यह शरणागति देखते ही बनती है!

सप्तदश स्तवक में रासलीला का प्रारम्भ होता है, जिसका पूर्ण परिपाक विंश स्तवक में मिलता है। शरद् की राका में चन्द्रोदय का वर्णन, वेणु की तानों का सुनना, प्रमदाओं का अभिसार, कूटाभिदान, विरह, विषाद-वचन, कान्ता-प्रसादन, विहार और बीच-बीच में प्रियतम का तिरोधान—ये सारे प्रकृति-मधुर प्रसङ्ग चित्रित हैं। इस स्तवक में तो शृङ्गार की सरिता ही उमड़ पड़ती है। कवि की उद्भावनाएँ बेजोड़ हैं।

अष्टादश स्तबक में श्रीकृष्ण के विरह से विधुर गोपियों द्वारा वृक्षों से प्रियतम का पता पूछना, उनकी चेष्टाओं का अनुकरण करना, उनके चरण-चिह्नों का अवलोकन, प्रियविरहिणी श्री राधाजी की विरह-चेष्टाएँ और सभी ललनाओं द्वारा प्रियतम का विलाप वर्णित है।

एकोनविंश स्तबक में गोपियों को विलाप के पश्चात् प्रियतम नन्दनन्दन अकस्मात् दर्शन देकर कहते हैं कि 'मैं तो यहीं था, कहीं गया नहीं। अपने विरह में तुम लोगों की दशा कैसी होती है, यही देखना चाहता था।' फिर गोपियाँ नाना भाव प्रकट करती हैं। परस्पर प्रश्नोत्तरों का कौतुक चलता है। गोपियाँ अपने विरह-सन्तापों की कहानियाँ सुनाती हैं। श्रीकृष्ण यह सब सुन स्वयं को धन्य-धन्य मानते हैं!

विंश स्तबक में महारास के अन्तर्गत हल्लीशक नृत्य, राग-रागिनियों का गायन, वादन, नर्तन आदि के साथ रति, मधुपान, शयनादि का रसभरा वर्णन है। इस तरह व्रज-युवतियों एवं श्री राधारानी की चिर वासनाओं को यहाँ सौन्दर्य-निधि परिपूर्ण करते हैं।

एकविंश स्तबक में नन्दनन्दन का व्रज-बालाओं के साथ होलिकोत्सव का विस्तृत वर्णन बड़े ही उल्लास के साथ चित्रित है। इसी प्रसङ्ग में शङ्खचूड़ असुर के वध की लीला भी वर्णित है।

द्वाविंश स्तबक में दोला-मण्डप का भव्य वर्णन है। प्रधान दोला के साथ अन्यान्य दोलाओं के आयोजन होते हैं। नन्दनन्दन अपनी प्रेयसी श्री राधा के साथ उस पर झूलन-लीला खेलते हैं। सखियाँ श्रीकृष्ण के साथ, सहेलियों के साथ झूलती, राधारानी और कृष्ण को झुलाती हैं। वृन्दारण्य की इन नित्य लीलाओं के साथ झूलन की इस लीला के साथ यह चम्पू-काव्य पूर्ण होता है।

रासलीला-रहस्य

इस प्रकार वृन्दावन के परिसर में आनन्दसुधानिधि भगवान् श्रीकृष्ण के आविर्भाव के साथ प्रारम्भ होनेवाला यह काव्य अन्ततः रसराज शृङ्गार के स्थिर-शाश्वत, अद्वितीय विकसित रूप महारास का अपरोक्ष साक्षात्कार कराकर 'आनन्द-वृन्दावन' नाम सार्थक कर दिखाता है। आखिर विश्व के सारे आनन्द इसी एक आनन्दसुधा-जलनिधि की एक-एक तरङ्ग हैं। भगवती श्रुति कहती है : ······**एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।** (बृहदारण्यक उपनिषद् ४.३.३२) यही क्यों, यह सारा विश्व आनन्द के उपादान से ही उत्पन्न हुआ है, आनन्द से ही जीता है और अन्त में आनन्द में ही विलीन हो जाता है, आनन्द ही ब्रह्म है—ऐसा स्पष्ट शब्दों में श्रुति का उद्‌घोष है : **आनन्दाद्‌ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।** (तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली, अनु० ६) वही रासेश्वर भगवान् नन्दनन्दन हैं। उनका यह 'रास' आस्वाद्यमान, अखण्ड नव रसों की एकत्र स्थिति ही है। रासेश्वरी श्री राधा उन्हींकी संधिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्ति हैं, जिन्हें सत्, चित्, आनन्द के विलास के रूप में हम पहचानते हैं। गोप-बालाएँ भी उन्हींकी नित्यसिद्धा शक्तियाँ हैं। प्रभु का इन्हीं अपनी शक्तियों के बीच रमण करना 'महारास' है। वहाँ दूसरा है ही नहीं, **एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।** इसमें किसी तरह का अनौचित्य नहीं। आवश्यकता है, इस महारास-लीला को हम अ नी

लौकिक दृष्टि से न नापें। उसके लिए अधिदैव और अध्यात्म के ही उपनेत्र (चश्मा) या दूरबीन चाहिए। देवीभागवत स्पष्ट शब्दों में यही बात कहता है :

स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षन्नेक एव च।
सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः॥

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः॥

तां ददर्श महाकामी कामाधारां सनातनः।
अतीव कमनीयाञ्च चारुपङ्कजसन्निभाम्॥

दृष्ट्वा तां तु तथा सार्धं रासेशो रासमण्डले।
रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडां चकार ह॥

यह तो हुई आधिदैविक दृष्टि! आध्यात्मिक दृष्टि से इस महालीला का मापन करना हो तो कहा जा सकता है कि यह योगियों की नित्य ध्येय असम्प्रज्ञात समाधि ही है। सहस्रदल कमल वृन्दावन है और कुल-कुण्डलिनी हैं श्री राधिका। दया, क्षमा, श्री, धृति, शान्ति, स्मृति, अनसूया आदि शुभ चित्त-वृत्तियाँ ही महारासेश्वरी की वृन्दा, विशाखा, ललिता आदि सहचरियाँ हैं और परब्रह्म परमात्मा हैं, श्रीकृष्ण। सहस्रदल कमल में उनका महाविलास ही महारास है। स्वयं रासरसलिप्ता गोपियों की ही जबानी सुनिये :

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्
अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
(श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, पूर्वार्ध, ३१.४)

तब यह कैसे कहा जा सकता है कि रास-लीला में कोई अनौचित्य है?

भागवत-मर्मज्ञ अभियुक्तों का तो यह भी रहस्यमय मन्तव्य है कि 'रास-लीला' 'विलास-लीला' न होकर 'संन्यास-लीला' है। इसके दो प्रयोजन हैं : १. परमहंसों, भक्तों तथा साधकों को साधना-पद्धति का उपदेश देना और २. काम पर विजय प्राप्त कर अपना पूर्णावतारत्व प्रमाणित करना। यह विषय स्वतन्त्र विवेचना का है, अतः इसका यहाँ हम सङ्केतभर करके आगे बढ़ते हैं।

अब, जब हम इस दृष्टि से यह विषय देखते हैं, तो राधा का स्वकीया या परकीया होना आदि का कोई विवाद ही नहीं खड़ा होता। हाँ, एक बात अवश्य कही जाती है कि जब भगवान् की अभिन्न महाशक्ति रासेश्वरी हैं

और शेष गोपियाँ उन्हींके अवान्तर रूप, तो श्रीमद्भागवत जैसे सर्वमान्य ग्रन्थ में उनका नामोल्लेख क्यों नहीं ? यही बात यह सन्देह उत्पन्न करती है कि आरम्भ में ऐसा कुछ न था। बाद में जो कृष्ण-भक्ति का रसिक-सम्प्रदाय चला, उसने युक्ति से अपनी बातों को इस तरह भागवत की रास-लीला से जोड़ दिया। उन्हीं रसिकों ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की भी मधुरोपासना का प्रयास किया है।

किन्तु इस विषय को भी जरा गम्भीर होकर देखना होगा। यह तो सभी सहृदय साहित्यिक जानते हैं कि जो अर्थ शब्दालिङ्गित होता है, उसका सारा अलौकिक सौन्दर्य जाता रहता है। अर्थ का व्यङ्ग्य होना और प्रधान बना रहना ही काव्य को सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य है। तब रासेश्वरी को भी शुकाचार्य शब्द का विषय बनाते, तो उनका वह सारा अलौकिक सौन्दर्य ही जाता रहता। फिर भी उन्होंने इसका सङ्केत नहीं किया, यह नहीं कहा जा सकता। 'एक परम प्रेमास्पदा गोपी को लेकर वे गोपी-मण्डल से अन्तर्धान हो गये', इस घटना में वह परम प्रेमास्पदा कौन हो सकती है, यह सहृदय सहज ही समझ सकते हैं। फिर, शुकाचार्य ने रासमण्डल की गोपियों के प्रत्येक के नाम कहाँ गिनाये ? जो गिनाये भी, वे उनके गुण-नाम थे, वास्तविक नाम नहीं। तब रासेश्वरी का नाम ही गिनाने का क्या तुक था ?

सबसे सुन्दर भाव तो साम्प्रदायिकों की एक मान्यता से बनता है। भगवद्-भक्तों की मान्यता है कि रासेश्वरी के नित्य-लीलाशुक ही श्री शुकदेवाचार्य हैं। रासेश्वरी की लीला के दर्शन से वे आत्मविभोर हो जाते थे। परीक्षित् को सात दिनों में भागवत सुनाने के प्रसङ्ग में वह नाम आ जाता, तो जाने कितनी देर शुकाचार्य आत्मविभोर हो जाते और सारी कथा जहाँ की तहाँ रह जाती ! परीक्षित् का मरण का दिन भी बीत जाता, जिसके उपलक्ष्य में यह कथा सुनायी गयी। अतएव उन्होंने जान-बूझकर राधा का नाम बचाया। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध श्लोक है :

श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।
नोच्चारितमतः स्पष्टं परीक्षिद्धितकृन्मुनिः॥

अतः यह शङ्का भी विचार करने पर कोई दम नहीं रखती।

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण राधास्वरूप हैं, तो श्री राधा श्रीकृष्णस्वरूप। 'कृष्ण' में 'कृ' राधा है, तो 'ष्ण' कृष्ण। यही क्यों, 'कृ' में 'क' कृष्ण है तो 'ऋ' राधा। प्रभु की अविभक्ता आह्लादिनी शक्ति श्री राधा की

ही अवान्तर शक्तियाँ नित्यसिद्धा गोप-बालाएँ हैं। उनके साथ नवरसरुचिर महारास की लीला कर जगन्नाटक के सूत्रधार सच्चिदानन्द प्रभु श्रीकृष्ण प्रचण्ड मायाताप से तप्त जीवों का आप्यायन करते हैं और उसका प्रतीक यह महारास है, जिसे कवि कर्णपूर ने अपने काव्य के उपसंहार में रखकर काव्य का मूल तात्पर्यार्थ बना दिया है। होला और दोला-उत्सव भी उसी महारास के ही उपोद्बलक हैं।

मूलतः परम रमणीय इस प्रसङ्ग को जब सहृदय कवि की लेखनी का बल मिल जाता है, तो वह और भी निखर उठता है। प्रस्तुत चम्पू में वही हुआ है। कवि की अद्भुत सूझ-बूझ, पैनी दृष्टि और विशाल सार्वभौम पाण्डित्य की त्रिवेणी-धारा मिलकर यह साहित्य-सरिता अखण्ड प्रवाहित हो रही है और चिरकाल तक संस्कृत के प्रणयी जनों का आप्यायन करती रहेगी, यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है।

भावानुवाद के सम्बन्ध में

इतना अद्भुत ग्रन्थ होकर भी यह बहुत ही सीमित दायरे में पड़ा रहा। ग्रन्थकार की ही मार्मिक, पर संक्षिप्त टीका के साथ इस ग्रन्थ की कल्पनाएँ, उद्भावनाएँ संस्कृतज्ञ कृष्ण-भक्ति-शाखा के कतिपय रसिक जनों तक ही गुह्य वस्तु के रूप में छिपी रही। सौभाग्य की बात है कि लोकतन्त्र के इस युग में प्रसिद्ध न्यायशास्त्री (एडवोकेट), विभिन्न ग्रन्थों के रचयिता होने के साथ परम भक्तहृदय डॉक्टर बाँके बिहारीजी ने इस ग्रन्थ का यह हिन्दी भावानुवाद राष्ट्रभाषा के प्रेमियों के लिए सर्वसुलभ कर दिया। वैसे आपका यह प्रयास अपनी युगल जोड़ी की साधना के सन्दर्भ में ही हुआ। यही कारण है कि अनुवाद के प्रसङ्ग में शब्दों की बेड़ियों की परवाह न कर वे भावपक्ष के उन्मुक्त वातावरण में ही विचरते रहे हैं। भावपक्ष के समस्त उपकरणों एवं कवि की सूझ-बूझ को इसमें कहीं नहीं छोड़ा है।

फिर, उनकी साधना के इस सोपान तक पहुँचनेवाली श्री गोविन्दभाई (गोविन्दराम सेऊमल) जैसों की युगल जोड़ी मिल गयी, यह भी कम सौभाग्य नहीं ! फलतः निरुपाधिक स्नेही वत्स को प्राप्त कर पयस्विनी की यह धारा फूट पड़ी, जिसमें सहृदय भक्तों को अब उन्मुक्त उन्मज्जन-निमज्जन का सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। एतदर्थ हमारी ओर से डॉक्टर साहब और ये भक्त-युगल दोनों ही साधुवाद के पात्र हैं। इसे इस पुस्तक के रूप में लाने में जितना सरस आयोजनिक प्रयास श्री स्वामी आनन्द भास्करजी का रहा,

उसके अभाव में कदाचित् ही यह 'गुदड़ी का लाल' पाठकों को सुलभ न हो पाता ! इसलिए उस मूक, पर सहृदय सन्त को भी साधुवाद दिये बिना जी नहीं चाहता। पुस्तक को इतना आकर्षक एवं शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने में श्री नरहरि पुरुषोत्तम रङ्गप्पाजी को भी कैसे भुलाया जा सकता है ? अवस्था से बड़े होने के नाते हम उन्हें इसी तरह उत्कर्षशील होने का सस्नेह आशीर्वाद देते हैं। अन्त में स्वयं को भी इस साधुवाद के सत्र में भूखा क्यों रखें ? सचमुच हम अपने भाग्य को सराहते हैं कि इन महानुभावों के साथ हमें भी इसके सम्पादन, परिष्करण का अवसर मिला। इसके प्रारम्भिक कुछ अंशों के सम्पादन में श्री महेशदत्त शुक्लजी का भी उल्लेख्य सहयोग भुलाया नहीं जा सकता। 'चार जने की लाकड़ी, एक जने का बोझ' इस कहावत का विषय होने पर भी यह ग्रन्थ युगल-सरकार के प्रेमी भक्त जनों के लिए बोझ न होकर उनकी नित्य तृप्ति का ही साधन बनेगा, ऐसी दृढ़ आशा की जा सकती है।

के० ३०/४०, घासीटोला, वाराणसी
वसन्तोत्सव, २०२३ वि०

—गोविन्द नरहरि वैजापुरकर
एम० ए०, न्याय-वेदान्त-साहित्याचार्य

मङ्गलाचरणम्

ॐ कृष्णं त एम रुशतः परो भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥

—ऋग्वेद, ४-७-९

ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः ।
(पूर्व दिशा में) —शुक्ल यजुर्वेद, १-१

कृष्णोऽस्याखरेष्ठः ।
(पश्चिम दिशा में) —शुक्ल यजुर्वेद, २-१

विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
(दक्षिण दिशा में) —शुक्ल यजुर्वेद, ३४-४३

कृष्णाय देवकीपुत्राय
(उत्तर दिशा में) —छान्दोग्य, ३-१७-६

कृष्णावसनविस्तारिकृष्णं कृष्णसखं भजे ।
कल्पद्रुमं प्रपन्नानां सात्वन्मानसमन्दिरम् ॥ १ ॥
विश्ववन्द्यपदो वन्दे विबुधान् वेदविश्रुतान् ।
पञ्च हेरम्ब-वैकुण्ठ-शक्ति-शङ्कर-भास्करान् ॥ २ ॥
हंस-सनत्कुमाराद्यां श्रीचन्द्रगुरुमध्यगाम् ।
अस्मद्देशिकपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥ ३ ॥
उदासीनं सुखासीनमुपासीनं रमारमम् ।
औदास्यप्रथमाचार्यं कुमारं वैधसं भजे ॥ ४ ॥
शतोत्तरचतुष्षष्ठितमं देवं तपोनिधिम् ।
अविनाशिगुरुं नौमि वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ ५ ॥
भक्तिविक्तिसमुच्चेत्ता शङ्करः सर्वशङ्करः ।
गुरुः पायादपायान्नः श्रीचन्द्रः श्रौतवंशजः ॥ ६ ॥
विश्वविद्याविदं देवं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
अमन्दानन्ददं वन्दे रामानन्दं गुरोर्गुरुम् ॥ ७ ॥
सकार्याज्ञार्यसद्ध्वान्त - ध्वंसैकव्रतधारिणे ।
नमो गङ्गेश्वरानन्द-गुरुपादाम्बुजन्मने ॥ ८ ॥

ग्रन्थ-परिचय

वत्साऽऽस्वाद्य मुहुः स्वया रसनया प्रापय्य सत्काव्यतां
देयं भक्तजनेषु भाविषु सुरैर्दुष्प्राप्यमेतत्त्वया ।
इत्याज्ञापयतेव येन निदधे श्रीकर्णपूरानने
बाल्ये स्वाङ्घ्रिदलामृतं गतिरसौ चैतन्यचन्द्रोऽस्तु नः ॥ १ ॥

नितान्तनैसर्गिककृष्णसारलीलाढ्यमुच्चैः पदमात्मनीनम् ।
श्रीरूपसम्मत्यनुकूलमेव पूर्वैः श्रितं संश्रयते सुमेधाः ॥ २ ॥

नन्दोत्सवादिरासान्तां होलादोलादिकाधिकाम् ।
श्रीकृष्णलीलां जग्रन्थ कर्णपूरो महाकविः ॥ ३ ॥

एकेन स्तबकेनाऽऽह वृन्दारण्यं तदास्पदम् ।
बाल्यलीलां ततः षड्भिः प्रादुर्भावमुखां हरेः ॥ ४ ॥

ततस्तु पञ्चदशभिर्लीलां कैशोरवर्तिनीम् ।
एवं द्व्यधिकया चम्पूर्विंशत्या स्तबकैः कृता ॥ ५ ॥

—कवि कर्णपूर

'बच्चे, सुरों के लिए भी दुर्लभ मेरे चरण-कमल के अमृत का अपनी जिह्वा से बार-बार आस्वाद करो, उसे सत्काव्यरूप बनाओ और भावी भक्तों को बाँटो।' मानो, यह आज्ञा देते हुए जिन्होंने बचपन में अपने कर्णपूर-शोभित आनन में अमृतमय अपना चरणदल स्थापित किया (अपने चरणाङ्गुष्ठ को अपने मुख में धरा), वे भगवान् चैतन्यचन्द्र (बालमुकुन्द) हम लोगों के लिए गति, अवलम्ब हों ॥ १ ॥

प्राचीन लोगों ने अत्यन्त नैसर्गिक कृष्ण की सारमयी लीलाओं से सम्पन्न जिस आत्मस्वरूप उच्चतम पद को श्रीरूप गोस्वामी के सम्प्रदायानुसार ही आश्रयण किया है, यह सुमेधा (कवि) भी उसी पद का आश्रयण कर रहा है ॥ २ ॥

नन्दोत्सव (नन्दगृह में श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव) से रासलीलापर्यन्त, जिसमें होलिकोत्सव और झूलन, दो लीलाएँ अधिक जोड़ दी गयी हैं, श्रीकृष्ण की बाल-किशोर-लीलाएँ महाकवि कर्णपूर ने इस चम्पू के रूप में ग्रथित की हैं ॥ ३ ॥

पहले स्तबक द्वारा कवि ने भगवान् के परम निवास-स्थान वृन्दारण्य का वर्णन किया। उसके बाद छह स्तबकों द्वारा भगवान् के जन्म से लेकर बाल-लीलाएँ वर्णित कीं ॥ ४ ॥

तदनन्तर पन्द्रह स्तबकों द्वारा किशोरावस्था की लीलाओं का वर्णन किया। इस प्रकार दो अधिक बीस अर्थात् बाईस स्तबकों द्वारा श्रीकृष्ण-लीलावर्णनात्मक यह आनन्द-वृन्दावन-चम्पू कवि ने पूर्ण किया है ॥ ५ ॥

पहला स्तवक

श्री वृन्दावन-धाम्-वर्णन

वन्दे कृष्णपदारविन्दयुगलं यस्मिन् कुरङ्गीदृशां
वक्षोजप्रणयीकृते विलसति स्निग्धोऽङ्गरागः स्वतः।
काश्मीरं तलशोणिमोपरितनः कस्तूरिकां नीलिमा
श्रीखण्डं नखचन्द्रकान्तिलहरी निर्व्याजमातन्यते ॥

बालरूप श्रीकृष्ण के उन दोनों चरणकमलों की वन्दना करता हूँ जिनके मृगनयनी गोपियों के उरोज-द्वय से संयुक्त होने पर उनमें अनायास ही स्निग्ध अङ्गराग सुशोभित हो जाता है, यथा चरणतलों की लाली गोपियों के उरोजों पर बिना लगाए ही केशर, ऊपर की श्यामता कस्तूरी और नखचन्द्र का कान्ति-प्रवाह चन्दन के लेप-रूप में शोभित हो रहे हैं।

पूतना के शत्रु श्रीकृष्णजी का वह चरणकमल हमारी रक्षा करे जिसमें लाल-लाल स्निग्ध उँगलियाँ ही पंखुड़ियाँ हैं, श्री राधा की उरोज-कलिका में लिप्त कुङ्कुम-चूर्णरूपी पराग से ही जिसमें पराग की लालिमा है, भक्तों की श्रद्धा ही जिसमें मकरन्द है, नख का तेजःपुञ्ज ही जिसका केसर-समूह है तथा जंघा ही जिसका नालदण्ड है।

हमारे कुलदेवता उन श्री चैतन्य कृष्णहरि की जय हो जो भजन (नवधा भक्ति) -रूपी स्वर्णकमलों के ऐसे वन हैं जो (लीलाओं के) मधुरतारूपी मकरन्द से सुगन्धित है, जो सुन्दर प्रेम के ऐसे सुमेरु पर्वत हैं जो करुणारूपी अमृत के झरनों से समन्वित है, और जो ऐसी स्थिर बिजलियों की पंक्ति हैं जो भक्तरूपी मेघसमूह में स्थिरतापूर्वक चमकती रहती हैं।

भक्तों के प्रति वत्सलता से पूर्ण हृदयवाले तथा संसार के समस्त पापों को नाश करनेवाले उन अद्वैत आदि को प्रणाम करते हैं जो इन्हीं प्रभु के प्रिय परिजन हैं और उन स्वरूपों (श्री दामोदरस्वरूप, श्री रामानन्दराय, श्री सनातन आदि) को भी नमन करते हैं जो इन्हीं (श्री कृष्णचैतन्य) जैसे समान प्रेमवाले, समान गुणोंवाले, समान करुणावाले तथा उन्हीं जैसे रसपूर्ण और मधुर हैं।

ब्राह्मणवंश (रूपी समुद्र) में उत्पन्न चन्द्रमा के समान तथा पृथिवी के आभूषण में जड़े रत्न के समान, श्री कृष्णचैतन्य के प्रिय श्रीनाथ-नामधारी अपने गुरु को प्रणाम करता हूँ जिनके मुँह से निकलती हुई वृन्दावन-सम्बन्धिनी

दोषरहित रहस्यमयी कथा (-सुधा) का स्वाद पाकर मनुष्य संसार में कहीं (भोगादि में) आसक्त नहीं होता ।

हाय ! जब श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु का सम्पूर्ण परिवार (शिष्यादि) अपने-अपने अभीष्ट पद पर स्थिर हो गया और वे स्वयं भी अपने प्रकाशमय धाम को पधार गए तब से (श्रोता-वक्ता के अभाववश) सारी पण्डिताई लुप्त हो गई, प्रेम-रस-रीति विगलित हो गई और इस प्रकार सुन्दर कवि की कविता (-रूप मञ्जरी) की मनोहारी सुगन्ध (उस कोटि के रसिक भक्तरूप भ्रमरों के अभाव में) आश्रयविहीन हो गई ।

हे वाणी (सरस्वती) ! तुम्हारी क्या स्तुति करूँ ! प्राणी तुम्हारी चेष्टा को कहने के लिए समर्थ नहीं है क्योंकि तुम भलीभाँति बाँधी जाने पर ही अपने बाँधनेवाले को सम्मान देती हो, अन्यथा उसका रहा-सहा सम्मान भी नष्ट कर देती हो ।

हे माँ सरस्वती ! तुम्हारी निरन्तर करुणा से हम आनन्दमग्न हैं, अब तुम्हीं से तुम्हारी क्या स्तुति करें, जल से समुद्र की पूजा कौन करे ! तुमने हमें जो आनन्द प्राप्त कराया है उसका हम यही प्रत्युपकार करते हैं कि भगवान् कृष्ण के लीलामृत-प्रवाह में तुम्हें निमज्जित किए देते हैं, अब तुम फिर इसमें से कभी निकलना नहीं ।

सभी शरीरधारियों को आत्मा प्रिय होता है अतः अपनी रचनाओं में वे दोष नहीं देखा करते । जैसे दीपक सब ओर का तो अन्धकार नष्ट करता है पर अपने नीचे का ही अँधेरा वह नहीं दूर कर पाता (उसे कोई दूसरा ही दीपक नष्ट करता है) ।

किन्तु सज्जनों की बात इससे भिन्न है । वे अपने निर्मल आचरण में भी दोषों को ही लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं । देखिए न, अग्नि का अपना तेज यद्यपि निर्मल होता है पर वह सर्वप्रथम धुआँ ही प्रकट करता है ।

अच्छे कवि की वाणी अर्थ आदि (गुण, अलंकार, रस आदि) का विचार किए बिना भी चित्त को वैसे ही यथेष्ट आनन्दित कर देती है, जैसे बिना स्नान किए, दर्शन करने मात्र से (गंगा आदि) पावन नदियाँ दर्शक को पवित्र कर ही देता हैं ।

अलग-अलग बिखरे हुए सभी शब्द तभी तक दोषरहित प्रतीत होते हैं जब तक कवि उन्हें अपनी जीभरूपी सूई से गूँथकर एक नहीं कर देता । तात्पर्य यह कि विचारपूर्वक निर्दोष पदों से ही रचना कर पाना अतिशय कठिन कार्य है ।

दूसरों को स्वच्छ करनेवाली अरी दुष्ट-जिह्वे ! सदा दूसरों पर दोषों का आरोप कर-करके उन्हें सतर्क करते हुए यद्यपि तू सारे संसार को मलरहित ही करती है फिर भी तेरे स्पर्श से डर ही लगता है कि न जाने तू क्या कह बैठे !

जिन्हें काट देने पर तनिक भी व्यथा नहीं होती और जिनके बढ़ जाने पर सभी को कष्ट होता है ऐसे नख-लोमों और खल (दुष्ट) में कोई अन्तर नहीं है। परवश (कारागार आदि में) रहने की बात और है किन्तु स्वतन्त्र रहते हुए भला कौन इनका त्याग नहीं कर देगा।

कर्णपूर नामक कवि ने रसिकों के मनोविनोद तथा (भक्तों के) आनन्द के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं से सजे हुए 'आनन्द-वृन्दावन' नामक इस चम्पूकाव्य की रचना की।

फूल चाहे जैसे भी हों, माला तो गूँथने की कुशलता से शोभा को प्राप्त होती है। यदि कहीं वे फूल सुगन्धित और सुन्दर भी हों तब भला उनसे कुशलतापूर्वक गूँथी गई माला की उत्तमता के विषय में कहना ही क्या है !

श्री वृन्दावन का स्वरूप

श्री वृन्दावन-धाम सम्पूर्ण वैकुण्ठों का सार है कुण्ठसार[1] नहीं, प्रकाशमय है अप्रकाशमय नहीं, वहाँ नित्य सिद्ध पुरुष बसते हैं अनित्य नहीं, सुन्दर रस और अर्थ वहाँ बहुत हैं और वह देवताओं के लिए दुर्लभ है। वहाँ पर विचित्र पातवाले वृक्ष हैं उत्पातवाले नहीं, वह सुलीलाओं का भण्डार है कुलीलाओं का नहीं, वहाँ पर मन्दार के अनेक वृक्ष हैं अमन्दार के नहीं, मौलश्री भी हैं और तमाल भी, जो कि नत मालाओं से शोभित हैं। कहाँ तक विस्तार से उसकी बात कहें, वहाँ भगवान् के विग्रह और कामदेव के हाथ से लिखी हुई चन्दन-रेखाओं के सदृश सुशोभित रूपवाले भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं।

मुनि-मण्डल[2] के समान वहाँ वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं, शाण्डिल्य के समान बेल, लोमश के समान जटामांसी तथा वानप्रस्थ के समान महुआ आदि वृक्ष

१. बिना धार का।

२. प्रभाव, वैभव, गुण आदि का ध्यान दरसाने के लिए वृक्षों तथा लताओं की मुनियों से उपमा दी गई है। दिव्य वृन्दावन इस स्थूल जगत् के वृन्दावन के अन्तर्गत है, न्यारा नहीं। सच्चिदानन्द नित्य स्वयंप्रकाशस्वरूप है। ध्यान के लिए कविराज उसका वर्णन कर रहे हैं।

मानो खड़े हुए गायत्री का जाप कर रहे हैं तथा मानो युद्धस्थल में वीरों के समान खड़े हुए करवीर और पीलु सुशोभित हो रहे हैं। नागकेसर का वृक्ष भीष्म के समान, अर्जुन का वृक्ष अर्जुन के समान तथा उरुशकर आदि के वृक्ष भी वीरों के समान सुशोभित हो रहे हैं। मयूर शिखण्डी के समान हैं तथा अशोक के वृक्ष शोकरहित मुक्त पुरुष की तरह शोभा दे रहे हैं।

उस वृन्दावन में निरन्तर ज्योतिष-चक्र (सूर्य-चन्द्र आदि) के विना ही प्रकाश रहता है, वहाँ पर देवताओं की गति नहीं है, वहाँ निरन्तर श्रीकृष्ण जैसे निस्तारक रहते हैं, वहाँ का सुन्दर तारोंवाला आकाश तेज से प्रकाशित सुन्दर चन्द्रमा और सूर्यवाला, सुमङ्गलमय, सुबुद्ध, सुजीव, सुकवि (शुक्राचार्य), मन्द, तम तथा सुन्दर केतुओंवाला है, जो पृथिवी पर होते हुए भी पृथिवी पर नहीं, समयवाला होते हुए भी कालातीत और व्यापक होते हुए भी अव्यापक है। ऐसा सम्पूर्ण गुणों का धाम वृन्दावन नाम का वन है।

वहाँ पर कहीं (नीले) मरकतमणि की भूमि है, कहीं स्वर्ण की वृक्ष-लताएँ हैं, कहीं स्वर्ण की भूमि और नीलमणि की लताएँ हैं, कहीं पर लाल कमल के सदृश भूमि है तो स्फटिकमणि के से वृक्ष हैं, कहीं स्फटिक की वाटिका है तो कहीं कमल-राग की लताएँ हैं, कहीं नीलमणि के वृक्ष की शाखाएँ स्वर्ण के सदृश हैं तो कहीं स्वर्ण के वृक्ष और नीलमणि के उसके पत्ते हैं। कहीं स्फटिक के वृक्ष हैं तो उस पर लालमणि के पत्ते हैं। वे मणिमय वृक्ष विविध रत्नों की शाखाओं से चित्र-विचित्र पत्तोंवाले हैं। उनमें विविध रत्नमय पुष्प हैं परन्तु ऐसा कोई वृक्ष नहीं जो कोमल न हो और ऐसा कोई पुष्प नहीं जिसमें सुगन्ध न हो। मणिमय होते हुए भी उनमें सुगन्ध व कोमलता है।

उस वृन्दावन में मणिमय पर्वत हैं जो श्री राधा-कृष्ण के विहार की स्थली हैं जिन पर झरने झर रहे हैं, जो ऐसे लगते हैं मानो प्रकाशमान मणियों का चूर्ण ही बिखेर रहे हों। उन झरनों के समीप वृक्षों का हरा-भरा झुण्ड अति मनोरम प्रतीत होता है और वृक्षों के आलवाल मणियों से बनाए हुए हैं।

ये वृक्ष ब्रह्मा के समान आप ही प्रकट हुए हैं, शंकर के समान इनकी जटाएँ हैं तथा सनकादि के समान ये बालक तथा युवा व आनन्दमय छवि से सदा सुशोभित रहते हैं। इन वृक्षों की शाखाएँ सैनिकों के समान सुसज्जित हैं। स्वर्ग के योद्धाओं के समान आनन्द में निमग्न उत्साहपूर्ण सुमनवाले ये वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। ये कर्मयोग करनेवाले हैं क्योंकि सब ऋतुओं में फल देते हैं। विना वीज के उत्पन्न हुए हैं, विना पालन किए ही वढ़े हैं, विना सिंचन के ही हरे-भरे हैं और विना ऋतु के ही सदा फूलते-फलते रहते हैं।

ये वृक्ष चित्र के समान मनोरम और सुकवि के नपे-तुले अक्षरोंवाले काव्य-सदृश, सदा अङ्कुरित, पल्लवित, मुकुलित, कुसुमित, फलित तथा पके फलों से भरपूर रहते हैं। इन वृक्षों के प्रतिविम्ब नीचे बहते हुए सरोवरों के जल में पड़ते हैं तो उन प्रतिविम्बों को देख पक्षिगण उन पर बैठने व फल खाने के लिये सलिल में चोंच मारकर कोलाहल करते और डुबकी लगाते हैं।

कोई वृक्ष कालिन्दी-जल में प्रतिविम्वित हो रहा है और वायु के झकोरों से वहाँ लहराता दिखाई दे रहा है तो कोई वृक्ष नीलमणि के सदृश यमुना-जल को ही श्रीकृष्णजी का अङ्ग मानकर उससे आलिङ्गन करने के लिए प्रवृत्त हो रहा है। कोई वृक्ष, जिसका आलवाल लाल रत्नों के सदृश किरणें फैला रहा है, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह अपनी जड़ से आलवाल द्वारा श्रीकृष्ण का अनुराग-रस ही पुनः प्रकट कर रहा है। ये सब वृक्ष अलौकिक होते हुए भी लौकिक के सदृश लगते हैं जैसे भगवान् के अवतार अलौकिक सच्चिदानन्दरूप होते हुए भी इस लोक में लौकिक के समान लगते हैं।

रमणियों के समान स्वतन्त्र लताओं और पत्ते-कलिका आदि परिवारवाले वृक्ष आनन्दपूर्वक देवताओं के समान विराजमान हैं। रमणी-सदृश यहाँ की लताएँ पुष्पवती होते हुए भी रजस्वला नहीं होतीं और मुखवाली होती हुई भी टेढ़ी व चञ्चला नहीं हैं। इन पर सदा भ्रमर गुञ्जार करते हैं, पर ये किसी भ्रमर के लिए नहीं भ्रमतीं। हवा से हिलती हैं किन्तु जगत् की हवा से दूर रहती हैं तथा सभी कामनाओं को देनेवाली हैं।

मणिमय आलवाल के ऊपर वृक्षों की डालियों के फल और पुष्प ऐसे जान पड़ते हैं मानो सुखपूर्वक सो रहे हैं। किसी-किसी वृक्ष की जड़ में भूषण के समान नारियल के फल चारों ओर से पड़े हुए रमणीयता बढ़ा रहे हैं तो किसी वृक्ष की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो सुन्दर कटिवाली कामिनी ही हो और फलों से उसकी डालें ऐसी झुकी जा रही हैं जैसे यौवन के भार से वह युवती। उसने पुष्पों को मानो कण्ठ का आभूषण बना रखा है। उसके चारों ओर वृक्ष सुन्दरता बढ़ा रहे हैं।

नारंगी की लता पर नारंगी के फल ऐसे सुन्दर चमकते हुए लटक रहे हैं मानो वनरूपी आकाश में लाल वर्णवाला मङ्गल तारा हो। सुन्दर पल्लवोंवाली लवली लता अपनी विचित्र भङ्गी की नृत्य-कला से नेत्रों का मनोरञ्जन कर रही है। अनार के वृक्ष के पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं और फलों पर तोते चोंच मार रहे हैं। वे अनार ऐसे प्रतीत होते हैं मानो हाथी के बच्चे हों और तोते जब चोंच द्वारा उन्हें विदीर्ण करते हैं तो उनके दाने ऐसे

प्रतीत होते हैं जैसे उन हाथी के बच्चों के मस्तक फोड़ने से गजमुक्ताएँ निकल रही हैं।

खजूर के वृक्ष षड्र्मिवाले होते हुए भी षड्र्मि (अर्थात् शोक, मोह, क्षुधा, पिपासा, जरा, मृत्यु) से रहित हैं। कहीं-कहीं पर मधुर रसवाले कोमल-कोमल अंगूरों की लताएं वन की मनोहरता बढ़ा रही हैं, कहीं फलियोंवाली लताएँ फलियों से भरी हुई चारों ओर विकसित हो सुन्दरता की वृद्धि कर रही हैं और कहीं ललित केले के वृक्ष सुशोभित हैं। शोभा-उपवन में नारायण के तप से दिव्य वृक्षवाला जो दिव्य रङ्गमञ्च बना था, उससे भी अधिक छटा वृन्दावन में है।

षड्ऋतुवर्णन

वृन्दावन के छः विभाग हैं। भगवान् की लीलाओं के उपयुक्त छहों ऋतुओं के पुष्प-फल आदि एक-एक विभाग में सुशोभित हैं। वर्षा ऋतु यहाँ हर्ष है, शरद् ऋतु आमोद है, हेमन्त ऋतु सन्तोष है, शिशिर ऋतु आनन्द की खान है, वसन्त ऋतु कान्ति है और ग्रीष्म ऋतु सुभग है।

१. वर्षा ऋतु : उन छहों ऋतुओं में भगवद्भक्ति (योग) के समान सदा घनानन्ददायी (मेघों से जल देनेवाली) वर्षा ऋतु उपस्थित रहती है जो ब्रह्म के साक्षात्कार के समान सज्जनों को आनन्द देनेवाले चिर प्रकाश से युक्त (सदा आनन्द देनेवाली बिजली की कान्ति से युक्त) तथा पार्वती की मूर्ति के समान शिव (मयूर) को समुत्सुक करनेवाली, सदा तर्क के कोलाहल से भरे (दात्यूह पक्षी के कोलाहल से युक्त) न्यायग्रन्थ के समान, सदा बलशाली पक्षों को धारण करनेवाले (सदा चातक पक्षी के कोलाहल से युक्त) गरुड के समान तथा सूर्य के समान दिशाओं (अर्जुन वृक्षों) को प्रकाशित करनेवाली है।

लीला के उपयुक्त छोटे-छोटे जलकण नवीन मणिमय पत्तों, अङ्कुरों व पुष्पों पर पड़ रहे हैं और मणिमय भूमि किरणों के पड़ने से विचित्र रंगों की छटा से शोभित हो रही है। मन्द-मन्द चलनेवाली इन्द्रवधुओं (वीरबहूटियों) के झुण्ड ऐसे प्रतीत होते हैं मानो लालमणियाँ सजीव होकर नवीन हरी-हरी मणिमय घास पर चल रही हों। शीतल ! पवन वह रहा है और चारों ओर कदम्ब वृक्षों की सुगन्ध छा रही है। मालती के पुष्प हँसते हुए विकसित हो रहे हैं, पृथिवी कदम्ब वृक्षों से सुशोभित है, वन पुलकित हो रहे हैं और निरन्तर जलकण झर रहे हैं। पृथिवी मानो देवाङ्गनाओं के समान प्रेम झलका रही है।

इन्द्रधनुष के समान धनुप्रलता ही जिसके मस्तक का तिलक हैं, विजली के सदृश सुशोभित केतकी जिसके केश हैं, चलती हुई बगुलों की पंक्ति जिसकी माला है ऐसी नवीन उन्नत पयोधरोंवाली, भगवान् का मन हरण करनेवाली दिशारूपी वधू सुशोभित हो रही है।

वहाँ चातकों का समूह मानो विरह-वाणी बोलकर मानिनियों को आश्वासन दे रहा है, भ्रमरों की मधुर ध्वनि उनकी मानरूपी भूमि को चूर कर रही है तथा नाचते हुए मत्त मयूरों का राग प्रियतम का आलिङ्गन करती हुई प्रिया के प्राणों को खींचनेवाला है और मन्त्रपाठ की ध्वनिसदृश मानो मेघध्वनि सुनाई पड़ती है।

वहाँ चारों ओर टिट्टिभ तथा मेंढक बोल रहे हैं और आकाश से मेघों की जलधार बरसने की झप-झप की ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो सुलाने के समय गोपियाँ हाथ की थपकी दे रही हों। बीच-बीच में गौरी लताएँ हैं, आम के वृक्ष फलों से लदे हुए झुक रहे हैं, जामुन के वृक्ष फलों से भरे हुए श्याम छटा दिखला रहे हैं और किनारे पर स्पष्ट सुगन्धवाले केतकी नामक उद्यान की शोभा फैल रही है। इस प्रकार विविध रंगों की छटा वन में चित्रित है।

२. शरद् ऋतु : उस धाम में भगवच्चरण-कमल की सेवा करनेवाली कमला देवी, हरिभक्तों के निर्मल हृदय के समान निर्मल जल और परम उज्ज्वल दिशाएँ हैं तथा वैकुण्ठनाथ भगवान् के चरणकमलों के समान प्रफुल्लित कमल एवं चक्रसुदर्शन के समान चक्रवाक पक्षी हैं।

जैसे पाण्डवों के दूत बनकर गए हुए भगवान् की दुर्योधन आदि ने अवज्ञा कर दी ऐसे ही वहाँ पक्षी पंखों से कमलों की अवज्ञा कर रहे हैं। अध्यात्मयोग के योगियों के समान वहाँ जल में हंस चल रहे हैं और रामायण में श्री राम-लक्ष्मण के संवाद-सदृश उनका कूजन है।

भगवान् के यश के समान वहाँ पर कुवलयामोद है और जलती हुई दिशाओं के समान पीले कमल हैं। वहाँ पर मत्त मधुकर क्रीडा कर रहे हैं। सायंकाल जैसे बादल लाल होकर जल में चित्रित हो जाते हैं ऐसे ही वहाँ लाल कमल खिल रहे हैं।

युद्ध के आरम्भ के समय जैसे चन्द्रहास तलवारें चमचमाती हैं वैसे ही वहाँ चन्द्रकिरणें चमचमा रही हैं। सत्य के समय जैसे पूर्ण धर्म उदित होता है वैसे ही वहाँ पूर्ण चन्द्र उदित हुआ है। जैसे सज्जन लोग दुर्जनों के वचन से तप्त किये जाने पर भी शीतल रहते हैं वैसे ही बड़े बड़े सरोवर शरद् ऋतु में

वहाँ जल शीतल रखते हैं और जैसे कन्याएँ कपास से रूई निकालती हैं वैसे ही आकाश में मन्द-मन्द पवन के झकोरे सफेद-सफेद बादल के टुकड़े निकालते हैं।

वहाँ यमुना-जल में मेघों के श्वेत प्रतिबिम्ब पड़कर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो आकाश की श्वेत गङ्गा ही यमुना-जल के गर्भ में वास कर भगवान् के अवगाहन का सौभाग्य चाहती हों।

वहाँ प्रफुल्लित कह्लार-हल्लक आदि कमलों की सुगन्ध भ्रमरों को और सौरभ पवन के द्वारा वन में छाकर हाथियों को मत्त कर रहा है।

वहाँ सारस और हंस का कूजन मानो मूर्तिमान् शरद् देवी की वाणी लगता है। मधुकर-श्रेणी ही मानो उनकी भौंहें हैं, कमलों का कोष ही मुख है, नीलकमल ही लोचन हैं और नील-पीत-लाल पराग ही उनके वस्त्र हैं। कर्दम ऋषि के चलने पर देवहूति जैसे पुत्र कपिल का मुख देखकर ठहर गई थीं वैसे ही शरद् देवी कमलों का मुख देखकर ठहरी हुई हैं। मानो गुलाब के फूलों को बिछाकर, आकाश के तारों का मुक्ताजटित वितान लगाकर तथा सुगन्धित हवा का चँवर बनाकर अतुल कान्तिवाली ऋतु देवी शयन कर रही हैं।

ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की हरी-हरी शाखाएँ जैसे हाथ उठाकर कह रही हों कि "ओ मेघ! तुम बरसकर हरियाली को देख सुख लेने दूर क्यों जा रहे हो? यहाँ आओ, देखो! हम भी तो हरी-भरी हैं, इसलिये वर्षा ऋतु का सुख तुम्हें यहीं मिल जायगा।"

३. हेमन्त ऋतु : वहाँ पर भीम के समान महासह वृक्ष (जिसके फूल कभी नहीं मुरझाते) सुशोभित हो रहा है। श्री मधुसूदन के प्रिय सखा अर्जुन के समान आमोद-भरा अर्जुन वृक्ष शोभा पा रहा है। महेश का सेवक बाणासुर जैसे कैलास पर शोभित हो ऐसे वहाँ पर लोध्र वृक्ष सुशोभित हो रहा है।

वहाँ श्री भागवत ग्रन्थ के माधुर्य-रस का आस्वादन करनेवाले शुक के समान शुक, आयुर्वेद-प्रवीण ऋषि हारीत के समान हारीत पक्षी और साधुसङ्ग के समान सदा प्रेमोन्मत्त करनेवाले लाव पक्षी हैं। क्रमशः शीतल होते हुए भगवद्भक्त के समान हेमन्त में वहाँ का जल उत्तरोत्तर शीतल होता जा रहा है।

छोटे दिनोंवाला तथा सदोष होने पर भी हेमन्त निर्दोष हैं क्योंकि कामिनियों के लिए वह महोत्सवस्वरूप रात्रि बढ़ा देता है और दिन में सूर्य-किरणों के देर तक न रहने से वधुओं के शीत से व्याकुल हृदय लम्बी रात्रि

होने से प्रीतम का आलिङ्गन कर अपनी ठण्ढक मिटा लेते हैं, अतः वधुएँ सदा चाहती हैं कि रात बड़ी हो।

जैसे कुरवक के पुष्पों को अपने केशों में लगाकर और वनफूलों की माला हृदय पर धारण कर व्रज-सुन्दरियाँ सुखी होती हैं वैसे मणियों के भूषणों से सुखी नहीं होतीं। वे इस ऋतु में अपने अङ्गों में कस्तूरी आदि का लेप कर, निकुञ्ज-गृहों में सुगन्धित धूप, ताम्बूल, इलायची आदि सुन्दर पदार्थ सेवन कर सुख लेती हैं।

हेमन्त ऋतु श्री वृन्दावन में अपने शीत गुण का प्रयोग नहीं कर पाता।

४. **शिशिर ऋतु :** वहाँ वन्धुजीव नामक पुष्प ऐसा प्रफुल्लित हो रहा है जैसे अपने मित्र के आने से मित्र प्रसन्न होता है, कुन्द पुष्प ऐसी अतिशय छविवाला है मानो विश्वकर्मा ही हो और मरुवक नामक पुष्प ऐसा प्रतीत होता है जैसे साक्षात् वैकुण्ठनाथ ही हो।

जैसे लङ्का का युद्ध होने पर मुनि लोग धीरे-धीरे वढ़ने लगे थे ऐसे ही वहाँ आनन्दित होकर भारद्वाज पक्षी वढ़ने लगे हैं। जैसे प्यारी पत्नी के वियोग से खिन्न हुए चित्तवाला प्राणी उत्तर-हिमालय की ओर तपस्या के लिए प्रयाण कर जाता है वैसे ही सकल-जन-सेवित-चरण सूर्यदेव उत्तरायण की ओर प्रयाण करने लगे हैं।[1]

नदी-तालावों में कुहरा पड़ने से वहाँ जल नहीं दीखता और जैसे अग्नि की पहचान धुएँ से होती है ऐसे ही नदी में जल की पहचान अनुमान से ही की जाती है।

प्रातःकाल तरुण हरिणियाँ चकित नेत्रों से प्रभात होने की प्रतीक्षा करती हैं कि कव सूर्य-किरणों का सेवन करें।

तृणों व पत्तों पर हिमकण विमल मुक्ताओं के जालसदृश शोभित होते हैं। प्रातःकाल सूर्य अपनी कोमल किरणरूपी उँगलियों से उनको लज्जित जान दुलार[2] करते हुए देर तक विलमाए रखते हैं।

अत्यन्त शीत में घना हिमपात होने से वृक्ष-समूहों के नीचे अपार जाड़े के कारण कृष्णसार मृग समूहबद्ध होकर सन्ध्याकाल में भी अति सुख से समय व्यतीत करते हैं।

सन्ध्या समय आग से लाल लोहे के गोले के समान सूर्य जव समुद्र-जल में

१. वैराग्य से तेज वढ़ता है।

२. जाड़ों में ओस शीघ्र नहीं सूखती।

डूबने लगा तो उससे उठी हुई भाप के हिमकणों द्वारा दिशाएँ मलिनमुख हो गई और उन दिशाओं से अपने-अपने निवासस्थान की ओर भागते चहचहाते पक्षियों से आकाश भरा दिखाई पड़ रहा है।

वृक्षों पर घने पत्तों के बीच उनका विशेष सुखदायक शयनालय बना है, जिसमें पक्षियों के जोड़े अत्यन्त आनन्द से कूजते हुए आकर शीत के भय से अपनी-अपनी शय्याओं पर लेटे हैं और चकोरगण चन्द्रमा के कान्तिरूप रस का आस्वादन कर रहे हैं। ऐसी सुन्दर शिशिर की रात्रि है।

शिशिर की रात्रि में प्रिया के साथ प्रियतम शयन कर रहे हैं। ऐसे समय मान अपने-आप दूर हो गया है। प्रिय कथाओं के द्वारा भी रात्रि समाप्त नहीं होती। गाढ आलिङ्गन में विघ्न करनेवाली मालाएँ तथा चन्दन आदि आलेपन भी दूर कर दिए गए हैं। केवल स्पर्श की गर्मी ही वहाँ प्रिय है, ऐसी अतिप्रेम-प्रदायिनी शिशिर ऋतु है।

कमलिनियों के सम्मुख सूर्य का प्रकाश आता है और वे अच्छी प्रकार से खिलने भी नहीं पातीं कि सूर्य चला जाता है। आश्चर्य की बात है कि पद्मिनी (स्त्रियाँ) दिन में सूर्य का पीठ से सेवन करती हैं।* वे केशों तथा हृदय पर नवीन कुन्द की माला गूँथकर धारण करती हैं। वे मणियों के भूषण धारण नहीं करतीं क्योंकि वे अपने प्यारे को ही अपना परम भूषण समझती हैं।

५. वसन्त ऋतु : वहाँ पर प्रिय-संयोग के समान नवीन कलिका-समूह से आच्छादित सरस रसाल वृक्ष हैं, भगवद्भक्ति तथा तत्त्वज्ञान के अभ्यास से शोकमुक्त के समान प्रफुल्लित लाल अशोक वृक्ष हैं, शास्त्रार्थ में निपुण कोविदों के समान कोविदार (कचनार) के वृक्ष प्रफुल्लित हैं, महायुद्ध में प्रवेश करते हुए मत्त नाग (हाथी) के सदृश पुन्नाग पुष्प के वृक्षसमूह हैं और मधुरस के आमोद से मत्त मन्दार वृक्ष हैं।

श्री रघुनाथजी की सेवा में क्रीडा करते हुए कपि (वन्दर) के समान पिक क्रीडा कर रहे हैं, संसार-सुख में लवमात्र मग्न जीव के समान लवङ्ग लता आमोदित हो रही है और इक्ष्वाकुवंश के समान वलवान् फला-फूला वकुल (मौलश्री) वृक्ष सुशोभित है।

वहाँ पर सप्त स्वरों का आलाप स्पष्ट सुनाई पड़ता है तथा मतवाले हाथी के कपोल से वहते मद के समान विकसित करील वृक्ष शोभित हैं। सदा मन्द सुगन्धवाले पुष्पों को शीघ्रता से डुलानेवाला ऐसा वसन्त नामक ऋतु है।

* जाड़े में प्रायः सब लोग सूर्य की ओर पीठ कर शीत मिटाते हैं।

शीत कम होने पर निर्मलता से सुन्दर सुधाकर की किरणोंवाली मधुर रमणीसदृश मृतक में भी प्राण डाल देनेवाली एवं सर्वसुखदात्री वहाँ की रजनी से युक्त मधुमयी पूर्णिमा वसन्त की मधुरता को प्रकाशित कर रही है। उस वृन्दावन की कमनीयता के आगे क्या कामिनी मधुर हो सकती है ?

व्रज-रमणियों से सेवित पुष्पों की छटावाले उपवन का पवन मन हर लेता है। वह मत्त तरुण श्रीकृष्ण के अनेक रूपों का अपनी शोभा द्वारा सेवन करता है। पुष्पित शृङ्गार के अमित भावों द्वारा निरन्तर विहारवाले उस वन में विचित्र पुष्पहारोंवाला वसन्त छाया है जहाँ दिशारूपी रमणी निर्मल होते हुए भी पुष्प-रज से आच्छादित है।

मधुकरों से पूर्ण नीरज छाए हुए हैं जो पुष्पों के पराग से भरे होने पर भी निर्मल हैं। पुष्पों के मकरन्द को न पीकर मधुकर मत्तता के कारण कामवश हो कामिनियों के आनन की सुगन्ध पर मुग्ध हो रहे हैं।

वसन्त में प्रफुल्लित किंशुक (पलाश) के पुष्पों को शुक की चोंच के समान देखकर भ्रमर तर्क करते हैं कि यह कहीं शुक की चोंच तो नहीं है।

आम्र की डाली पर बैठी हुई कोकिला कलित कण्ठ से तान अलाप रही है। दूसरी कोकिला उसके स्वर में स्वर मिलाकर गाना ही चाहती है कि भ्रमर पिक का शब्द सुन वसन्त आया ऐसा जान आम्र की कली पर बैठ गया। वह कोकिला उन्मत्त हो कली पर चोंच मार फल समझ भ्रमर को निगल गई, पुनः 'यह फल नहीं, भ्रमर है' ऐसा जान गाने लगी और उसकी आवाज के साथ भ्रमर ऐसा मुँह से बाहर निकला मानो मूर्तिमान् राग निकला हो।

जिनका मद कल-कल कर चू रहा है तथा जिनके कण्ठ में कोकिल-रव-सदृश घण्टे ध्वनि कर रहे हैं ऐसे कामोन्मत्त गजेन्द्र वृन्दावन में शब्द करते हुए विचर रहे हैं।

पुन्नाग पुष्पों को भूषण बनाकर माधवी की माला धारण किए, मौलश्री का गुच्छा लिए, ललाट पर सिन्दूर के समान किंशुक लगाए, चम्पा के पुष्पों की कुचकञ्चुकी बनाए और कटि पर सुनहले वञ्जुल लगाकर वस्त्र धारण किए मूर्तिमती वासन्ती देवी विराजमान है।

जिसकी मुस्कान प्रफुल्लित पुष्प ही हैं, मकरन्द ही पसीना है और अङ्कुर ही हर्ष से उल्लासित रोम हैं ऐसी भाववती वन-लता क्या सुन्दर नहीं लगती ?

६. **ग्रीष्म ऋतु :** गर्मी के दिनों में वहाँ काश्मीर देश के समान निरन्तर उत्पन्न होनेवाली सुगन्धयुक्त पीतवर्ण की केशर, प्रफुल्ल मल्लिका से शोभित शरत्काल के समान सम्पन्न गुलाब, स्वर्ग में प्रफुल्लित इन्द्र के समान इन्द्र

वृक्ष और लक्ष्मी के करों के समान खिले शतदल (कमल) शोभा देते हैं। धूमयाट पक्षी स्वतन्त्र भ्रमण कर रहे हैं, प्रह्लाद के वंश के समान प्रचण्ड सूर्य (प्रह्लादपुत्र विरोचन) प्रकाश फैलाते हैं और वैष्णवों को भगवान् के मुखचन्द्र के समान लोगों को चन्द्रमा प्रिय लगता है।

जैसे साधुसङ्ग में मज्जन करने से भक्तों को सुख होता है वैसे ही ग्रीष्म में स्नान से सुख प्रतीत होता है। जैसे हरिभक्त जन दोषों को धीरे-धीरे त्याग देते हैं वैसे ही रात्रि ने अपना बढ़ना रूप दोष घटा दिया है अर्थात् छोटी होने लगी है और जगत् के प्राण शीतल-सुखद पवन की सब वैसे ही इच्छा करने लगे हैं जैसे श्री-सम्पन्न पुण्यवान् जन की सब इच्छा करते हैं।

ग्रीष्मकाल ने शीतकाल से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया और शीतकाल ग्रीष्म से पीड़ित हो भागकर ब्रजसुन्दरियों के स्तन-दुर्ग का आश्रय लेकर वहाँ रहने लगा। ग्रीष्म की धूप से पीड़ित होकर आनेवाले खग-मृग आदि को वृक्ष अपनी छाया से शीतल करके तथा अपने पत्तों से हवा देकर अतिथि-सत्कार-कुशल पुण्यवानों की तरह सेवा में तत्पर हैं।

सूर्य की प्रखर किरणों से बढ़े ताप के शमनार्थ मणिमय विहार-पर्वत के शिखरों पर शीतल झरने झर रहे हैं। वृक्षों की शीतल छाया और वन की पंक्तियों से आच्छादित वन-वीथियों में ब्रजबालाएँ घनी छायावाले निकुञ्जों में वसन्तकाल के सदृश झुनझुनाते मणि-नूपुरों का नाद करती खेलती-फिरती रस बढ़ा रही हैं।

दिन में सूर्य के कराल ज्वालरूपी विषम विषधर के निःश्वास के समान गरम होकर पवन अपने को शीतलता लाभ कराने के लिए ब्रज-सुन्दरियों के सुगन्धित और शीतल स्तनों की ओर वैसे ही दौड़ता है जैसे कोई स्नान करने के लिए सरोवर पर जाता है।

वहाँ पर जैसे दिन में ताप बढ़ा था वैसे ही चन्द्रकिरणों से अत्यन्त सुन्दरता, शीतलता और रमणीयता बढ़ाकर रजनी अति सराहनीय पराक्रम दिखा रही है।

कर्पूर के महीन-महीन रेणु-जैसे सूक्ष्म जलबिन्दुओं को झरनेवाले जलयन्त्र और मोतियों के मण्डपवाले सरोवरों के बीच में ग्रीष्म ऋतु में अपनी प्यारी श्री राधिकाजी के संग श्रीकृष्णचन्द्रजी सुख से शयन करते हैं।

मस्तक पर जिनके केश मनोहरता से इधर-उधर छिटके हुए हैं, बड़ी-बड़ी मुक्ताओं की मालाओं से विभूषित जिनका पीताम्बर स्वर्ण के जल की लहरियों की तरह झलक रहा है और मल्लिका की कलियाँ तथा चन्दन का लेप जिनके

अङ्गों में शीतलता दे रहा है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रजी, जिनका भूषण केवल श्री प्यारीजी ही हैं, वन में खेल रहे हैं।

जिसके कानों के भूषण शिरीष के फूल और शिर का भूषण गुलाव के फूल हैं, मल्लिका की माला व कुटज ही जिसके अङ्गद हैं, जो आप ही अपने भूषण धारण किए है और जिसकी सखियाँ वन की क्यारियाँ हैं. ऐसी सुशोभित ग्रीष्मऋतुरूपी देवी सायंकाल के समय श्री भगवान् के चरणों की सेवा कर रही है।

इस प्रकार से इन ऋतुओं का विभागसहित वर्णन किया गया। नवीन वृन्दावन कानन ही मूलभूत (अङ्गी) षड्ऋतुओं (अङ्ग) से सुशोभित है। यह अङ्ग-अङ्गीभाव द्वारा समझना चाहिए।

अपने सीमन्त में नवीन कदम्ब-भूषण धारण कर तलवों में नीला कमल, कपोलों पर नवीन-नवीन चिकना लोध्र पुष्प का पराग, गले में बन्धूक पुष्प की मालाएँ, कानों में वञ्जुल (अशोक) के पल्लव और केशों में मल्लिका की मालाएँ धारण करके सुन्दर वृन्दावनरूपी वधू प्रतिदिन श्रीकृष्णचन्द्रजी की निरन्तर उपासना करती है।

कालिन्दी-वर्णन

उस वृन्दावन में मञ्जुल कुञ्जों के मण्डप-समूह मनोरम मणियों के मन्दिर की समानतावाले हैं, जिनमें कोकिलाएँ कूज रही हैं, मृग नृत्य कर रहे हैं, ओषधि-लताएँ रात्रि में दीपक के समान प्रकाशित हो सुन्दर सौरभ छिटका रही हैं और हरिणियाँ अपने पूँछरूपी चँवरों से लताओं को बुहार रही हैं। ऐसे वृन्दावन के मध्य में इन्द्रनीलमणि के हारों की तरह अथवा इन्दीवर (नील-कमल) की माला की तरह अथवा कज्जल की रेखा की तरह अथवा नीली छड़ी की तरह यमुना नदी को लेकर वृन्दा देवी सुशोभित हैं।*

यमुनाजी गम्भीर तरङ्गोंवाली, सुन्दर कमलोंवाली, नवीन शोभावाली और श्वेत रंग के हंसोंवाली हैं, जिनमें मत्स्य किलोल कर रहे हैं। वे मज्जन से सुख देने के साथ-साथ नत जनों को भी सुखानन्दप्रदायिनी हैं। उनके तट की विविध लताएँ ही मानो उनकी कञ्चुकी में चित्रित हैं। उनका विशाल वक्षःस्थल शैवाल-लता से आच्छादित है। हंस-पंक्ति का कूजन ही मानो उनकी कटि-किङ्किणी की ध्वनि है। कलित कमलों का पराग-पटल ही मानो वस्त्र हैं, भ्रमरों की श्रेणी ही मानो वेणी है, नीलकमल ही मानो नेत्र हैं, प्रफुल्लित शतदल

* यमुनाजी मानो वृन्दा देवी के हाथ में धारण की हुई नीली छड़ी हैं।

(कमल) ही मानो मुख है और अरुण कमल ही मानो अधर हैं। ऐसी मूर्तिमती सुन्दरता देवी के सदृश श्री यमुनाजी तरल तरङ्गरूपी हाथों से कमल के फूलों द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रजी का निरन्तर आराधन कर रही हैं।

यमुनाजी के जल में पुष्प-फलवाले तट के वृक्षों का प्रतिविम्ब ऐसा लगता है मानो वहाँ एक दूसरा वन हो, ऐसा जान प्रतिबिम्बित वृक्षों पर के पक्षी, भ्रमर, फल, पुष्प आदि को देख मछलियाँ उन फलों और पक्षियों को पकड़ने के लिये जल-प्रवाह में मुख मारकर क्षणमात्र के लिये ठहर जाती हैं। रात्रि में शान्त यमुना-जल में तारागणों का प्रतिविम्ब मछलियों को ऐसा प्रतीत होता है मानो खीलों के दाने हों जिन्हें देखकर वे खाने को दौड़ती हैं।

कपूर के चूर्ण के समान चन्द्रमा की चाँदनी किनारे के जल में पड़कर ऐसी सुशोभित होती है मानो उन वृन्दा देवी के अङ्गों में चन्दन लगा हो अथवा उनकी वेणी में विराजमान मालती की माला के खण्ड हों। उन पुलिनों पर कहीं-कहीं नवीन-नवीन तृणाङ्कुर शोभा दे रहे हैं और पुष्पों के उपवन मञ्जुल-मञ्जुल कुञ्जों तथा दिव्य मणिमय मण्डपों से सुशोभित हैं।

यमुना-तट के कुञ्जों में हंस, कुरर, सारस, चक्रवाक, कलहंस आदि विचर रहे हैं और शुक, कोयल, जीवञ्जीव (चकोर) आदि पक्षी उत्साहपूर्वक श्रीकृष्ण-कथा-आलाप के द्वारा मधुर सभा-सी कर रहे हैं। यमुनाजी के तट पर नीलमणि, पीतमणि, लालमणि तथा श्वेतमणियों से निर्मित घाट बने हुए हैं और सीढ़ियाँ ऐसी चमक रही हैं मानो शोभा देवी के दाँतों की पंक्तियाँ हों।

जैसे इस ओर लता-मन्दिरों के मण्डल हैं वैसे ही दूसरी ओर भी तट पर लता-मन्दिर हैं और दोनों परस्पर मानो होड़-सी कर रहे हैं।

उन लता-मन्दिरों की बनावट इस प्रकार है—चारों कोणों पर चार सुन्दर वृक्ष हैं, उनके बीच-बीच में दो-दो लताएँ शोभित हैं। वे लताएँ एक-एक को आक्रमण करके आगे बढ़ गई हैं और पुष्पों-फलों-पल्लवों से लता-मण्डप को मणिमण्डपों से भी अधिक सुन्दर बना रही हैं। लताएँ ऐसे ढंग से फूली हैं मानो मण्डप में भूषण लटक रहे हैं। कोई लता इस रीति से फैली है कि द्वार बन गया है, कोई लता ऐसी बढ़ी है कि उसने दीवाल बना दी है, कोई बहुत ऊपर जाकर इस ढंग से घूमी है कि मन्दिर का कलश बन गया है और कोई लता इस तरह से बढ़ी है कि उसने चँवर बना दिए हैं।

गिरिराज-वर्णन

उस वृन्दावन में गोवर्धन पर्वत (गिरिराज) सहस्रशिर भगवान् के

समान परमपुरुषावतार प्रतीत होता है क्योंकि इसके सहस्रों शिखर ही मानो शिर हैं, स्फटिक मणि (सफेद शिलाएँ) ही कटक हैं, पहाड़ों से निकले विचित्र मणि-रत्न ही कुण्डल हैं, धातुएँ (मैनसिल, गेरू आदि) ही चित्रकारी हैं और शैलराज होते हुए भी भगवान् की कृपा से यह समस्त लोकों को लाँघकर ऊँचे चला गया है।

यह पर्वत (गोवर्धन) इन्द्र के समान प्रतीत होता है क्योंकि यह सहस्रों दुर्गम गुफाओंरूपी नेत्रों से अलंकृत है, लक्ष्मी के समान सबको सम्पत्ति का दाता है, सुगन्धित पवनवाला है, सर्पों का निवास होने से शंकर के समान है और शंकर के समान ही उदार भी है, भगवान् के समान यह विचित्र वनमाला (वनपंक्ति) धारण किए है और मूर्तिमान् आनन्द के समान सदा महोत्सव करता रहता है ।

पृथिवी के भूषणस्वरूप लोकालोक पर्वत से भी रमणीय और आनन्दमय कन्दवाले वृक्ष और आनन्दमय कन्दरा तथा वटवृक्षों की क्यारियों से सुशोभित यह श्री गोवर्धन नामक गिरिराज प्राणियों की रक्षा करने में सदा तत्पर रहता है।

यह गिरिराज अनुपम है। न तो इसकी उपमा कैलाश से दी जा सकती न सुमेरु से, क्योंकि कैलाश केवल चाँदी का है और सुमेरु केवल स्वर्ण का है।

यहाँ सम्पूर्ण शब्दावली माधुर्यमय है, उच्चारण में कठोर 'ट' वर्ग नहीं है। अथवा यहाँ पर माधुर्य के रूपक का सम्पूर्ण रङ्गमञ्च और नटवर्ग (न + टवर्ग) है।

इसकी तराई में वृक्षों के वीच में वहनेवाले झरने के जलकणों से मिश्रित पुष्पों की सुगन्ध उड़ रही है और हरे-हरे नवीन-नवीन तृण निकलकर सब ओर सुगन्ध फैला रहे हैं। हरितमणिमय भूमि पर वहनेवाले झरनों के जल की छटा शुक के पंखों के रंग की तरह झलक रही है और उस जल की धारा में होकर हरित पेड़ों के नीचे रुरु, चमर, चमूरु, गवय, गन्धर्व, सृमर, रोहित, शश, शम्बर आदि जातियों के हरे रंग के हिरण निकल रहे हैं जिनका रंग जल के रंग से ऐसा मिल जाता है कि पहचान में नहीं आते कि हिरण हैं या जल। यहाँ कोई नीलमणिमय शिला मयूर के कण्ठ की छटा के सदृश है जिसके ऊपर श्वेत शिला की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो नील-निचोलधारी हलधर हों। किसी नीलशिला के नीचे पीले वर्ण की शिला ऐसी लगती है मानो पीताम्बरधारी नारायण हों।

कहीं पर स्वर्णमयी शिला और श्वेतमणिमय शिला आपस में ऐसी मिली हैं मानो शंकर और पार्वती हों और कहीं पर झरने का जल घूमकर ऐसा वह

रहा है मानो श्री रामजी का धनुष हो। कहीं चाँदी के समान मणिमय शिला पर पीत-मणिमय शिला ऐसी शोभित है, मानो हंस पर आरूढ ब्रह्माजी हों।

किसी ऊँचे शिखर पर से झरना धाराप्रवाह वह रहा है। उसके एक ओर हरित वर्ण के चमकते वृक्ष और दूसरी ओर चमकती हुई लाल मणिमय शिलाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो इन्द्रधनुष हो। विविध मणियों के रंगवाली शिलाओं से कोई शिखर ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश में इन्द्रधनुष निर्माण किया गया हो। कहीं पर वैदूर्य-मणिमय शिखर की शिखा से उत्पन्न होनेवाली किरणों की अविच्छिन्न धुएँ की-सी रेखा ऐसी प्रतीत होती है मानो धूमयाट पक्षी बैठे हों। कहीं पर मणिमय शिलाएँ ऐसी बनी हुई हैं मानो श्रीकृष्ण-चन्द्रजी के बैठने के लिए सिंहासन हो। ऐसी विचित्र विचित्रता से शिलाएँ स्वाभाविक सुखमय हैं।

कहीं पर श्रीकृष्ण के रास-विलास के लिए विशेष लंबी-चौड़ी स्थलीवाले मण्डल बने हुए हैं, कहीं पर श्रीकृष्णचन्द्रजी के मन्दिर के समान मणिमय कन्दराएँ बनी हुई हैं, कहीं पर पवन से आनेवाले विविध पुष्पों के पराग से वितान-से बन गए हैं और कहीं पर प्रफुल्लित लोध्र वृक्षों के समूह कारीगरी के साथ ऐसे लगे हुए हैं मानो विचित्र मण्डल हों।

धव, खदिर, पलाश, शल्लकी, निचुल, शिंशपा, करञ्ज, मधूक, पनस, प्रियाल, ताली आदि वृक्षों की घनी क्यारियाँ सुशोभित हैं। वहाँ पर धूप नहीं आती अतः सहज निर्वैर बड़े-बड़े विचित्र जीव-जन्तु भी वहाँ जाकर विश्राम कर रहे हैं। ऐसे अनेक वृक्ष एवं विचित्र वैभव से शोभित श्री गोवर्धन नामक पर्वत है।

नन्दग्राम-वर्णन

उसके समीप ही नन्दीश्वर नामक द्वितीय पर्वत है। वह पर्वत शंकर के समान है, सुन्दर से सुन्दर वृक्षों से शोभित है और श्री माधवजी का क्रीडा-स्थल है, किंशुक वृक्षोंवाला होते हुए भी शुकों-द्वारा सेवित है, उसकी कान्ति अपार है और वह सुन्दर शिखरों से शोभित है। श्री वामनजी के चरणनख से निकली हुई गंगाजी की धारा की तरह वहाँ पर शीतल सुखप्रद झरने झर रहे हैं और प्रौढ मानिनियों की तरह अभेद्य मनवाला शिला के सार की तरह कठोर मैनसिल है।

शंकर के समान सदा आलिङ्गित-शैलजा (श्री पार्वतीजी से आलिङ्गित) की तरह जहाँ शिलाजीत है, जो किसी व्रज के राजा की राजधानी है, जहाँ

किङ्किणी के शब्द सुनाई पड़ रहे हैं और जहाँ चन्द्रमा ही एकमात्र (घटने-बढ़नेरूप) दोषवाला है, परिमल ही में जहाँ मल का नाम आता है, छत्र-चामर आदि के दण्ड ही जहाँ दण्ड नाम से और वस्त्रों के बन्धन आदि ही जहाँ बन्धन नाम से पाए जाते हैं, चन्दन और कुङ्कुम के पङ्क में ही पङ्क (बुराई) शब्द का प्रयोग होता है, जहाँ पर आलिङ्गन की पीड़ा ही पीड़ा सुनी जाती है, केशों ही में जहाँ कुटिलता तथा हार आदि में ही जहाँ अधिक अस्थिरता (हिलना-डुलना) पाई जाती है, कर-चरण आदि में लगा हुआ राग ही जहाँ राग नाम से पाया जाता है, पुष्पों की धूलि ही जहाँ पर धूलि पाई जाती है और पुष्पों की धूलि से होनेवाला अन्धकार ही जहाँ पर अन्धकार है। रत्नों आदि ही में जहाँ कठिनता, पवन आदि ही में मन्दता, कटि ही में क्षीणता और लोचन के कोणों में ही जहाँ चञ्चलता मिलती है, जल ही में जहाँ नीची गति पाई जाती है, मुक्ताओं ही में जहाँ छिद्र दिखाई देते हैं, मृगनयनियों के कटाक्षों में ही जहाँ पर पैनी धार प्रतीत होती है और शृङ्गार आदि रसों की ही विशेषता में कहीं कटुता* पाई जाती है। बोलचाल के वर्णों में ही कहीं दुर्वर्ण हो तो हो, नहीं तो कहीं वहाँ दुर्वर्ण (जैसे टकार) नहीं मिलता। वहाँ पर सब लोग नाना गुणों की खान होते हुए भी मुक्तावस्था को प्राप्त रहते हैं।

जहाँ पर अरुणोदय के समान पूर्व दिशा लाल होती है, जहाँ मणिमय वितानों में लगे हुए तोरणों से भूमि उत्सवमयी हो रही है और हरित वन-वीथियोंरूप रथ के हरे घोड़ों से युक्त सूर्य चमक रहा है।

सूर्य के चलने की छटा के समान जहाँ पर अट्टालिकाओं का प्रकाश झिलमिला रहा है, जहाँ सूर्योदय के समान महाप्रकाशमान् रात्रि रहती है, नारायण के समान जहाँ पर स्वर्ण के पटल हैं, ब्रह्मानन्द भोगनेवाले मुक्तों के समान जहाँ अट्टालिकाओं में मुक्तारत्न जड़े हैं और सुन्दर सेना के समान जहाँ पर मणिमय खम्भे खड़े हैं।

जैसे चन्द्रमा की कान्ति का पान चकोर-निकर करते हैं ऐसे ही वहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी की कान्ति-छटा का पान करनेवाले असीम गोपगण हैं।

भवन के आँगनों में विविध रत्न बाहुल्य से जड़े हुए हैं और सदा होम होने से सुगन्ध फैल रही है। ऐसी सुन्दर व्रजराज की राजधानी श्री नन्दरायपुर सुशोभित है, जिसके मरकत मणि के भवन में स्वर्ण की दीवालें, प्रवालों के खम्भे और स्फटिक मणि तथा वैदूर्य मणि की छतें हैं। ऐसा महानीलमणि-

* जैसे मिलन में प्रभु के अन्तर्धान होने से विरह हो गया हो।

मय एवं विचित्र मोतियों से चित्रित विमानों के समूह को जीतनेवाला नन्दग्राम है।

उस ग्राम में किसी गृह में मणिमय दीवाल पर रचना की चतुरता से कहीं ऐसा सुन्दर शुक बनाया गया है जिसे देखकर भोली गोपियाँ अनार के दाने खिलाने को हाथ बढ़ाती हैं और वे चित्रित शुक उन्हें ऐसे प्रतीत होते हैं मानो अपने नेत्र खोल व बन्द कर रहे हैं।

उस ग्राम के राजा नन्दजी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मूर्तिमान् वात्सल्य रस हों अथवा शुद्ध सतोगुण का सार ही शरीर धारण किए हुए हो। आनन्द-समुद्र के दीप के समान वे व्रजराज श्री नन्द केवल भगवान् के पिता होने के भाव की प्राप्ति के सौभाग्य-आनन्द में सदा एकरस रहते हैं। उनकी धर्मपत्नी अपने कुल को यश देनेवाली श्री यशोदाजी मानो मूर्तिमती कल्पलता हैं जिसका फल श्री भगवत्-प्रकाश, जिसकी शोभा वात्सल्य रस और जिसकी सुगन्धमयी मञ्जरी दुलार है।

सखास्वरूप-वर्णन

श्री नन्दरायजी की राजधानी में बहुत से गोपाल रहते हैं। सभी अपार गौओं के स्वामी हैं और गौओं के दूध-दही-मक्खन आदि से ही जीविका चलानेवाले हैं। उनमें कोई व्रजराज के भ्राता और कोई परम्परा के सम्बन्धी हैं जिनके पुत्र श्रीकृष्ण के सखा हैं। कोई गोपाल मूर्तिमान् धर्म हैं जिनकी पत्नियाँ भक्ति की वृत्तियाँ हैं। उन पत्नियों की कन्याएँ भगवान् की प्रिय गोपिकाएँ हैं।*

श्रीकृष्ण के सब बालसखा सनकादिकों के समान नित्य कुमार रहते हैं। वे वन की क्यारियों के समान बराबर वेषवाले और सुगन्धित पुष्पों के हार के सदृश परस्पर समान गुणवाले हैं, शरद् में प्रफुल्लित कमलों के समान प्रफुल्लित रहते हैं, मनोहर घुँघराले केशवाले और ईशान आदि दिशाओं के समान सुन्दर अङ्गवाले हैं। शरद् में प्रफुल्लित कमल के समान उनके मुख; षड्ज, मध्यम और पञ्चम स्वरों के समान कर्ण; किंशुक के समान सुन्दर नासिकाएँ; द्यूत खेलनेवालों के समान चञ्चल नेत्र; श्री रामजी की सहायता करनेवाले तेजस्वी सुग्रीवजी के समान ग्रीवाएँ (कण्ठ); हाथी के बच्चे की सूँड के समान हाथ और मथे जाते हुए क्षीरसागर की तरङ्गों के समान हास है।

* भक्ति (पत्नियों) से जो प्रेम (गोपी-कन्या) उत्पन्न होता है वही श्रीकृष्ण को प्रिय है।

उनके अङ्गों से कान्ति प्रस्फुटित हो रही है। हाथियों की गर्दन के समान उनकी मोटी गर्दन है जो शंकरजी के समान आनन्द में रहनेवाले (सदाशिव) और चन्द्रमा के समान गौरवर्ण तथा कोमल और शीतल हैं। सदा एक दशा में रहनेवाले वे दामा, सुदामा, सुबल आदि श्रीकृष्ण के प्रिय सखा हैं।

गोपीस्वरूप-वर्णन

गोपकन्याएँ परम सुन्दरी सुकविताओं के समान सुकुमार चरणवाली,[1] मनोवृत्तियों के समान अनुपम जंघा-लताओंवाली, वनवास के पश्चात् रामराज्य की सम्पत्ति के समान सम्पूर्ण सौभाग्योंवाली और पृथिवी की उत्सवस्वरूप घनी छविवाली हैं। वे गोपकुमारियाँ कठिन ग्रन्थों की रची हुई प्रकट टीका के समान सुन्दर उदर और सुन्दर कटिवाली हैं। भगवन्नाम-कीर्तन का जैसे बारम्बार आवर्तन होता है ऐसी आवर्तनमय नाभिवाली कन्याएँ दीनों पर होनेवाली भगवत्कृपा के समान प्रकट हुई हैं।

उन कन्याओं के नवपयोधर वर्षा ऋतु की शोभा के समान हैं। वे हेमन्त ऋतु की रात्रि के सदृश बढ़ते हैं। अभिषेक-समाप्ति के शोभायमान शंखसदृश उनका कण्ठ शोभित है। वे श्री नारायणजी की उँगलियों से मार्जन किए हुए कमल के आननवाली तथा पुष्पों की सुगन्ध बहानेवाले वसन्त की शोभा के समान अङ्गोंवाली हैं। भगवान् की मूर्तियों के समान उनके कटाक्ष[2] और भगवान् के गुणों की कथा के समान सुन्दर श्रवण हैं। अलकापुरी[3] की शोभा के सदृश उनकी सुन्दर अलकावलियाँ और पश्चिम दिशा की शोभा के समान उनके केशों की गूँथन-कला है।

श्री राधास्वरूप-वर्णन

सकल स्त्रियों की शिरोमणिमालासदृश, काव्य-अलङ्कारों में वैदर्भी रीति के समान, माधुर्य-ओज-प्रसाद आदि सकल गुणों और सकल अलङ्कारोंवाली, रस-भावमयी, प्रेमरूपी बगीचे की स्वर्णकेतकी[4] के समान, माधुर्यमय मेघ की विद्युल्लता के समान, सौन्दर्यरूपी कसौटी की स्वर्णरेखा के समान, आनन्दरूपी चन्द्रमा की चाँदनी के समान, कामदेव की गर्वित भुजाओं[5] के समान, लावण्य-

---

१. जैसे कविता के चरण (पाद) होते हैं।
२. अनुग्रहमय नीलकमल के सदृश उनके नेत्र हैं।
३. कुबेर की पुरी का नाम अलकापुरी है।
४. केतकी की सुगन्ध सब पुष्पों से अधिक प्रसिद्ध है।
५. कामदेव को भुजाओं के सौन्दर्य का महान् गर्व होता है।

रूपी समुद्र से उत्पन्न नारलक्ष्मी के समान, कला-कलापरूपी कुसुमों के कुसुमाकर के समान और गुणरूपी मणिगणों की खान के समान कोई श्री राधाजी नाम की सर्वश्रेष्ठ कुमारी हैं, जो हजारों गोरियों के समान गौर वर्णवाली होकर भी श्यामा तथा अनादि होते हुए भी किशोरी कही जाती हैं। जो सखीरूपी इन्द्रियों के प्राण और सुकुमारता से पूर्ण सकल सौभाग्य की सीमा के समान हैं, जिनको सब लोग तो महालक्ष्मी कहते हैं किन्तु कुछ तान्त्रिक लीलाशक्ति तथा कुछ लोग आह्लादिनी शक्ति कहते हैं। उनकी ललिता, विशाखा आदि समान रूप-गुणसम्पन्ना प्रतिच्छायारूपिणी प्रिय सखियाँ हैं।

वहाँ दूसरी कोई यूथपालिनी, परम आह्लादिनी, प्रकृति के समान गुणमयी, रूपवती, रसमयी कुसुमावली के समान, ललनारत्न चन्द्रावली नाम की गोपी हैं जिनकी पद्मा, सैव्या आदि प्रिय सखियाँ हैं। इसी प्रकार श्री राधाजी के पक्षवाली श्यामा नाम की कोई यूथपालिनी हैं। वहाँ ऐसी ही बहुत-सी यूथपालिनी गोपियाँ हैं।

पुरवासीस्वरूप-वर्णन

श्री ब्रजराज की राजधानी में मूर्तिमान् भागवत-धर्मसदृश दूसरों पर दया करनेवाले विप्रवृन्द रहते हैं जो शम-दम-तितिक्षादि गुणपरायण, शास्त्र-पुराण-वक्ता और वेदाभ्यास-निरत हैं। कोई पाञ्चरात्र में निष्ठ ऐसी याचक वृत्तिवाले हैं कि वे केवल ब्रजराज के ही दिए हुए दान को लेते हैं।

उस राजधानी में वे सब सम्पूर्ण ज्ञानानन्द से भरे हुए कातर्ययुक्त हैं, विद्या में परम चातुर्यवान् हैं आतुर्यवान् नहीं, सदा पत्नीसहित श्रीकृष्ण-रस-माधुर्य की उपासना करनेवाले हैं किन्तु लक्ष्मी के माधुर्य के उपासक नहीं, प्रकृति के गुणों के चातुर्य उनमें नहीं हैं पर शुद्ध सत्त्वगुणमय विलक्षणता ही उनमें पाई जाती है।

बहुत क्या, वहाँ तेली, तमोली, माली, शंख बेचनेवाले, गन्धी, सुनार, कुम्हार, लोहार आदि सब मुक्त होते हुए भी मनुष्य-धर्म का आचरण करते हैं। मनुष्य-धर्म में रहते हुए भी वे सब श्री के दाता तथा पुण्येश्वर हैं। उनमें न कोई कुबड़ा, न कोई कुरूप और न कोई लक्ष्मीहीन है।

वहाँ वन के भील आदि भी सकलसुखदाता और प्रभुभक्ति के प्रदान करनेवाले हैं।

धेनुवृन्द-वर्णन

उस राजधानी में अत्यन्त बड़ी-बड़ी स्फटिकमणिमय दीवालोंवाली गोशालाएँ

हैं जिनमें स्वर्ण के बाँसों से बने हुए मण्डप में मरकतमणिमय बड़े-बड़े विशाल खंभे बीच-बीच में और काणों पर कुरुविन्द मणिमय ऐसे स्तम्भ लगे हुए हैं जो नाना विमल मणिमय पटलों से छाए हुए हैं, जो महान् पर्वत के समान अर्थात् महाराजाओं के गोपुर के समान सुन्दर हैं और जिनके चारों तरफ गोशालाएँ बनी हुई हैं।

उन गोशालाओं में रहनेवाली गौओं के अङ्ग सरस्वती के शरीर तथा पूर्णिमा के समान पूर्णतया शुक्ल वर्णवाले हैं, सींग नीलमणिमय श्याम वर्ण के हैं, पूँछें अत्यन्त मनोहर हैं और तीर्थजल में स्नान के समान उनके दर्शन का प्रभाव है। वे गणपति के शरीर के समान मोटी, मन के समान वश में न होनेवाली, तपस्वियों के समान सदा सुन्दर व्रतवाली और चिन्तामणियों के समान सकल-कामधेनु हैं।

प्रफुल्लित उपवन के समान वहाँ प्रसन्नचित्त बछड़े और सुकवियों के काव्य के समान नाना-वर्ण-विन्याससदृश बछियाँ हैं। चन्द्रमा की चाँदनी के टुकड़े अथवा कैलाश-शिला अथवा क्षीरसागर के नवनीत के समान छोटे बछड़े वहाँ इधर-उधर दौड़ते हुए शोभित हो रहे हैं।

स्फटिक पर्वत अथवा महासमुद्र की लहरियों और मुनियों के समान जीवन्मुक्त बड़े बछड़े हैं। दिग्गजों के समान उनके बड़े-बड़े सींग तथा राजाओं के समान तेज है। वे लम्बे-लम्बे गलकम्बलोंवाले विरक्तों के समान हैं। विविध मणिवर्णवाले उनके सींग हैं तथा खुर मणियों से मण्डित हैं। वहाँ के वृषभ मूर्तिमान् चार चरणोंवाले धर्म के समान हैं।

वे सब गोलोक से आए कलांश से शोभित हैं।

बाजार-वर्णन

व्रजराज की राजधानी में आमने-सामने बराबर श्रेणी से बने हुए मन्दिर तथा शृङ्गार-बाजार ऐसे शोभित हैं मानो महाराज्य-विजय के उपलक्ष्य में कोई निरन्तर महोत्सव हो रहा है। उन मन्दिरों पर पताकाएँ फहरा रही हैं, मोतियों व मूँगों के गुच्छे वसन्त में फूले हुए किंशुक के समान लटक रहे हैं तथा विविध मणियों की घटा-सी छाई हुई है। कोई वसन्त की शोभा के समान नाना पुष्प-सौरभ से सुवासित है, कोई महान् पर्वत से भी ऊँचा प्रतीत होता है और विविध दिव्य सुगन्धों से सुगन्धित है। कुछ मन्दिर मणियों की खान के समान विविध मणियों का प्रकाश फैला रहे हैं, कुछ ऐसे चित्रित हैं मानो विलासिनियों के वक्षःस्थल हों और वणिकों के निवासभूत कुछ मन्दिर विचित्र सुगन्ध उड़ा रहे हैं।

व्रज-राजधानी में महानगर के आसपास जो उपवन हैं वे समुद्रतट-जैसे शोभित हो रहे हैं क्योंकि उनमें जैसे विशिष्ट वृक्षों (वि-द्रुमों) की शोभा है वैसे समुद्रतट पर मूँगों (विद्रुमों) की छटा है। वे महासेना-जैसे प्रतीत होते हैं क्योंकि उनमें जैसे अनेक प्रकार के कुञ्ज हैं वैसे सेना में हाथी (कुञ्जर) रहते हैं, उनमें अनेक प्रकार के वृक्ष (गुल्म) हैं तो महासेना में भी अनेक सेना की टुकड़ियाँ (गुल्म) रहती हैं। वे तपस्वियों के समूह लगते हैं क्योंकि उनमें लताएँ (व्रतती-व्रात) हैं तो तपस्वियों में व्रतों के प्रति तीव्र आग्रह (व्रत-तीव्र-आत) होता है। वे रसिकों के समुदाय जैसे भी हैं क्योंकि जैसे वे अपने सदा विलास से पक्षियों (वय) को मस्त किए रहते हैं वैसे ही विलासी जन भी निरन्तर भोग-विलास से जीवन (वय) को रसमय बनाए रहते हैं।

उन उपवनों में अविरल प्रेमभाव-निमग्न परस्पर कर-कमल मिलाकर विपिन-देवियाँ अभिसार करती हैं और वन के वृषभों के कन्धों से तोड़े हुए पलाश, बदर वृक्ष आदि के रसों में पैर रखकर चलती हुई अपने चरणों में अनायास ही महावर आदि का लेप लगाती चलती हैं। नन्दग्राम के किनारे पर्वत की तराई में जहाँ पृथिवी और वन की शोभा अद्भुत है, भैंसे कक्कोल फल तोड़कर सुगन्ध फैला रहे हैं और सींगों से वन के देवदार वृक्ष की छाल तोड़ रहे हैं तथा वन के हाथियों के बच्चे सल्लकी वृक्ष की शाखाओं और पल्लों को तोड़-तोड़कर खेल रहे हैं।

वन की धेनुएँ जिनका आस्वादन करती हैं ऐसे सुगन्धित तृण, घास, लता पृथिवी को सुवासित कर रहे हैं और मरिच के गुच्छों का कर्णफूल बनाए सुललित पुलिन्दों की सुन्दरियाँ अपने करतलों से केले के वृक्ष से कपूर निकाल-कर सुगन्ध फैला रही हैं तथा ताम्बूल-दल तोड़कर ले जा रही हैं। बन्दरों ने खा-खाकर अंगूर के फलों के गुच्छे बिखेर रखे हैं जिससे पृथिवी फलों से छाई हुई है।

ऐसे ही और भी अनेक कानन हैं जिनमें रसाल, पनस, अर्जुन, क्रमुक, नारिकेल, असन, पलाश, वट, पर्कटी, खदिर, बिल्व, जम्बू, मधूक, गिरि-मल्लिका, बकुल और नाग वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं।

उसी अरण्य में पुन्नाग, अशोक, वक, पाटली, कनक-चम्पक, चम्पक, शिरीष, शिंशपा, लकुच, लोध्र, कोशातकी, प्रियाल, नट, सल्लकी, सरल, साल, पीलु, कपित्थ, करमर्दक, प्रियक, तिन्दुक और आम्रातक तथा करीर, करवीर, कदली, लवली, तमाल, नवमालिका, कनकयूथिका, यूथिका, कुरण्टक, लवङ्गिका,

दमनक, अतिमुक्ता, स्थल-सरोजिनी, विचकिला, कन्दली, प्रियङ्गु, तुलसी आदि विचित्र वृक्षगण सुशोभित हैं।

वनों के मध्य ऐसे अनेक छोटे-बड़े सरोवर सुशोभित हैं जिनमें श्वेत-नील-लोहित उत्पल, सरोज, कह्लार आदि कमल प्रफुल्लित हैं, तट पर चक्रवाक, बगुले, सारस, कुरर, हंस, कारण्डव आदि पक्षी क्रीडा कर रहे हैं और उनमें निर्मल तरङ्गें उठ रही हैं।

उन वनों में बृहत् वन (गोकुल) नामक एक वन है जहाँ पर श्री व्रजराज की इस प्रकार की मनोरम राजधानी है।

यह जो कुछ वर्णन किया गया है यह अलौकिक होते हुए भी भगवत्-इच्छा से लोक में दर्शित होता है किन्तु चर्म-चक्षुओं से लौकिक की ही भाँति देखा जाता है, जैसे नेत्रों के दोष से श्वेत शंख भी पीला दिखलाई देता है। दिव्य नेत्रों से देखने पर इन सबका यथार्थ दिव्य रूप दिखाई देता है। परन्तु यह सब भगवत्-इच्छा पर निर्भर है। वे जिस पर जैसी कृपा करें उसको वैसा दिखा देते हैं।

श्री नन्दराय और रानी यशोदा पितृ-मातृभाव की भावनावाले मङ्गलमय रूपधारी व्रज के स्वामी हैं। उनके द्वारा नित्य किशोर भगवान् शिशु होकर लीला से प्रकट हुए इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि लीलानिधि भगवान् के चरित्र अद्भुत हैं। भगवान् बालक होकर उनके वात्सल्यरस-भरे लालन-पालन से परमानन्द पाते हैं। समस्त भावों से जो अलौकिक हैं वही स्वयं लोक में लौकिक-से बन जाते हैं। इसी प्रकार ग्वाल-बालों और गोपियों के साथ उनकी क्रीडाएँ लोक में लौकिक-सी हैं। वे बाल-लीलाएँ तथा असुरों के नाश की लीलाएँ भी लोकवत् हैं क्योंकि यदि लोकवत् न हों और दिव्य ही रहें तो माधुर्य-शोभा प्रकट नहीं हो सकती।

●

दूसरा स्तवक

प्रादुर्भाव-लीला

व्रजराज श्री नन्दजी के सौभाग्यवश, संसार को दुःख देनेवाले असुर और दुराचारी राजाओं के अधर्म से व्याकुल होकर धरा (पृथिवी) देवी के साथ देवताओं तथा ब्रह्माजी ने क्षीरसागर पर जाकर भगवान् से अवतार ग्रहण करने के लिये प्रार्थना की। तब लौकिक लीला से प्रेमरस विस्तार करने के लिये पृथिवीतल पर भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छापूर्वक प्रकट हुए। उसी प्रकार नित्यसिद्धा श्रुतियों और श्री रामावतार के समय के दण्डकवनवासी मुनीश्वरों ने भी गोपकन्याओं के रूप से व्रज में अवतार लिया जो श्री रामरूप पर परम मोहित होकर भगवान् के आलिङ्गन के अभिलाषी हो गए थे। अशेष-विशेष अद्भुत लीला रचनेवाली, सर्वसामर्थ्यसम्पन्ना निरुपमा शक्ति भगवती योग-माया* भी अलक्षित भाव से प्रकट हुईं। बृहत् वन (गोकुल) में श्री नन्दादि पहले ही प्रकट हो चुके थे, अब भगवान् के अवतार के साथ उनके सखा तथा नित्यसिद्धा प्रेयसी भी प्रकट हुईं।

इस प्रकार भगवान् के अवतार के समय में बहुत समय से प्रतीक्षा करने-वाली भगवान् की प्यारी पृथिवी देवी हर्ष से भर गई और जैसे भगवान् के उपासकों का हृदय प्रसन्न रहता है ऐसे ही सम्पूर्ण भुवन आनन्दमग्न हो गए। भगवान् के पाञ्चजन्य के समान दक्षिणावर्त शंख सहर्ष प्रकाशित हो गए। भगवद्-भक्तों के अङ्ग-सङ्ग से जैसे हृदय में शीतलता, स्निग्धता और मधुरता आ जाती है ऐसा ही जगत्पावन पवन चलने लगा। सरोवर ऐसे ही निर्मल हो गए जैसे भगवद्-भक्तों का हृदय निर्मल रहता है। भगवद्-भजन जैसे सदा फल-रूप है ऐसे ही वृक्ष फलों से भर गए, देवताओं के द्रोही असुरों की आयु घटने लगी तथा प्रभु के अवतार के प्रभाव से बूढ़े पुण्यवान् भक्तजन युवा होने लगे। पृथिवी की आशा-लता फलोन्मुख हो गई। भगवान् की कृपा प्राप्त कर जैसे भक्त जनों की मनोवृत्तियाँ प्रकाशमय हो जाती हैं ऐसे ही दिशाएँ प्रकाशमय हो गईं। जैसे मन्त्र, मणि तथा ओषधि से सर्प का काटा हुआ विष दूर हो जाता

* नन्दभवन में जिन्हें भगवान् के बदले श्री वसुदेवजी उठा लाए और कंस के आकाश में उछालने पर जो अष्टभुजावाले रूप से प्रकट होकर अदृश्य हो गईं।

है ऐसे ही प्रभु के जन्म से पृथिवी पर के पाप दूर हो गए, प्राणियों के दुःख नष्ट हो गए और त्रिभुवन सुखमय हो गया। जैसे मनुष्यों की अङ्गरूपी* लता बढ़ती है ऐसे ही मङ्गलता तरुण होने लगी। जैसे स्तुति करने से सभा में राजा प्रसन्न होता है ऐसे ही सकल सद्‌गुणों की सभा उल्लसित होने लगी, मानो सम्पूर्ण भुवन के लोगों के सुकृत फल गए हों। संसार ऐसा आनन्दित हो गया जैसे नेत्रहीनों के नेत्र खुल गए हों।

जैसे परिपूर्ण मङ्गल गुणवाले द्वापरान्त के समय में भक्त-सज्जन-सन्त-वृन्द प्रकट हुए थे ऐसे भाद्रमास में कृष्ण पक्ष के रसमय रोहिणी नक्षत्र के सुधाकर योग में अर्धरात्रि के समय पूर्णानन्द योगेश्वरेश्वर भगवान् करुणारूपी श्रीकृष्ण-चन्द्रजी अरुणता फैलाते तथा चन्द्रमा की तरह सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए प्रकट हुए।

पूर्वजन्मों में जिन्होंने अतिशय तप किया था ऐसे माता-पिता वसुदेव-देवकी को तप-फल देने के लिए प्रथम वे वासुदेवरूप से उनके यहाँ प्रकट हुए पश्चात् नित्यसिद्ध माता-पिता श्री नन्द-यशोदा को सुख देने के लिए गोविन्दरूप से उनके यहाँ चले गए।

कंस के भय से वसुदेव-देवकी डरते थे इसलिए शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा कौस्तुभ-माला धारण कर चतुर्भुजरूप से भगवान् उनके वन्दीगृह में प्रकट हुए। नृशंस कंस के भय से वसुदेवजी ने पहले ही अपने प्रिय मित्र व्रजराज श्री नन्दजी के भवन में देवकी से प्रथम पत्नी रोहिणी देवी को भेज दिया था। वहाँ उनके गर्भ से श्री सङ्कर्षणजी पहले ही प्रकट हो चुके थे।

मधुर चरित्रों के द्वारा भक्तियोग में लगे हुए अपने भक्तों को आनन्द देने के लिए, नाना प्रकार की रसमयी लीला रचने के लिए और पृथिवी के महान् भार दैत्यों के समूह को दूर करने के लिए मूर्तिमान् आनन्दरूप व्रजराज श्री नन्द के गृह में भगवान् प्रकट हुए।

भगवान् के आविर्भाव के समय योगमाया ने नन्द-भवन के सूतिकागृह को दिव्य वना दिया था। उसमें मणियों की दीवालों में ऐसे प्रतिविम्ब पड़ते जैसे सच्चिदानन्द भगवान् एक होते भी अनेकरूप वन जाते हैं। उस सूतिकागृह की शोभा ने पुष्पों से भरी हुई लताओं के मण्डप को अपनी शोभा से जीत लिया था। वह सूतिकागृह परम रमणीयता से अतिशय आनन्द प्रदान कर रहा था।

जिसके मकरन्द अथवा जिसकी सुगन्ध का सुख किसी भ्रमर ने आज तक आस्वादन नहीं किया था और जिसे आज तक किसीने नहीं देखा था वह

* वालक बढ़कर वृद्ध होता है।

चिदानन्द-सरोवर से उत्पन्न हुआ कमल यशोदा की गोद में पड़ा खेल रहा था। सब लोग सो रहे थे. यशोदाजी सूतिकागृह में थीं, तभी नवीन उत्पन्न हुए शिशु के सदृश बाल भगवान् क्रन्दन कर उठे। वह शब्द ॐकार-ध्वनि के सदृश था। जैसे उत्सवादि कर्म के प्रारम्भ के समय ॐकार का प्रथम उच्चारण होता है ऐसे ही भगवान् के कण्ठ से लीला-उत्सव के प्रारम्भ में ॐकारमय ध्वनि निकली।

उनका कल रोदन शब्द सुनकर तत्काल जाग्रत गोपियों द्वारा सुगन्धित प्रेम से अभ्यक्त के समान, सुगन्ध से उबटन किए हुए के समान, सौरभ से उवटित माधुर्य में स्नान किए हुए के तुल्य, लावण्य द्वारा पोंछे हुए के सदृश, सौन्दर्यरूपी चन्दन से आलिप्त[1]-सम, त्रैलोक्य-लक्ष्मीरूप भूषण के समान, सूतिकागृह के नीलकमल की कली के सदृश दीपकतुल्य नीलमणि के समान, तमाल-पल्लववत्, श्याम मेघावली-सदृश, त्रैलोक्यशोभा के मस्तक पर कस्तूरी के तिलक की भाँति, सौभाग्य सम्पदा के सिद्धाञ्जन के समान, सकल अरिष्टों को नाश करनेवाले महा अरिष्ट, बालक होते हुए भी अबालक के समान, मृदु मधुरतर करकमलों में मत्स्य-अङ्कुश-ध्वजा-कमल-लक्षणों को छिपाने के लिए मानो मुट्ठी बाँधे, मुकुलित नेत्रों से देखते हुए भगवान् की आनन्दध्वनि सुनकर जननी ने देखा और जाना कि मुझे पुत्र उत्पन्न हुआ है।

दीपक के प्रकाश में नीलमणिमय बालक के अङ्गों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर यशोदा शङ्का से व्याकुल हो गई कि यह कौन है? 'कहीं डाकिनी, शाकिनी का विघ्न तो नहीं', यह समझकर 'दूर हो, दूर हो'[2] ऐसा कहते हुए श्री नृसिंह भगवान् का नाम जपने लगीं। पुनः भलीभाँति उसे प्रतिबिम्ब जानकर हर्ष-आवेशवश नेत्रों से मुक्ताहार सदृश आनन्द के अश्रु बहाने लगीं।

फिर कस्तूरी के कीच के समान अथवा श्यामामृत-सागर-मन्थन से उत्पन्न हुए नवनीत-पिण्ड-तुल्य, मृगमद-रस के समान श्याम, दुग्ध-फेन की तरह सुकुमार तनवाले बालक को उठाकर भयभीत होती हुई-सी, कुछ झुककर, स्नेह से उमंगते हुए पयोधरों के अग्रभाग को बालक के मुख में लगाकर दूध पिलाने लगीं।

व्रज की गोपियाँ जब चारों ओर से आकर शिक्षा देने लगीं कि 'यह क्या कर रही हो, प्रेम से गोद में लिटाकर दूध पिलाओ' तब उन्हें गोद में उठाकर दूध पिलाने लगीं। स्नेह के वेग से भरे हुए मूर्तिमान् अमृतरस के समान

---

१. चन्दन के बदले मानो सौन्दर्य का लेप किया गया है।

२. अर्थात् बला, अपशकुन दूर हों।

उस स्तन-रस को भलीभाँति पीने में श्रीकृष्ण असमर्थ हो गए। जो सर्व यज्ञों के भोक्ता होकर भी तृप्त नहीं होते वे जरा से प्रेम-पय-पान से सन्तुष्ट हो गए। मृदुल अधरों के इधर-उधर तथा कपोलों पर लगा हुआ दूध यशोदा ने अपने महीन आँचल से पोंछा और दूध पिलाना रोककर सादर सस्नेह बालक को अवलोकन करते हुए परम विस्मय में निमग्न हो गईं।

श्रीकृष्ण के सकल अङ्गों को नीलमणिमय, अधर, चरण और हाथों को अरुणमणिमय और नखों को श्वेत मणिमय देखकर वे सोचने लगीं कि क्या यह बालक पूर्णरूप से मणियों से ही निर्माण किया गया है या यह प्रफुल्लित कमल ही है!

बन्धूक के समान इसके अधरबिम्ब हैं, जवाकुसुम के सदृश इसके हाथ और चरण हैं तथा मल्लिका की कलियों के समान इसके नख हैं, तो क्या यह बालक पुष्पमय है! इस प्रकार अपने पुत्र की शोभा पर तर्क-वितर्क करने लगीं।

बालक के वक्षःस्थल पर पड़े दुग्ध-कण को मृदुल आँचल से पोंछते समय उसके दक्षिण भाग में मृणालतन्तु के टुकड़े की तरह सुभग सुस्निग्ध श्रीवत्स नामक चिह्न देखकर वे कहने लगीं कि यह तो किसी महापुरुष का लक्षण प्रतीत होता है। फिर वक्षःस्थल के वाम भाग में लक्ष्मीजी का चिह्न देखकर विस्मित हो गईं जो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो तमाल पर किसी पीले रंग के पक्षी का बच्चा बैठा हो, अथवा मेघ पर बिजली की कली हो अथवा कनक-रेखा-रञ्जित कसौटी हो।

वे बालकृष्ण के यमुनाजी में अरुण कमलों के समान कर-चरण, मकरन्द-पान करके भ्रमण में असमर्थ निश्चल भ्रमरों के समान कुटिल केश, मुकुलित नीलोत्पल के समान लोचन और नीलमणिमय जल के बुद्बुदों के समान कपोल, श्यामल महोमय लता में निकलते हुए पल्लवों के समान दोनों श्रवण, अत्यन्त मनोहर नासिका, जवाकुसुम के दो दलों के तुल्य अधर और पके जम्बू फल के समान चिबुक देखती हुई नयनों को सफल कर आनन्दसागर में डुबकी लगाने लगीं।

उसी समय गोपियों ने आकर नन्दजी से कहा : 'हे महाभाग! आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है!' यह सुनकर श्री नन्दजी वैसे ही आनन्दित हो गए जैसे ग्रीष्म में सूखा हुआ वृक्ष हरा हो जाता है। बहुत दिन की अभिलाषा पूर्ण हुई देख अमृत के धारामय आनन्द में स्नान करते हुए तथा सर्वाङ्ग में

हर्ष-पुलकाकुलित होते हुए वे संसार को आनन्द-वर्षा से पूर्ण सिन्धु में मग्न मानने लगे । नन्दरूपी मन्दाकिनी नदी मानो आनन्द-समुद्र को आलिङ्गन करने लगी । आनन्द से वे मूर्च्छित हो गए ।

जब होश आया तो पुत्र के अवलोकन की उत्कण्ठा उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मानन्द-साक्षात्कार-चमत्कार-मूर्ति को देखने की अभिलाषा से स्वयं सूतिकाभवन चले गए । उनको हर्ष से मूर्च्छित-सा होते देख उनके सुकृतों के समूह ने चतुरतापूर्वक उदय होकर पीछे से मानो हाथ का सहारा देकर उनके छूटे हुए धैर्य को लौटा लिया । उन्होंने शीघ्रता से उठकर घनीभूत महान् आनन्द के बीज के समान बालक को ऐसे देखा जैसे वह जगन्मङ्गल के मङ्गलोदय का अङ्कुर हो, अथवा सिद्धाञ्जन लता का पल्लव हो, अथवा सुकृतरूपी कल्पवृक्षों के बगीचे से उत्पन्न हुआ पुष्प हो, अथवा सम्पूर्ण उपनिषदों की कल्पलता का फल हो, अथवा व्रजेश्वरीरूपिणी पारिजात लता का कुसुम-सदृश हो । सकल मनोरथ सिद्ध हुए देख ब्रह्मानन्द-साक्षात्कार-चमत्कार अनुभव करते हुए व्रजराज चित्र के समान पुनः सोये से जगे हुए के तुल्य हो गए । उनके शरीर में रोमाञ्च और स्वेदकण दर्शित होने लगे तथा उनकी दशा अलौकिक हो गई ।

तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्र के सुख के लिए आनन्द के सहित उपनन्द, सनन्द आदि भ्राताओं के संग विप्रों के द्वारा जात-कर्म आदि क्रियाएँ कीं और जिनके सींग तथा खुर चाँदी और सोने से मढ़े हुए हैं तथा कण्ठ में मणिमय मालाएँ पड़ी हैं और पुष्पों से जिनकी पूजा की गई है ऐसी गौओं का ब्राह्मणों को दान करने लगे । ब्राह्मणों के प्रत्येक घर को उन्होंने गोलोक की शोभा के समान शोभा से भर दिया ।[1] तिल, सोने तथा मणियों के पहाड़-से लगवाकर व्रजराज शीघ्रता से दान करने लगे । उसके वितरण के समय चिन्तामणि, कल्प-तरु, कामधेनु आदि शक्तिहीन के समान हो गए । रत्नाकर भी लज्जित हो गया और लक्ष्मी भी केवल लीलाकमल हाथ में लेकर रह गई ।[2]

व्रजराज के शुभ कुमार प्रकट हुआ, यह जगन्मङ्गल ध्वनि क्रमशः एक-दूसरे के मुख से सारे व्रज में फैल गई । उसी समय उपनन्द, सनन्द आदि सम्पूर्ण गोपवृन्द अपने परिकरों के सहित विचित्र रेशमी सूत्रों से बने हुए छींकों की विहङ्गिका (काँवर) द्वारा मणिमय घट-पटलों में भर-भरकर घृत, दधि, नवनीत आदि विविध गोरस भेजने लगे ।

---

१. कामधेनु-सी गौएँ प्रति घर में विराजने लगीं ।

२. नन्दजी ने सब दान कर दिया, यहाँ तक कि लक्ष्मीजी के पास भी केवल एक कमलमात्र ही रह गया ।

उस समय स्वर्णसदृश पीले वस्त्रों को धारण किए हुए, हाथ में स्वर्ण-लकुटि लिए हुए, लक्ष्मीजी के सदृश परमानन्द-सिन्धु से उत्पन्न हुई करोड़ों लक्ष्मियों से सकल दिशाएँ छा गईं। आमोद से मोदित प्रफुल्लित मनवाली, मनोरथों से अतीत कमनीय कर्णभूषणोंवाली, हृदय पर हार, ललित कण्ठ पर कण्ठ-भूषण, हीरे-जड़े मनोहर कङ्कण और अङ्गद आदि सकल आभरण और मनोहर जंघाओं पर झङ्कार करती मणिमय किङ्किणी धारण किए कनक-कमनीय हंसिनी की गतिवाली और लहराती हुई पुष्प-गुँथे केशों की वेणीवाली कमनीय कामिनियाँ तत्काल प्रकट हुए शिशु को अवलोकन करने के लिए स्वर्ण-थालों में मङ्गल-वस्तुएँ (फल-पुष्प-दधि-दूर्वा-अक्षत-मणिदीप आदि) रेशमी महीन वस्त्र से ढँककर अपने करकमलों पर धारण कर झंझनायमान मणि-नूपुरों से सुन्दर ध्वनि के द्वारा दशों दिशाओं को गुँजायमान करती हुई व्रजराज के सदन में टोलियाँ बनाकर आने लगीं।

सूतिकाभवन में प्रवेश करके उन्होंने अपने नेत्रों के सृजन का फल वहाँ देखा। वह सुन्दर बालक ऐसा प्रतीत हुआ मानो अज्ञानियों के विफल जन्म के निमित्त ओषधि का पल्लव हो* अथवा वात्सल्य-सरोवर में उत्पन्न हुआ नीलकमल हो। वे उस बालक को देखकर 'चिरंजीवी हो' ऐसा मङ्गल आशीर्वाद देने लगीं, पुष्प बरसाने लगीं और अपलक नेत्रों से देखते हुए व्रजेश्वरी के भाग्य की सराहना करने लगीं, तदनन्तर सुरीति के अनुसार ललित मङ्गल गीत गाने लगीं। उनके मुखकमलों से गान ऐसा प्रतीत होता था मानो अधररूपी भ्रमरपुञ्ज मधुर झङ्कार कर रहे हों और मुखरूपी कमल हिल रहे हों। अत्यन्त कौतुक करके प्रेमोल्लास से भरकर वे करकमलों से परस्पर एक-दूसरे के मुखचन्द्र-मण्डलों पर दधि, माखन, सुगन्धित तैल, हल्दी आदि मलने लगीं तथा चारों ओर से हास-परिहास करते हुए हँसते समय दन्तरूपी हीरों की किरणें छिटकाने लगीं। उस समय त्रैलोक्य की लक्ष्मी के सौभाग्य को भी उन्होंने परास्त कर दिया।

आँगन में भी महोत्सव मनाया जाने लगा। उस समय परमानन्द में निमग्न गोपवृन्द महामत्त होकर चन्द्रमा की गेंदों के समान माखन के पिण्डों को उछाल-उछालकर नाचने लगे और बड़े-बड़े दधि के जमे हुए टुकड़ों को लेकर एक-दूसरे पर फेंकने लगे जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो समुद्र के झाग अथवा चन्द्रिका के टुकड़े हों। वे मणिमय पिचकारियों में हल्दी-मिला महा सुगन्धित जल भर-भरकर एक-दूसरे को भिगोने लगे और मधुर ध्वनि से

* मूढ़ भाग्यहीनों को भी ज्ञान व भाग्य देकर सफलजीवन करनेवाला।

गाने लगे। मृदङ्ग, पणव, डमरू, झाँझ, मृदुल मंजीर, भेरी आदि मङ्गलमय विचित्र बाजे बजाए जाने लगे और गोपगण तालध्वनि के साथ गाने और नाचने लगे।

मङ्गलसंगीत में चर्चरिक, द्विपदिका, जम्भलिका आदि नाना रागों से मन प्रफुल्लित करते हुए वे तत्काल प्रकट हुए अपूर्व कुमार और व्रजराज को आह्लादित करने लगे। इधर-उधर विप्रवृन्द मङ्गल आशीर्वाद-ध्वनि से वेद-ध्वनि करने लगे। वह वेद-ध्वनि, सकल लोगों के गान की ध्वनि, जयध्वनि, आकाश में चारण व देवताओं की ध्वनि तथा मागध, सूत एवं वन्दीवृन्दों की ध्वनि चारों ओर से छा गई। व्रज नादब्रह्ममय हो गया। उस महामहोत्सव के रस-सुख को वहन करने में व्रज असमर्थ हो गया।

नालियाँ प्रेमवश सुगन्धित दुग्धधारा बहाती हुई पुर की गलियों को सुगन्धित करने लगीं। देवता लोग भी आकर उस धारा-जल को सादर मस्तक पर चढ़ाने और पीने लगे। उस समय हल्दी-तैल से चित्रित कनक-मणि-भूषण-विभूषित सम्पूर्ण गौएँ बछड़ों-सहित सुशोभित होकर सबके प्रिय श्रीकृष्ण के आविर्भाव से आनन्दित 'हंवा राग'* उच्चारण करने लगीं। पृथिवी पर चलती हुई भी वे अपने को भूलकर, खान-पान छोड़कर आनन्द-मग्न हो गईं।

इस प्रकार बहुत समय तक सुन्दर महोत्सव करती हुई वसुदेव की पत्नी भगवती श्री रोहिणीजी सिन्दूर, माला, वस्त्र, भूषण आदि से सबका पूजन कर नवीन शुभ कुमार के कल्याण-निमित्त प्रार्थना करने लगीं। उत्सव-समाप्ति के समय नन्दजी यज्ञ के अवभृथ स्नान-सदृश सबको पुरस्कृत करने लगे। उन्होंने मणिमय भूषण, वसन, माला, ताम्बूल आदि से सबका सविनय सम्मान किया और नवीन कुँवर के मङ्गल की कामना करने लगे।

---

* गौ की बोली।

तीसरा स्तवक

पूतनावध-लीला

इस प्रकार परब्रह्म नराकार धारण कर ब्रह्मरूप व्रज में केवल लौकिक सदृश दिखलाई देते हुए लक्ष्मी तथा अपने धाम-सहित प्रकट हुए, फिर भी अलौकिकतावश सकल जनों के नयन तथा मन को चमत्कारकारी हुए।

उसके पश्चात् व्रजराज नन्दजी राजा कंस को वार्षिक गोरस आदि कर देने के लिये कुछ गोपवृन्दों के साथ मथुरा गए, कुछ गोपालों को व्रज की रक्षा के लिये छोड़ गए।

उस समय कंस ने पूर्वजन्म का वैर स्मरण करते हुए तथा योगमाया से यह सुनकर कि 'तेरा मारनेवाला कहीं जन्म ले चुका है' इसका अनुसन्धान करते हुए पूतना राक्षसी को सम्पूर्ण बालकों को मारने के लिये भेजा।

कामरूपिणी सुन्दरी बनकर सबके मनों को प्रिय लगनेवाली वह पूतना राक्षसी अन्य बालकों को मारती हुई व्रज में आई। उसको देखकर लोग कहने लगे : 'हे उर्वशी! तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है जो ऐसा रूप पाया। क्या तुम रम्भा हो? तुम अपने रूप के घमण्ड में भरी हो। नहीं-नहीं, तुम घृताची हो। तुम्हारी यशोऽवली चहुँ ओर छा रही है। क्या तुम मेनका हो? नहीं, तुम प्रेमलोचना हो। तुम चित्रलेखा हो क्योंकि तुम्हारी मूर्ति चित्र के समान ही है। नहीं-नहीं, तुम तिलोत्तमा हो!'

सकल व्रजवासी उसको आकाश से आई हुई जानकर कहने लगे : 'क्या यह व्रजपुर की देवता है, या त्रैलोक्य की लक्ष्मी है, या मेघ से छूटी हुई बिजली है, या चन्द्रमा को छोड़कर आई हुई चाँदनी है!' इस प्रकार लोग तर्क-वितर्क करते रहे, तब तक पूतना यशोदा के भवन में चली गई।

इधर व्रजराज नन्द के मन्दिर में प्रकट हुए परम महापुरुष श्रीकृष्ण ने भी चतुरता दिखलाई। उन्होंने भी पूतना को मोहित करने के लिये उस समय त्रैलोक्य की शोभा का अपने में विस्तार किया। पूतना ने भी चोर के समान महासाहस कर लोभ और निर्लज्जतापूर्वक भवन में ऐसे प्रवेश किया मानो कोपमूर्ति ही साक्षात् आई हो।

भवन में प्रवेश कर सकल अशुभ-समूह को भस्म करनेवाले अग्नि के

जलते हुए अंगारे के समान तथा सम्पूर्ण शत्रु-समूहरूपी अन्धकार को नाश करनेवाली चतुर विलक्षण दीपशिखा के समान, संसाररूपी विषम-विष-महासमुद्र को निःशेषता से शोषण करनेवाले अद्भुत नीलमणि के समान तथा चन्द्रिका-समूह को मथकर निकाले हुए फेन के सदृश श्वेत शय्या पर सोते हुए कर्पूर-धूलि से उत्पन्न नीलमणि के अङ्कुर तुल्य, दुष्टों की वाणी जैसे वाहर से मीठी होती है पर भीतर से विषमय होती है[1] उसके समान अथवा मणिमण्डित म्यान में कालरूपी तलवार के समान पूतना के लिये श्रीकृष्ण के दर्शन सुखद हुए।

पूतना ने आते ही वालक श्रीकृष्ण को जननी के समान प्रेमपूर्वक गोद में उठा लिया। यशोदा और रोहिणी सोचने लगीं कि यह कौन है! क्या यह भगवती पार्वती वरुणानी, इन्द्राणी या अग्नि की पत्नी में से कोई है! क्योंकि तेज के कारण इसका सौन्दर्य देखा नहीं जाता। यद्यपि वे इस प्रकार तर्क करती रहीं पर यह जानकर कि यह मेरे पुत्र पर वड़ा दुलार करने लगी है, उसको रोका नहीं।

यह कौन है, इसका निश्चय करने में असमर्थ होकर यशोदाजी ने निःसङ्कोच वालक को उसकी गोद में दे दिया। फिर पूतना श्रीकृष्ण को यशोदाजी की गोद में देने लगी क्योंकि वालक के माधुर्य पर मोहित होकर अपना कार्य भूल गई। उस समय अङ्गीकार भाव करके ज्ञान-घन-विग्रह भगवान् ने परम करुणा करके यशोदा को ललित लोचनों से देखकर ही सन्तुष्ट किया, पूतना की गोद से उतरे नहीं। पूतना ने[2] वालक को अपनी गोद से न जाते देख सादर छाती से लगा लिया और यशोदा आदि माताओं के देखते हुए वात्सल्यमयी मैया के समान विष के कलशों के सदृश अपने स्तनों को श्रीकृष्ण के अधरों में देकर दूध पिलाने लगी। दूध पीते समय बन्धूक-कुसुम-कलिका के दल जैसे अपने अधरों से चमत्कार-कला द्वारा वे लीलामय नवशिशु उसके प्राण चूसने लगे। तत्क्षण ही वह ग्लानि (पीड़ा) से व्यथित होकर विवश हो गई और 'छोड़! छोड़!' चिल्लाने लगी पर कौतुकी कृष्ण अतृप्त के समान सुकोमल अधरों से चूसते ही गए।

तव पूतना छोटा मनुष्य-आकार धारण किए विष-पय-पान कराती हुई घर से वाहर निकली परन्तु श्रीकृष्ण ने उसके स्तनों को छोड़ा नहीं। तव सकल प्रजा-नाशक कराल काल, लङ्का देश, महाभयप्रद मेघ, नील शैल अथवा

---

१. पूतना के लिए प्रभु ने यह कपट-रूप बनाया।

२. मायापति श्यामसुन्दर ने फिर माया की और उसे उसका कार्य स्मरण करा दिया।

पातालसदृश मुखवाली, गम्भीर कन्दरा के समान गन्ध बहानेवाली, महायोद्धा-समूह के समान प्रबल दाँतोंवाली, ध्वजा के समान जिह्वावाली तथा महाताल के समान उदरवाली वह अर्धयोजनव्यापी अपनी देह धारण कर पुर के बाहर वनप्रदेश में 'हा हा' करती, वृक्षों को चूर करती हुई जा गिरी।

इधर यह आश्चर्य देखकर अपने पुत्र को खोजती हुई व्रजरानी हाय-हाय कर चिल्लाने लगीं और 'यह क्या हुआ ? मेरा बालक कहाँ है ?' ऐसा कहती हुई मूर्च्छित हो गयीं। यह सुन व्रज-गोपियाँ दौड़ आयीं और उनको आश्वासन देने लगीं। पुनः यशोदाजी होश में आकर विलाप करने लगीं : 'हा, धिक्कार है ! हाय ! मेरे पुत्र को क्या कोई स्वर्ग की अप्सरा नीलकमल जानकर कान का भूषण बनाने के लिए ले गयी अथवा नीलरत्न जानकर बालों में लगाने के लिए चुरा ले गयी, अथवा पाताल की नाग-सुन्दरी तमाल का पुष्प जानकर चुरा ले गयी ? या कोई गन्धर्वी सिद्ध अञ्जन समझकर ले गयी ? अथवा इस बालक के पूर्वजन्म की जननी कोई योगिनी मुझे अयोग्य जानकर ही आकर अपने इस पुत्र को छीन ले गयी ?' ऐसा कहती हुई वे गिर गयीं और मूर्च्छित हो गयीं।

क्षणभर में सचेत हो यशोदाजी पुनः विलाप करने लगीं : 'किसने मेरा पुत्र हरण किया है ? मेरा बालक कहाँ गया ?' वे सबसे विनती करने लगीं : 'यदि तुम कोई जानती हो तो बता दो।' फिर प्रबल पवन के वेग से लवली लता के समान पग-पग पर गिरती हुई, व्रजगोपियों के साथ छाती पीटती हुई, रोती हुई, करुणामूर्ति के समान केश खोले, पुरतोरण (गाँव की मेंड़) पर चढ़कर देखने लगीं।

दूर से ही पूतना का मृतक विशाल शरीर देख गोपवृन्द चिल्लाते हुए दौड़ पड़े : 'यह क्या है ? बिना वायु के यह पर्वतशिखर कहाँ से आ गिरा ? क्या यह पृथिवी देवी का मरा हुआ गर्भ है, अथवा आकाश से गलित मांसपिण्ड है, या किसी राक्षस की देह है !'

वहाँ जाकर राक्षसी के उदर पर स्वच्छन्दतया आनन्दपूर्वक खेलते हुए बालक कृष्ण को सबने करुणापूर्वक ऐसे देखा, जैसे गिरिवर पर जलधर का अङ्कुर हो। ऐसे अद्भुत लीलाशिशु को आश्चर्यपूर्वक देख तर्क करते हुए वे परस्पर कहने लगे : 'यह क्या है ? ओहो ! यह वही राक्षसी है, जो सुन्दरी बनकर आयी थी। नन्दभवन में आयी थी नन्दनन्दन को मारने के लिए, किन्तु आप ही अपने अपराध से मर गयी। अहा ! हमारा कैसा अहोभाग्य है !' तभी उन गोपालों के पास व्रजगोपियाँ भी आ गयीं। उन्होंने पर्वत के कोर के समान उसके

शरीर पर चढ़कर, उसके पेट पर मुस्कराते हुए सुन्दर मुखवाले वालकृष्ण को दौड़कर उठा लिया तथा एक ने दूसरी को, दूसरी ने तीसरी को हाथों ही हाथों देकर शीघ्रता से यशोदाजी के पास पहुँचा दिया और सब मिलकर कहने लगीं : 'देवि ! धैर्य धारण करो ! धैर्य धारण करो ! तुम वड़ी पुण्यवान् हो, तुम्हारा वालकृष्ण मिल गया ।'

वह मधुर वाणी यशोदाजी को स्वप्न जैसी लगी । वे स्वयं अपने से कहने लगीं : 'मैं जागती हूँ या सोती हूँ ?' तब गोपियों ने श्रीकृष्ण को गोद में दे दिया। पुत्र का स्पर्श पाकर वे जाग-सी पड़ीं । उनकी शोकनिद्रा भङ्ग हुई । जीवन प्राप्त होने के उपरान्त जैसे मूर्च्छित इन्द्रियाँ चैतन्य हो जाती हैं, ऐसे ही पुत्र का मुख देखकर वे सव दुःख भूल गयीं ।

उस समय मङ्गल कौतुक होने लगे । श्रीकृष्ण के शरीर पर गोपुच्छ फेरा गया । गोमूत्र छिड़का गया । संस्कार करके रोहिणी-सहित उपनन्द, सनन्द आदि की स्त्रियाँ, व्रज की वृद्धा गोपियाँ सव अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार भगवन्मन्त्रों से श्रीकृष्ण की अङ्ग-रक्षा के यत्न करने लगीं ।

फिर सम्पूर्ण गोपाल एकत्रित हुए और जैसे महापर्वत से पत्थरों को तोड़ा जाता है, ऐसे ही कुठारों द्वारा पूतना के अङ्गों के खण्ड-खण्ड कर दिये तथा वड़ी भारी चिता वनाकर वृक्ष काट-काटकर इन्धन के पहाड़ों का ढेर लगा-लगाकर उसको जला दिया । भगवान् ने उसके स्तनों का पान किया था, इसलिए उसकी चिता के धुएँ से दुर्गन्ध न निकलकर अगर-धूप के समान दिव्य सुगन्धवाला धुआँ निकला और आकाशमण्डल में ऐसा छा गया कि सम्पूर्ण भुवन तृप्त हो गये । उस धुएँ की सुगन्ध से वने मेघों ने जो जल वरसाया, उससे पृथिवी भी सुगन्धवती हो गयी ।

उस पूतना का सौभाग्य क्या वर्णन करें, जिसने भगवान् को विषम विष प्रदान किया । भगवान् ने उसे जननी का आभास मानकर करुणा कर माता के लोक में भेज दिया ।*

उधर मथुरा से लौटते हुए व्रजराज नन्दजी ने मार्ग में दूर से ही धूम-समूह उठते देखा तो अपने साथियों से कहने लगे : 'देखो, यह क्या आग लगी हुई है, अथवा पृथिवी फोड़कर रसातल से सर्प-मण्डली के फणों की मणियों का प्रकाश फैल रहा है, अथवा दिग्गज परस्पर युद्ध करते हुए इधर-

* अहो वकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ।।
(भा० ३-२-२३)

उधर दौड़ रहे हैं, अथवा मेघ ही पृथिवी पर गिर पड़े हैं और भूमि से उठ-उठकर आकाश की ओर दौड़ रहे हैं, अथवा पृथिवी ही रजोभाव को प्राप्त होकर आकाश को जा रही है, अथवा अकाल में ही सारा संसार अन्धकार से भर जाना चाहता है, अथवा देवताओं को सुगन्ध देने के लिए दिव्य सुगन्ध युक्त कर पृथिवी ही उठ रही है !' फिर सोचने लगे कि हो न हो, देवताओं ने ही पृथिवी पर आकर यज्ञ किया है, अथवा पृथिवी का गुण जो गन्ध है, वही धूमाकार प्राप्त कर आकाश का सर्वव्यापकता गुण बन जाना चाहता है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करते तथा शङ्कित होते हुए वे शीघ्र ही धुएँ के पास पहुँच गये और वहाँ उपस्थित व्रजवासियों से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर जाना कि पूतना नामक राक्षसी जल रही है।

नन्द बाबा अपने बालकृष्ण की कुशल मनाते हुए घर आये और प्रेमवश पुत्र को हृदय से लगाकर मस्तक सूँघते हुए दुलार करने लगे। फिर पूतना किस प्रकार आयी और आकर उसने क्या किया, यह सब सुनकर पुत्र को पुनः प्राप्त हुआ-सा मान वे आनन्दित होने लगे। उनके नेत्रों में हर्ष के अश्रु छलक आये। जैसे बीज को खेत में लगाते हैं, ऐसे ही उन्होंने परमानन्द के बीज श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया और निर्निमेष नेत्रों से उनके मुख-कमल की शोभा निहारने लगे।



चौथा स्तवक

शकट-तृणावर्तवध-लीला

कुछ दिनों के पश्चात् श्रीकृष्ण के जन्म-नक्षत्र के योग में वात्सल्यवती गोपियों ने उनका पार्श्व-परिवर्तन प्रारम्भ किया। महान् सुकृतों के फलोदय के सदृश कौतुक करनेवाली गोपियों ने झुण्ड बनाकर विधिपूर्वक बालकृष्ण को उबटन, तैल आदि लगाकर मङ्गल-स्नान कराया, मङ्गल बाजे बजवाये और मङ्गल-काजल से उनके नेत्र रञ्जित किये। आनन्दपूर्वक व्रजवासियों से घिरे हुए नन्दजी ने विधिपूर्वक कृत्य समाप्त किया। दया आदि सकल गुणों की खान रोहिणीजी ने कर्पूर-चूर्ण-सदृश शुक्लवर्ण शय्या पर बालकृष्ण को धीरे से सुला दिया।

शकटभञ्जन-लीला

भगवान् को भूख लगी तो वे रोने लगे, किन्तु गोपियों का सम्मान करने में व्यस्त होने तथा मृदङ्ग, पणव, भेरी तथा दुन्दुभि की ध्वनि और सूत-मागध-बन्दियों के गान-कोलाहल के कारण बालकृष्ण का मधुर रोदन न तो यशोदा ने सुना, न किसी और ने ही सुना। तब श्रीकृष्ण झुँझलाकर अपने नवीन कमल-दल के सदृश हाथ-पैर पटकने लगे, चित पड़े हुए आँखें खोलने व बन्द करने लगे और मन ही मन शकट के गिराने का उपाय विचारने लगे। देखते ही देखते उन्होंने मृदुल कमलदलसदृश चरण बढ़ाकर ऊपर टँगे हुए विशाल शकट पर प्रहार किया, जिसमें कलश, छीके, घण्टे आदि बँधे हुए थे। कटकटाय-मान विकट कटु ध्वनि करता हुआ शकट वैसे ही पृथिवी पर गिर पड़ा, जैसे वृक्ष टूटकर गिर पड़ता है। उसमें रखी हुई वस्तुएँ इधर-उधर बिखर गयीं।

धड़ाका सुनकर सब सशङ्क होकर दौड़ पड़े कि क्या गिरा, कोई अनिष्ट तो नहीं हुआ! शीघ्रता से आकर गोप-गोपीगण कहने लगे : 'अहो! यह क्या अकस्मात् संकट आ पड़ा! इस मङ्गल उत्सव के समय बहुत दिन से टँगा हुआ यह शकट इस प्रकार बिना हवा के या बिना किसीके हिलाये-डुलाये अकारण ही न जाने कैसे गिर पड़ा! यह कोई अनिष्ट की सूचना तो नहीं है? यह आश्चर्य देखिये कि गिरा तो बालक की शय्या पर लगकर ही, परन्तु सम्पन्न पुण्य-फलों के कारण बालक के अङ्गों में नहीं छू गया। हे नन्दरायजी!

हम आपके भाग्य की सराहना कहाँ तक करें ! आपकी भाग्य-लक्ष्मी की स्तुति कौन कर सकता है !'

उस समय वहाँ खेलते हुए बालकों ने तोतली वाणी में कहा : 'हमने देखा कि कृष्ण ने ही रोते-रोते अपने चरण बढ़ाकर इस शकट को पृथिवी पर गिरा दिया।' किन्तु किसीने बालकों की इस बात पर विश्वास नहीं किया, वे सब मन में अलक्षित कारण का ही विचार करते रहे।

उधर उसके गिरते ही अपने पुत्र के अनिष्ट की आशङ्का से व्रजरानी यशोदा पृथिवी पर गिर पड़ी थीं। बूढ़ी गोपियों और माता रोहिणी ने शीघ्र ही उनको उठाया। जब किसी गोपी ने आकर यह कहा कि कुमार कुशल है, और आश्वासन दिया तब यशोदाजी होश में आयीं और उन्होंने धैर्य धारण किया।

यशोदाजी कहने लगीं : 'माखन से भी मृदुल मेरा बालक अभी ३ महीने का हुआ है ! हाय ! बड़े दुःख की बात है कि उस पर अकस्मात् शकट गिर पड़ा। मैं वज्र से भी अधिक कठोर हूँ, जो यह सुनकर भी जीवित रह गयी। धिक्कार है मेरी वत्सलता को ! मेरा माता नाम व्यर्थ है ! जिसके गिरने से पृथिवी हिलने लगी और जिसकी ध्वनि से हम लोग बहरे हो गये, ऐसा भयानक शकट बालक के समीप गिरा, फिर भी आश्चर्य है कि बालक बच गया। देखो, पहले तो पूतना आयी, अब यह शकट गिरा। न जाने दुर्दैव क्या विपत्ति आगे देना चाहता है।' व्याकुल होकर इस प्रकार कहती हुई यशोदाजी ने चन्द्रमा के समान रमणीय बालक का मुख देखते हुए शीघ्र ही दौड़कर उन्हें गोद में उठा लिया। श्रीकृष्ण का सौन्दर्य व माधुर्य देखते तथा दुलार करते हुए उनका जी नहीं अघाया।

तदनन्तर मङ्गल गीत-बाजे आदि उत्सव होने लगे। उन्होंने श्रीकृष्ण की आरती उतारी, फिर स्नेह के कारण प्रस्रवित होते हुए स्तनों से नररूप परब्रह्म बालक को दूध पिलाने लगीं। श्यामसुन्दर को कुछ निद्रित-सा होते देखकर दूसरी शय्या पर ले जाकर सुला दिया और रोहिणीजी को उनके पास नियुक्त कर माँ यशोदा महोत्सव में आयी हुई व्रज-वनिताओं का सम्मान करने लगीं। उधर नन्दजी भी ब्राह्मणों को दान देने लगे और ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन आदि कराकर पुनः उस शकट को विधिपूर्वक पहले की तरह स्थापित कर दिया।

तृणावर्तवध-लीला

एक बार रसमय समय में मणिमय भूषण धारण किये हुए यशोदाजी बालकृष्ण को गोद में उठाकर लालन कर रही थीं। योगमाया से रुचिर सौन्दर्य

धारण करनेवाले ज्ञानघनस्वरूप तथा अज्ञानियों को प्राकृत चरित्र कर भ्रमानेवाले श्रीकृष्ण जान गये कि आकाश-मार्ग से प्रवल वायुरूप धारण कर एक दानव उनकी ओर आ रहा है। यह विचारकर कि मेरे कारण मेरी जननी को कष्ट* न हो, उनकी गोद में विराजमान नन्हें-से श्रीकृष्ण अत्यन्त भारी हो गये। यशोदाजी ने उनका भार न सहन कर सकने के कारण सहसा वहीं आँगन में उनको शय्या पर सुला दिया और भगवान् की इच्छा से कुछ खिन्न-मन होकर हाँफती हुई-सी घर में जाकर कुछ कार्य में व्यस्त हो गयीं।

उसी समय एक साथ ही लाखों विरहिणी नागिनियों की उष्ण फुफकार के समान अथवा कालरूपी लोहार की विशाल धौंकनी से प्रकट वायु के समान ववण्डर से सब दिशाएँ भर गयीं, दिग्गजों के श्रवणरूपी सूपों के फटकारने से मानो आकाश-पृथिवी काँपने लगे, चारों ओर उपद्रव होने लगे, वायुवेग से सर्वत्र धूलि छा गयी तथा खल के समान बाहर शक्कर वरसानेवाला और अन्तर में दुर्भाववाला, मद के समान अन्धा कर देनेवाला, पित्तज्वर के समान महावेगवान् और हाथियों के युद्धसदृश कोलाहल से भरा उत्पात होने लगा।

सब प्राणियों को ताप पहुँचानेवाला, महान् संहारकारी, कंस का भेजा हुआ तृणावर्त नामक दैत्य उस आँधी का रूप धारण करके आ गया। ऊँचे उठकर तृण और धूलि नाचने लगी, सबकी आँखों में धूलि भर गयी, अन्धकार छा गया, जैसे कल्पान्त में शेषजी के हजारों मुखों से ज्वाला और धुआँ निकलता है, ऐसे ही लोक अन्धकार से भर गया। उस महाअसुर तृणावर्त ने स्वयं ही अपने विनाश के लिए दौड़कर शीघ्रता से वालकृष्ण को उठा लिया। जिस समय महान् अन्धकार में सब लोग ढँके जा रहे थे, उसी समय उसने सकल संसार को आनन्दित करनेवाले कमल-नयन अच्युत पुरुष श्रीकृष्ण का हरण कर लिया। ब्रह्मा, रुद्र आदि से सेवित वालब्रह्म श्रीकृष्ण को राक्षस ने ऐसे पकड़ा, जैसे कोई कपड़े में आग को बाँध ले अथवा जैसे कण्ठशुद्धि के लिए कोई कालकूट विष पी ले। उसने स्वयं निमन्त्रण देकर अपनी मृत्यु को बुला लिया।

वह महासुर तृणावर्त आकाश तक बढ़ गया। कस्तूरी से सनी काली विसलता के समान भुजाओं से किसी प्रिय मित्र की तरह श्रीकृष्ण धीरे-धीरे उस राक्षस का गला घोटने लगे। फिर ऐसे जोर से उसका कण्ठ दवाया कि तत्क्षण उसके प्राण निकल गये। उसी समय उसकी विशाल काया धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़ी। अहो ! इन चतुर बालक भगवान् का कैसा अद्भुत

* उनको भी न उड़ा ले जाय।

खेल है ! भगवान् के अङ्ग-सङ्ग से मृत्यु होने के कारण धरती पर गिरते समय उस असुर के शरीर का स्पर्श कर वहाँ का पवन पवित्र हो गया। उसके कण्ठ में लटके हुए नीलमणि के हारसदृश श्रीकृष्ण भी पृथिवी पर आ पड़े।

वायुवेग व अन्धकार शान्त होने पर यशोदाजी ने इधर-उधर खोजकर जब अपने बालक को नहीं देखा तो व्याकुल होकर मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ीं। ब्रज-पुर-वासिनियों ने यशोदाजी को उठाकर आश्वासन दिया और मुख पर जल-सिञ्चन किया। उसी समय किसी गोपी ने बाहर से आकर कहा: 'हे पुण्यवान् भाग्यशालिनी यशोदे ! तुम्हारे सदृश किसीका भाग्य नहीं है। अत्यन्त सुखद रस-सन्दोह तुम्हारा पुत्र सकुशल एवं सुखपूर्वक है। तुम्हारा तथा ब्रज का सौभाग्य उदय हुआ, जो बालक बच गया ! बस-बस, अब मोह से अपने हृदय को क्लेशित मत करो, मानसिक ज्वर से सन्ताप मत पाओ, सब कुशल है।'

अकस्मात् ही ऐसी वाणी सुनकर बेहोश पड़ी हुई यशोदा जाग पड़ीं, चेतना तो लौट आयी, फिर भी शोक से व्याकुल होकर वे विलाप कर कहने लगीं :

इत एव मयोपवेशितो बत वोढुं ह्यसमर्थया भरम्।
मम दुर्नियतिस्वरूपया तनयो हा धिगहारि वात्यया॥
क्व शिशोर्बत तादृशो भरः सहते यं बत न प्रसूरपि।
अत एव तथाऽनुमीयते मम दुर्दैवविजृम्भितं हि तत्॥
नवनीतमिवाऽतिकोमलो व्यथते यो बत मातुरङ्कतः।
स कथं खरपांशुशर्करातृणवर्षं सहते स्म मे सुतः॥
स यथैव निशाचरीविषस्तनपानाच्छकटस्य पाततः।
अवितः किल येन वेधसा स इदानीमपि तं सदाऽवतु॥
अधुना परमेश्वरेण चेदवितोऽसौ यदि लभ्यते सुतः।
न कदापि तदाङ्कमध्यतो बत भूमौ विजहामि हा पुनः॥
त्वरितं परितोऽवलोक्यतां क्व नु नीतः क्व नु पातितोऽर्भकः।
मम यावदपैति जीवनं न बहिस्तावदमुं समानय॥

अर्थात् मैंने यहाँ पर उसे सुलाया था। मैं उसको उठाने में असमर्थ हो गयी थी। हाय ! हाय ! मुझे धिक्कार है ! मैं बड़ी दुर्बुद्धि हूँ ! मेरा बालक हवा से उड़ गया ! कहाँ है ऐसा शिशु, कहाँ है ! ऐसा सुन्दर शिशु कहीं नहीं हो सकता। अब वह नहीं मिल सकता। यह दुर्दैव मेरे साथ क्या कर रहा है ? मेरी कठोर गोद से व्यथा पानेवाला वह नवनीत के समान अत्यन्त कोमल मेरा

बालक कैसे उस तृण और धूलि की वर्षा सहता होगा ! विषभरे स्तनों से दूध पिलानेवाली निशाचरी पूतना से तथा किसीके द्वारा ऊपर से पटके हुए शकट से जैसे वह बच गया, ऐसे ही सम्भव है, अब भी बच गया हो। अब यदि परमात्मा की कृपा से पुत्र को पा जाऊँ तो कभी भी उसे अपनी गोद से न उतारूँगी, कभी ऐसे अकेला नहीं छोड़ूँगी। वायु से उड़कर मेरा बालक भूमि पर गिर पड़ा होगा, हाय ! उसकी क्या दशा हुई होगी ! मैं तो उसीको देखकर जीती हूँ, वह बालक तो मेरे बाह्य प्राणों के ही समान है।

यशोदाजी इस प्रकार विलाप कर फिर मूर्च्छित हो गयीं। गोपियों ने आश्वासन दिया। तब भी वे तीव्र विरह-व्याकुलता के कारण जीवन त्यागती हुई के समान श्वास लेने लगीं, मुखकमल मलिन हो गया, सूर्य के ताप के सदृश बालक का विरह उन्हें तपाने लगा।

उसी समय पुरद्वार के आगे राक्षस के वक्षःस्थल पर बालकृष्ण को लोगों ने ऐसे देखा, मानो विजय की माला पड़ी हो अथवा पुराने तालाव (राक्षस के शरीर) में नीला कमल उत्पन्न हुआ हो अथवा घने अन्धकार के पटल पर दीपक हो अथवा महामोह के ऊपर ज्ञानामृत-कलश हो अथवा मरुभूमि पर कल्पवृक्ष का पौधा हो अथवा दुःखरूपी वृक्ष पर घनानन्द का पुष्प हो। जब व्रजवासी-गणों ने विचार कर निश्चय कर लिया कि निश्चय रूप से यही यशोदा का बालक है तो कहने लगे कि देवताओं का द्वेषी यही दुष्ट राक्षस वायु का रूप धारण कर आया था और इसने ही व्रजराजकुमार का हरण किया था। इसने ऐसा खोटा उद्यम किया, लेकिन स्वयं ही पापरूपी विष की ज्वाला से अन्तर जलने के कारण चलने में असमर्थ हो गया और आकाश से गिर पड़ा। कोई कहने लगा कि यह महाप्रभाववाला विष्णु के सदृश तेजस्वी बालक दानवों का नाश करने के लिए ही प्रकट हुआ है; क्योंकि पहले इसने पूतना मारी, फिर शकट को गिरा दिया और अब इस राक्षस को मार डाला। हमारे मन में न जाने क्यों ऐसे ही विचार आ रहे हैं। कोई कहने लगा : यह व्रजराज का पूर्वजन्मों में किया हुआ तपः-पुण्य-पुञ्ज ही है, जो कि शम-दम आदि साधनों द्वारा सकल विपत्तियों के विघ्नों को जीतकर प्राप्त किया गया है। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सब लोग महाधन के सदृश उस बालक को निःसंकोच गोद में उठाकर अन्तःपुर में ले आये।

हर्ष में भरकर कोलाहल करते हुए गोपों को देखकर व्रज की गोपियों ने अनुमान से समझ लिया कि बालक कृष्ण मिल गये। हर्ष की तरङ्गों के द्वारा रस-रङ्ग से उनके मुख-कमल प्रफुल्लित हो गये। वे बोलीं : 'जगत्-पूजनीया

हे भाग्यवती यशोदे ! तुम्हारे भाग्य से असम्भव भी सम्भव हो गया ! लो, यह तुम्हारा पुत्र आ गया !' ऐसी हर्षभरी वाणी सुनकर आँखों से मेघों के सदृश जल वहानेवाली यशोदा प्रसन्न होकर कहने लगीं : 'वह कहाँ है ?' कमलों के सदृश नेत्रोंवाली यशोदा वालक को देखने के लिए लालायित हो उठीं। उत्साह के वेग में वे अपने को भी भूल गयीं। तव गोपियों ने 'यह है, यह है' कहते हुए मृत-सञ्जीवनी ओषधि के सदृश वालक को यशोदा की गोद में वैठा दिया। यशोदा ने श्रीकृष्ण को गोद में ऐसे चिपका लिया, मानो खोया हुआ धन मिल गया हो और अत्यन्त लालसा से देखते हुए ऐसे आनन्द का अनुभव करने लगीं, मानो अभी ही पुत्र उत्पन्न हुआ हो। फिर वे वालकृष्ण को प्यार करती हुई उनसे कहने लगीं : 'ओ हो ! वड़े खेद की वात है, तुम्हारा कैसा स्वभाव है, तुम हमें छोड़कर क्यों चले गये थे, तुमने हमें वड़े दुःख में डाल दिया था। पर तुम्हारा क्या दोष, मेरा ही दोष था, मैं तुमको वाहर छोड़कर घर में चली गयी थी। मैं अत्यन्त कठोर हूँ। माता नाम मुझे शोभा नहीं देता ! मैं चली गयी थी, इसीलिए तुम रूठकर चले गये। तुमने मातृ-वत्सलता के कारण फिर दर्शन दिया। हे पुत्र ! तुम लोकों से अलौकिक हो।'

वे वहुत देर तक इस प्रकार लालन करती हुई नर-रूपधारी मूर्तिमान् आनन्द-घन को अपने स्तनों का दूध पिलाने लगीं।

पाँचवाँ स्तवक

विश्वरूप-दर्शन-लीला

एक दिन व्रजेश्वरी यशोदाजी अपने वालक का लालन कर रही थीं। तभी कृष्णजी ने जँभाई ली। उनके छोटे-से मुखकमल में यशोदाजी ने पृथिवी, पर्वत, समुद्र, नगर, भुवन, अपना भवन और नन्दरायजी तथा अपने को देखा तो परम विस्मय में पड़ गयीं। अच्छी प्रकार पुत्र को गोद में लेकर संभलकर उनके मुखकमल के भीतर कौतुक से देखती हुई वे कहने लगीं : 'अरे, यह क्या है ?' श्रीकृष्ण ने तत्काल मुख वन्द कर लिया। तव यशोदाजी ने कहा : 'लाल ! मुख खोलो, मैं फिर देखूँ उसमें क्या था। मैं तुम्हारे सुन्दर दाँतों को देखूँगी। क्या तुम अपना मुख नहीं खोलोगे ?' थोड़ी देर में श्याम-सुन्दर ने फिर मुख खोल दिया, तव माता ने भलीभाँति देखा तो दाँतों और मुख में इधर-उधर अपने स्तनों के दूध के कणों के सिवा और कुछ नहीं दिखाई दिया।

रेंगन-लीला

इस प्रकार से वाल-चन्द्रमा के समान प्रकाशित होते, मानो प्रतिदिन पुष्टि देवी से सेवित, माता-पिताओं द्वारा लालन-पालन किये जाते श्रीकृष्ण वढ़ने लगे।

काल के वश में न होते हुए भी वे तत्काल विशेष रूप धारण कर चातुरी से घुटनों और हाथों के वल चलते हुए सवको आनन्दित करने लगे। कोमल करकमलों और मृदुल घुटनों से चलते समय अपनी कमर में वँधी हुई किङ्किणी की ध्वनि सुन वे चकित हो जाते और ठहरकर देखने लगते कि यह ध्वनि किधर से आ रही है। यह सव देख-देखकर जननी को अतिशय आनन्द प्राप्त होता है।

घुटनों और करों से धीरे-धीरे चलते हुए रत्न-जड़ी देहली पर आकर ऊपर वैठे हुए कपोत आदि पक्षियों का नीचे प्रतिविम्व देखकर वे अरुण मृदुल दलों के सदृश उँगलियों से पक्षियों की छाया पकड़ने का प्रयत्न करते तो गोपियाँ यह लीला देखकर हर्षित हो जातीं। मानो अपनी इस अज्ञान-कौतुक-लीला से वालमूर्ति अतिरमर्णाय पूर्णज्ञानघन इस तत्त्व को समझाते कि इस विषम संसार में जीव भी आनन्द को इसी तरह पकड़ना चाहता है।

ज्ञान कराने को गोपियाँ पूछतीं : 'लाला ! तुम्हारा मुख कहाँ है ? तुम्हारा ज्ञान कहाँ है ? तुम्हारी आँखें कहाँ हैं ?' यह सुनकर श्रीकृष्ण प्रमुदित होकर अपनी कोमल अँगुलियों से वह-वह अङ्ग छूकर दिखा देते। कभी पूछतीं : 'तुम्हारे दाँत कहाँ हैं ?' तो हँसाने के लिए करकमल को दाँतों के बदले नासिका पर रख देते। जब पूछतीं : 'बोलो, तुम्हारी मैया कहाँ है ?' तब मुख नीचे कर मुस्कराकर कोमल उँगली उठाकर बतलाते हुए सबको आनन्द-मग्न कर देते।

गोपियाँ इसी प्रकार नवीन कौतुक से बुलाने की चेष्टा करतीं हुई कहतीं : बोलो 'मा', बोलो 'ता', लेकिन श्यामसुन्दर ठीक-ठीक बोल नहीं पाते; 'ता' कहकर रह जाते। गोपियाँ कहतीं : 'कहो तात', तो धीरे से मुख में ही कुछ कहकर रह जाते। फिर कहतीं : 'कहो माऽऽता, ताऽऽत।' इन दोनों नामों में अत्यन्त जोर लगाकर वे केवल 'मा' ही कह पाते।

मणिमय भूमि पर घुटनों और हाथों से चलते हुए सहसा नीचे अपने प्रतिबिम्ब की ओर जब उनकी दृष्टि जाती, तब चकित होकर उसे अपने एक हाथ से पकड़ने लगते, परन्तु प्रतिबिम्ब में भी जब वैसे ही हाथ हिलने लगता तो शङ्कित होकर भागकर मैया की गोद में चढ़ जाते।

एक दिन श्रीकृष्ण मणिमय दीवाल के पास गये। उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर प्रसन्न हुए और एक करकमल से उसे पकड़ने लगे, किन्तु वह जब हाथ में नहीं आया तब दीवाल पकड़कर खड़े हो गये। पहले दिन इस प्रकार थोड़ी देर खड़े होने के बाद धीरे-धीरे दीवाल से हाथ हटा लिया। किन्तु हाथ हटाते ही गिर पड़े। इस प्रकार दो-तीन बार खड़े हुए और गिरे। जब गिरे तो मुख उदास हो गया, माता की ओर देखकर रोने लगे। माता ने आकर अपने कोमल करों से श्यामसुन्दर की नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ पकड़ लीं और उन्हें खड़ा कर धीरे-धीरे चलाने लगीं। जब दो-चार पग चल चुके तो उनके मुखचन्द्र पर अत्यन्त खुशी आ गयी और उँगली पकड़े ही जल्दी-जल्दी चलकर माता को सुख देने लगे। इधर-उधर चलते समय जिनके गले की माला उछल रही है, ऐसे श्रीकृष्ण की चाल दिखाने के लिए यशोदाजी उन्हें श्रीनन्दजी के पास ले आयीं और आकर वह कौतुक दिखाकर उनको भी प्रसन्न किया।

इस प्रकार जब वे कुछ-कुछ चलना सीख गये, तब एक दिन यशोदाजी ने कहा : 'पुत्र ! थाली ले आओ। कटोरा ले आओ। पीढ़ा ले आओ।' यह सुन श्रीकृष्ण उठाने चले। थाली को पेट का सहारा लगाकर उठाया, किन्तु जरा-सा चलकर थक गये और भूमि पर रख विश्राम कर फिर उठाया। किसी

प्रकार ले आये। आनन्दमय लाल के खेल देखने की इच्छा से व्रजराजजी, उपनन्द, सनन्द आदि की पत्नियाँ, जो वहाँ पर उपस्थित थीं, बोलीं : 'रहने दो, रहने दो, अब तुम न लाओ।' और गोद में उठाकर प्यार कर बोलीं : 'वत्स! तुम राजा के पुत्र हो, राजकुमार हो, यह क्या कर रहे हो! इतना परिश्रम तुम्हें अनुचित है।' फिर वे यशोदा से कहने लगीं : 'लाला से ऐसा काम न लिया करो!'

एक बार यशोदाजी ने नवनीत हाथ में लेकर कहा : 'वत्स कृष्ण! यह माखन तुम्हें दूँगी, तुम नृत्य दिखलाओ।' श्रीकृष्ण कौतुकवश नृत्य करने लगे। हाथ उठाकर तालसहित चरणों को घुमाने लगे। विचित्र नृत्य देखकर जननी अतिशय आनन्दित हुईं।

एक दिन यशोदाजी ने हँसते हुए पूछा : 'लाल! तुम्हारे वक्षःस्थल पर यह सोने की-सी पुतली* कौन है? यह किसका चिह्न है?' श्यामसुन्दर ने कहा : 'मैया! यह मेरी दुलहिन है।' यह सुनकर सब गोपियाँ हाथों से मुख पर आँचल का ओट कर हँसने लगीं और श्यामसुन्दर भी मुख ढाँपकर हँसने लगे।

माता ने कौतुकपूर्वक खेलनेवाले श्रीकृष्ण की कटि में पीताम्बर पहना दिया। वह अत्यन्त महीन धोती भी अभ्यास न होने के कारण खेलते समय खिसकने लगी। झुँझलाकर श्रीकृष्ण कहने लगे : 'तुमने क्या धोती पहना दी, जो गिर-गिर पड़ती है!' फिर हाथों से सरका-सरकाकर चढ़ाने लगे। माता ने हँसते हुए आकर फेंट कस दी।

एक दिन गोपियाँ एकान्त में बैठी हुई आभूषण पहन रही थीं तथा अपनी-अपनी अलकावलियाँ सुधार रही थीं। उसी समय श्रीकृष्ण वहाँ आये और बोले : 'मेरी मैया की कंघी दे दो।' ऐसा कहते हुए चपलता से हठ कर कंघी छीन ली और जहाँ पर माँ यशोदा उसे रखती थीं, उसी स्थान पर जाकर रख आये।

भगवान् की लीला अवलोकन करके धर्ममयी रोहिणीजी ने लोक-वन्दित देवक की कन्या देवकी से भी अधिक हर्ष प्राप्त किया। उन्होंने भगवान् के अवतार से पहले ही साक्षात् भगवान् के द्वितीय रूप, उनके सहचर, सिद्ध-मुनि-चारणों से वन्दित श्री बलरामजी को जन्म दे दिया था।

श्री बलरामजी और श्रीकृष्णजी ऐसे शोभित होने लगे, जैसे स्फटिकमणि के

* श्रीवत्स चिह्न।

साथ नीलमणि, चन्द्र-ज्योति के साथ जलद, अरुण कमल के साथ नीलकमल, हंस के साथ यमुना-तरङ्ग अथवा चाँदनी छवि के साथ गाढ़ तिमिर। शुद्ध स्फटिकमणि और नीलमणि पास-पास रख देने पर जैसे एक की द्युति से दूसरा रङ्गीन हो जाता है, ऐसे ही बलराम और श्रीकृष्ण पास-पास जब बैठते तो माताओं को पहचानना कठिन हो जाता कि कौन श्रीकृष्ण हैं, कौन राम ?[1]

श्रीकृष्ण-बलरामजी निःशङ्क होकर सींगवाले बछड़ों के सम्मुख दौड़ लगाते और सर्पों को देखकर उन्हें पकड़ने को दौड़ते। कभी आग से उँगली छुआने को लपकते, तो कभी दीपक की शिखा को पकड़ने की इच्छा करते। बाल-चपलता से कौतुक करनेवाले दोनों भाइयों को निर्भय देखकर उनकी भयभीत माताएँ करुणा से शङ्कित हो उन्हें बचाने को दौड़ पड़तीं।

नामकरण-संस्कार

श्री वसुदेवजी ने सोचा कि अब अपने बच्चे का नामकरण-संस्कार करा देना चाहिए, अतः उन्होंने यदुवंशियों के पुरोहित श्री गर्गाचार्यजी को गुप्त रूप से नन्दग्राम भेजा। यज्ञ-वितान के सदृश जो मन्त्र-आत्मा हैं, कपिल भगवान् के सदृश तत्त्व जिनके अधीन हैं, स्वर-समूह के समान जो श्रुति-सम्पन्न और समुद्र के समान गम्भीर हैं, विरोचन (सूर्य) के समान जो तेजोमय महातपस्वी, प्रकाश के पुञ्ज हैं तथा सुमेरु पर्वत के समान महाधैर्यवान् हैं, ऐसे यदुकुल के आचार्य गर्गमुनिजी गुप्त भाव से व्रजराज श्री नन्दजी के भवन में पधारे।

श्री नन्दरायजी महर्षि गर्गजी को देखकर हर्ष में भर गये। उन्हें उन्होंने आसन पर विराजमान कर पूजित किया, सब गोपों के साथ प्रणाम किया और चरणों के समीप बैठकर विनयपूर्वक बोले : 'मुनिराज ! आपके समान सन्तजन परम करुणा करके जगत् को पवित्र करने के लिए ही हम गृहस्थों के घर आते हैं तथा सम्पूर्ण दोषों से रहित होने पर भी भाग्यवानों को सुख देना स्वीकार करते हैं। आपका चरणोदक आचमन करके मैं अपने को परम भाग्यशाली मानता हूँ। आपके चरणों की रेणु का अणु भी भुवन को पवित्र करता है। आपका शुभागमन परम कल्याणकारी है। आज मेरे भाग्य की लता आपके दर्शन से फल गयी। मुझे कृतार्थ करने के लिए आप पधारे हैं। मैं आपसे आने का प्रयोजन[2] क्या पूछूँ ! आप महात्मा हैं। आपकी महिमा का अन्त नहीं है। मैं यदि आपसे यह प्रार्थना करूँ कि कुछ धन-रत्न स्वीकार कीजिये

१. गौरवर्ण बलरामजी भी श्याम हो जाते थे।
२. अर्थात् आप केवल कृतार्थ करने आये हैं।

तो आप लोभवान् नहीं हैं, आप सम्मानमय महाप्रदीप्त तेज हैं, फिर मैं क्या प्रार्थना करूँ ? भगवन् ! यदि आप मेरे पुत्रों का नामकरण करने आये हैं तो वहुत सुन्दर है। आप तो अन्तर्यामी हैं। सदा ही मैं चाहता था कि आप मुझ पर कृपा करें।'

गर्गजी ने कहा : 'हे व्रजनाथ ! यदि आप ऐसा न कहें तो और कौन कहेगा ! आप सच्चे हृदय के विनीत महापुरुष हैं, इस प्रकार विनय से सम्भाषण करके आप सवको वश में कर लेते हैं। मैं दूर रहता हूँ, परन्तु सदा प्रीति तुम्हारी ओर ही लगी रहती है। तुम्हारा विनय, निरपेक्ष प्रीति और सहज उदारता का मैं सदा स्मरण किया करता हूँ। लेकिन तुम्हारा हित कैसे करूँ ? क्योंकि नृशंस राजा कंस महाक्रोधी है। कोई उसका मुकावला करनेवाला नहीं है। वह खलतारूपी विष-लता का फल वन रहा है, सम्पूर्ण सज्जनों को दुःख दे रहा है। देवता भी उसके तेज के आगे नहीं ठहर पाते। विशेषतया वसुदेव का पुत्र, जो यहाँ कहीं रहता है, उससे वह इस भाँति शङ्कित रहता है, जैसे कोई सर्प से शङ्कित रहता हो और सावधान होकर सदा देखरेख रखता हो। यदि वह जान ले कि यदुकुल के आचार्य गर्गजी नन्दजी के यहाँ यह कार्य करने गये थे तो ठीक न होगा। हे व्रजराज ! कंस के दूत गुप्त रूप से चारों ओर विचरते रहते हैं। वे जाकर कंस से सव समाचार कह देंगे। भेद पाकर कहीं वह यादवों को और तुम लोगों को पीड़ा न पहुँचाने लगे। वह वृक्ष के कोटर में लगी हुई आग के सदृश जगत् को जला रहा है।'

यह सुनकर श्री नन्दजी शोक से पूर्ण हो गये और वोले : 'विप्रदेव ! आप मूर्तिमान् परम मङ्गल हैं, आप संसार के तापों को हरण करनेवाले हैं। आप सत्य ही कहते हैं। जीवन्मुक्तों का कोई द्वेषी नहीं होता, तथापि जिनकी वुद्धि अपना-पराया कुछ नहीं समझती, ऐसे जीव उनसे भी द्वेष करते हैं। इसलिए हम अन्तरङ्ग महल में परिवार-सहित रहेंगे, वहाँ किसी वाहरी व्यक्ति को पता भी न लगने देंगे। वहाँ पर मङ्गलकार्य में लगनेवाली सम्पूर्ण वस्तुएँ तैयार रखी हैं। आप कृपा कर वहाँ चलें और स्वस्तिवाचन करके नामकरण-संस्कार सम्पन्न करा दें।'

नन्दजी के वचन सुनकर गर्गजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। तव यशोदाजी श्रीकृष्ण को गोद में लेकर आयीं। गोद में श्रीकृष्ण की शोभा देखकर मन में गर्ग मुनि विचार करने लगे : 'अहो ! यह कौन है ? क्या यह अनादि मोह-अन्धकार को नाश करनेवाला रत्नदीपक है, अथवा ईश-प्रतिपादक उपनिषदों का प्रमाण मूर्तिमान् हो आया है, अथवा सौन्दर्यरूपी कल्पवृक्ष का पुष्प

है, अथवा सान्द्रानन्द सुधासागर की जन्मस्थली है, अथवा कुछ लोग जिसे भगवान्, पुरुषोत्तम या देश-काल से परे पूर्ण ब्रह्म कहते हैं, वही यह जगत्कर्ता नन्द की रानी की गोद में छिपा हुआ है ! अहो ! अपार विस्मय है, जो यह माता की गोद में इस तरह शोभित है। कर्पूर की वत्ती के समान जिसके लोचन हैं, श्यामल अङ्गों में जिसके कस्तूरी-चन्दन आदि का लेप लगा हुआ है, जिससे अगर-धूप के सदृश सुगन्ध आ रही है, ऐसे आनन्द-कन्द के सदृश यह मेरे चित्त में प्रविष्ट हुआ जा रहा है। आश्चर्य की वात है कि मेरा धैर्य छूटा जा रहा है, शरीर काँप रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, मेरी मति लुप्त हुई जा रही है तथा 'मैं कौन हूँ' यह भूला जा रहा हूँ। मैं आया तो हूँ इस वालक के नामकरण को, परन्तु यह तो मेरा ही नाम लोप किये दे रहा है। यदि मैं इसके चरणों को उठाकर अपने मस्तक पर धारण करूँ तो ये सब लोग मुझे उन्मत्त समझेंगे और यदि मैं यह चञ्चलता न करूँ तो मेरी उत्कण्ठा इतनी वढ़ रही है कि लगता है, वह धैर्य का वाँध तोड़ डालेगी। आज मेरा जन्म, मेरे नेत्र मेरी विद्या, तप तथा कुल, सव सफल हो गये, कृतार्थ हो गये। यदु-कुल की इस आचार्यता ने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

गर्गाचार्यजी इस प्रकार आनन्द-सिन्धु में स्नान करते-से, अमृतपान किये हुए-से, जागते हुए भी निद्रितवत्, सुनते हुए भी वधिरवत्, वोलते हुए भी मूकवत् और चपल होते हुए भी वँधे के सदृश होकर रह गये। फिर सँभलकर पास ही माताओं द्वारा लाये हुए दोनों कुमारों की ओर देखा और नामकरण के लिए स्वस्तिवाचन का समय विचारकर कार्य प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सोचा कि इस ईश्वर का भला कोई क्या नाम रख सकता है ? फिर भी लोक-दृष्टि से नाम रखना ही पड़ेगा।

गर्गजी वोले : 'यह वसुदेव का पुत्र देवकुमारों के समान उत्तम वलवान् है और देवता इसको नमस्कार करते हैं, इसलिए 'वलदेव', महापुरुष होने के कारण तथा पाप को कर्षण करनेवाला होने से 'सङ्कर्षण' तथा सवके लिए नयनाभिराम होने से 'राम' ये इसके नाम होंगे। परन्तु इसका वल वहुत प्रसिद्ध होगा, इसलिए वल और राम मिलकर 'वलराम' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध होगा।

और यह जो स्वभावतः इन्द्रनीलमणि के समान तुम्हारा कुमार है, वह वैसे ही जगत् के चारों वर्णों के मनुष्यों का प्रिय होगा, जैसे भगवत्-भक्ति चारों वर्णों को प्रिय है। यह प्रतियुग में अंश से करुणामय विग्रह धारण कर अनेक रूपों में प्रकट होता है। जब-जब धर्म-नाश होता है, तब-तब यह सत्य-

युग में शुक्ल वर्ण, त्रेता में अग्नि वर्ण, द्वापर में श्याम वर्ण और कलिकाल में पीला वर्ण धारण कर अवतीर्ण होता है। वर्णों का आदि वर्ण अर्थात् ॐकार इसका ही मूर्तिमान् रूप समझो। नीलमणि-सदृश होकर प्रकट होने के कारण इसका 'कृष्ण' नाम समझना चाहिए। 'कृष्' धातु से पापों का नाशक अथवा भक्तों के मनों को आकर्षण करनेवाला होने से भी कृष्ण नाम सिद्ध होता है। अथवा 'कृष्' सत्यवाची और 'ण' आनन्द अर्थ का वाचक है, जिससे सत्तानन्द रूप का कारण होने से यह कृष्ण नाम इसका मुख्य होगा। वसुदेवजी के यहाँ जन्म होने के कारण 'वासुदेव' भी इसका नाम हो चुका है, और यह नारायण के 'सदृश' गुणोंवाला है...।' यह कहनेवाले ही थे कि उनके हृदय में सरस्वती कहने लगीं कि नारायण के सदृश गुणोंवाला कहना उचित नहीं; क्योंकि श्रीकृष्ण परात्पर ब्रह्म हैं। अतः उन्होंने कहा कि 'ये केवल नारायण कहे जाते हैं।'

तदनन्तर गर्गजी बोले : 'हे नन्दजी ! इसकी महिमा अपार है, मेरे जैसे प्राणी की वाणी का विषय नहीं। यह तुम्हारे सौभाग्य का फल है। इसके द्वारा तुम पार हो जाओगे और तुम्हारे कठिन-से-कठिन मनोरथ भी पूर्ण होंगे। सर्वज्ञ भी इसकी गति को नहीं जान सकेंगे। परन्तु स्मरण रखना, किसीसे यह रहस्य कहना नहीं।'

ऐसा कह श्री गर्गजी ने उत्कण्ठा में भरकर श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया और गद्गद एवं पुलकित हो अपनी आत्मा में विराजमान श्रीकृष्ण को वाहर अवलोकन करते हुए बोले : 'अहो ! यह कैसा महान् प्रकाश है ! नीलमणि, श्याम मेघ और अञ्जन आदि की कान्ति तो लौकिक वस्तुएँ हैं, पर यह तो अलौकिक तेजःपुञ्ज है। इसकी उपमा नहीं दी जा सकती। यह ब्रह्म ही मणिमय कान्ति धारण कर प्रकट हुआ है।' यह कहते हुए गर्गजी ने उन्हें सादर हृदय से लगा लिया और अपनी अभिलाषा पूर्ण करके श्री नन्दजी की गोद में दे दिया। फिर कुमारों को शुभ आशीष देकर वे चले गये। व्रजराज नन्दजी भी वहुत दूर तक उनका पहुँचाकर लौट आये।

अव धीरे-धीरे श्रीकृष्ण बड़े होने लगे, अतः घुटनों के वल चलना छोड़ने लगे और स्तनपान भी कम कर दिया। चरण-कमलों से धीरे-धीरे चलकर वाल-लीलाओं का कौतुक करके परमानन्द-कन्द सवको आनन्द देने लगे।

माखन-चोरी-लीला

एक दिन वे अपने भवन में ही शून्य कोठरी में रखा हुआ माखन चुराकर

खाने लगे तथा मणिमय खम्भे में अपना प्रतिविम्ब देखकर उससे कहने लगे : 'भैया ! तुम मेरी यह चोरी माता से मत कहना। लो, माखन खा लो। तुम मेरे ही समान हो, इसलिए जितना मैं खाऊँगा, उतना ही तुम्हें भी खिलाऊँगा।' ऐसा कहकर दीवाल पर माखन लगाने लगे। यशोदा माता पहले तो छिपी हुई यह सब वार्ता सुनती रहीं, फिर आकर वोलीं : 'यह क्या है ?' श्रीकृष्ण वोले : 'नवनीत।' यशोदा ने कहा : 'भैया ! यह तो तुम्हारा ही है। तुम लोभ करके इसे चुराने के लिए क्यों घर में घुसे हो ?'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैया ! क्या तुम भी चुराने आयी हो ?'

यशोदा वोलीं : 'तुम मेरी वात नहीं मानते, मुझे क्रोध दिलाते हो।' श्रीकृष्ण कहने लगे : 'जव मेरा ही नवनीत है तो फिर लोभ कैसा ? (और चोरी भी कैसी !)'

एक दिन यशोदाजी किसी कार्य से वाहर गयी थीं। श्रीकृष्ण आकर माखन चुराने लगे। दैवयोग से यशोदाजी आ गयीं और देखकर वोलीं : 'कृष्ण ! कहाँ हो ? क्या करते हो ? अरे वावा* ! जरा इधर तो आओ !' माता की वाणी सुनकर शङ्कित हो माखन चुराना छोड़कर श्रीकृष्ण खड़े हो गये और माता से वोले : 'मैया ! यह मेरा कंगन, जिसमें आग की तरह यह मणि चमकती है, मेरे हाथ को जलाती है, इसलिए मैं माखन की भरी मटकी में हाथ डालकर इसे ठण्ढा कर रहा हूँ।' माता ने कानों को प्रिय लगनेवाली यह मनोहर वाणी सुनकर कहा : 'वेटा ! यहाँ आओ, यहाँ आओ। गोद में लेकर देखूँ, कैसे तुम्हारा हाथ जल रहा है ?' श्यामसुन्दर पास आ गये और हाथ फैला दिया। यशोदा ने हाथ का चुम्वन कर लिया और वोलीं : 'अहा ! सत्य कहते हो, अवश्य यह जलता होगा। जरूर इस कंगन को निकालकर फेंक दूँगी' और ऐसा कहकर वे दुलार करने लगीं।

दूसरे दिन भी कृष्ण ने ऐसे ही माखन चुराया। उस दिन माता ने डाँट दिया। डाँटने से स्वेद-विन्दु निकल आये, आँसू वहने लगे, 'हूँ हूँ' करते रोने लगे तथा कण्ठ गद्गद हो गया। माता ने यह देख अपने आँचल से अश्रु पोंछ दिये और कहने लगीं : 'तुम्हारा ही तो सव है' और 'वत्स ! वत्स !' कहते हुए गले से लगा लिया।

एक वार पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी से भरे उज्ज्वल मणिमय आँगन में व्रज-गोपियों के सहित यशोदाजी गोष्ठी कर रही थीं। वहाँ पर खेलते हुए कृष्णचन्द्र

* 'पितृ' शब्द मूल में है।

४

ने आकाश की ओर दृष्टि करके चन्द्रमा को देखा। उनके मन में चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। वेणी गूँथती हुई यशोदा मैया के पीछे आकर वे उनकी वेणी पकड़कर खींचने लगे और 'मुझे वह दे दे! मैं वह लूँगा!' ऐसा कह-कहकर रोने लगे। यशोदा स्नेह से कातर हो गयीं। सखियों ने यशोदाजी से कहा : 'यह क्या माँगता है? जो कुछ माँगता हो, हम ले आयें। यशोदाजी! तुम क्यों नहीं दे देतीं, क्या माँगता है?'

फिर गोपियों ने श्रीकृष्ण से भी पूछा : 'क्या दूध चाहिए? क्यों कृष्ण! क्या सुन्दर दही लाऊँ?'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'नहीं-नहीं!'

वे बोलीं : 'क्या खुरचन लाऊँ?'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'नहीं-नहीं!'

गोपी बोली : 'तो मिठाई लाऊँ?'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'नहीं-नहीं!'

गोपी ने कहा : 'तो तुम क्या माँगते हो, क्यों रोते हो? जो माँगो, वही दूँगी वत्स! दुःख मत पाओ!'

तब श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैं घर की ये सब चीजें नहीं चाहता। ये अच्छी नहीं लगतीं। मैं तो 'वह' (उँगलियों से चन्द्रमा की ओर संकेत करते हुए) लूँगा।'

माता ने कहा : 'बेटा! इसे क्या करोगे? यह माखन तो है नहीं, जो खा लोगे। यह तो आकाशरूपी तालाब में हंस तैर रहा है।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैं हंस ही तो माँगता हूँ, मैं इससे खेलूँगा।'

तब गोपियाँ हँसने लगीं और कहने लगीं : 'इससे कोई पार नहीं पा सकता।' श्रीकृष्ण ने झुँझलाकर मैया का कंधा पकड़ लिया और पैरों को पृथिवी पर पटकते हुए 'दे दो, दे दो' कह-कहकर पहले से भी अधिक रोने लगे। यशोदा ने बहकाते हुए कहा : 'बेटा! यह हंस नहीं है। यह अमृत-किरणसमूह है। आकाश में रहता है।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैं तो यही लूँगा। इसे ही दे दो, यह कुछ भी हो। मेरा जी इसके साथ खेलने को चाहता है, इसलिए इसे ले आओ और मुझे दे दो।'

वे पहले से भी अधिक रोने लगे। माता चुप कराने को गोद में लेकर खिलाने लगीं। माता ने कहा : 'बेटा! यह न माखन है, न हंस है, न अमृत-किरण-समूह है। इसको देखो तो, इसमें कलङ्क है, छिद्र है, इसके अन्दर विष भरा है। इसलिए भला आदमी न इसे खाता है, न स्पर्श करता है।'

श्रीकृष्ण कहने लगे : 'मैया ! मैया ! इसमें विष कहाँ से आ गया ?' रोना भूलकर पूछने लगे : 'क्या सचमुच इसमें विष है ? विष क्या होता है, मुझे बताओ ।'

यशोदा प्रेम से पुत्र का आलिङ्गन कर बोलीं : 'सुनो, बताती हूँ ।' यों कह मधुर-मधुर बोलीं : 'बेटा ! कोई एक क्षीरसमुद्र है ।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैया ! कैसा है ?'

यशोदाजी ने कहा : 'बेटा ! जो तुम दूध देखते हो न, उसी दूध का एक बड़ा भारी समुद्र है ।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैया ! कितनी गौओं के दूध से वह बना है ?'

यशोदाजी बोलीं : 'बेटा ! वह गौओं का दूध नहीं ।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैया ! तुम झूठ बोलती हो । बिना गौओं के दूध कैसे हो सकता है !'

यशोदाजी ने कहा : 'बेटा ! जिसने गौओं के अन्दर दूध बनाया है, उसीने वह समुद्र भी बनाया है ।'

श्रीकृष्ण ने पूछा : 'मैया ! वह कौन है ?'

यशोदाजी बोलीं : 'भगवान्' जगत् के कारण परमात्मा !'

श्रीकृष्ण ने पूछा : 'मैया ! वह कहाँ गया है ?'

यशोदाजी बोलीं : 'बेटा ! वह कहीं जाता नहीं । वह कहीं चलता-फिरता भी नहीं !'

श्रीकृष्ण ने पूछा : 'हूँ हूँ ! सच कहती हो मैया ! अच्छा बताओ कि पहले क्या कहना चाहती थीं ?'

यशोदा ने कहा : 'एक बार उस दूध के सागर को मथने के लिए देवता और दानव इकट्ठे हुए । उन्होंने मन्दर पर्वत को मथने का डंडा बनाया और वासुकि सर्प की रस्सी बनायी । एक तरफ देवता और एक तरफ असुर पकड़कर मथने लगे ।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'क्यों मैया ! जैसे गोपी यहाँ मथती हैं, क्या वैसे ही समुद्र मथने लगे ?'

यशोदाजी ने कहा : 'हूँ ! ऐसे ही मथने लगे । उस समय कालकूट नाम का जहर निकला ।'

श्रीकृष्णजी ने पूछा : 'दूध में से जहर कहाँ से निकल पड़ा ? क्या ऐसा ही जहर था, जैसा सर्प का होता है ?'

यशोदाजी ने कहा : 'बेटा ! शङ्करजी ने उस जहर को पी लिया और

जो कहीं इधर-उधर छिटक गया था, वही जहर इन सब सर्पों में है। उसी भगवान् की ऐसी शक्ति है कि दूध में गरल पैदा कर दिया।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'हूँ, मैया ! यह तुम सच कहती हो ?'

यशोदाजी ने कहा : 'बेटा ! उसी समुद्र से यह माखन भी निकला है, जो आकाश में दिखाई दे रहा है और बचा-खुचा जहर इसके बीच में है। न मानो तो देख लो, इसमें छिद्र है या नहीं।'

सब गोपियाँ भी कहने लगीं : 'देख लो ! देख लो न !'

यशोदाजी ने कहा : 'इसलिए अपने घर में उत्पन्न हुआ माखन खाओ। यह माखन अच्छा नहीं है।'

यह सुनते-सुनते श्रीकृष्ण ऊँघने लगे और सो गये। माता ने कर्पूर की धूलि से भी धवल स्वच्छ शय्या पर धीरे से उन्हें सुला दिया।

प्रातःकाल सूर्योदय के समय यशोदाजी कहने लगीं : 'बेटा ! जागो जागो, उठो, माखन-दधि खाओ।' ठोढ़ी में हाथ लगाकर कहने लगीं : 'मैं बलिहारी ! तुम्हें कल की भूख लगी थी। अब उठो, सुगन्धित जल से तुम्हारा मुखारविन्द धोकर गोद में बैठाकर सोने के कटोरे में माखन खिलाऊँगी।' ऐसा कहकर गोद में उठा लिया और मुख धोकर माखन खिलाने लगीं। लेकिन श्रीकृष्ण उसे न खाकर (यद्यपि छोड़ चुके थे) फिर मैया के स्तन पीने लगे। यशोदा क्षणमात्र पिलाकर कहने लगीं : 'बेटा ! तुम्हें तो नवनीत बहुत प्रिय लगता था, जरा देखो तो इसको !'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैं अब माखन नहीं खाऊँगा। तुमने रात में कहा था कि माखन में कुछ मिला रहता है। झूठी कथा कहकर तुमने मुझे सुला दिया था। तब से मैं भूखा हूँ।'

यशोदाजी ने पूछा : 'बेटा ! तुम अब कभी माखन तो नहीं चुराओगे ?'

श्रीकृष्ण बोले : 'माता ! कब मैंने तुम्हारा माखन चुराया था ? तुम झूठ* बोल रही हो।'

इस प्रकार बाल-लीला से बालकृष्ण ने अपार आश्चर्यजनक चरित्रों से माता का मनोरञ्जन किया।

एक बार गोशाला से भागकर कोई बछड़ा आँगन में आ गया। श्रीकृष्ण खेल रहे थे। उसको देखते ही पकड़ने को दौड़े। यशोदाजी ने देख लिया तो

---

* तुमने ही तो कहा था कि यह तुम्हारा है। फिर अपनी चीज लेने में चोरी कैसी ?

दोनों हाथों से पकड़कर मुख का चुम्बन करती हुई गोद में उठाकर भय और कौतुकवश घर में ले आयीं।

आँगन में छोटे वछड़ों की पूँछ पकड़कर श्रीकृष्ण नंगे ही दौड़ने लगते थे, जैसे अनावृत ब्रह्म का मूर्तिमान् प्रकाश भक्तों के हृदय में विचरता है। गौओं के गोवर आदि से आँगन में कीच हो जाता था। जव श्रीकृष्ण खेलने लगते तो वह कीचड़ उनके अङ्गों में ऐसे लग जाता था, जैसे कस्तूरी लगी हो। लेकिन देखने में वह छवि और भी सुन्दर लगती थी। सच है, सुन्दर में क्या सुन्दर नहीं हो जाता!

एक वार मैया ने उनके मस्तक के केशों को सुन्दर ढंग से काढ़ दिया और गोरोचन का तिलक लगा दिया, धातुओं से चित्र वना दिये और सुन्दर पीताम्वर पहना दिया। श्रीकृष्ण के मुखारविन्द पर उस समय अत्यन्त सुन्दर मुस्कान छा रही थी। नेत्रों में जो काजल लगा दिया था, वह इधर-उधर फैला दिखाई देता था। श्रीकृष्ण जव खेलने को वाहर जाने लगे तो माता ने सोचा कि यह त्रैलोक्य-मोहन रूप देखकर कोई मेरे लाल को नजर न लगा दे, इसलिए माता ने 'थू थू' कर अपने मुखचन्द्र के अमृत-कणों से पुत्र के मस्तक का पूजन किया। उस समय श्यामसुन्दर के कण्ठ में स्वर्ण-मण्डित व्याघ्रनख सुशोभित हो रहा था और कटि में मणिमय किङ्किणी वज रही थी। माला वक्षःस्थल पर सुशोभित थी। ऐसे मूर्तिमान् सुन्दररूपधारी श्याम धीरे-धीरे घर से वाहर निकले और खेलते हुए गोपियों के भवनों में जाकर लीला करने लगे।

एक वार वाल-चापल्य से कौतुक करके मटकी आदि फोड़कर गोपियों के घर से भागे। यद्यपि गोपियों को वेदना नहीं हुई, हृदय में आनन्द ही हुआ, तथापि व्रजराज के भवन में आकर वे उलाहना देने की इच्छा करने लगीं। गोपियों ने यशोदाजी से हँसते हुए प्रेमपूर्वक कौतुक में भरकर कहा: 'व्रजरानी! तुम्हारा कुमार लोक से विपरीत वातें सीख रहा है, तुम मना क्यों नहीं करतीं? हमारे भवनों में जाकर वह ऊधम मचाया करता है। जिन गौओं के वछड़े वँधे हुए दिखाई देते हैं, उन्हें वह दूध दुहने के पहले ही खोल देता है और फिर खूव हँसता है। यदि हम लोग आकर डाँटती हैं तो वह ऐसी मधुर मुस्कान से हमको देखता है कि हमारा क्रोध तत्क्षण लुप्त हो जाता है। यदि हम उसकी चोरी से झुँझलाकर माखन को अँधेरी कोठरी में सुरक्षित करके रख देती हैं तो वह अपने प्रकाशमान अङ्गों से अँधेरे में प्रकाश करके न जाने कैसे ढूँढ़ लाता है और वाहर लाकर खूव खाता है। आप तो थोड़ा-

सा ही खाता है, परन्तु उच्च स्वर से बन्दरों को बुला-बुलाकर सब उन्हें खिला देता है। जब बन्दरों का पेट भर जाता है और वे नहीं खा पाते तो बाकी सब दही-माखन लुढ़का देता है और मटकी फोड़कर भाग जाता है।

अगर हम ऊँचे छींके पर रख देती हैं और वह हाथ बढ़ाकर उसे नहीं पाता तो काठ का पीढ़ा रखकर चढ़ जाता है। यदि उस पर भी हाथ नहीं पहुँचता तो और ऊँची वस्तु रखकर उसके ऊपर खड़ा हो जाता है और हाथ फैलाकर छींके पर से माखन और दही की मटकियाँ उतार लेता है।

यदि माखन जरा भी खट्टा या खराब होता है तो उसे चखकर तत्काल पृथिवी पर लुढ़का देता है। यदि हम पकड़ लेती हैं तो सहसा हमारे हाथ मरोड़कर भाग जाता है और हमें आश्चर्य में डालकर दूर खड़ा हो गरजता है। कहता है : 'अच्छा ठहरो ! मैं तुम्हारे घर को जला दूँगा।' ऐसा कहकर हमारे छोटे-छोटे बालकों को कहीं चपत जमाता है, कहीं नोचकर भाग जाता है।

यदि कहीं चोरी करता हुआ मिल जाता है और हम लोग कहती हैं कि हमारे घर में कौन घुसा है तो वह कहता है कि 'यह हमारा घर है। तुम चोर हो, जो मुझे चोर बताती हो।'

हम अपने भवन को लीपकर सुन्दर सुगन्धित बनाती हैं, तो यह आकर धूलि, पत्ते और बाहर की अशुद्ध वस्तुओं से हमारे घर को अपवित्र कर देता है और तुम्हारे निकट आकर अत्यन्त सीधा-सादा भोला-भाला बन जाता है। यह हमारे घरों का चोर है, धृष्ट है, बक्की है, क्रोधी है, चपल है।' इस प्रकार ब्रज-वनिताओं ने बनावटी क्रोध करके नितान्त कठोर बातें कह सुनायीं।

मैया के समीप बैठे ही कृष्ण उनकी बातें झूठ सिद्ध करने के लिए झूठ-मूठ रोने लगे, आँखों से आँसू बहाने लगे और अत्यन्त मधुर कोमल तोतली वाणी से कहने लगे : 'मैया ! इन गोपियों में जरा भी सभ्यता नहीं है ! तनिक भी प्रेम नहीं है। देखो, कैसी झूठ-मूठ बातें बोल रही हैं। इनकी बातों में एक भी सत्य नहीं है। ये सभी न जाने कहाँ से इकट्ठी होकर सहसा मुझे दोष लगाने को टूट पड़ी हैं। मैया ! प्रातःकाल मुझे बालकों के साथ खेलने की इच्छा हुई। बाहर निकला तो देखा कि इनके यहाँ कोई उत्सव हो रहा है। उस दिनभर अपने सहज स्वभाव से क्षणमात्र के लिए मैं इनके यहाँ चला गया था। बस, उस दिन मुझे देखकर इतना झूठ बोलकर ये मुझे दोष लगाने चली आयीं। मैया ! तुम सच मानो, मैं उत्सव में अपने बन्धु बलरामजी को देखने गया था। क्या मेरा भैया को देखने जाना अनुचित था ?' ऐसा कहकर

रोने लगे। यशोदा ने गोद में उठा लिया और चुप कराने लगीं। व्रज-गोपियाँ हँसती हुई श्रीकृष्ण की वातें सुनकर मन ही मन प्रसन्न होने लगीं।

यशोदाजी गोपियों से कहने लगीं : 'ऐ झूठ वोलनेवाली गोपियो ! देखो, यह मेरा वालक कैसा निरपराधी और सत्यवादी है ! तुम व्यर्थ ही इसका उलाहना लेकर आयी हो।' वे उन गोपियों के साथ प्रेमपूर्वक वार्ता करती हुई थोड़ी देर खड़ी रहीं। उधर रोहिणी ने श्रीकृष्ण को तिलक लगाया और भूषण धारण कराये।

जव गोपियाँ चली गयीं, तव यशोदाजी ने नीति विचारकर वालकृष्ण को गोद में वैठाकर कहा : 'हे वत्स ! तुम लोभी मत वनो। तुम्हें अपने घर में क्या कमी है ? तुम्हारे यहाँ तो सव कुछ है। जो इच्छा हो सो खाओ, खेलो, लुटाओ। तुम चपलता क्यों करते हो ? दूसरे के भवन में जाकर ऊधम क्यों मचाते हो ? तुम राजकुमार हो, तुमको ऐसी वातें शोभा नहीं देतीं। तुम अपने आँगन में ही खेला करो, कहीं जाया मत करो।' उसी समय व्रजराज भी वहाँ आ गये और अत्यन्त मधुर वाणी से प्रभावशाली वाक्यों द्वारा अपने पुत्र को स्नेहपूर्वक हितकर वातों का वोध कराने लगे।

श्री नन्दवावा वोले : 'वेटा ! यहाँ आओ, मेरी गोद में आकर वैठो।'

श्रीकृष्ण मैया की गोद से उठकर पिता के कण्ठ में हाथ डालकर खड़े हो गये और कहने लगे : 'वावा ! यह मैया मुझे डाँटती है।'

नन्दजी ने पूछा : 'क्यों ?'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'औरों की झूठी वातें सुनकर !'

नन्दजी ने यशोदाजी से पूछा : 'क्या वात है ?'

यशोदाजी ने श्रीकृष्ण की लीलाओं से भरी उलाहने की वे सव वातें नन्दजी को वता दीं, जो गोपियों से उन्होंने सुनी थीं।

तव नन्दजी ने यशोदाजी से कहा : 'तुम्हारा यह वड़ा अपराध है कि तुम वालक को डाँटती हो। हमारा वालक वड़ा अच्छा है। इसको झूठा दोष लगानेवाली गोप-रमणियाँ झूठी हैं। जैसे किसीको दूसरे की मणि देखकर मात्सर्य हो जाता है, वैसे उनको हमसे ईर्ष्या है। इसलिए उनकी वातों पर विश्वास न किया करो।' फिर श्रीकृष्ण से वोले : 'वत्स ! तुम मेरी गोद में ही रहो, अव मैया की गोद में मत जाना।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण शीघ्रता से पिता की गोद छोड़कर माता की गोद में चले गये। नन्द और यशोदाजी हँस पड़े। उस समय श्री नन्दवावा यशोदा के सहित हर्षपूर्वक हँसते हुए कुछ वातें करने लगे। फिर वोले : 'कृष्ण !

वलराम भी तो वाहर खेलने जाते हैं, तुम उनके साथ ही खेलने क्यों नहीं जाते ? दोनों भैया साथ-साथ खेला करो, अकेले मत जाओ। देखो, विचारने की बात है, हम जब तक तुम्हारे खेलने के सखा, सहचर या चतुर सेवक निश्चय न कर लें, तव तक वाहर जाना ठीक नहीं।'

ऐसा विचार कर मन्त्रियों से कहा। मन्त्रियों ने श्रीकृष्ण के खेलने के लिए सखा-सेवक नियुक्त कर दिये।

वाल-सहचर तो पहले ही घर में मिल चुके थे। अव वे वलरामजी के और वालसखाओं के सहित व्रज की वीथियों में जाकर धूलि में खेलने लगे और हाथी के वच्चे की सूँड़ के सदृश चञ्चल भुजाओं से धूलि उछाल-उछालकर एक-दूसरे पर डालने लगे। वाल-चापल से व्रज-वालिकाएँ भी निःसंकोच होकर उनके साथ खेलने लगीं। खेल के द्वारा वे सव एक-दूसरे को सुख देने लगे। कभी लड़ते, कभी झगड़ते, कभी मारते, कभी पीटते, कभी हँसते, कभी हँसाते, कभी क्रोधित होते, कभी नहीं भी होते।

ग्वाल-वालों के संग खेलते हुए मिट्टी-पत्थर आदि से मकान, किले, ग्राम आदि वनाते और वनाकर वड़े प्रसन्न होते। इसी प्रकार जव दूसरे सखा वनाते तो श्यामसुन्दर उनका वनाया मकान लात मारकर तोड़ देते। वह सखा वदले में उनका वनाया हुआ मकान तोड़ देता। श्यामसुन्दर कहते : 'तूने मेरा मकान क्यों विगाड़ा ?' वह कहता : 'तूने मेरा मकान क्यों विगाड़ा ?' तव झगड़ा निपटाने को एक-दूसरे का मकान फिर वनाने लगते। उस समय आकाश में देवता लोग कौतूहलवश मन में विचार करते : अहो ! जिनकी भृकुटि के विलास से न जाने कितने ब्रह्माण्ड प्रकट होते और मिटते रहते हैं, वे ही ये भगवान् मिट्टी के मकान बनाने में कितना परिश्रम कर रहे हैं !

इस प्रकार खेलते-खेलते सन्ध्या हो जाती और श्यामसुन्दर घर जाना सर्वथा भूल जाते। वालकों के साथ गलियों में खेलते-खेलते वालसूर्य के सदृश जव लौटते, तव व्रज की बूढ़ी गोपियाँ माता के समान अत्यन्त प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण को देखकर वात्सल्य में भर जातीं और कहतीं : 'आओ, लाल ! आओ, हमारे सुन्दर आँगन में आओ। सखाओं के सहित आकर हमारे यहाँ खेलो और खाओ।' इस प्रकार हँसते हुए गोपियों के कहने पर श्रीकृष्ण तुतलाकर मधुर स्वर से वोलते : 'मैं नहीं आऊँगा, मुझे समय नहीं है, मैं खेलने जा रहा हूँ।'

श्यामसुन्दर के ऐसा कहने पर उन गोपियों का वात्सल्य-प्रेम और भी उमड़ आता और वे उनकी शोभा पर मोहित हो दौड़कर पास आ जातीं तथा उनका कोमल करकमल पकड़कर वरवस अपने घर में बैठा लेतीं।

अपना सौभाग्य मानकर उनके अंगों की धूलि आदि झाड़तीं और हाथ धुलाकर स्नेह से भरा हुआ माखन-मिष्टान्न लाकर खिलाने लगतीं। उनका माखन आदि प्रेमपूर्वक खाकर मुस्कराते हुए वे अन्य सखाओं के भवनों में भी जाते।

विश्वरूप-दर्शन लीला

इस प्रकार व्रज-धूलि में खेलते हुए श्रीकृष्ण को व्रज-रज से बड़ा प्रेम हो गया। एक दिन व्रज-धूलि की महिमा बढ़ाने के लिए और अपने उदर में स्थित ब्रह्माण्डों को पवित्र करने के लिए उन्होंने जरा-सी व्रज-रज खा ली। बलरामजी ने देख लिया कि श्रीकृष्ण ने मिट्टी खायी है।

सखाओं-सहित बलरामजी ने झट आकर झुँझलाते हुए कहा : 'मैया ! कन्हैया ने मिट्टी खायी है। हमने मना किया, किन्तु हमारी बात को न मानकर भी खाता रहा।' यह सुनकर यशोदाजी क्रोधित हो गयीं और लकुटि लेकर भृकुटी चढ़ाकर टेढ़े देखती हुई बोलीं : 'कहाँ है कन्हैया, जिसने मिट्टी खायी है ?' और श्रीकृष्ण के पास आकर बोलीं : 'तुम बड़े अज्ञानी हो ! मैं मिठाई देती हूँ सो तुम खाते नहीं। फिर यह मिट्टी क्यों खाते हो, बोलो ? इसमें क्या स्वाद है ? दूसरों के घर में जाकर तुम अपराध करते थे, पर मैंने तुम्हें दण्ड न दिया। अब इस समय तुम अपना दोष कैसे छिपाओगे ? देखो, तुम्हारा बड़ा भैया साक्षी है। ये सब सखा साक्षी हैं।'

तब श्रीकृष्ण माता के क्रोध से डरकर आँखों से झूठे आँसू बहाने लगे और बोले : 'मैया ! ये सब झूठ बोलते हैं। मैंने मिट्टी नहीं खायी है। यदि विश्वास न हो तो मेरा मुख देख लो।'

यशोदाजी ने कहा : 'अच्छा, खोलो अपना मुख !' श्रीकृष्ण ने हँसते हुए अपना मुख खोल दिया। उस खुले हुए मुख में यशोदाजी ने समुद्र, द्वीप, पृथिवी, नदी, वन, पर्वत, सिंह, हाथी, वृक्ष, मनुष्य, लोकालोक, मेरु आदि पर्वत, नागलोक, सम्पूर्ण तारामण्डल, ग्रह, नक्षत्र, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, चारण, आकाश-मण्डल, स्वर्गलोक, महर्लोक, अन्य उच्च लोक और अखिल ब्रह्माण्ड के साथ अपना व्रज भी देखा।

देखकर वे विचारने लगीं कि क्या यह मेरा भ्रम है, या स्वप्न, या देव-माया, या कोई इन्द्रजाल है अथवा किसी भ्रामक शक्ति ने ही मुझे भ्रमित कर दिया है ? जब कुछ भी निश्चय न कर सकीं तो तीव्र मोह को प्राप्त हो गयीं। तदनन्तर विचार किया कि यह और कुछ नहीं है, केवल मेरे पुत्र का वैभव है।

गर्गजी ने जो कहा था कि यह पुत्र महाप्रतापी नारायण के समान होगा, वही बात मालूम होती है। लेकिन फिर विचारने लगीं कि ऐसा नहीं हो सकता, यह तो मेरा पुत्र है।

तभी श्रीकृष्ण ने मुख बन्द कर अपनी माया समेट ली। माता यशोदा क्रोध भूल आश्चर्य में डूबकर पुनः वात्सल्य-मोह में पड़ गयीं और गोद में बैठाकर दुलार करने लगीं। वे सोचने लगीं कि आज मैं क्रोधित हो गयी थी, इसीलिए न जाने क्या अलाय-बलाय दीखने लगी थी, और पुनः श्रीकृष्ण का दुलार करने लगीं।

छठा स्तवक

यमलार्जुन-भंग-लीला

एक वार वाललीला में कुशल वाल-भगवान् श्रीकृष्ण आँगन में खेल रहे थे। यशोदाजी ने दासियों को अन्य कार्यों के लिए भेज दिया और अपने प्रिय श्रीकृष्ण को खिलाने के लिए ताजा माखन निकालने को स्वयं ही मथानी की डोरी हाथ में लेकर मथने लगीं। मथते समय उनके सुनहले अंगों पर अद्भुत शोभा छा गयी। नीलमणि-जटित कङ्कण झङ्कार करने लगा, कमल-दलों पर गुञ्जार करते भ्रमरों-सी अंगरूपी हेमलता पर श्रमजल-कण झलकने लगे, मुख-मण्डल पर अलकों की लटें उड़ रही थीं, भाल की आभा छिटक रही थी, पीन पयोधरों पर हार लहराता रहा, कर्णफूल विमल युगल कानों में सुधा-धारा-सा लावण्य छलका रहा था, मणि-किरणें छायी हुई थीं, माधुर्य उमड़ रहा था, सुन्दर श्रोणी पर रमणीय किङ्किणी झङ्कार कर रही थी और कवरी शिथिल हो गयी थी। उसमें से फूल ऐसे विखर रहे थे, मानो जैसे अन्धकार-मण्डल से तारे झड़ रहे हों।

भाण्डस्फोट-लीला

दधि की मटकी से घनघोर शब्द हो रहा था। दधि-कण उछल-उछलकर सुनहली साड़ी पर पड़ रहे थे। अपने पुत्र के लिए माखन निकालने की इच्छा से वात्सल्य रस हृदय में उछल रहा था। तभी श्रीकृष्ण ने आकर मथानी पकड़ ली और कहा: 'मैया, मैया! मथना छोड़ मुझे दूध पिला। देर मत कर, भूख लगी है।' मैया मथना छोड़ अत्यन्त कोमल, सुन्दर घुँघराले अलकों-वाले श्रीकृष्ण को गोद में विठा लिया और दूध पिलाने लगीं। उधर भवन में आग पर चढ़ा दूध उफनने लगा। देखकर माता यशोदा ने शीघ्रता से श्रीकृष्ण को गोद से उतार दिया और दौड़कर आग बुझाने चली गयीं।

श्रीकृष्ण मन में बड़े क्रुद्ध हुए। खड़े हो उन्होंने एक पत्थर का टुकड़ा उठा लिया और क्रोध से उस मटके पर जोर से मारा, जिसमें दही मथा जा रहा था। तत्काल मटका फूट गया और सारा दधि आँगन में बिखर गया। सुर-मुनि-वन्दित भगवान् उसमें से अच्छा-अच्छा माखन हाथ में लेकर खड़े हो गये और जननी के भय से पीछे की खिड़की से निकलकर ऊखल पर जा बैठे।

श्रीकृष्ण ने ऐसी सफाई से यह सारा काम किया, मानो रङ्गमञ्च पर नाटक खेला जाता हो। ऊखल पर बैठकर बड़ी मजे से माखन खाते हुए बन्दरों को बुलाने लगे : 'आओ, आओ बन्दरो ! तुम्हें माखन खिलाऊँ।'

उधर यशोदाजी ने दुग्ध-पात्र अग्नि पर से उतारा और सोचने लगीं कि मैं सुन्दर सौभाग्य-सरिस लाल को गोद से उतार आयी हूँ; चलूँ, जल्दी से उसे गोद में लेकर प्रसन्न करूँ। वे शीघ्रतापूर्वक उठकर वहाँ आयीं, जहाँ श्रीकृष्ण को छोड़ गयी थीं। पर श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे। मटका फूट गया था तथा सारा आँगन दधि से भर गया था। मटके के सैकड़ों टुकड़े इधर-उधर पड़े देख वे आश्चर्य करने लगीं कि अकस्मात् किसने यह उपद्रव मचाया ? वे निश्चय नहीं कर सकीं। नासिका के अग्रभाग पर बायें हाथ की तर्जनी रख क्षणमात्र देखती वे विस्मय करने लगीं। दयालु हृदय होते हुए भी उन्हें कुछ-कुछ झूठा क्रोध आ गया और वे अपने पुत्र को खोजने लगीं।

यशोदाजी इधर-उधर देखकर बाहर आयीं कि सहसा श्रीकृष्ण पर उनकी दृष्टि पड़ गयी। मोहन देवता बैठे माखन खा रहे थे। माता को देखते ही शङ्कित हो वे भाग खड़े हुए। उन्हें भागते देखकर जननी ने कहा : 'रे धूर्त ! मत भाग, मत भाग !' दौड़ने में निपुण श्रीकृष्ण गर्व से ग्रीवा टेढ़ी कर भय से भागे ही चले जा रहे थे। माता भी झुँझलाकर यह कहती हुई कि 'नहीं आयेगा ? यहाँ नहीं आयेगा ?' उनके पीछे दौड़ीं। श्रीकृष्ण आगे-आगे दौड़ते और पीछे घूमकर चकित हो देखते भी जाते। थोड़ी दूर तक शीघ्रता से दौड़ते और फिर पीछे दृष्टि डालकर देख लेते।

अति क्षुब्ध होने के कारण जब मैया दौड़ न पायीं तो कातर हो खड़ी हो गयीं और उल्टी-सीधी सुनाने लगीं : 'धूर्त ! क्यों इस तरह दौड़ रहा है ? कहाँ तक बचेगा ? दौड़ मत, खड़ा हो जा।'

श्रीकृष्ण दूर ही खड़े होकर बोले : 'मैया ! क्या मुझे मारेगी ? हाथ में छड़ी क्यों ले रखी है ? यदि तू मारे नहीं और छड़ी छोड़ दे तो मैं भी न भागूँ।'

मैया कहने लगीं : 'अगर मार का इतना ही डर था, तो मटका क्यों फोड़ डाला ?'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैया ! अब ऐसा न करूँगा। हाथ की छड़ी फेंक दे। मुझे छड़ी से बड़ा डर लगता है।' सुनकर यशोदाजी मन ही मन मुस्कराने लगीं। फिर भी ऊपर से क्रोध करके ज्योंही पकड़ने को दौड़ीं कि पुनः श्रीकृष्ण भागे। दौड़ते-दौड़ते जब मैया थक गयीं तो श्रीकृष्ण खड़े हो गये और फिर

डरते हुए-से वोले : 'मैया ! यह भयंकर लकुटी हाथ से फेंक दे और मुझे मारने का विचार छोड़ दे, तव सचमुच तेरे पास आ जाऊँगा ।' पुत्र की कातर वाणी सुन मैया खड़ी हो गयी और उसने छड़ी फेंक दी ।

यह कौतुक देख देवताओं को वड़ा आश्चर्य हुआ । वे परस्पर कहने लगे : 'देखो तो, जो ब्रह्मा को भी परार्ध के अवसान में व्याकुलता उत्पन्न कर देता है, वही परमात्मा आज मानवी माता इस छड़ी से भयभीत हो रहा है !'

वन्धन-लीला

यशोदाजी के मुख पर श्रम-जल के कण छा रहे थे, केश खुल गये थे, दौड़ने से वे थक गयीं । जोर-जोर से श्वास लेने लगीं । श्रीकृष्ण को प्रेम से पास वुलाकर जव उन्होंने हाथ पकड़ लिया तो श्रीकृष्ण ने कहा : 'मैया ! मुझे मारना मत ।' मधुर-मधुर वोलते हुए श्रीकृष्ण के नेत्रकमल से मारे भय के अश्रु वहने लगे । श्रीकृष्ण को रोते देख माता सोचने लगीं कि मैं इसे मारूँ नहीं, वाँध दूँ । अगर वाँधती नहीं तो कहीं भयभीत हो यह वन में न भाग जाय, इसलिए वाँधना ही उचित है । यह विचार कर वे उन्हें पकड़ घर में ले आयीं ।

यशोदाजी उसी ऊखल के पास आकर खड़ी हो गयीं और दासियों से कहने लगीं : 'हे कुरङ्गवती ! हे लवङ्गवती ! शीघ्र डोरियाँ ले आओ, रेशम और कपड़े की कोमल डोरी शीघ्र लाओ ।' दासियाँ रस्सियाँ ले आयीं । तव जगदेकवन्धु को वाँधने की इच्छा करनेवाली यशोदाजी को देख वात्सल्य-रस-उपासक गोपियाँ वाललीला देखने दौड़ आयीं ।

उस समय वड़ी विचित्र घटना हुई । यशोदाजी उन रस्सियों को लेकर उनकी कटि में लपेटने लगीं । किन्तु यह क्या ? श्रीकृष्ण की उस छोटी-सी कटि में वड़ी-से-वड़ी रस्सियाँ भी दो अंगुल छोटी पड़ जातीं । और रस्सियाँ मँगवायी गयीं तो वे भी छोटी पड़ने लगीं । आश्चर्य की वात तो यह कि न तो कटि वढ़ती, न रस्सी ही छोटी होती । फिर भी वे छोटी क्यों पड़ने लगीं ? फिर सव रस्सियाँ दो ही अंगुल छोटी पड़तीं ! अपने प्रभु की प्रभुता दिखाने के लिए ऐश्वर्य-शक्ति ने यह स्वाभाविक चमत्कार दिखलाया । वह रस्सी मानो ह्रास और वृद्धि से रहित ब्रह्म ही हो गयी ।

क्रोधित यशोदाजी ने सव गोपियों की ओर देखा तो लज्जित हो गयीं । वोलीं : 'यह क्या आश्चर्य है ! देखो, मैंने इसकी कमर में जो सोने की छोटी-सी जंजीर पहनायी, वह तो वँधी ही है, पर उसी कटि में ये अनेक रस्सियाँ जोड़-जोड़कर वाँधना चाहती हूँ तो दो-दो अंगुल छोटी ही पड़ जाती हैं । इसमें कोई रहस्य

अवश्य है।' व्रजगोपियों ने भी कहा : 'हे यशोदे ! अवश्य कोई रहस्य है। इसलिए तुम बाँधना छोड़ दो।'

यशोदाजी ने कहा : 'इसे बाँधने के लिए औरों के घर से डोरियाँ मँगाओ।' दासियों ने कहा : 'हमारे यहाँ की सब डोरियाँ खत्म हो गयीं।'

कुछ व्रज-गोपियाँ दूर-दूर से, अपने-अपने घरों से रस्सियाँ ले-लेकर दौड़ी आने लगीं। वे सभी क्रोध तथा भय से नहीं, वरन् कौतूहलवश लोकातीत चरित्र देखने आ रही थीं। जब किसी प्रकार श्रीकृष्ण न बाँधे जा सके और गोपियों की भीड़ लग गयी, तब बालनाट्य-लीला पूरी करने के लिए नयनकमलों में अश्रुकण भरे हुए मृदु मधुरतर श्रीकृष्ण अत्यन्त गद्गद स्वर से रोने लगे। कपट-क्रोध के कारण सम्पूर्ण चतुराई से रस्सी ले-लेकर बाँधने की इच्छा करनेवाली अन्य गोपियों ने भी कौतुकवश हँसते हुए बाँधकर देखा, रस्सी फिर भी दो अंगुल कम होने लगी। यशोदाजी थक गयीं। श्रम-जल-कण छलक आये, परम आकुल उनकी वेणी से फूल गिरने लगे। सोचने लगीं : यह हमारा क्रोध तो श्रम-मात्र ही फल देनेवाला हुआ। वे पुनः बन्धन का उपाय सोचने लगीं। जब गोपियों ने देखा कि यशोदाजी हताश हो गयीं, तब सभी अपने-अपने घर जाकर काम-काज में लग गयीं।

यद्यपि एक भी रस्सी नहीं बची, सारा परिश्रम विफल होता देखा, फिर भी यशोदा क्रोधित होकर अद्भुत शिशु को बाँधने के लिए युक्तियाँ करती ही रहीं।

'चित्' को भला कौन बाँध सकता है ? 'आनन्द' को कौन बाँध सकता है ? 'ज्ञान' को कौन बाँध सकता है ? प्रकाश को कौन बांध सकता है ? कोई नहीं। चिदानन्द-ज्ञान-प्रकाश के प्रकट करनेवाले विग्रह को प्राकृतिक वस्तुओं से कोई कैसे बाँध सकता है ? जिसका न अन्तर है न बाहर, जो अन्तर-बाहर में आनन्दरूप है, जो आनन्दत्वेन प्रकाशमय और पूर्ण है, अपरिच्छेद्य है, न जिसका पूर्व है न पर, उसे माता कैसे बाँध सकती है ? हाँ, वह बँधना चाहे तो अपनी कृपा से ही बँध सकता है।

आखिर बार-बार बाँधने का उद्योग कर भी सर्वथा हताश होने से अत्यन्त घबरायी हुई माता को देख श्रीकृष्ण को दया आयी। अबकी बार जब माता ने बाँधने का उद्योग किया, तो भक्त की भावना पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्ण ने करुणा कर आप ही अपने को बँधवा लिया। फिर यशोदाजी ने श्रीकृष्ण के साथ खेलनेवाले बालकों को बुलाया और कहा : 'तुम लोग यहीं बैठो।

देखते रहो, अगर यह अपने को छुड़ा भागे तो मुझे बुला लेना।' माता श्रीकृष्ण को वहीं बँधा छोड़ घर के भीतर चली गयीं।

अर्जुनमोक्ष-लीला

माता के जाते ही श्रीकृष्ण ने रोना बन्द कर दिया। उनका मुरझाया हुआ मुखकमल खिल उठा। वे विचारने लगे कि माता के इस बन्धन से क्यों न लाभ उठाया जाय ? अपने परम प्रिय-भक्त नारद के शाप से कुवेर के पुत्र नलकूवर और मणिग्रीव वृक्ष की योनि में पड़े हैं, मुझे उन पर कृपा करनी ही चाहिए। यह सोच श्रीकृष्ण धीरे-धीरे ऊखल को खींचते हुए घुटनों और हाथों के बल उस ओर चलने लगे, जिधर अर्जुन के दो वृक्ष खड़े थे। सखा भी वैसे ही कौतुकवश उनके साथ चले। धीरे-धीरे श्रीकृष्ण वेद की शाखाओं जैसी वड़ी-वड़ी शाखाओंवाले, महाराजा की कीर्ति के सदृश महान् विस्तारवाले और पहाड़ के सदृश ऊँचे, अत्यन्त मोटे दोनों अर्जुन-वृक्षों के समीप आ गये। उन वृक्षों को देख वे उनके वीच में उलूखल को आड़ा फँसाकर घुस गये। आश्चर्यमय चरित्र करनेवाले श्रीकृष्ण ने विना प्रयत्न के ही केवल उलूखल से खींचकर उन वृक्षों को जड़ से उखाड़ गिरा दिया। वृक्षों के गिरने से महान् प्रलय-घन-घटा-सदृश घोर शब्द हुआ, जिसे सुनकर सबके मन उद्विग्न हो उठे, पर श्रीकृष्ण तनिक भी चकित नहीं हुए। प्रसन्नवदन हो उन्होंने देखा कि मूर्तिमान् परम तेजस्वी दिव्य आकारवाले दो पुरुष उन वृक्षों से प्रकट हुए। शाप से निर्मुक्त वे दिव्य पुरुष माता के वात्सल्य से बँधे श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे :

'जय जय सच्चिदानन्दघन ! आपकी जय हो ! आपने लीलावश पृथिवी पर अवतार धारण किया है। आप सर्वदा दानवों का दमन करने के लिए अपने चातुर्य और भुजाओं के बल को तत्पर रखते हैं। आप सर्वदा निर्द्वन्द्व होकर अत्यन्त उत्कर्ष से दीन जनों के प्रति वात्सल्य प्रकट करते रहते हैं। लोक-सदृश ललित लीला-विलास करते हुए, व्रज में अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण मङ्गलमय अवतार धारण कर, चन्द्रमा को भी लज्जित करनेवाले मुखमण्डल और विम्व फल-सदृश रुचिर-मधुर अधरोंवाले आप ही एकमात्र धरणीतल के भूषण हैं। आप अकारण ही कृपारूपी कृपाण से अनादि अविद्या को काटकर सज्जनों को अतिशय आनन्द देनेवाले हैं। मतिरूपी देवी के मज्जन के लिए आप लीला के समुद्र हैं और आपके चरणकमल परमहंसों द्वारा पूजित हैं। ब्रह्माजी ने आपके गुणगणों को अपने कण्ठ का भूषण बना रखा है। आपका प्रभाव अगणित है, लोकोत्तर है। आपकी प्रकाश-किरणें चमक रही हैं। आपका विहार अत्यन्त ललित है, आपके हृदय पर हार एवं वनमाला विराजमान हैं और आपके पद-

युगल गुलाव से भी सुन्दर एवं कोमल हैं। चारों युगों में आप अंशावतार धारण करते हैं। जैसे तारों को नहीं गिना जा सकता, वैसे ही आपके नामरूप निर्मल यश को कोई नहीं गिन सकता।

'हे अखिल-लोकनाथ! आप अभिमतों के दाता तथा अभिमानियों के सिर पर रहनेवाले हैं। नाथ! आपको नमस्कार है! समस्त जगत् में आपके समान दूसरा कौन है! हे परमपुरुष! आपकी माया से कौन मोहित नहीं होता! दुर्घट घटनाएँ करने में आप चतुर हैं। आपकी मनोरम मूर्ति पाने के लिए किसका मन आतुर नहीं होगा! आप मूर्तिमान् आनन्द हैं। नन्दनन्दन हैं। आप नन्दन वन में विहार करनेवालों के मुकुट की मरकतमणि हैं। आप उत्तम-श्लोक की कौन स्तुति कर सकता है?

'आप मूर्तामूर्त आनन्दरूप होने के कारण व्यक्त-अव्यक्त दोनों आकारों से आनन्द देनेवाले हैं। आप भजन करनेवाले अपने भक्तों को चित्तमकरन्दरूपी मन्दाकिनी वहानेवाली अपने चरण-कमलों की वह भक्ति प्रदान करते हैं, जो आत्मज्ञानियों को भी नहीं प्रदान करते। हे आर्तवन्धु! हमारी और कोई इच्छा नहीं, हम केवल आपके पद-पङ्कजों के पराग का सेवन करनेवाले प्रातः-स्मरणीय महाभागवत भक्तों का संग चाहते हैं।

'देखिये! नारद मुनिजी का शाप भी हमारे लिए आपकी कृपा प्राप्त करनेवाला हुआ। जब भक्तों का शाप ऐसा सुखदायक है तो उनकी कृपा का भला क्या कहना! इसलिए कौन ऐसा है, जो आपके भक्तों के संग का आदर न करेगा? प्रभो! यह वर दें कि हमारी वाणी आपकी स्तुति करती रहे, हमारा मन आपके चरणकमलों का ध्यान करता रहे और हमारे श्रवण आपकी कथा सुनते रहें। हृषीकेश! हम अधिक क्या कहें, हमारा सब हृषीक-वर्ग (इन्द्रियाँ) आपकी सेवा के रस का रसिक हो जाय। देवर्षि के शाप के प्रसाद से आपके चरणकमलों द्वारा हमारा उद्धार हुआ।

'आप सहस्रों ब्रह्माण्डों को लीला से उदर में धारण करते हैं। आज ऐसे अद्भुत बाल-चरित्र हमारी आँखों के सम्मुख हुए हैं। आपकी मैया का सौभाग्य कौन वर्णन कर सकता है, जिनके द्वारा आप बाँधे गये—जिन आपके लेशमात्र के सौवें भाग के अंश से ब्रह्मा, शङ्कर, महर्षि आदि प्रकट होते हैं। हे भगवन्! जो 'प्रीति' आप न ज्ञानियों को देते हैं, न सकल वेदों के विद्वानों को, न योगनिष्ठों और न कर्मनिष्ठों को, हे नन्दलाल! वही प्रीति, वही भक्ति उनके लिए अत्यन्त सुलभ है, जिनका प्रेम आपकी बाललीला में है।'

इस प्रकार स्तुति कर दोनों दिव्य पुरुष उत्तर दिशा की ओर मुड़कर अन्तर्धान हो गये।

इधर व्रज में उन वृक्षों के गिरने से इतना भयङ्कर शब्द हुआ कि उससे पृथिवी-आकाश भर गये। वह शब्द सुन बाल-वृद्ध, नर-नारी और यशोदा आदि सभी शङ्कित हो 'यह क्या हुआ ! यह क्या हुआ !' कहकर दौड़ पड़े।

आकर देखा तो दो विशाल वृक्ष श्रीकृष्ण के समीप ऐसे पड़े थे, मानो पातालरूपी बाँबी से निकलकर दो अजगर भगवान् को प्रणाम कर रहे हों, अथवा मधु-कैटभ दैत्य भगवान् से युद्ध में पराजित होकर पड़े हों।

अहो ! यह क्या हुआ ? बिना वायु के, बिना किसी कारण के अकस्मात् ये दोनों बड़े-बड़े वृक्ष पृथिवी पर कैसे गिर पड़े ? यह तो बड़ा भय उत्पन्न करनेवाली बात घटित हुई है। अहा ! श्यामसुन्दर कृष्ण इनके नीचे दबने से बच गये। ये बड़े भाग्यशाली हैं। 'बहुत दिनों के पुराने होने के कारण इनकी जड़ तो जर्जर नहीं हो गयी थी ?'—कोई पूछने लगा। 'पर दोनों एक साथ कैसे गिरे ?'—किसीने शङ्का की। 'शायद एक साथ रहने और समान दुःख अनुभव करने के कारण ही साथ-साथ गिरे हों।' इस तरह सभी परस्पर विचार करने लगे। व्रज की गोपियाँ, गोप और श्री नन्दजी सब आकर श्रीकृष्ण को शीघ्रता से उठाने चले।

पिता को देखकर श्रीकृष्ण हर्ष से फूल गये। नन्दजी ने बन्धन खोलकर उन्हें गोद में उठा लिया और यशोदाजी से कहने लगे : 'तुमने श्रीकृष्ण को क्यों बाँधा ? यह तो महान् अनर्थ किया।' वे गर्गजी की वाणी को स्मरण कर मन ही मन पुत्र की महिमा विचारने लगे। उस समय जो छोटे-छोटे बालक श्रीकृष्ण के साथ खेल रहे थे, वे बोले : 'श्रीकृष्ण ने ही ऊखल को टेढ़ा घसीटते हुए इन वृक्षों में अड़ा इन्हें जड़ से उखाड़ दिया। यही नहीं, इन वृक्षों की जड़ से बड़े-बड़े दो पुरुष भी निकले थे।'

बालकों की बात का किसीने विश्वास नहीं किया। भगवान् की स्तुति और मङ्गल-कृत्य कर बाजे बजाते, न्योछावर करते व्रजराज ने श्रीकृष्ण के साथ अपने राज-मन्दिर में प्रवेश किया।

एक बार श्रीकृष्णचन्द्र धूलि में खेलने की लालसा से अपने समान छोटे-छोटे बालकों को साथ लेकर चल पड़े। खेल में उनके अङ्गों में लगी धूलि ऐसी दीखती, मानो नीलकमल में पराग लगा हो। सुन्दर मनोहर सौन्दर्य-मूर्ति धूलि-धूसरित हो गयी। इधर-उधर भ्रमण करते खेल-कौतुक के आवेश में निमग्न होने के कारण बहुत समय बीत गया। जिस समय वे बलरामजी के

साथ एक सुन्दर खेल खेल रहे थे, यशोदाजी ने रोहिणीजी को श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए भेजा।

राहिणी देवी ने प्रसन्न हो शीघ्र जाकर दूर से ही उच्च स्वर से कहा : 'हे तात ! सवेरे से खेलने निकले हो। क्या खेल में इतने मग्न हो गये हो कि घर जाना भी भूल गये। देखो ! आकाश में सूर्यदेव तप रहे हैं। सिर में धूप लगती होगी। माखन से भी कोमल तुम्हारे अङ्ग हैं, फिर कैसे इस घोर ताप को सहन करते हो ? छोड़ो खेल और सखाओं के साथ यहाँ आओ, स्नान करो, बलरामजी के सहित भोजन करो और मैया को आनन्द दो।'

बलरामजी और श्रीकृष्ण खेल में एकदम मग्न थे। इस कारण उन्होंने एक नहीं सुनी और खेल में ही निमग्न रहे। तब रोहिणीजी निराश होकर यशोदाजी से आकर कहने लगीं : 'वे नहीं आते।' तब व्रजेश्वरी शीघ्र दौड़ आयीं और बोलीं : 'वत्स राम ! शीघ्र मेरी बात सुनो, हित के लिए कहती हूँ ! व्रजराज तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने कुछ नहीं खाया है।' फिर भी जब उन्होंने नहीं सुना तो ऊँचे स्वर से बुलाया : 'वत्स कृष्ण ! आज तुम्हारा जन्मनक्षत्र है। मङ्गलपूजा होगी। विप्रवृन्द मङ्गल-कार्य करके तुम्हें आशीर्वाद देंगे। तुम भी चलो, तुम्हारे साथ तुम्हारे पिताजी स्वर्ण, वस्त्र आदि दान करके भोजन करेंगे। चलो, चलो !' गजगामिनी यशोदाजी शीघ्रता से निकट आयीं और दौड़कर उन्होंने श्रीकृष्ण का करकमल पकड़ लिया। फिर वे बलदेवजी को आगे कर सब सखाओं को भी समझा-बुझा संग ले चलीं तथा जल्दी-जल्दी पग बढ़ाती हुई घर पहुँचीं।

श्रीकृष्ण और श्री बलराम के अङ्गों की धूलि आदि झाड़कर उन्होंने तेल-उबटन लगाया, सुन्दर वस्त्र धारण कराये, चन्दन आदि के लेप लगाये और भूषण, माला आदि धारण कराकर उन्हें व्रजराज के सम्मुख ले आयीं। उनके समीप आने पर नन्दजी बहुत प्रफुल्लित हुए। उनका मुख देख मुस्कराते हुए पिता ने उन्हें गोद में बैठा लिया।

पश्चात् मैया यशोदा ने पतिदेव नन्दजी को, दोनों पुत्रों को तथा उनके सखाओं को भी साथ बैठाकर भरपेट सुस्वादु भोजन कराया। दासों को भी सब कार्यों से छुड़वाकर बुलाया और भलीभाँति भोजन कराया। फिर नन्दजी श्रीकृष्ण के सखाओं से कहने लगे : 'बालको ! इतनी देर तक मत खेला करो। यदि यह चञ्चल अज्ञानी मेरा बालक खेलना न छोड़े, तो भी तुम लोग खेल छोड़कर मेरे या अपने घर में चले आया करो।' यह सुनकर सब बालक अपने-अपने घरों को चले गये।

फलक्रय-लीला

दूसरे दिन श्रीकृष्णजी ने एक विचित्र लीला की। कोई फल बेचनेवाली नन्दजी के द्वार पर आयी। उसकी बोली सुनकर गुलाब के सदृश कोमल चरणकमल नन्दनन्दन वक्षःस्थल पर हार झुलाते, काञ्चन-किङ्किणी झनकारते घर से अञ्जलिभर अनाज ले बाहर आये। मूर्तिमान् आनन्द, दिव्य छविवाले श्रीकृष्ण को देख फलवाली अपने को भूल गयी। फिर सावधान होकर उस पुण्यवती ने श्रीकृष्ण की अञ्जलि फलों से भर दी। जब श्रीकृष्ण ने उसके पात्र में धान छोड़ा, तो एक-एक दाना रत्न हो गया और पात्र रत्नों से भर गया।

वृन्दावन-प्रयाण

एक बार उन्हीं अन्तर्यामी की प्रेरणा से उपनन्द, सनन्द आदि मुख्य-मुख्य गोपवृन्द एकत्र हुए। उनके सम्मुख व्रजराज सादर बैठे। सबने कहा : 'हे व्रजेश्वर! आपकी सम्पदा अपार है। किसी मनुष्य का सौभाग्य आपके सदृश नहीं, क्योंकि आपको यह ऐसा कुमार मिला है, जो देवताओं को भी दुर्लभ है। यह अपने दर्शन से सबके दुःखों का नाश कर देता है। देखिये, इसके जनमते ही सूतिका-गृह से ही अरिष्ट प्रारम्भ हुए और अब तक सभी नष्ट होते चले जा रहे हैं। पहले तो प्रलय के समान निशाचरी पूतना आयी, फिर शकट गिर पड़ा, उन्हींकी भाँति तृणावर्त भी आया। इन सबने कितना अहित करना चाहा, किन्तु महाभयङ्कर दुःख देनेवाले ये राक्षस किस तरह एक-एक कर मरते गये! अभी-अभी देखें, ये दोनों वृक्ष गिर पड़े। इस सबका क्या कारण है? इसके जन्म-लग्न में कौन-सा नक्षत्र पड़ गया है, जो ऐसे-ऐसे उपद्रव आ रहे हैं। गर्गजी ने तो बड़े अच्छे ग्रह बताये, आपके इस पुत्र का भगवान् के समान कहा था। इस प्रकार तो आपने देवदुर्लभ वस्तु पायी है। तब लगता है कि यह इस भूमि (स्थान) का ही दोष है, इसलिए इसे त्याग देना ही अच्छा होगा। हमारा तो विचार है कि अब शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर सर्वदा सुखद, सर्व-ऋतु-सुखकर श्री वृन्दावन नामक वन में चलकर रहें, जहाँ सदैव हरी-हरी घास होती है, त्रैलोक्य-लक्ष्मी-सी सुन्दरता पग-पग पर विराजती है और जहाँ प्रत्यक्ष लक्ष्मी निरन्तर निवास करते हुए सेवा करती है। वहाँ गोवर्धन नाम का पर्वत है, जो गौओं को बढ़ाता है। यदि आपको यह विचार ठीक जँचे तो हमें महान् सन्तोष होगा। वैसे आप स्वयं समझदार हैं, जैसा हो, हमें आदेश दें।'

लोगों की बातें सुन व्रजराज विचार कर बोले : 'यद्यपि यहाँ आप लोगों ने अति सुन्दर भवन निर्माण करवाये हैं, हमारी ममता भी इस बृहद् वन

(गोकुल) में अवश्य है। परन्तु आप लोगों ने जो दोष यहाँ बतलाये, वे तो प्रत्यक्ष देखे जा रहे हैं। इसलिए यहाँ रहना कैसे ठीक हो सकता है ? आपका विचार सुन्दर है। अवश्य चलिये, हम तैयार हैं।' इस प्रकार परिजनों के साथ विचार कर व्रजराज के इस स्वाभिमत दृढ़ निश्चय से सब लोग प्रमुदित हो उठे।

तदनन्तर ऐरावत हाथी के समान चार दाँतोंवाले, नौ दाँतोंवाले अर्थात् नये-पुराने विशालकाय, बलवान् सुमेरु के शिखरों के सदृश सुनहरे सींगोंवाले; वेद के समान चारों चरणोंवाले तथा लम्बी-लम्बी पूँछोंवाले बैलों को जोतकर शकट तैयार किये गये। बैलों पर सुन्दर सोने की जंजीरें और हरी, गुलाबी, पीली, श्वेत तथा अरुण रेशमी झूलें डाली गयीं। शकटों में रत्न जड़े थे और वे विचित्र भूषणों से अलंकृत थे। उनके ऊपर सोने के मण्डप और कलश सुशोभित थे। कलशों के ऊपर पताकाएँ ऐसी फहरा रही थीं, मानो सूर्यदेव अपनी किरणें बिखेर रहे हों। वे शकट देवताओं के विमानों को भी मात कर रहे थे। उनमें साधु-जनों के समान निर्दोष प्रासंग (आसक्ति, जुआ) तथा हरि-भक्तों के समान निर्मल अक्ष (इन्द्रियाँ, धुरा) और सरोवर के समान चक्र (चक्रवाक, पहिये) लगे हुए थे। अपने-अपने परिकरों के सहित गोपवृन्द उन पर ताँबे, स्वर्ण और चाँदी के बने बर्तनों को लाद-लादकर तथा स्वयं भी आसीन होकर चलने लगे। अगणित गौओं का समूह भी साथ चला। एक ओर गौएँ चल रही थीं, तो दूसरी ओर शकट। पृथिवी को चारों ओर से घेरता वह समाज महावन से चला। अद्भुत शोभा थी उसकी। यमुनाजी के तट पर चलती गौओं की पंक्ति ऐसी अद्भुत प्रतीत होती, मानो गङ्गाजी* से यमुनाजी एकान्त वार्ता करने आयी हों, अथवा वृन्दावन की रेणु की अभिलाषा से क्षीरसमुद्र सूक्ष्म रूप धारण कर तरङ्गित हो रहा हो, अथवा शुक्लवर्ण शेषनाग विष्णु को छोड़ वृन्दावन देखने की इच्छा से विशाल रूप धारण कर धीरे-धीरे चल रहे हों, अथवा शोभारूपी मुक्ताओं की आवलि गुँथी हो।

इस प्रकार चलते हुए, चमकते स्वर्णकलशों तथा फहराती पताकाओंवाले रथों पर आरूढ बालक ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो गोपुर पर खड़े हों। वे शकट ऐसे शोभित होते, मानो स्वर्ण के पर्वत पंख कट जाने से पृथिवी पर धीरे-धीरे चल रहे हों। उनके चलने से उड़ी धूलि की रेखा का मण्डप आकाश में निराधार के दुर्ग के सदृश चलता दिखाई देता। ऐसा प्रतीत होता, मानो

* श्वेत गौओं की विशाल पंक्ति गङ्गाजी की धारासदृश दीख रही थी।

गौओं का रूप धारण करके श्रीकृष्ण के चरणों का सुख पाने के लिए ब्रह्मलोक ही मानो वृन्दावन में आ रहा हो।

चलते समय लोग एक-दूसरे से कुछ कहना चाहते तो भी ध्वनि के कारण कुछ सुनाई न पड़ पाता, मानो इसीलिए वे केवल हाथ के संकेत से ही व्यवहार करते। तूर्य की ध्वनि और गोपालों तथा गौओं का नाद आकाश में इतना अधिक व्याप्त हो गया कि अन्य सब शब्द लुप्त हो जाने से मानो एकमात्र वही शब्द आकाश की गुणता का प्रातिनिध्य कर रहा हो।

मणिमय क्रीड़ा-पर्वत की गुफा में शोभित लता के समान यशोदा और रोहिणी सुकृत-फल-सदृश अपने-अपने कुमारों को गोद में लेकर मधुर स्वर से सुन्दर गीत गाती चली जा रही थीं। अगल-बगल कुछ शस्त्रधारी शकटों में बैठे थे, तो कुछ पैदल चल रहे थे। सैकड़ों रक्षक रक्षा के लिए आगे-आगे चल रहे थे। इस प्रकार महावन राजधानी की मूर्तिमती शोभा के समान वह ब्रजसेना तेजी से आगे चलकर उस स्थान को अलंकृत करना चाहती थी, जहाँ पड़ाव पड़ना था। कार्य-कुशल गोपों ने उसी दिन यमुना पार करना कठिन मान यमुना के इसी पार विश्राम करना उचित समझा।

देश-काल के जाननेवाले गोपों ने नन्दजी की आज्ञा के बिना ही सुन्दर निवासस्थल बना लिये। उन्होंने वस्त्रों को तानकर तम्बू बनाये। ऊपर मण्डप बनाकर चारों ओर दीवारें खड़ी कीं, चौराहे बनाये और देखते-देखते पुरी की तरह श्रेणीबद्ध विश्रामगृह तैयार हो गये। जहाँ पहले से लोग आकर ठहरे थे, वहाँ पीछे आनेवालों की भीड़ क्रमशः बढ़ती गयी। गाएँ भी पहले कम आयी थीं, पर धीरे-धीरे वे भी बढ़ गयीं। ऐसा लगा, मानो पहले चन्द्रिका-खण्ड आये, फिर दूध के तालाब और अन्त में बढ़कर क्षीरसमुद्र हो गया हो। उन भवनों में पहले से आकर बसे लोगों ने नन्द, सनन्द, उपनन्द आदि धुरन्धर व्यक्तियों को यथास्थान बैठाया और स्वयं भी विश्राम करने लगे। उधर शकटों को पंक्तिबद्ध रूप में दूर-दूर तक खड़ा कर दिया गया। शकटों से उतर-उतरकर सब लोग आवश्यक बर्तन-भाँड़े निकाल भोजन आदि कार्य करने लगे। सेवक सौदा-पानी में लगे, बर्तन माँजने लगे, चौका लगाने लगे। बैलों को भी शकटों से अलग कर उनका आहार दिया गया।

उधर सूर्य भगवान् भी चार याम बिताकर थके हुए के समान वारुणी (पश्चिम) दिशारूपी नागरी के भवन में विश्राम करने के लिए जाने लगे। आकाश में उड़ते हुए पक्षीगण ऊँचे स्वर से कोलाहल मचाते हुए अपने-अपने घोंसलोंवाले वृक्षों की ओर मुख करके उड़ चले। मयूर चारों ओर से मण्डल

बनाकर बैठ गये। मृगों के झुण्ड के झुण्ड बैठकर रोमन्थ करने लगे। कमलों के बीच स्वच्छन्द रस-पान करते हुए भ्रमर कमलों के सकुचाने से उन्हींमें बन्दी हो गये। दिशारूपी रमणी तिमिररूपी नीलवस्त्र धारण कर अभिसारिका-भाव से प्रफुल्लित कुमुदिनीरूपी वदनवाली होकर शोभित होने लगीं। विरह से व्याकुल चकवी करुणाभरे स्वर बोलने लगी। पहाड़ों की गुफाएँ धूम से मलिन छाया के सदृश दिखाई देने लगीं। वस्त्रों के प्रत्येक तम्बू में दीपक जलते हुए ऐसे प्रतीत होने लगे, जैसे भक्तों के निर्मल हृदय से भगवत्-प्रकाश बाहर झलक रहा हो। ऐसा लगता, मानो साक्षात् सन्ध्यारूपी लक्ष्मी भगवान् की सेवा के लिए आ खड़ी हो।

जब गौएँ वत्सों सहित आकर विश्राम कर चुकीं तो उन्हें भलीभाँति चारा आदि खिलाकर तृप्त करके गोपाल दूध दुहने लगे। दोहनी के भीतर से समुद्र-मन्थन की-सी ध्वनि निकलने लगी। वह गम्भीर ध्वनि श्रीकृष्ण को बड़ी मनोहर लगती। गौओं के दुहनेवाले नाम ले-लेकर एक-एक गाय को बुलाने लगे। 'हम्वा' ध्वनि करती गौएँ दौड़कर निकट आ जाती थीं और गोप उनके ऊपर हाथ रखकर पुचकार दुहने लगे। रात होने के कारण कुछ लोग भूलकर बिना ब्यायी गौ को ही दुहने लगे। इस प्रकार सुखपूर्वक आहार-विहार करके नर-नारी रात्रि में शोभित होने लगे। रात्रि-जागरण में कुशल व्यक्ति आमने-सामने चारों ओर खड़े हो पहरा देने लगे।

आनन्दपूर्वक सोने के बाद जब एक प्रहर रात्रि रह गयी, तब शय्या से उठकर गोपियाँ कलकण्ठ से कर्ण-मधुर श्रीकृष्ण के गुणगान-से भरे गीत गाने लगीं। उनके सुन्दर वेष प्रत्येक तम्बू की देहली पर रखे दीपक के प्रकाश में स्पष्ट दिखाई देते। कोई दधि मथने लगी। मणिमय मञ्जुल किङ्किणी, कङ्कण तथा विविध भूषण झङ्कार करने लगे। मटकियों से मन्थन की ध्वनि गूँज उठी। मन्थन के शब्द के साथ गान की ताल मिलकर मधुरता बरसा रही थी। वह ध्वनि जगत् का समूल अमङ्गल निर्मूल करने में कुशल रही। उस समय देवाङ्गनाएँ भी पति की शय्या छोड़कर शीघ्रता से उठ पड़ीं और श्रवणानन्द-स्वरूप ध्वनि सुनकर सुख लेने लगीं।

कुछ समय बाद आकाश में सूर्य भगवान् की किरणें दिखाई देने लगीं। उससे पहले ही व्रजराज की आज्ञा से गोपवृन्द धेनु-मण्डल को क्रमशः यमुना-पार ले जाने लगे। वे 'ही-ही' करते गौओं को तैराते ले जा रहे थे। गौएँ 'हम्वा-हम्वा' ध्वनि कर रही थीं। गहरी साँसें लेती हुई गाएँ अपना अगला भाग ऊँचा कर यमुना को पार करने लगीं। बिना सींग के छोटे-छोटे बछड़े मुख

उठाये जल में तैरने लगे। अगला अंग भारी होने के कारण वे अपनी पूँछों को जल से बाहर निकाल नहीं पाते थे। नवीन पैदा हुए बछड़ों को गोपवृन्द उठा-उठाकर पार करा रहे थे। बछड़ों की ग्रीवा पीठ पर थी और उनके कोमल चरण गोपों के वक्षःस्थल पर। एक हाथ से उन्हें वे पकड़े हुए थे और दूसरे से तैरते रहे। पानी से सुन्दर कल-कल ध्वनि उठ रही थी। पीछे बछड़े की मैया हुङ्कार करती तैर रही थीं। ऊँचे-ऊँचे कन्धेवाले, स्वाभाविक क्रोध-भरे-से बैल सींगों द्वारा सौन्दर्य छिटकाते और दीर्घ निःश्वास छोड़ते प्रवाह के समान वेग से तैरने लगे। अपार गौएँ पार जाकर स्वच्छ बालुका में पंक्ति बाँध खड़ी हुईं। वे ऐसी लगतीं, मानो यमुनाजी के निकट गङ्गाजी खड़ी हों।

अकस्मात् यमुना-जल में बहुत-सी नौकाएँ तैरती दिखाई पड़ने लगीं। वेग के कारण उनका आगमन लक्षित न होने से ऐसा प्रतीत हुआ, मानो नाग-रमणियों की क्रीडा करने की मणिमयी गिरिद्रोणियाँ पाताल से निकल आयी हों, अथवा अपने शिल्प-कौशल से व्रजराज के समाज को आनन्दित करनेवाले विश्वकर्मा के निजी विज्ञान की मूर्तियाँ हों, जो आकाश-गङ्गा से यमुना में आ गिरी हों, अथवा यमुना के अन्तर से प्रकट हुई किन्हीं विचित्र जलजन्तुओं की अनेक पैरोंवाली बहुएँ हों। उनमें से सबसे सुन्दर एक नौका पर ललित पताकाएँ ऐसे फहरा रही थीं, जैसे मृदु पवन चलने से पत्ते हिलते हों। उसके बीच विचित्र भवन बने थे। अपने-अपने पुत्रों को लेकर यशोदा और रोहिणीजी उस पर एक साथ सवार हो गयीं। उनकी दासियाँ भी नौका के एक ओर आकर बैठ गयीं। श्रीकृष्ण धीरे से उठकर नौका के अगले भाग में आये और अपने कराम्बुज फैलाकर पतवार पकड़कर नौका खेने का प्रयत्न करने लगे। यशोदाजी की दृष्टि जब उनकी ओर गयी तो वे घबड़ाकर वहाँ आकर उन्हें हटाने लगीं। परन्तु श्रीकृष्ण वहाँ से नहीं हटे। तब शङ्कित हो उन्होंने व्रजराज को बुलाया : 'देखो! तुम्हारा पुत्र कैसा उद्दण्ड है, इसे अपनी गोद में ले लो!' नन्दजी भी कहने लगे : 'सावधान रहो! सावधान रहो!' तब श्रीकृष्ण यशोदाजी के पास जाकर बैठ गये। सब लोग अपने परिवार के साथ सुखपूर्वक बैठ गये, तब नाविकों ने नावें चलायीं। सब लोग पार उतर गये। फिर नौकाओं द्वारा ही बड़े-बड़े शकट भी पार लाये गये। व्रजराज ने समस्त नाविकों को पारितोषिक दे सन्तुष्ट कर विदा किया।

सातवाँ स्तवक

ब्रह्ममोहन-लीला

श्री नन्दजी ने गोवर्धन के समीप, नन्दीश्वर पर्वत पर यमुना-तट के निकट अपनी राजधानी बनायी। यद्यपि भगवान् का यह नित्यधाम प्रसिद्ध है, तथापि इस समय उनके पहुँचने से लोगों को कुछ नया प्रकट हुआ-सा प्रतीत हुआ। जैसे तेज में तेज और जल में जल लीन हो जाता है, वैसे ही महावन की लक्ष्मी व्रजराजपुर में आकर प्रवेश कर गयी। दोनों ही लक्ष्मियाँ एकभाव होकर श्री वृन्दावन की शोभा अद्भुत हो गयी। नाना प्रकार के चित्र-विचित्र हरिण और हरिणियाँ, लता-वृक्षों के कुञ्ज, सरोवर, वापी, पल्वल (अल्प जलाशय), कालिन्दी का उज्ज्वल पुलिन और गोवर्धन की अद्भुत शोभा से युक्त वृन्दावन को देख सम्पूर्ण गोपियाँ और गोपगण अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। जिस व्रजराजपुरी की अलौकिक शोभा का विस्तृत वर्णन प्रथम स्तवक में किया गया है, वही नगरी नन्द और सनन्द आदि गोप-गोपियों से शोभित होने लगी। अपनी-अपनी गोशालाओं में गाएँ विलसित होने लगीं। वहाँ की गलियाँ ताम्बूल, माला आदि बेचनेवालों की दूकानों से शोभित होने लगीं। सुखपूर्वक दिव्य भवनों में सभी निवास करने लगे। भील आदि भी ग्राम के बाहर निवास-स्थान बनाकर रहने लगे। सकल परिकर-सहित गोपवृन्द वहाँ आकर ऐसे बस गये, जैसे सदा से ही यहाँ बस रहे हों। वृन्दावन के बालतृणों का सरुचि आस्वादन कर उन गौओं के आनन्द का पारावार न रहा। सर्वत्र गुप्त रूप से नवों निधियाँ और अष्ट सिद्धियाँ दासी की तरह सेवा करने लगीं। गुप्त रूप से सर्वेश्वर भगवान् अपनी ईश्वरता को छिपाकर लीला-बालक हो विहार करने लगे।

वत्सचारण-लीला

भगवान् अब धीरे-धीरे बड़े हो चले और उनमें बछड़े चराने की शक्ति आ गयी। उन्होंने लीलाहेतु, कौतुकवश नन्दजी के हृदय में यह प्रेरणा उत्पन्न की कि श्रीकृष्ण परम सुकुमार हैं, परम चञ्चल हैं, फिर भी इनको बछड़े चराने के कार्य में लगाना चाहिए। गोपराज ने यह बात यशोदाजी से कही। वात्सल्य रस के सीमास्वरूप को यह बात असहनीय प्रतीत हुई। वे बोलीं :

'अभी तो लाल ने स्तन-पान भी नहीं छोड़ा है, उससे भला ऐसा काम कैसे लिया जा सकता है ?' तव लीला-वालक श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं कहने लगे : 'मैया, ऐसा मत कहो ! वछड़े चराना मुझे वहुत भाता है। आज्ञा दे दो, मैं वाल-सखाओं सहित वछड़े चराने जाऊँगा और वहाँ तरह-तरह के खेल खेलकर सुख पाऊँगा। मुझे मत रोको।' तव यशोदाजी ने शिथिल होकर कुछ नहीं कहा।

नन्दजी ने सुन्दर दिन विचार कर शुभ नक्षत्र में उत्सव मनाया और वलभद्र, भद्र तथा वाल-सखाओं के साथ श्रीकृष्ण को ले स्वयं ही गोशाला के आँगन में आये। कुछ बछड़ों को आगे लाकर खड़ा किया गया और श्रीकृष्ण एक हाथ में लोहे की छड़ी धारण कर वत्सों के साथ चले। अपने पुत्र श्रीकृष्ण को वछड़ों के पीछे जाते देख श्री नन्द एवं यशोदाजी भी उनके पीछे-पीछे चले। माता-पिता को पीछे-पीछे आते देख श्रीकृष्ण ने कहा : 'आप लोग हमारे पीछे आने का कष्ट न करें। कोई शंका न करें !' माता-पिता ने कहा : 'वत्स ! दूर मत जाना। यहीं चराकर अभी लौट आओ। देर मत करना, शीघ्र आ जाना।'

श्रीकृष्ण वलरामजी और सखाओं के सहित चले। यह पहला दिन था। श्रीकृष्ण कौतुकसहित बछड़े चराने का अभ्यास करने लगे और ऐसा करने से दिन-दिन उनका वल, वुद्धि तथा उल्लास वढ़ने लगा। नवीन घन-घटा के समान श्यामल अङ्गों से व्रजभूमि को श्यामछटामय वनाते हुए वे अव वछड़े चराने के लिए सन्नद्ध हो गये। उत्साहपूर्वक वछड़े चराते हुए विचित्र खेल द्वारा वे अव निरन्तर देवताओं, व्रजवासियों, सखाओं तथा माता-पिता का आनन्द वढ़ाने लगे !

प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्य उदय होने पर त्रिभुवन-पावनी दयालु-हृदया जननी यशोदा उनको जगातीं, शय्या से उठाकर मुख धुलातीं, तेल-उवटन लगातीं, स्नान करातीं, चन्दन लगातीं, भूषण धारण करातीं और सुस्वादु मधुर भोजन करातीं, फिर कुछ देर लिटातीं। जब श्रीकृष्ण वछड़े चराने चल पड़ते तो स्वयं दूर तक पहुँचाने जातीं। श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर वचन कहकर उनको विदा देते।

अव नन्दनन्दन वक्षःस्थल पर मालाओं से शोभित वलरामजी, सुवल, सुदामा आदि सखाओं के साथ हरी-हरी घास में वछड़ों को चराते हुए कौतुकपूर्वक अनेक प्रकार की वालक्रीडाएँ करते हुए विचरने लगे। दोपहर में यशोदाजी की भेजी हुई सुकवि के काव्य के समान सरस एवं मधुर तथा पुरुषार्थ के फल के समान स्वादिष्ट छाक (भोजन) के प्राप्त होने पर सखाओं

सहित विविध कौतूहल करनेवाले श्याम हलधर-सहित मण्डल बाँधकर हास-परिहास में चतुरता दिखलाते भोजन करने लगते।

जब बछड़ों के पेट खूब भर जाते तो वे उन्हें लेकर धीरे-धीरे घर की ओर चल देते। कानन में विचरते समय उनकी कटि की किङ्किणियाँ बजा करतीं तथा वे अपने चरण-कमलों से पृथिवी का ताप दूर करते रहते।

इस प्रकार नित्यप्रति सन्ध्या समय वत्सों के झुण्ड को लेकर जब वे भवन की ओर लौटते, तो यशोदा, रोहिणी आदि माताएँ दूर से ही अपलक नेत्रों को स्थिर कर देतीं और उनकी चाल की ध्वनि सुनने में श्रवणों को लगा वात्सल्य रस से पूरित होकर खड़ी-खड़ी उत्कण्ठापूर्वक बाट जोहती रहतीं। जब श्रीकृष्ण भवन में आ जाते तो अनेक दासियों के घर में रहते हुए भी वे अपने हाथ से अपने लाल का शृङ्गार आदि करतीं, सुन्दर भोजन करातीं। पश्चात् शय्या बिछाकर विविध कथाएँ सुनाते हुए उन्हें सुला देतीं।

वत्सासुरवध-लीला

इस प्रकार कुछ दिन आनन्दपूर्वक बीते। एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरा रहे थे। तभी कंस का कोई अनुचर इस प्रकार बछड़े का रूप धारण कर मृदुल तृण चरते हुए इनके बछड़ों में आ मिला, जैसे कोई कुटिल शाक्त वैष्णव का वेष बनाकर या कोई चारुवाक् (चार्वाक) दूसरे का मत नष्ट करने के लिए आस्तिक का रूप धरकर आ जाय, या सर्वस्व हरण करने की इच्छा से चोर मित्र का रूप धारण कर उपस्थित हो। किसी प्रकार वह पहचाना नहीं जा पाता था। भगवान् ने उसे एक बार अच्छी तरह देख जान लिया कि यह शत्रु-पक्ष का दैत्य है। निखिल-सर्वज्ञ-चूड़ामणि बलरामजी से पूछने लगे कि 'यह व्रज का बछड़ा है अथवा कोई कृत्रिम वेषधारी वत्स ?' बलरामजी कुछ न समझ पाये। तब सम्पूर्ण सखाओं के देखते श्रीकृष्ण ने कमल की मृदु कलियों के सदृश अपने बायें करतल से पीछे के दोनों पैर पकड़कर उसे उठा लिया और आकाश में घुमाते हुए कैथे के पेड़ की जड़ पर पटक मारा। प्राण-त्याग करते समय उसने अपना राक्षसरूप धारण कर लिया। दैत्यों का मर्दन करनेवाले तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अपने मुख से जिनकी अघटित-घटनापटीयसी कीर्ति का गान करते रहते हैं, उन दुस्तर कर्मों के कर्मठ भगवान् के लिए यह कोई आश्चर्य न था। आकाश में सूर्य-किरणों को शीतल तथा कमलों को संकुचित होते देख सन्ध्या समय श्रीकृष्ण ने हेला देकर सब बछड़ों और सखाओं को एकत्रित किया और सभी अपने घरों की ओर चल पड़े।

घर आने पर सखाओं ने अपनी-अपनी माताओं से तथा यशोदाजी से भी

श्रीकृष्ण द्वारा सुन्दर वछड़े का रूप धारण कर आये दानव को मारने का आश्चर्यजनक चरित्र कहा। भगवान् भी माता-पिता के साथ प्रमुदित हो वस्त्राभूषण धारण करके आनन्द में बैठे, सुन्दर व्यञ्जनों का भोग लगाया, पश्चात् रात्रि में सुखपूर्वक शयन किया।

वकासुरवध-लीला

दूसरे दिन भी नित्य की भाँति प्रातः क्रीडा-कुशल श्रीकृष्ण उत्तम भूषण धारण किये सखाओं और वलरामजी के साथ वन में पहुँचे। वहाँ एक जलाशय के निकट नव-नव अंकुरित घासवाली भूमि पर वछड़ों को चरने के लिए छोड़ दिया और स्वयं वे सखाओं के साथ तरह-तरह के खेल खेलने लगे।

उसी समय पूतना का सगा भाई कंस की आज्ञा से अत्यन्त ऊँचे वगुले का शरीर धारण कर वहाँ आया। दानव महावीर था, अखिल दानव उसकी वन्दना करते। वह बड़े वेग से श्रीकृष्ण के सम्मुख आ गया। उसने अपनी चोंच आकाश में ऐसे फैला दी, मानो कालपुरुष ही सकल जीवों का जीवन खींच लेने आया हो। सभी सखा भयभीत होकर काँपने लगे। कोई सखा कहने लगा: 'सखे! यह पक्षी नहीं, वगुले की आकृति में कोई दानव ही है। यह हमें खा जायगा, इसलिए यहाँ से हम भाग चलें।'

कोई कहने लगा: 'कैलाश के शिखर के समान इसकी विशाल चोंच के आगे हम भाग कहाँ जायँगे?' वे लोग इस प्रकार मीमांसा कर ही रहे थे कि उसी समय सखाओं को प्राणों के समान प्यार करनेवाले, मनोहर मुस्कान से युक्त मुख-मण्डलवाले, अखिल लोकों को अभयदान देनेवाले, सकल भुवनों के वन्धु, अकारण करुणैकसिन्धु, अव्यय, अव्याहत महाप्रभाव तथा अत्यन्त साहसी श्रीकृष्ण उन सखाओं की प्राणरक्षा के लिए उस देवशत्रु पामर बक के सम्मुख पहुँच गये। उसने सहसा अपनी कराल चोंच फैलाकर श्रीकृष्ण को निगल लिया।

अपने को अनाथ जानकर सभी सखा और वलरामजी 'हाय-हाय' करते हुए रोने-चिल्लाने लगे। आकाश में देवता लोग 'अहो कष्टम्, अहो कष्टम्!' कहते हुए व्याकुल हो उठे। उसी समय उस वगुले का पेट इस प्रकार जलने लगा, मानो वह जलती हुई आग को निगल गया हो। अतः जैसे कोई पीड़ा अनुभव करके प्राणों को छोड़ देता है, ऐसे ही उसने श्रीकृष्ण को उगल दिया। जैसे राहु के मुख से चन्द्रमा निकल पड़े, या घोर घन-घटाओं से सूर्य निकल आये अथवा जैसे पर्वत की गुफा से सिंह का वच्चा निकल पड़े, अथवा जैसे घोर अन्धकारभरे संसार-कूप से भक्त निकल पड़े, वैसे ही उसके गले से अत्यन्त

शोभामय प्रसन्नवदन श्रीकृष्ण निकल आये। मूर्च्छित सखाओं को चेतना प्राप्त हो गयी।

किन्तु अपनी चोंच टँकारता हुआ वक-दैत्य पुनः दौड़ा। तब श्रीकृष्ण ने बायें कर-कमल से उसकी चोंच का ऊपरी भाग और दाहिने कराम्बुज से नीचे का भाग पकड़कर जोर से उसे चीर पृथिवी पर पटक दिया। वह ऐसा लगने लगा, जैसे पर्वत के शिखर के दो टुकड़े होकर पड़े हों। शोक से सन्तप्त सखाओं का भय दूर हो गया। उनके मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठे।

दैत्य के मरने पर देवताओं ने प्रमुदित हो आकाश से नन्दन-वन के जो कुसुम बरसाये, उन पर गिरते हुए भ्रमर ऐसे लग रहे थे, मानो हर्ष में द्युरूपी नासिका के काजलसहित अश्रु-विन्दु गिर रहे हों। गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ नाचने लगीं। चारों ओर दुन्दुभियाँ वजने लगीं। महान् आश्चर्य हुआ। मुनिवृन्द आनन्दित हो उठे। भगवान् श्रीकृष्ण को देख प्रेम से भरे सखागण दौड़े और मत्त गजगति से आते हुए अपने हृदयनाथ प्राणप्रिय वकविनाशी श्रीकृष्ण का ऐसे स्नेह से आलिङ्गन किया, मानो वे मरकर पुनः जीवित हुए हों। उनका मुखकमल अवलोकन कर सब सुखी हो गये। सन्ध्या समय बछड़ों को इकट्ठा करके कदम्ब के गेंदों के समान ललित कर-कमलोंवाले प्रिय सखाओं के सहित भगवान् अपने भवन आये और माधुर्यपूर्ण मुख-कमल से माता-पिता को आनन्दित किया।

सब सखाओं ने वकहनन का समाचार यशोदाजी को सुनाते हुए कहा: 'मातः! आज बड़ा कौतुक हुआ, जो हमें बड़े आश्चर्य में डाल रहा है। हमारे सखा श्रीकृष्ण ने बड़ा पराक्रम कर दिखलाया। पर्वत के समान बल के गर्व से सबको निगल जाने के लिए जलती हुई अग्नि के समान एक बड़ा भारी बगुला आया। उसकी बड़ी भारी फैली हुई तेज चोंच को पकड़कर उसके साथ युद्ध कर तुम्हारे इस कुसुम-सुकुमार कुमार ने अपने कर-कमलों से शीघ्र ही बड़ी भारी चोंच तृण की तरह तोड़ उसे मार डाला। देखो, हम लोगों से तो बाहु-युद्ध में यह पराजित हो जाता है, किन्तु न जाने इसमें कहाँ से इतना बल आ जाता है कि बड़े-बड़े राक्षसों को मार गिराता है।'

बछड़ा चरानेवाले बालकों के ऐसे ललित वचन सुनकर माँ को आश्चर्य हुआ और भय भी। व्रजेश्वरी यशोदा गोपियों के मध्य प्रलाप करने लगीं: 'हाय-हाय! जिस कारण हमने महावन का रहना छोड़ा, वही उपद्रव यहाँ भी होने लगे। इस प्रकार बड़े-बड़े भयदायक काण्ड हो रहे हैं और यह परम

चञ्चल वालक है कि जो मानता ही नहीं, वड़ा उपद्रवी है। क्या करूँ, कहाँ चली जाऊँ! हे विधाता! मैं तो अपना हित ही नहीं समझ पाती।'

इस प्रकार वहुत चिन्ता करके सन्ध्या समय वालकों के अपने-अपने घर चले जाने के पश्चात् यशोदाजी ने श्रीकृष्ण का समयोचित श्रृङ्गार किया और प्रेमपूर्वक भोजन कराते हुए कहने लगीं : 'तात! अब तुम घर में ही रहा करो, यहाँ से वाहर कहीं वन में मत जाओ! वत्स! वछड़ों का चराना छोड़ दो। वछड़ा चरानेवाले हमारे यहाँ वहुत हैं, फिर तुम क्यों जाते हो, क्यों परिश्रम करते हो?'

माता के ऐसे नीतिमय वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा : 'मातः! भय मत करो। ये जितने मेरे सखा हैं, सव वड़े झूठे हैं। ये तुम्हें डराने को यों ही वहकाते हैं, इसलिए कोई चिन्ता मत करो।'

यह कहते हुए लीलारूपधारी वालकृष्ण आँखों में नींद दिखाकर ऊँघने लगे। जननी ने अत्यन्त सुन्दर शय्या पर ले जाकर सुला दिया।

यद्यपि श्रीकृष्ण मूर्तिमान् नित्य किशोररूप हैं, तथापि ऐश्वर्य को छिपाकर वाल-लीलाओं द्वारा नाना भावों को दिखा अपने भक्तों की कामनाएँ पूर्ण करते हैं। कृपावश सच्चिदानन्दघन प्रभु ही सकल भाव पूर्ण करनेवाले रूपों से वैसा-वैसा प्रकाश प्रकट करते अपने अचिन्त्य वैभव-द्वारा भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं।

अव निर्व्यलीक* भगवान् मुरली वजाने लगे। उनका वेणु का वजाना ऐसा अद्भुत था कि उसका कलगान सुनकर गोपियाँ विस्मित हो जातीं। कुछ वृद्ध गोपियाँ श्रीकृष्ण के पास आकर कहने लगीं : 'कृष्ण! तुम अभी माता के पयोधर चूसते थे। अभी तुम्हारे अधरों से वह दूध छूटा नहीं, इतने छोटे हो, फिर इतनी जल्दी ऐसी सुन्दर मुरली वजाना कहाँ से सीख लिया? किस गुरु ने तुम्हें यह वेणु वजाना सिखाया है? ललन! तुम पर वलिहारी जाऊँ! तुम्हारे मुख की वलैयाँ लूँ! वजाओ, वजाओ, फिर वंशी वजाओ!' पहले तो वे लजाते-से रहे, फिर जव माता-पिता ने भी कहा, तव उन्होंने मुस्कराते हुए वन्शी वजायी। सव अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठे। तमाल के सदृश श्याम वर्ण, मन को सुख देनेवाले, केसरिया पीताम्वर पहने, मनोहर वनमाला धारण किये, वन-करभसदृश मन्द गति, वकविनाशक श्रीकृष्ण को देख आकाश में देवता और शङ्कर व्रह्माजी के सहित आनन्दित हो गये।

एक वार कमल-नयन श्रीकृष्ण माता से वोले : 'मैया! आज मैं यहाँ

* व्यलीक (अन्धकार, मोह) से रहित।

भोजन नहीं करूँगा। मेरी इच्छा है कि वन में सखाओं के सहित गोष्ठी करूँ। बड़ी लालसा है। मैया! मेरी बात मान लो। घर पर अभी कुछ नहीं खाऊँगा, वन में ही वृन्द-भोजन करूँगा। मेरी यह शुभ बात तुम्हें माननी ही पड़ेगी।'

पुत्र के ऐसा कहने पर व्रजेश्वरी यशोदा रुष्ट हो गयीं और कहने लगीं : 'नहीं, यह नहीं होगा।' तब मुख पर लहराती विचित्र अलकोंवाले, दैदीप्यमान भाल तथा विचित्र कौतुक करनेवाले वे स्वच्छन्द लीला-बालक श्रीकृष्ण बोले : 'मैया! तुम्हें शपथ है, अब ना न करना।'

यशोदाजी को कहना पड़ा : 'जैसी तुम्हारी मर्जी!' फिर क्या था?

श्रीकृष्ण ने बड़े भैया बलदाऊजी के साथ जोर-जोर से अपने शृङ्ग बजाये। तत्काल सभी गोप-बालक अपने-अपने घरों से गायें लेकर नन्द के घर उपस्थित हो गये। श्रीकृष्ण आज वन-भोजन के लिए जो जानेवाले थे। उन्होंने माता से कहा : 'मैया, प्यारी मैया! आज मध्याह्न में वन में खाने योग्य दही, ललित नवनीत, खीर, पापड़, सुरस जलेबी, गुझिया, मिश्री, नेत्र को आमोद देनेवाले लड्डू, पूर्णचन्द्र-से पूए, मिठाइयाँ, अत्यन्त सुगन्धित दधि-भात, सुधा से भी अधिक मीठा दुग्ध से भीगा चूड़ा और चाँदनी की तरह उज्ज्वल दुग्ध की मिठाइयाँ आदि सब पदार्थ दे दो।' माँ ने अपरिमित रसमय भक्ष्य-भोज्य-लेह्य और चोष्य आदि सभी प्रकार के पदार्थ बना दिये।

फिर श्रीकृष्ण सखाओं से प्रेमपूर्वक कहने लगे : 'हे सखाओ! वन में भोजन का प्रबन्ध हमने कर लिया है, तुम लोग कोई चिन्ता मत करो, सब लोग ऐसे ही चलो।'

सब लोग सम्पूर्ण बछड़ों को इकट्ठा कर अलग-अलग थोक बनाकर चल पड़े। मैया उनके इस विभाजन को हँसती हुई देखती रहीं। माता ने जो सैकड़ों प्रकार के पकवान बनाकर दिये थे, उन्हें प्रत्येक सखा के लिए पृथक्-पृथक् ले जाने को विभाजित किया गया। फिर ठीक प्रकार से अलग-अलग बहँगियों में छींके बाँधकर रखा और ले चले। उस समय यशोदाजी ने श्रीकृष्णजी का दुबारा शृङ्गार किया, वनमालाएँ धारण करायीं और मुकुट ठीक किया। स्नेहवश उनके पयोधरों से दूध टपक रहा था। वे थोड़ी दूर तक साथ-साथ गयीं। व्रज-गोपियाँ भी उनके साथ चल रही थीं। उस दिन किसी कारण बलरामजी नहीं गये, वे घर पर ही रह गये।

बछड़ों के पीछे चलते हुए श्रीकृष्ण की उस समय की अद्भुत शोभा माता टकटकी लगाकर निहारने लगीं। बायें करकमल में वंशी और दायें में सुन्दर

लकुटी थी। वेत के दलों से शोभित सींगी (श्रृङ्ग) कमर में खोंसी थी। मोरमुकुट तथा केशावली अत्यन्त मनोहर थी। कण्ठ में गुञ्जा का हार और कानों में नील कुण्डल लटक रहा था! इस प्रकार अनेक रत्नों के आभूषण धारण किये वे वन-वीथी में चले जा रहे थे। व्रज-वालकों के आगे चलते समय वक्षःस्थल पर वैजयन्ती-माला लहरा रही थी। शोभा और लक्ष्मी से रञ्जित उनका वक्षःस्थल अत्यन्त शोभित हो रहा था।

सखाओं की भी वड़ी सुन्दर शोभा थी। उनके कन्धों पर विहङ्गिका के छीकों में पात्र शोभित थे। किसीके हाथ में लकुटी, किसीके हाथ में वन्शी, किसीके हाथ में अलगोजा, कण्ठ पर गुञ्जाओं की माला, कमर में श्रृङ्ग और सुन्दर धोती! केयूर, कङ्कण, किङ्किणी, कुण्डल, हारावली, नूपुर, मणिवन्ध आदि भूषणों की शोभा देखते ही वनती थी। उनकी अत्यन्त कौतुक-पूर्ण शोभा देखती यशोदाजी दूर तक चली गयीं, फिर धीरे-धीरे घर को लौट आयीं।

वछड़ों को आगे-आगे ले चलते हुए भगवान् को देखकर सकल-लोक-पितामह ब्रह्माजी को वड़ा कौतूहल हुआ। वे आश्चर्य में पड़ गये। आत्माराम नीलकण्ठ (शिव) नीलकण्ठ (मोर) के समान नाचने लगे और सूर्य भी उत्कण्ठित होकर आकाश से निर्निमेष देखने लगे। कौतुक देखने के लम्पट इन्द्रादि भी चित्रलिखित-से देखते रहे। भगवान् श्रीकृष्ण के निकट दौड़कर आता हुआ कोई सखा कहता कि 'मैं पहले छूऊँगा' और वह छू लेता। फिर एक-दूसरे से झगड़ते : 'पहले मैंने छुआ, नहीं, पहले मैंने छुआ।' फिर श्रीकृष्ण साक्षी देते और हँस पड़ते। मुस्कराते समय उनके अधर-कमल खुल जाते और दशनों की किरणें छिटकने लगतीं। तव श्रीकृष्ण सखाओं की ओर लक्ष्य कर कहते : 'तुम क्या पहले-पीछे कह रहे हो, साथ ही मेरे निकट आये हो। न कोई पहले, न कोई पीछे, सव वरावर हैं।'

दनुज-दमन श्रीकृष्ण के साथ चलते समय दुर्लभ सुख का आस्वादन करते हुए सव सखा भाँति-भाँति के खेल खेलते हुए चल रहे थे। कोई किसीका छीका छीन लेता, फिर उसके हाथ से दूसरा एवं दूसरे से तीसरा छीन लेता। फिर जिसका वह छीका होता, उसे सब खूब चिढ़ाते। कोई दूसरा उसको वदल लेता। जव वह खीझने लगता तो फिर उसे लौटा देते। कोई किसीकी लकुटी छीन लेता। कोई किसीकी वंशी ले लेता तो वह उसका श्रृङ्ग छीन लेता। कोई किसीके गले से गुञ्जा की माला ही उतार लेता। इस प्रकार हास-विलासपूर्वक रसपान करते, परस्पर खूब हँसते-हँसाते चोरी की लीला करते

सब चले जा रहे थे। यह सब देख-देखकर देवताओं को बड़ा आनन्द आ रहा था।

इस प्रकार खेलते हुए जब सब लोग बहुत दूर चले गये और बछड़े नवीन तृणों का आस्वादन करते हुए थककर विश्राम करने लगे, तब किसी सुन्दर तरु के नीचे अपनी-अपनी विहङ्गिका आदि सकल सामग्री रखकर श्रीकृष्ण को सुख देनेवाला एक परिहासपूर्ण खेल रचने लगे। वन में मत्त मयूर को नाचते देखकर एक सखा उसीकी तरह धोती आदि के पंख बनाकर नाचने लगा। कोई तालाब के तट पर बगुले को देखकर उसीकी तरह ध्यान लगाकर बैठ गया। कोई एक मेढ़क को कूदते देखकर उसीके साथ-साथ वैसे ही कूदने लगा। कोई आकाश में उड़ते पक्षियों की छाया के साथ-साथ दौड़ने लगा। कोई पेड़ पर बन्दर को देखकर उसीकी तरह मुँह बनाने लगा और जब वह 'खों-खों' करता तो वह सखा भी 'खों-खों' कर उसे खिझाता। कोई ऊपर बैठे हुए बन्दरों की नीचे लटकी पूँछ को पकड़ लेता। बन्दर एक डाल से दूसरी शाखा पर कूद जाता तो सखा भी पेड़ पर चढ़कर एक शाखा से दूसरी डाल पर कूद जाता। कोई सखा आनन्द में आकर गाने लगाता। जब कोई नाचने लगता और उसे नृत्य न आता तो देखकर सब खूब हँसते!

कभी कोई राजा बन जाता, कोई मन्त्री बन जाता और कोई दण्ड-स्वामी (कोतवाल) बन जाता। कोई सिपाही बन जाता, कोई चोर बन जाता। कोई चोर को राजा के सामने ला खड़ा करता। राजा क्रोधित होकर शिक्षा देता और उसके लिए दण्ड का विधान करता। कोई भेड़ों की तरह सिर में सिर भिड़ाकर लड़ने लगते। कोई बाघ की तरह गरजने लगते और दूसरों को डराने लगते। कोई सखा किसीके पीछे आकर हाथों से उसके नेत्र बन्द कर लेता। इस प्रकार सिंह के समान श्रीकृष्ण मत्त गजेन्द्रों के सदृश सखाओं के साथ मूर्तिमान् आनन्दसदृश ग्राम के बालकों की-सी कौतुकमयी लीलाएँ करते हुए विहार करने लगे।

अघासुरवध-लीला

उसी समय बक और बकी का भाई अघासुर अपने भाई-बहन का बदला लेने की इच्छा से उस वन में आ पहुँचा। उसने अजगर का रूप धारण कर अपना मुँह फाड़ रखा था, जिसका ऊपरी ओठ आकाश पर और अधर धरती पर था। देवताओं का शत्रु वह महान् क्रूर राक्षस अपने भाई-बहन की ही गति को प्राप्त होने आया था।

उस वन के एक ओर नीचे से ऊपर तक काला-काला देखकर सब गोप-गण कौतुक से भर गये और सब मिलकर आपस में कहने लगे : 'अरे देखो तो, यह क्या है ? अहो ! कैसी विचित्र पर्वत की गुफा दिखाई दे रही है ! देखो, देखो ! आश्चर्य है, घोर आश्चर्य है !' कौतुक में आकर कोई कुछ कहने लगा, कोई कुछ ! फिर तर्क करने लगे : 'यह तो साँप का मुख जैसा दिखाई देता है । देखो न, इसके दाँत दिखाई दे रहे हैं और यह देखो, इसकी जिह्वा-सी दिखाई दे रही है । इसके विष के कण आग की चिनगारियों जैसे, तालु लाल शिला जैसी और ये ऊपर उठी हुई आँखें पद्मराग मणि की शिलाएँ जैसी दिखाई दे रही हैं । इसकी फुफकार ऐसी जलती हुई निकल रही है, मानो पर्वत से गरम वायु चल रही हो । अथवा यह गिरि-कन्दरा ही बिलकुल सर्प के समान बनी हुई है । ठीक है, यह कन्दरा ही है, चलकर देखना चाहिए कि इसमें क्या है । किन्तु यदि यह वास्तव में सर्प ही निकला, तब तो हम सबको मार डालेगा । अच्छा, अब जो होना होगा, सो होगा । चलो, भीतर चलकर देखें कि आखिर यह है क्या !' तदनन्तर अपने कलित करों से तालियाँ बजाते हुए श्रीकृष्ण के विश्वासरूपी बल पर आरूढ़ वे सब देवताओं के समान सुन्दर गोप-बालक हँसते हुए उस अघासुर की मुखरूपी गुफा में घुस गये ।

श्रीकृष्ण ने दूर से ही देखा तो आर्त स्वर में चिल्लाकर रोकते हुए कहा : 'सखाओ ! इसमें मत जाओ, मत जाओ, यह सर्प है !' पर तब तक तो वे सब बालक उसके मुख में प्रवेश कर गये और उसके विष की ज्वाला से उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं । श्रीकृष्ण के मुँह से निकल पड़ा : 'अरे-अरे ! यह क्या हो गया ?' वे ऐसे व्याकुल हो गये, जैसे उनकी आँखों से शीतलता अथवा हाथ से धन चला गया हो । उन सखाओं के लिए अत्यन्त शोक करते हुए वे सोचने लगे : 'जिनका जीवन मैं ही हूँ, उनका मरण कैसे हो सकता है ?' चिन्तित होकर दोनों कार्य एक साथ करने के लिए महायोगेश्वर श्रीकृष्ण उन सखाओं के पीछे ही उसके मुख में घुस गये ।

भगवान् के अघासुर के मुख में जाते ही आकाश में देवतागण हाहाकार करने लगे और असुर हर्षित हो उठे । श्रीकृष्ण ने उसके मुख में जाकर अपने आकार को बढ़ाने का निश्चय किया । उधर उस सर्प अघासुर का मन चञ्चल हो गया और भगवान् के प्रवेश से गर्वित होने के कारण वह अपने मुख को सँभालना भूल गया । वह अपने को कृतार्थ मानने लगा, समझने लगा कि मेरा सब काम बन गया । घमण्ड में भरा वह भगवान् की शक्ति से भावित होकर अपने खुले मुख को बन्द करने में असमर्थ होकर उठ खड़ा हुआ ।

भगवान् की शक्ति से उसका गला अग्नि-ज्वालाओं से जलने-सा लगा तथा कण्ठ में ऐसी पीड़ा हुई, जैसे सहस्रों कीलें गड़ी जा रही हों। निखिल कलाओं में चतुर भगवान् ने करुणापूर्ण कटाक्षतरङ्गरूपी सुधा-धाराओं से सखाओं को जिला लिया। योगियों के हृदय में भी अत्यन्त कठिनता से आनेवाले महामहिमामय भगवान् अघासुर के पेट में जाकर बढ़ने लगे और उसका गला पकी हुई फूट की तरह फट गया। शरीर के फटते ही अघासुर के देह से एक दिव्य ज्योति निकली। जैसे सूर्य, चन्द्र आदि आकाश में तैरते रहते हैं, ऐसे ही वह प्रकाश ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि के द्वारा वन्दित वनमाली भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में प्रवेश करने के लिए आकाश में विना अवलम्ब के ठहर गया। तब तक उसकी मुखरूपी गुफा से अपने सब सखाओं को भगवान् ने बाहर निकाला और स्वयं भी निकल आये। जब श्रीकृष्ण बाहर निकले तो शङ्कर आदि से वन्दितचरणवाले भगवान् के चरणों में देवता, असुर आदि के देखते हुए अघासुर की ज्योति ऐसे लय हो गयी, जैसे घन में विजली प्रवेश कर जाती है।

क्या आश्चर्य की वात है कि पहले उसने भगवान् को अपने भीतर प्रवेश कराया, फिर भगवान् के शरीर में स्वयं प्रवेश कर गया! उस समय भेरी का रव उच्च स्वर से घोष करने लगा, दुन्दुभियाँ डिमडिमाने लगीं, गन्धर्व-विद्याधर गीत गाने लगे, मुनिवृन्द स्तोत्र उच्चारण करने लगे। ऐसी घोर ध्वनि छा गयी कि आकाशवासी क्षणमात्र के लिए वहरे-से हो गये। किन्नरों की सुन्दरियाँ गाने लगीं। उर्वशी आदि अप्सराएँ नाचने लगीं। चारों ओर मृदङ्ग वजने लगे। देवी-देवता कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा करने लगे। स्वर्गलोक आनन्द से भर गया। उच्च स्वर से डमरू वजाकर ब्रह्माण्ड को शब्दायमान करते हुए शङ्करजी अट्टहास करके ताण्डव नृत्य करने लगे और उनके ललाट पर शोभित चन्द्रमा से अमृत-रस चूने लगा, जिसके गिरने से मुण्डमाला के सभी सिर शरीर धारण कर सचेतन हो उनके साथ ही नाचने लगे।

अव मृत्यु के मुख से वापस आये हुए वे सब गोप-वालक त्रिभुवन को आनन्दित करनेवाले सुकुमार व्रजराजकुमार को आनन्द के वेग से आलिङ्गन कर-करके पूछने लगे : 'हे सखे! हे सखे!! विष की महाज्वाला से हम लोग तो जल गये थे न, तुमने कैसे जिला दिया?'

श्रीकृष्ण कहने लगे : 'मैं विष को दूर करने की ओषधि जानता हूँ, उससे ही तुमको जिला दिया है।' यह सुनकर वे सखा परम प्रेमवश हो श्रीकृष्ण का पुनः आलिङ्गन करने लगे और बोले : 'हे सखाओ! भैया! देखो, श्रीकृष्ण ने जैसे वक को मार डाला था, ऐसे ही अघासुर को भी मार दिया। हम लोग

चड़े ज्योतिषी हैं। हमने पहले ही कह दिया था न कि जैसे वक को मारकर हमें जिलाया था, वैसे ही अघासुर को मारकर भी ये हमें जिला देंगे !'

पुलिन-भोजन-लीला

तत्पश्चात् अलौकिक चरित्र करनेवाले भगवान् ने सबको आज्ञा दी कि 'वछड़ों को इकट्ठा करो। तुम लोग बछड़ों को भूलकर खेल में लग जाते हो।' सुनते ही सबने वछड़े इकट्ठे करके यशोदाजी के दिये हुए मधुर व्यञ्जनों से भरी विहङ्गिकाएँ भी इकट्ठी कर लीं। तदनन्तर अपने स्वर्णवर्ण पीताम्बर से करुणापूर्वक वछड़ों को पोंछते हुए श्रीकृष्ण ने उन्हें सुन्दर घासवाले स्थल पर चरने के लिए छोड़ दिया और सखाओं के प्रति प्रेम दरसाते हुए सुन्दर सरस पुलिन देखकर कहने लगे : 'भाइयो ! देखो, यह कितना रमणीय नयनानन्द देनेवाली पुलिन है। यह मैया की गोद के समान सुखद है। इसे आज तक किसीने नहीं देखा था। आज यहीं पर भोजन करेंगे। वहाँ वछड़े आनन्द से चरें, यहाँ हम लोग सुख से भोजन करें।'

सव सखा कहने लगे : 'हम लोग भी भोजन की वात वड़ी देर से सोच रहे हैं। देखो, वहुत समय हो गया है। अधिक समय वीतने पर भोजन करना ठीक नहीं होता।' श्रीकृष्ण ने कहा : 'ठीक है, भोजन करने के लिए जगह ठीक करो।'

घने वृक्षों की छाया में जहाँ यमुना-पुलिन से कमलों का पराग उड़-उड़-कर आ रहा था, मतवाली वना देनेवाली सुगन्धपूर्ण वायु वह रही थी, वहीं सव स्थिर होकर भोजनार्थ स्थान की रचना करने लगे। सहस्रदल कमल के सदृश मण्डली वनाकर वे उस दूध से धोये अथवा चाँदी के सदृश पुलिन पर शोभित होने लगे। किञ्जल्क केसर के सदृश तथा विलक्षण स्वर्णकान्ति के समान सुन्दर पीताम्वर धारण करनेवाले भगवान् सखाओं के मण्डल के वीच सुशोभित होने लगे। कङ्कण की तरह तीन पंक्तियोंवाली आभा दर्शित होने लगी।

उन प्रेमी सखाओं के मध्य श्रीकृष्ण ऐसे विराजमान हुए कि उनका मुख-कमल प्रत्येक सखा के मुख की ओर दर्शित होता था।* प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि श्रीकृष्ण का मुख मेरी ओर है। इस अभिमान से प्रत्येक सखा मस्त हो रहा था। वेदों के 'सवतोऽक्षशिरोमुखम्' वर्णन का प्रत्यक्ष अभिनय दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा : 'सखाओ ! अब भोजन-सामग्री परोसो।' तव वे सब छीकों से निकाल-निकालकर पत्तों के पात्रों में भोजन रखने लगे।

* अनन्तप्रकाश। गीता १३-१३।

कोई सखा बड़े-बड़े फूलों को लाकर पात्र बनाने लगा। किसीने लताओं के टुकड़ों का पात्र बनाया, कुछ ने पत्थरों, कलियों तथा उत्तम फलों को पात्र बना लिया। किसीने अपने दुपट्टे में ही परोसवा लिया। किसीने सुन्दर सौभाग्य लक्षणोंवाली रेखाओं से अङ्कित अपने हाथों से ही पात्र का काम चला लिया। किसीने अपनी जङ्घाओं पर ही लड्डू आदि रख लिये। भोजन-सामग्री आगे परोसी जा चुकी तो अपने-अपने पात्रों में से थोड़ा लेकर सखा-गण श्रीकृष्ण के आगे थोड़ा-थोड़ा रखने लगे। तब भगवान् भी मधुर-मधुर वाणी बोलते हुए मीठी सुधा-धारा से धौत दन्तों से और अधरों से छवि छिटकाते हुए भोजन करने लगे। वे स्वयं हँसते तथा सखाओं को हँसाते हुए परम कौतुक करते जाते थे।

उनके कटिप्रदेश में मुरली, बगल में दबा वेंतशृङ्ग, बायें हाथ में दधि-भात और उँगलियों पर खट्टा अचार रखा था। ऐसी अद्भुत शोभा देख देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि सब देवी-देवता उस कौतुक को देखने लगे। सब लोग अपना-अपना भोजन करते हुए स्वाद का बखान करने में चतुरता दिखाने लगे। एक-दूसरे का हँसाने के लिए हास्यभरी कथाएँ कहते हुए भोजन करते समय उनका दृश्य हृदयग्राही हो गया।

ब्रह्ममोह, वत्सहरण

इसी समय ब्रह्माजी महान् बुद्धिमान् होते हुए और उस अघासुर का वधरूपी वैभव देखते हुए भी आश्चर्य में डूब गये और सोचने लगे : 'यह परमेश्वर कैसा है, इसकी परीक्षा करनी चाहिए!' दुर्भाव मन में आते ही मोह ने उनको घेर लिया। जैसे कोई समुद्र की गहराई की थाह लेने को छोटी-सी लकुटी डालने की चेष्टा करे, वैसे ही ब्रह्माजी ने भी अपने मोह से हँसने योग्य चेष्टा की। जैसे कोई कूप समुद्र का तथा खद्योत (जुगनू) सूर्य का पता लगाने चले, ऐसे ही पितामह ने अपनी माया से मायापति को भुलाना चाहा और चरते हुए बछड़ों का माया से हरण कर लिया।

उधर ग्वाल-बाल भगवान् के साथ हँसते हुए मधुर कथाएँ कहते हुए नाना प्रकार के खेलों में सुध-बुध भूलकर आनन्द मना रहे थे। किसीको बछड़ों की सुधि ही नहीं थी। जब उनका स्मरण आया, तब जहाँ बछड़े चर रहे थे, उधर देखकर श्रीकृष्ण ने सखाओं से कहा : 'भाई, बछड़े सब कहाँ चले गये?' सबने चकित होकर देखा और बोले : 'हे कृष्ण! हे सखे! बछड़े तो सब नहीं दिखलाई दे रहे हैं। सम्भवतः नवीन तृणाङ्कुर की लालसा से चरते

हुए वे वहुत दूर निकल गये होंगे ।' तव श्रीकृष्ण अपने मुखचन्द्र में मधुर मोदक रखते हुए बोले : 'हो सकता है, किन्तु सखाओ ! हम लोगों ने बड़ी भूल की, जो वत्सों का ध्यान नहीं रखा ।' ऐसा कहकर हाथ में भोज्य पदार्थ लिये हुए ही खड़े हो गये । कटि में वेंत, शृङ्ग और मुरली खुसी हुई थी । वे वोले : 'मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ ।'

फल-फूलों से सुशोभित चमत्कारमय उस वनप्रदेश में श्रीकृष्ण इधर-उधर विचरने लगे । अपने वछड़ों के खुर-चिह्नों से रञ्जित पृथिवी का अवलोकन करते हुए वे आगे वढ़ते चले गये और तृणों को देखकर सोचने लगे कि 'यहीं तो वछड़े चर रहे थे, यहाँ से भला वे कहाँ अदृश्य हो गये ?' इधर वे इस प्रकार विस्मित हो ही रहे थे कि उधर ब्रह्माजी ने ग्वाल-वालों को भी चुरा लिया ।

श्रीकृष्ण ने आकर देखा तो ग्वाल-वाल भी नहीं थे। उन्होंने अपनी सर्वज्ञता से जान लिया कि यह माया ब्रह्माजी ने फैलायी है । भगवान् श्रीकृष्ण ने तत्क्षण विलकुल वैसे ही दूसरे सखा और वछड़े वना लिये । जिसका जैसा रूप, गुण, वुद्धि, वाणी, भाव आदि था, वैसे ही सव दिखाई पड़ने लगे । शृङ्ग, विहङ्गिका, भूषण, मुरली, लकुटि आदि भी ज्यों की त्यों सुशोभित होने लगीं । आनन्दघन सच्चिदात्मक प्रभु ने स्वयं ही यह लीला सम्पादित की । यद्यपि वे अखिल कार्य-कारण से भिन्न नहीं हैं, तथापि लीलोपाधि से भिन्न हो जाते हैं । अनिर्वचनीय होने के कारण भगवान् के द्वारा रची सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से विलक्षण और उत्तम होगी ही ।

गोप-कुमारों की आकृति धारण करनेवाले भगवान् सन्ध्या होने पर आत्म-स्वरूप वत्सों को लेकर भवन की ओर चल पड़े । हृदय को मन्थन करनेवाली उनकी वंशी की ध्वनि सुनकर सव आत्मभूत सखागण वंशी एवं शृङ्ग वजाते वछड़ों को घेरकर व्रज में ले आये । अपने-अपने वालकों को देखकर सब माताओं को ऐसा हर्ष हुआ, जैसा श्रीकृष्ण के दर्शन से होता था । जितना वे श्रीकृष्ण से प्रेम करती थीं, उतना ही अपने पुत्रों पर करने लगीं । अपने हृदय में उन्हें अद्‌भुत चमत्कार का अनुभव होने लगा । उस दिन जब गोपियों ने अपने-अपने पुत्रों को स्नान-भोजन कराया तो उनके पुत्रों ने नित्य की भाँति दिन में किये श्रीकृष्ण के चरित्रों का वर्णन नहीं किया ।

वछड़े भी जब नित्य की भाँति अपनी माताओं के पास जाकर दुग्ध पीने लगे तो गौओं को अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ और वे गद्‌गद होकर उन्हें चाटने लगीं ।

श्रीकृष्ण भी जब अपने भवन में आये तो माता ने उनको दोनों हाथों से उठाकर अतिस्नेह से हृदय से लगा लिया। उनके मृदुल मुख-कमल में अपने नेत्र लगाकर उनकी छवि का पान करते हुए वे तृप्त न हुईं। फिर अतुल वात्सल्य की पताकास्वरूप यशोदाजी ने श्रीकृष्ण के कोमल अङ्गों में तैल-उवटन आदि लगाकर स्नान कराया, वस्त्राभूषण पहनाये और नाना प्रकार की सायङ्काल की भोजन-सामग्रियाँ खिलाकर दूध के फेनसदृश कोमल शय्या पर शयन करा दिया।

प्रातःकाल सूर्य उदय होने पर वन-गमन के लिए सखाओं ने भोजन आदि करके तैयारियाँ कीं। सखा सव नन्दजी के आँगन में आकर इकट्ठे हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण माता-पिता का लाड़-प्यार पाकर सखाओं के सहित गये और आत्मस्वरूप सव वछड़ों और अपने वालरूप सव गोप-सखाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए नित्य की तरह वन में रमण करने लगे।

इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गये। एक दिन वलरामजी के सहित श्रीकृष्ण आत्मरूप वछड़े चराते हुए गिरिवर के निकट गये। गिरिवर के ऊपर बड़े-वड़े गोपाल भी गौएँ चरा रहे थे। गौओं ने जव दूर से अपने वछड़ों को देखा, तो अत्यन्त प्रेमातुर होकर पक्षियों की तरह वेग से दौड़कर उनके पास आ गयीं। वड़े-वड़े गोपालों ने डण्डों से उन्हें बहुत रोकना चाहा, पर नहीं ही रोक सके। सम्पूर्ण गौएँ नवोदित वात्सल्य से दौड़कर हाँफती 'हम्वा-हम्वा' करती उत्साह से भरकर आ गयीं और प्रेम से वछड़ों को चाटने और दूध पिलाने लगीं। वड़े-वड़े गोप उनको रोककर जव थक गये तो उनके पीछे-पीछे वे भी दौड़े चले आये। गौओं को न रोक सकने के कारण उन्हें वड़ा दुःख हुआ और वे वालकों पर वहुत क्रोधित हुए। बालकों को डाँटने की इच्छा से वे समीप आये तो सही, किन्तु वालकों को देखते ही उनमें गौओं से अधिक वात्सल्य उमड़ पड़ा। वालकों को दोनों हाथों से उठाकर गोपों ने हृदय से लगा लिया, उनका सिर सूँघने लगे, नेत्रों से अश्रु वहाने लगे और चित्रवत् खड़े रह गये।

यह दृश्य देखकर श्री वलरामजी को वड़ा आश्चर्य हुआ। वे शङ्कित हो उठे। मन ही मन विचारने लगे कि आखिर वात क्या है? व्रज की गौओं का इतना अधिक वात्सल्य तो कभी देखने में नहीं आया था। देखो! वछड़ों ने दुग्धपान छोड़ दिया है, फिर भी उनके प्रति गौओं का इतना अधिक प्रेम है और गोपालों को देखो, कैसे क्रोध से आये थे, पर इनको देखते ही सारा क्रोध प्रेम में वदल गया। यह तो मुझे भी मोह में डालनेवाली कोई माया जान पड़ती

है। यह मेरे प्रभु की ही माया प्रतीत होती है। मेरे आगे और कोई दैवी-आसुरी माया तो अपना प्रभाव दिखा नहीं सकती, क्योंकि मैं भगवान् का अग्रज हूँ।

वे माया-चक्र-चूडामणि भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर पूछने की इच्छा करने लगे और निकट आकर बोले : 'भैया! यह क्या आश्चर्य है! मेरी बुद्धि काम नहीं करती। क्या ये सखा और वत्स कोई देवता और मुनि हैं अथवा और कोई रहस्य है? तुम सब जानते हो, किन्तु हमसे भी छिपा रखा है! इसमें क्या रहस्य है, बतलाओ! बतलाओ न?' बलरामजी के इस प्रकार हँस-हँसकर पूछने पर यशोदाकुमार ने आदि से अन्त तक की सारी कथा उन्हें कह सुनायी।

इधर एक वर्ष व्यतीत हो गया, उधर ब्रह्माजी को अपने लोक में क्षणमात्र ही मालूम हुआ। भगवान् की महिमा देखने के लिए जो बछड़े और ग्वाल-बाल चुराये थे, उनके वियोग में ब्रज में क्या बीती होगी, यह देखने के लिए ब्रह्मा ब्रज में आ पहुँचे। आकर क्या देखते हैं कि ग्वाल-बाल और गो-वत्स पहले की ही तरह ब्रज में क्रीड़ा कर रहे हैं। ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि मेरे लोक से ये सब यहाँ कैसे आ गये? ये सब वही हैं अथवा कोई और हैं? चकित होकर पुनः अपने लोक में जाकर देखा तो वहाँ भी वैसे ही बछड़े और ग्वाल-बाल देखकर आश्चर्य में भर गये। सोचने लगे कि इनमें कौन सच्चे हैं, कौन झूठे! जब निश्चय नहीं हुआ तो उनका सारा गर्व गलित हो गया! परम मायावी भगवान् पर अपनी माया चलाने के कारण वे अपने को धिक्कारने लगे कि मैंने यह बड़ा अपराध किया। उनकी श्री तथा कान्ति नष्ट हो गयी। अनभिज्ञता के कारण वे अपने चरित्र से आप ही दुःखी हुए, अपनी ही माया से आप ही बँध गये। विकलता से कहने लगे : 'ये बालक-बछड़े मिथ्या हैं या सत्य हैं!' फिर यहाँ-वहाँ देखकर जब ब्रज के बालकों को भलीभाँति देखने लगे, तब वे बालक-बछड़े सबके सब उन्हें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, चतुर्भुज, अनन्तानन्दचिद्घनमूर्ति, करोड़ों सूर्य-चन्द्र के समान प्रकाशवाले दिखाई पड़े। प्रत्येक के रोमकूप में स्वेद-कण-सदृश ब्रह्माण्डरूपी भाण्ड (पात्र) लीला से डूबते-उतराते थे। सब श्यामवर्ण, कुण्डल-मणिधारी, मणिमय मुकुट, केयूर, हार, किङ्किणी, नूपुर तथा तुलसी की माला धारण किये थे। उनकी वनमालाओं पर सुगन्ध से मत्त भ्रमर झङ्कार रहे थे और सबके सब बिजली के सदृश पीताम्बरधारी थे। ब्रह्मा ने देखा कि एक ब्रह्मा, दो अश्विनी-कुमार, तीन गुण, चार वेद, पाँच तन्मात्राएँ, छह ऋतुएँ, सात ऋषि, अष्ट

सिद्धियाँ एवं वसु, नौ निधियाँ एवं ग्रह, दश विश्वेदेव, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, त्रयोदश इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेवता, चतुर्दश मनु, पञ्चदश तिथियाँ तथा षोडश विकार मूर्तिमान् होकर प्रत्येक ग्वाल और वत्स की सेवा कर रहे हैं। भगवान् ने अपनी कृपा की उल्लसित तरङ्ग से उन्हें सौन्दर्य-सम्पदा दिखलायी।

ब्रह्माजी देखकर विचारने लगे कि ये सब निश्चय ही भगवान् ही हैं। तदनन्तर फिर जब ब्रह्माजी ने देखा तो वे सब अन्तर्धान हो गये और श्याम-सुन्दर पूर्ववत् दधि-ओदन का ग्रास हाथ में लिये अपने सखाओं की खोज में वन में इधर-उधर विचरने लगे। मुरली, वेंत, शृङ्ग कमर में विराजमान हैं। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'[1] के अर्थसदृश मूर्तिमान् भगवान् को देखकर हारे हुए के समान ब्रह्मा ने दीन भाव से चतुर्मुख शिखरोंवाले कनक पर्वतसदृश पृथिवी पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया, पर अभूतपूर्व गाम्भीर्य धारण किये हुए विविध शक्तिरूपी नटियों के नाट्य-सूत्रधार सकलगुणाधार भगवान् तमालतरु-अङ्कुर-सरिस निश्चल ही रहे।

ब्रह्मकृत स्तवन

भगवच्चरणकमल का स्पर्श करने के लिए दण्डवत् प्रणाम करते ब्रह्मा के चारों मुकुटों में जटित करोड़ों मणियों की वेग से आती किरणों को भगवान् के चरण-नखों के घनीभूत कान्तिप्रवाह ने मानो अनधिकारी होने के कारण पास नहीं आने दिया। जब वे चरणों का स्पर्श न पा सके, तब बार-बार उठकर पुनः-पुनः दण्डवत् प्रणाम करने लगे और अपराध क्षमा कराने की भावना दिखलाने लगे। फिर स्तुति आरम्भ की : 'हे ब्रजपुरन्दर-नन्दन ! जय हो, जय हो ! चिदानन्दज्ञान रसमय, घनरुचि,[2] मोरपङ्ख और फूलों के गुच्छे तथा गुञ्जाओं की माला धारण करनेवाले ! चञ्चल वनमाला धारण करनेवाले ! कमल हाथ में लिये वंशी-शृङ्ग बजानेवाले ! आपके अद्भुत विग्रह की जय हो ! आपने मुझ पर अनुग्रह करने के लिए विलक्षणता से अद्भुत इन बछड़ों और ग्वाल-वालों का वेष धारण किया है। मैं आपकी महामहिमा का किञ्चित् अंश भी नहीं समझ सकता। चारों भुजाओं में शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये आनन्दघन, रसमय, सम्पूर्ण ऐश्वर्यवाले, आप अजित भगवान् हैं। आपने ललित गोपरूप द्विभुज मूर्ति धारण की है। आप प्रकृति के कारण हैं।

अत्यन्त रसवर्षिणी आपके चरणकमलों की भक्ति छोड़कर जो ज्ञान के

१. एक अद्वैत ब्रह्म ही है।

२. मेघ की-सी कान्ति।

लिए प्रयत्न करते हैं, वे अत्यन्त श्रम करके भी अणुमात्र भी परम फल नहीं प्राप्त कर पाते। शीत और ताप से तपकर भी परम फल नहीं पाया जाता।

कृपा-सागर-तरङ्गोंवाले हे नाथ! जो ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास छोड़कर आपके चरणकमलों में दृढ़ता का भाव धारण करते हैं, आप उन भक्तों के वश में हो जाते हैं। वहुत-से परमहंस महामुनीन्द्रगण पहले आपके चरण-कमलों में अनुराग करके, आपके चरितामृत का श्रवण-कीर्तन-चिन्तन करके आनन्दपूर्वक आपके सनातन धाम को प्राप्त हो गये हैं। पुण्यों द्वारा आपकी महिमा अमलात्मा मुनियों के द्वारा भी नहीं जानी जा सकती। आपका अनुभव केवल परम अनन्य भक्ति से ही सुलभ है, और दूसरा कोई उपाय नहीं है।

हे गुणसागर! आपके गुणों को कौन गिन सकता है? आप भक्तों के हित के लिए अवतीर्ण हुए हैं। पृथिवी के रजःकण और तुषार-कण चाहे सब गिन लिये जायँ, किन्तु आपका एक गुण भी कोई नहीं गिन सकता। आपका अनुग्रह प्राप्त करने को लक्ष्यकर ही मनुष्य अपने किये कर्मों से उत्पन्न दुःख-सुख को भोगता हुआ मन-वाणी-कर्म से आपके चरणकमलों का अनुसन्धान करता हुआ आपके धाम में जाने का अधिकारी होता है।

हे नाथ! अब मेरी अज्ञानता सुनिये! आपके किसी भी प्रकार के भक्तों में मेरी गणना नहीं है। हे प्रभो! मैं आपकी माया से स्वयं मोहित हो रहा हूँ। महाअग्नि की तनिक-सी चिनगारी क्या अग्नि की तुलना कर सकती है? नहीं कर सकती। हम लोग सहज ही रजोगुण से उत्पन्न हुए हैं। यदि मान बैठें कि हम निर्लेप हैं, अपने को ईश्वर मान रहे हैं तो यह अहङ्कार वास्तव में गुरुतर अपराध है। मुझ कुमति का अपराध क्षमा कर मुझ पर कृपा कीजिये। आपके एक रोम-कूप में महत्, अहङ्कार, पृथिवी, आकाश, वायु, जल तथा अग्नि से पूर्ण ब्रह्माण्ड-भाण्ड भरे पड़े हैं। हे ईश्वर! आपकी ऐसी विशालतम ईश्वरता ने मुझे मोहित करने को सात बालिश्त का रूप धारण किया है।

माता के उदर में बालक पैर चलाता है तो माता का यद्यपि कष्ट होता है, पर माता अपराध नहीं मानती, वैसे ही आपके उदर में निखिल ब्रह्माण्ड विराजमान हैं। हे विभो! आप भी क्षमा करें। आप ही शेषशायी भगवान् हैं, इसलिए हमारे पिता हैं। पिता वात्सल्य के कारण पुत्र को अपराध करने पर भी नहीं त्यागता। सम्पूर्ण प्राणियों को आप प्रकट करनेवाले हैं, इसलिए आपका मैं पुत्र हूँ। अपने पुत्र पर करुणा करके मेरा अपराध क्षमा कर दीजिये।

आपका ऐश्वर्य अतर्क्य है, जल में स्थित आपका सत्य स्वरूप जल से

भिन्न भी है[1] और नहीं भी है। मैं पहले उस रूप को देखकर भी नहीं देख पाया था[2]। यहाँ भी आपकी इस महिमा को आपकी कृपा से ही देख सका हूँ। हे प्रभो ! अब यह जगत् कैसे असत् माना जा सकता है, क्योंकि यह आपके उदर से प्रकट होता है। वाह्य दृष्टि से असत्य देखा जाता है, परन्तु आप सच्चिदानन्दघन हैं, अतः आपके उदर-गत होने से जगत् जड़-चैतन्य-मिश्रित-सदृश लगता है। आपकी कृपा से ही जगत् को अपने सहित मैं आपके उदर में देखता हूँ। आपकी प्रतिमा और आपकी छाया भी सत्य है। इसलिए बहिर्मुख जगत् मायिक नहीं कहा जा सकता। सत्-असत् का निश्चय किसी तरह बुद्धि से होता नहीं, इसलिए यह आपकी विनोद-कला ही कही जायगी।

हे प्रभो ! हमने जो अभी आपका यह अद्भुत ऐश्वर्य देखा कि आपने अनेक विष्णु-मूर्ति (चतुर्भुजरूप) धारण किये और फिर एक रूप धारण कर लिया, यह हम अपना भ्रम समझें अथवा आपकी अनुकम्पा से आपका अद्भुत अनुभव हुआ मानें ? आपकी ईश्वरता त्रिभुवन को विमोह में डालनेवाली है, सच्चिदानन्दघनरूप से बहुत रूप धारण करनेवाली आपकी सत्यता 'योगियों' तक को भेदभाव दिखलाती है। पहले आप एक थे, फिर स्वयं ही अनेक सखा और वछड़े-रूप बन गये। फिर वही आप उतने ही चतुर्भुजरूपधारी हो गये, फिर एक हो गये। ये सब रूप आपके अंश ही हैं, माया नहीं।

आपकी इस अद्भुत महिमा को अज्ञानी लोग नहीं समझ पाते। उनके मनरूपी छिद्र में आपकी प्रतिमा पृथक्-पृथक् प्रवेश करती है अर्थात् अद्वितीय आपको भी वे मोहवश अनेक देखते हैं। सृष्टि, रक्षा और विनाश के लिए अकेले आप ही त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—होकर लीला करते हैं। आपकी मायावश लोग इन रूपों में भेद देखते हैं।[3]

आपका अवतार सुर-मुनि मनुष्यों में सन्तों का हित करने और असन्तों को दण्ड देने के लिए होता है। वे आपके अवतार सम्पूर्ण अंश से ही हैं, जैसे शरीर के हाथ-पैर आदि शरीर से भिन्न नहीं कहे जा सकते, इसी प्रकार यह आपका अवतार है।

---

१. भेदाभेद सिद्धान्त।

२. आपकी आज्ञा पाकर सौ वर्ष तप किया, तब कहीं आपकी कृपा से देख पाया था।

३. अपनी ईश्वरता का सञ्चार कर आप छोटे जीव को भी ब्रह्मा बना देते हैं अर्थात् हमारी शक्ति आपसे आगन्तुक है। हम पराधीन हैं, स्वतन्त्रता का अहङ्कार हमारी मूढ़ता का सूचक है।

आप ही परात्पर ब्रह्म हैं, सकल-शक्ति-समूहमय हैं, परम ऐश्वर्यशाली अखिलेश्वर-मुकुटमणि हैं, दुर्घट घटना घटानेवाले, विघटन-सुघटन-महिमावाले आप हम जैसों की वाणी के विषय नहीं हो सकते। आपके चरित्रों को कौन जान सकता है ? अणुमात्र भी कोई नहीं जान सकता। हे परमोत्तम भगवन्! हे परात्मतम ! योग को जाननेवालों में श्रेष्ठ ! किस प्रकार, कितनी, कब, कैसी योग-कलाओं से लीलापूर्वक आप विहार करते हैं, यह ब्रह्मा और शङ्कर भी नहीं जान पाते।

हे प्रभो ! यह अखिल जगत् यद्यपि नश्वर है, अपार दुःख देनेवाला है और सदा रस-रहित है, परन्तु आप जो रसमय ज्ञानघन नित्यरूप से प्रकट होकर इसमें खेलते हैं, इसलिए आपके जितने-जितने चरण पड़ते हैं, उतना ही अधिक यह वैकुण्ठ-सदृश सत्य प्रतीत होता है। आप सदा दिव्य पुराण-पुरुष, स्वयं आत्मप्रकाश, समस्त ऐश्वर्योंवाले, आनन्दघन, चैतन्यरस, विलास-विशेषमय, अपार करुणामय हैं। आपके कृपा-कटाक्ष का मैं भाजन हूँ। आप गुणनिधि हैं। मेरी यही विनय स्वीकार हो कि आपकी उपासना के लिए आपके चरण-कमलों में मेरा मनरूपी मत्त भ्रमर निमग्न रहे।

आपके जिस रूप से रस और कान्ति प्रकट होती है, उसका भजन सद्गुरु कृपा करके किसी जिज्ञासु को बता देते हैं। शुद्धबुद्धि होकर आपके तत्त्व को आपके चरणाम्बुजों की कृपा से ही कोई सुकृती जान पाता है, नहीं तो निगमागम, अखिल-शास्त्र-विचार के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी भी आपको नहीं जान पाते। इसलिए मैं यही बहुत बड़ा भाग्य समझता हूँ कि आपके भक्तों की चरण-रज कभी किञ्चित् भी प्राप्त हो।

अपने व्रजजनों के जाति, कुल, शील, धन, स्वजन आदि सब आप ही हैं, वे धन्य हैं, जिन्होंने आपके चरण-कमलों की वह रज प्राप्त की है, जिसे वेद भी ढूँढ़ते हैं। क्या मेरा भी कभी यहाँ (व्रज में) गुल्म, लता, पशु, पक्षी आदि के रूप में जन्म होगा ? क्या मैं भी आपके चरण-कमलों की रज का अधिकारी हो सकूँगा ? अहो ! आश्चर्य है ! कितना अपार पुण्य इन व्रजवासियों का है, जिन्होंने सच्चिदानन्दघन परमपुरुष पूर्ण ब्रह्मरूप आपको परम प्रिय मित्र-सुहृद्रूप में पाया है। हे जगत्पति भगवन् ! मैं किन शब्दों से यहाँ की गौओं और गोपियों को धन्यवाद दूँ, जिन्हें आपने स्तनों का दुग्धपान करके और वत्स तथा गोपालों का रूप धारण करके कृतार्थ किया है।

हे मनुष्य-आकृति धारण करनेवाले प्रभो ! इन व्रजवासियों की इन्द्रियों की अधिष्ठात्री देवता होने से हम लोग भी बड़े भाग्यवान् हैं, क्योंकि ये लोग

जब अपनी इन्द्रियों से आपके पाद-पद्मों के मकरन्द का अनुभव करते हैं तो इनका उच्छिष्ट हमें भी प्राप्त होता है।

जब स्तनों में विष लगाकर माता का वेष धारण कर आनेवाली पूतना को भी आपने उसके भ्राता के सहित अपना धाम दे दिया तो अपना धन, अन्न, जीवन आदि सब कुछ आपको अर्पित कर देनेवाले इन व्रजवासियों को आप कौन-सा वर देंगे, यह मेरी बुद्धि में नहीं आता!

हे प्रभो! लोभ, क्रोध, मद, मत्सर, काम आदि तव तक ही लोगों के मन में मलिनता फैलाते रहते हैं और तव तक ही गृह कारागार के समान लगता है, जब तक आपके चरण-कमलों में मनुष्य का मन नहीं लग जाता।

जो आपकी महिमा का अत्यन्त ऐश्वर्यतापूर्ण वर्णन करते हैं, अहा-हा! वे बड़े भाग्यशाली हैं, वे अत्यन्त चतुर बुद्धिवाले हैं। जो विवाद नहीं करते, वे भी धन्य हैं; क्योंकि आपकी महिमा मन-वाणी-शरीर से परे है।

जो लोग तत्त्व के विषय में विवाद करते हैं, उनकी परम मूर्खता ही समझनी चाहिए। भगवत्-तत्त्व का ठीक-ठीक निश्चय करना चपलता मात्र है। मैं तो अनुमान करता हूँ कि आपकी दीन-वन्धुता से ही मैं ब्रह्मा के पद पर स्थापित किया गया हूँ। हे अखिल जगत्-जनों के हृदय के जाननेवाले ज्ञानघन रसमय प्रभो! आप मेरे हृदय की भी जाननेवाले हैं, इसलिए हे देव! आपके चरणों में मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति कर ब्रह्माजी चले गये।

ब्रह्माजी के चले जाने पर सुन्दर विमल नवीन तृण-अङ्कुरवाली पृथिवी पर आनन्दपूर्वक उत्साह से चरते हुए वत्स-वृन्द पूर्ववत् विचरते हुए दिखलायी देने लगे। तब कोमल कल-कल गम्भीर हुङ्कार-कलित चलने का सङ्केत करते हुए छोटी-छोटी लकुटी लिये आश्चर्य उत्पन्न करानेवाले मनुष्य-आकृति परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र ब्रह्मा को मोहित करने के उपरान्त रमणीय रहस्यमय मुस्कान से मुस्कराते हुए पहले के भोजन-स्थल पर वछड़ों को लेकर आये।

सब बलवानों के मुकुटमणि को आते देखकर सखाओं को भी उनके न देखने का वर्षभर का अन्तर आधे क्षण के समान मालूम हुआ। वे कहने लगे: 'हमने एक कौर भी तुम्हारे जाने के बाद नहीं खाया। (भगवान् की महिमा से ही उनको इतने बड़े समय का सही पता नहीं चला।) हे श्रीकृष्ण! आओ, आओ!' ऐसा कहते हुए अपने मुख-कमल के मधुर अधरों के बीच से दाँतों की उज्ज्वल किरणें छिटकाते हुए पृथिवी-भारहारी श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेरकर वार्तालाप करने लगे। तब दनुज-दमन श्यामसुन्दर भी प्रणयपूर्वक

अत्यन्त मधुर वाणी से प्रणय-लोभी सखाओं से बोले : 'प्यारे सखाओ ! तुम्हारा मुझ पर अपार प्रेम है । तुम्हारी सहृदयतारूपी मकरन्द का ही मैं आनन्द लेता हूँ ।' सखागण चारों ओर से अखिल तापों के नाशक श्रीकृष्ण को घेरकर उनके कङ्कण-मण्डित कोमल करों पर अपने करों से भोज्य पदार्थ रखने लगे और कहने लगे : 'यह भोजन शीघ्र समाप्त करो । बड़ा विलम्ब हो गया है ।' तब श्रीकृष्ण ने नाना प्रकार की हास्य रस की कथाएँ कहकर उनको कौतुक में डाल दिया । वे सब हँसते-हँसाते भोजन करने लगे और वन-भोजनरूपी उत्सव इस प्रकार समाप्त किया गया ।

भोजन-लीला समाप्त करने के पश्चात् जब सूर्यदेव तपते हुए ललाट पर आ गये (अर्थात् मध्याह्न हो गया), तब सखाओं के साथ नाना प्रकार के विनोदमय खेल खेलकर श्रीकृष्णचन्द्र विश्राम करने के लिए ललित वृक्ष की छाया में आ बैठे और गले में शोभित होते विशाल सुन्दर हारवाले मनमोहन प्रिय सखा की जङ्घा को तकिया बनाकर सखाओं के द्वारा बनायी पल्लवों की शय्या पर सो गये । सखागण प्रेमपूर्वक उनको प्रसन्न करते हुए विश्राम करने लगे ।

अब भुवनभास्कर शीघ्रतापूर्वक पश्चिम दिशारूपी वनिता के प्रेम से मानो आकर्षित होकर कमलिनियों को मलिन करते हुए और आकाशरूपी सागर में प्रकाशरूपी नौका पर चढ़कर शीघ्रता से जाने लगे । वंशी, शृङ्ग आदि बजाकर दिशाओं को गुँजाते हुए अपने भवन को जाने के लिए अपने हृदयाधिनाथ के साथ सखावृन्द सब बछड़ों को इकट्ठा कर चल पड़े ।

चलते समय मार्ग में अघासुर का शरीर देखकर उन्हें बड़ा कौतुक हुआ और वे परस्पर कहने लगे : 'खेलने के लिए यह बड़ा सुन्दर गुफा का स्थान बन गया है' और कष्ट-हरण करनेवाली ओषधि के समान श्रीकृष्ण को आगे करके नन्दग्राम के समीप आ पहुँचे ।

वहाँ माता का स्तन-पान करने के लिए उत्सुक सभी बछड़े आगे के चरणों को उठाकर शीघ्रता से ऐसे दौड़े, जैसे रण में जाने को योद्धा दौड़ते हैं । उनकी सहज गति भी अत्यन्त त्वरा दरसा रही थी । ग्राम में प्रवेश करने पर व्रजराजकुमार की मधुर-मुरली-ध्वनि मधु बरसाते हुए सब लोगों के कर्णों को परमानन्दकारी मधुरिमा का आस्वादन कराने लगी । समस्त व्रजवासियों के प्राण मानो फिर लौट आये । स्नेह तथा दर्शन की उत्कण्ठा से भरे उनके हृदय उस मुरली-नादरूपी रस्सी से खिंच गये । सब उस मार्ग की ओर दौड़े, जिधर से श्रीकृष्ण आ रहे थे ।

श्रीकृष्ण के सखाओं ने अपनी-अपनी माता के पास जाकर अघासुर के मुख में चले जाना, फिर श्रीकृष्ण का अघासुर को मारना और अपने को पुनर्जीवन देना आदि सब वर्णन किया। माताओं ने अत्यन्त विस्मय माना। कहने लगीं : 'क्या यह सत्य है? यह तो अति अलौकिक साहस का कार्य है।' माताएँ स्वस्त्ययन आदि करने लगीं। बालकों ने आरम्भ से अन्त तक विस्तार से कह सुनाया कि हम लोग विषम विष के महाअनल में जल गये थे और हमारे चतुर-शिरोमणि सखा ने शीघ्रता से हमें तथा बछड़ों को भी जिला दिया था।

इधर यशोदाजी ने अपने बायें हाथ से श्रीकृष्ण को पकड़कर गोद में बिठा लिया और दाहिने शीतल कर-कमल से परिश्रम मिटाती उनके अङ्गों का स्पर्श करने लगीं। कहने लगीं : 'मेरा सुकुमार बालक बहुत परिश्रम करके आया है।' उन्होंने उन्हें स्नान कराया, सुन्दर वस्त्र पहनाये, सुन्दर भोजन कराया और शान्त होकर बैठने पर कहने लगीं कि 'ये कोमल अङ्ग दिन में सूर्य की प्रखर किरणें कैसे सहन करते होंगे! अभी बहुत मृदुल बालक है।' फिर करतल से अङ्ग दबाती विश्राम के लिए शय्या पर सुलाकर अपनी शय्या पर चली गयीं और योगीन्द्र-वृन्द भी जिस दुष्कर कार्य को नहीं कर सकते, उन कार्यों के करनेवाले श्रीकृष्ण की लीलाओं का चिन्तन करने लगीं।

तदनन्तर नन्दजी और यशोदाजी बातें करने लगे। नन्दजी कहने लगे : 'श्रीकृष्ण-जननी! देखो, कृष्ण का तुमने अलग भवन बना दिया और अन्य लोगों की तरह उसको भी अलग मकान में सुला दिया है!'

सुनकर यशोदाजी सहसा हँस पड़ीं और बोलीं : 'अब वह बड़ा हो गया है न?'

नन्दजी ने कहा : 'उसके अभी जनमे ही कितने दिन हुए हैं?'

यशोदाजी बोलीं : 'मेरी गोद अभी सूनी नहीं हुई। मैंने उसे अलग नहीं किया, यों ही तुमसे बातचीत करने चली आयी हूँ।'

नन्दजी ने कहा : 'मेरी अत्यन्त कोमल निर्मल वाणी सुनकर भी तुम समझीं नहीं। पुत्र होते ही अज्ञ जन उसके लिए अलग भवन आदि की व्यवस्था करने लगते हैं। पिता का सुख, पिता का धन, प्रमोद, आनन्द विशेष यही है। इसी आशय से मैंने पूछा है। तुम्हारी गोद भला सूनी कैसे हो सकती है! यह तुमने कैसे कहा?'

यह सुनकर श्री यशोदाजी मुस्कराते हुए मौन हो गयीं। श्री नन्दजी ने श्रीकृष्ण के लिए अपने धाम के सदृश ही दूसरा दिव्य धाम बनवाया।

आठवाँ स्तवक

पूर्वराग-वर्णन

अब श्रीकृष्ण की कुमार-लीला के दिन बीतने लगे और धीरे-धीरे पौगण्ड-अवस्था प्रकट हो चली। कपोलों पर का मुस्कानरूपी मधुर आसव दर्शकों को मत्त बनाने लगा। अब उन्होंने नन्दनन्दन वन में धूलि खेलना छोड़ दिया और जैसे भ्रमर पुष्पों के गुच्छे से खेलते हैं, ऐसे ही गेंद खेलने में तत्पर हो गये। आनन्दघन रस का उत्सव करनेवाले, सम्पूर्ण गुणों की खान वे अब सखाओं के साथ क्षण-क्षण पर अद्भुत लीलाएँ करते हुए पाँच संवत् व्यतीत करके धेनुपालन-लीला की इच्छा करने लगे।

शैशव-दशारूपी सहचरी के विरह से लोम-लतिका मलिनमुख हो गयी। वह बाल-चापल्य कहाँ चला गया! यह सोचते हुए सुहृद् के विच्छेद से ही शैशव-तारल्य (चापल्य) क्रमशः क्षीण हो चला। नेत्र-कमलों में ही केवल चपलता रह गयी, अन्य अङ्गों से चली गयी।

पौगण्ड-अवस्था में बालपन का उछलना-कूदना क्रमशः वैसे ही कम हो गया, जैसे नौसिखिये कवियों की कविता में पदों का अटपटा विन्यास आदि रहता है, पर बाद में सुकवि बनने पर गाम्भीर्य का प्रादुर्भाव होता है, अथवा जैसे वसन्त में नवीन तमाल का वृक्ष नव-नव पल्लवों से युक्त हो शोभा का विस्तार करता हुआ बढ़ता है।

अब श्रीकृष्ण के अङ्ग-अङ्ग में कोई विशेष ही रूप-माधुर्य तरङ्गित होने लगा। उनकी शोभा कुछ ऐसी रमणीय प्रतीत होने लगी, जैसे कुसुम-कलिका मधुर मधु-पराग से अपनी शोभा बढ़ाती खिलना प्रारम्भ करे। वे उस श्यामल लता के कच्चे फल जैसे लगने लगे, जिसमें मधुरता तो है, पर जो अभी पका नहीं है। उनका लावण्य इस प्रकार बदल-सा गया, जिस प्रकार रत्न के पास किसी दूसरा रत्न रखने से परिवर्तन प्रतीत होने लगे। मदमत्त हाथी के सदृश उनका नवीन पीन वक्षःस्थल तथा अत्यन्त भरे हुए उभरे सुडौल अङ्ग सब लोगों के लोचनों को आश्चर्य में डालने लगे।

इसी अवसर पर उधर भगवान् की एकमात्र उपमा के समान अथवा भगवान् के अवतार की पूर्णता करनेवाली और गिरिराजकुमारी की सुन्दरता को

भी लज्जित करनेवाली भगवान् की प्रियतमा श्री राधाजी ने नित्य-सङ्गित्व भाव का प्रगाढ़ रस प्रकट करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया। छोटी-सी श्री राधाजी भी क्रमशः बढ़ने लगीं। उनकी दृष्टि मञ्जरी के सदृश विकसित हो चली और हास्य हेमन्त के दिनों के समान क्रमशः क्षीण होने लगा। उनके बोल-चाल में काव्य-गुणविशेष की तरह वाक्यों की आवश्यक चुस्ती आ गयी और वे वृष्टि करके थके मेघ के सदृश मन्द-मन्द चरण धरने लगीं। वे अपना वक्षःस्थल वैसे ही छिपाये रखतीं, जैसे कोई दीन-हीन महान् रत्न पाकर किसीके देख लेने के सङ्कोच से उसे छिपा ले। रत्न की सलाई के समान उनके शिर आदि उत्तमाङ्ग सदा रेशमी वस्त्रों से अवगुण्ठित रहने लगे।

कौमार अवस्था बीतने पर अब राधिकाजी गलियों में धूल खेलना आदि छोड़कर विशेष ज्ञानवती-सी हो गयीं। हथेलियों में अरुणता[१] (लाली), मुख-मण्डल में पीयूषरश्मिता[२] (सुरसता), काम में अङ्गारकता[३] (अङ्गों की प्राप्ति), दृष्टिपात में सौम्यता[४] (मनोज्ञता), श्रोणी में गुरुता[५] (भारीपन), वचनों में काव्यता[६] (कविता), चरणों में शनैश्चरता[७] (धीमी चाल), केशपाश में तमस्ता[८] (श्यामता) और गुणगणों में केतुता[९] (पताका-भाव), इस प्रकार नवों ग्रह मानो श्री राधाजी के अङ्गों में आकर निवास करने लगे।

उनके चरणों की चञ्चलता नेत्रों ने हरण कर ली और उदर की गुरुता श्रोणी ने; ज्ञान की कृशता उदर ने चुरा ली (अर्थात् कम ज्ञान अब विशेष हो गया) और वचन की चतुराई माधुर्य ने ले ली। इस प्रकार बालभाववाली अङ्गों की गुणावली अब अन्य अङ्गों ने मिलकर लूट ली। अणिमा मध्यभाग (उदर) में, महिमा श्रोणी में, लघिमा वचनों में, प्राप्ति धृष्टता में, कामचेष्टा मन में, ईशिता लावण्य में, वशिता नेत्र-कोण में तथा परिपूर्णता माधुर्य में विराजित हो गयी। इस प्रकार अष्टसिद्धियाँ श्री किशोरीजी के अङ्गों में दिखाई पड़ने लगीं। इन गुणों द्वारा सम्पूर्ण व्रज सुगन्धित और सम्पूर्ण भवन रञ्जित हो गया। ऐसा लगता, मानो कामदेव ने ही इन गुणों को सुधारा हो, शृङ्गार रस में ही मानो इनका शोधन हुआ हो, सम्पूर्ण भावों ने ही मानो इनका मार्जन किया हो, लीला-विलासों ने ही इन्हें सरस बनाया हो, श्रीकृष्ण को कृतार्थ करने के लिए ही मानो यह छवि प्रकट हुई है अथवा कवियों की मूर्तिमान् कविता ही मानो प्रकट हुई है।

---

१. सूर्य। २. चन्द्र। ३. मङ्गल। ४. सौम्य (बुध)। ५. बृहस्पति। ६. शुक्राचार्य। ७. शनैश्चर। ८. राहु। ९. केतु।

उनकी उत्कण्ठारूपी कलिका अब मनरूपी पृथिवी पर बाहर प्रकाशित होने लगी अर्थात् श्यामसुन्दर से मिलने की लालसा बढ़ गयी, किन्तु सङ्कोच के मारे उत्साह नहीं प्रकट हो पाता था। लज्जा और गुरुजन की शङ्का अत्यन्त तीक्ष्ण प्रतीत होती थी। उनकी उत्कण्ठा ऐसे धान के खेत जैसी प्रतीत होती थी, जो पका न हो। जैसे 'रस' शब्द कह देने मात्र से ही उसका ठीक-ठीक निरूपण नहीं होता, रस के अन्दर जो रहस्य छिपा रहता है वह समझाया नहीं जा सकता, ठीक वैसे ही उनकी उत्कण्ठा थी। अथवा अन्तर ही अन्तर में ज्वर जैसे घुमड़ रहा हो, पर बाहर स्पष्ट न हो, ऐसा ही उनका कोई हार्दिक भाव अन्तर में तो बसा था, पर बाहर लक्षित नहीं होता था। उनके हृदय की गति उस बाँस जैसी थी, जिसके अन्दर लगा घुन अन्दर ही अन्दर अपना काम कर रहा हो।

उस समय उनके कपोल कुछ गुलाबी, कुछ लवलीफल की तरह, अधर शुष्क पल्लव-से तथा नयन-युगल नीलकमल-सदृश प्रतीत होते थे। उनकी साँस ग्रीष्म के दिन के समान चल रही थी, अज्ञानियों के हृदय की तरह उनका देखना भीतर से सूना-सूना था, आत्माराम योगियों की तरह गमन उद्देश्यशून्य था, ग्रह से ग्रसित प्राणी की तरह उनका वचन (अटपटा-सा) विचित्र था तथा अकेला मनुष्य जैसे गृहादि कार्यों में मन नहीं लगाता, ऐसा ही कुछ उनका भी स्वभाव हो चला था। गृहादि कार्यों में उनका यह सहज भाव यद्यपि प्रतीत नहीं होता था, किन्तु नवीनतायुक्त कान्ति में लक्षित होता था।

जब उनके अङ्गों में सखियाँ नीलमणिमय आभूषण धारण कराने लगीं और उनके सामने नीलमणिमय अलङ्कार आये तो श्रीकृष्णनिष्ठ भाव प्रकाशित हो उठा। श्रीकृष्ण की अङ्ग-कान्ति के सदृश मनोरम नीलकमल आदि देखकर और स्पर्श करके उन्हें अश्रु, रोमाञ्च आदि होने लगे।

'हे प्रिय सखियो ! देखो, इन गौर अङ्गों पर श्रीकृष्ण के अङ्ग की कान्ति के सदृश ये भूषण कैसे सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। नेत्रों को बड़ा आनन्द मिल रहा है।' इस प्रकार जब परस्पर सखियों ने बात करते हुए श्रीकृष्ण का नाम सुनाया तो सुनते ही उनके अङ्गों में रोमाञ्च हो उठा और आँखों से काजल से मिश्रित अश्रु-धारा बह निकली। वे दीर्घ निःश्वास लेने लगीं।

सहचरियों ने प्रेम-परिहास की बातें प्रारम्भ कर दीं। एक सखी चतुरता से कहने लगी : 'अहो ! बड़ा कष्ट है आली ! मेरे हृदय में कुछ और बात प्रकट हो रही है। देखो, इन नयन-कमलों से अञ्जन बह चला और इन्द्रमणि भूषण पहने हुए भी पुलक हो गया। सखी ! मालूम होता है कि वे जो नील-कमल

तुमने लाकर रख दिये हैं, उन्हींकी गाढ़ सुगन्ध सूँघ लेने से इनकी आँखों से जल निकलने लगा है। तुमने यह क्या किया ? क्यों कमलों को ले आयी ?'

कोई कहने लगी : 'बताओ, क्या बात है ? ऐसी दशा इनकी कैसे हो गयी ? क्या यह कोई विकार है ?'

अपने चरणों से कमला के आचरणों को, शोभा से रम्भा को, दन्तों की छटा से दाडिमी लता को, अधरों से बन्धुजीव को, नेत्रों द्वारा नील-कमल-कलिका को और मुख से कमलों को लज्जित करनेवाली, गरम-गरम साँसें लेती, नीचे मुख किये किशोरी श्री राधाजी की सखियों ने आश्चर्य में भरकर उनके भाव की परीक्षा के लिए इस प्रकार शङ्का की। (नित्य सिद्धा गोपियों की यह शङ्का नहीं है, किन्तु किशोरावस्था में यह अनुराग को प्रकट कर कोई विलक्षण क्रीड़ा स्पष्ट करने के लिए वे ऐसा विचार करने लगीं।) अमृत-लता की शाखा के समान विशाखा चतुरता से मुग्ध मधुर-मधुर अक्षर अपनी प्रिय सखी श्री राधाजी से बोली : 'हे सुन्दरमुखारविन्दवाली राधे ! यह अकस्मात् ही कैसे तुम्हारे हृदय में विकार प्रकट हो गया ? हम सब तुम्हारी प्रिय परिजनों को यह बड़ा दुःख दे रहा है। हम तुम्हारे दुःख-सुख में बराबर दुःखी-सुखी हो जाती हैं। हमें बताओ, क्या बात है ? चतुर लोग तर्क से तुम्हारे हृदय का भाव भले ही समझ लें, किन्तु हमारी समझ में तो नहीं आता ! तुम्हारा वह पढ़ने का कौतुक, वह शुक-सारिकाओं को पढ़ाना, वह वाद-विवाद करना, प्रिय सखियों के साथ वह हास-परिहास, वह वीणा बजाना, ये सब गुण कहाँ चले गये ? हे सखी ! तुम्हारा मन वनमाली ने तो नहीं चुरा लिया ? यह कोई असम्भव बात नहीं, क्योंकि चन्द्रमा के बिना कुमुदिनी प्रसन्न नहीं रह सकती और सूर्य के बिना कमलिनी मलिन हो ही जाती है। चातकी को मेघ के बिना दूसरी गति नहीं। हिरनी गीत को ही प्रिय मानती है। कामदेव को छोड़कर रति अन्यत्र कहीं रतिमती नहीं होती। मेघ की गोद छोड़कर दामिनी कहीं नहीं रह सकती। मधुमास को छोड़कर अन्य महीनों में कलकण्ठी कोकिला उत्कण्ठित नहीं होती और राजहंसिनी सरोवर को छोड़ थोड़े-से जलवाले जलाशयों में नहीं रमती। शुक्ल पक्ष के बिना चन्द्रमा नहीं बढ़ता, कसौटी के बिना काञ्चन की रेखा अपना गुण नहीं प्रकट करती तथा वसन्त के बिना माधवी लता प्रफुल्लित नहीं होती। बहुत क्या कहें, चन्द्र और चन्द्रिका, रत्न और उसकी प्रभा, कुसुम और उसका मकरन्द, इन्हीं सबकी तरह तुम्हारी प्रीति भी है। हमसे क्या छिपाती हो ! मणियों के व्यापारी से भला मणियों के अन्दर का कोई भाव छिपा रह सकता है !'

यह सुन परम प्रणय से युक्त सकल-गुण-कलिता श्री ललिताजी बोलीं कि 'ठीक है ! ठीक है ! सुन्दर प्रेम-द्रुम की शाखा विशाखाजी ने बहुत सुन्दर कहा है। सत्य है कि चन्द्रमा के विना रात्रि रात्रि नहीं और चकोरी चकोरी नहीं।'

तव श्री राधाजी बोलीं : 'अहो ! तुम लोगों का यह साहस, जो कि इस समय असम्भव बात को भी सम्भव बनाने की चेष्टा कर रही हो ! देखो न, यह वही विशाखा है, जो अपने 'विशाखा-भाव' को कभी नहीं छोड़ती।'[1]

यह सुनकर प्रफुल्लित हो श्री ललिताजी फिर बोलीं : 'हे भावमयी राधे ! तुमने ठीक कहा। किन्तु वैशाख से विशाखाजी अर्थ नहीं लिया जाता। वैशाख का सीधा अर्थ तो 'राध' होता है। इसलिए माधव का योग राधा के साथ ही है।'

मुस्कराती हुई राधाजी बोलीं : 'ललिते ! तुम्हारी बातें तो आकाश-लता के पुष्प के समान हैं। जैसे कमल को मुख द्वारा जीता कहा जाता है, ऐसे ही झूटे वितर्क तुम्हारे हैं।'

इसी अवसर पर स्वभाव से ही श्यामा[2] और प्रतिदिन आनेवाली सखी श्यामा 'राधा-राधा' कहती अन्य सखियों सहित वहाँ आ गयी। कमलमुखी, कोमल-हृदय तथा अत्यन्त प्रेमवती वे आनेवाली सखियाँ आनन्दित होकर परस्पर मिलकर मुस्कराती गम्भीरता से मधुर मनोहर वचन बोलीं : 'प्रिय सखी राधे ! तुम हमारे नेत्रों को कपूर[3] की वत्ती के समान लग रही हो। हम तुम्हें बहुत सुन्दर बात सुना रही हैं। हमारी सखियाँ तुम्हारी प्रशंसा करती हैं। सखियों की सभा में तुम्हारी बात चलने पर यह कहती है कि गोकुल की ललनाओं में श्री राधाजी रत्न हैं। तुम्हारा स्तवन भी होता रहता है। मृगनयनी राधे ! सखियों से ईर्ष्या मत करो। जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी प्रफुल्लित होती है, वैसे ही सकल गोकुल नगरी तुम्हें देखकर प्रफुल्लित हो रही है।'

यह सुनकर मुस्कराती श्री राधाजी बोलीं : 'चन्द्रमुखी ! सत्य है, तुम सब कलाओं से जीतनेवाली हो। अपने हार्दिक अनुराग की बातों का मुझ पर

---

१. माधव का अर्थ वैशाख मास है, विशाखा सदा उसके पीछे लगी रहती है, 'माधव' के पर्याय वैशाख मास के अन्त में पूर्णिमा को सदैव 'विशाखा' नक्षत्र रहता है।

२. किशोर अवस्थावाली।

३. श्री राधा गौर वर्ण हैं, अतः कर्पूर से उपमा दी गयी। जब आँख में कपूर लग जाता है तो अश्रु भी निकलते हैं और ठण्डा भी लगता है।

आरोप कर रही हो। किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है ! देखो, क्या सूर्य या चन्द्रमा का कोई हाथ से पकड़कर हरण करने की इच्छा कर सकता है ? क्या कोई काँच का टुकड़ा देकर बदले में महामणि ले सकता है ? क्या कोई समुद्र के अन्दर के महारत्नों को हाथ से निकाल सकता है ? क्या कोई भयङ्कर मणिवाले फणिधर के हिलते हुए फण पर हाथ रखकर मणि छीनने की इच्छा कर सकता है ? क्या कोई सिंह-किशोर के केशों से अपने केशों की रचना के लिए उद्यम कर सकता है ? यदि ऐसा नहीं हो सकता तो फिर इधर-उधर के झूठे-सच्चे वृत्तान्तों में क्या धरा है ?'

तब श्यामा सखी बोली : 'श्याम ने सचमुच तुम्हारा हृदय आहत कर दिया है। तेरी ही बातों से यह बात प्रकट हो गयी। अब छिपाना व्यर्थ है। इस प्रकार की युक्तियुक्त चतुराई, आतुरतापूर्ण भावों और भावुक मनोवृत्तियों द्वारा रोमाञ्च और काजल-मिश्रित नयन-कमलों के जल से ऐसा प्रतीत होता है, मानो कृष्णकान्तमणि ही द्रवित हो तुम्हारे अन्दर से वह निकली है। तीव्रतर श्रीकृष्णानुराग-भाव दर्शित कराती सर्व-सौभाग्य-सम्पदारूप यह विजय-वैजयन्ती फहरा रही है। यह सखियों के हृदय को द्रवित करने के लिए ही प्रकट है।'

क्षणमात्र आश्वस्त होकर श्री राधाजी ने कहा : 'श्यामे ! कहाँ मेरा वैसा भाग्य हो सकता है ! तुम्हीं बताओ। लोक में वन्दनीय महादिव्यमणि को पाने के लिए तृण के समान मेरा अनुरागरूपी मूल्य भला क्या चीज है ?' ऐसा कहकर वे रोने लगीं।

तब सखी श्यामा बोली : 'राधे ! खेद मत करो ! दुःखी मत होओ। हमारे वाक्य सुनो, हम प्रमाणयुक्त बात कहेंगी। हमारी सखियों की वाणी बड़ी मिथ्या है। तुम हमारा विश्वास करो। तुम्हारे अनुरागरूपी रत्न से ही उस मनोमाणिक्य का परिचय हो सकता है। जैसे कोई गहन स्थल में रखे हुए खजाने को खोजने के लिए भटकता है, पर पाता नहीं है, ऐसे ही श्रीकृष्ण का मनोरूपी निधि पाने के लिए तुम्हारा प्रेम उस दुर्गम स्थान पर पहुँचने के लिए प्रयत्न कर रहा है।'

श्री राधाजी कहने लगीं : 'विशाखे ! ललिते ! श्यामे ! पहले भी तुमने उनकी मधुर बातें सुनाकर आनन्दित किया था और अब भी तुम्हारी बातें मेरे कानों में मधुर अमृत के समान पड़ीं। यदि मैं ऐसा कहती तो मेरा साहस समझा जाता।'

दोनों सखियों ने कहा : 'श्री राधे ! तुमको शपथ है। अब तुम सङ्कोच छोड़कर कहो। हम तुम्हारे मुखचन्द्र पर बलिहारी !'

श्री राधाजी मुस्कराती हुई बोलीं : मेरी सखियो ! तुम बड़ी विशाल बुद्धिवाली हो। अच्छा सुनो, एक दिन वंशी बजाते, गुञ्जाओं की माला तथा मोरमुकुट पहने नन्दनन्दन अपने सखाओं के आगे विविध भूषणों से सजे वन को चले जा रहे थे। वे जब ग्राम के द्वार पर आये तो चलते समय उनके कनक मणिमय अलङ्कार झङ्कार कर उठे। उस समय मैं अपने भवन की छत पर सखियों के साथ बैठी हुई थी। मैं चञ्चल नेत्रों से चकित होकर इधर-उधर देखने लगी। उस समय मेरी दृष्टि उनके कुटिल कटाक्षों को सहसा अवलोकन कर लज्जित हो गयी। मैं आँचल की ओट से देखने लगी। उसी समय हृदय में सहसा आनन्द का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उस उल्लासपूर्ण उत्सुकता से मेरा धैर्य ध्वंस हो गया। मैंने थोड़ा तिरछे देखते हुए धीरे-धीरे ग्रीवा उठायी। उसी समय श्रीकृष्ण ने भी कटाक्ष का उत्तर कटाक्ष से दिया, जैसे बाण का प्रत्युत्तर बाण से कोई दे। उनके (अर्ध) कटाक्ष-बाण से मेरा हृदय विध गया। दैव की प्रेरणा से उनका वह कटाक्ष सर्पिणी की तरह मुझे काट गया और उसका विष दुर्निवार हो गया।

आकस्मिक रोग प्रकट हो गया। चमत्कार और आश्चर्यसहित उत्कण्ठा-पूर्वक देखते हुए अपने एक प्रिय नर्म सखा से वे बातचीत करने लगे। वह बात पिंजरे में बैठी हुई शुकी ने सुन ली और वह भी वैसा ही बोल-बोलकर दोहराने लगी : 'हे मनसुखे ! हे सखे ! इस भवन की छत पर क्या यह बिजली आकाश से आकर झरोखे से झाँक रही है अथवा नन्दनवन से कल्पलता ही गिर पड़ी है, अथवा मदन-इन्द्रजालिक की त्रैलोक्य का सम्मोहन करनेवाली विद्या ही स्वर्ण-मूर्ति धारण कर आयी है, अथवा यह गोकुल की अधिष्ठात्री देवी है या किसी परम कलासम्पन्न चित्रकार द्वारा दीवाल पर चित्रित चित्र है, अथवा हेम की हंसिनी है, अथवा आकाश की कनक-केतकी है, अथवा कामदेव का कृपा-रहित कृपाण है, अथवा अद्वितीय द्वितीया-चन्द्ररेखा है, अथवा मोह की महिमा-लता है, अथवा लावण्य की दर्पणिका है, अथवा माधुर्य की पताका और गुण-मणियों की तेजोमय मञ्जरी है ? यह सौन्दर्यमयी विहङ्गी के समान स्वर्ण के पिंजरे में से क्षण में ही प्रकट होती है और क्षण में ही छिप जाती है। यह मेरा स्वप्न है अथवा भ्रम है ?'

वह सखा बोला : 'श्यामसुन्दर ! यह सब कुछ नहीं है; ये वृषभानु-कुमारी हैं। ये ब्रह्मा की नवीन ही सृष्टि प्रतीत होती हैं। ये सर्व-सौभाग्य-

साराधिका श्री राधिका कही जाती हैं, जो सकल सुन्दरियों के सौन्दर्य-गर्व को दूर करनेवाली हैं। मैंने अपनी माता आदि द्वारा वातचीत करते समय इनकी गुणावली सुनी है। किन्तु मेरे नेत्रों ने इनका दर्शन आज ही किया है।' इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए श्यामसुन्दर सखाओं के साथ आनन्द से वन की ओर चले गये।

यह सुनकर श्यामा ने कहा : 'हे प्रिय ललिते ! तव से ही दोनों के हृदय में मनोरथरूपी अङ्कुर उत्पन्न हो गया। कुछ दिनों वाद दो पत्ते निकल आये। अव धीरे-धीरे इसकी फल-दशा भी सम्भव है।'

भावावेश में सव कुछ कह चुकने पर राधाजी को लज्जा आ गयी; अतः वे अपनी वात छिपाती हुई वोलीं : 'श्यामे ! झूठ मत वोलो, रहने दो, रहने दो ! नहीं-नहीं, मैं कभी भी अकेले छत पर नहीं गयी थी। तुम इस तरह सबके सामने लज्जित मत करो। तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ। मुझे लज्जारूपी समुद्र में मत डुवाओ। ऐसा मत कहो।'

श्यामा वोली : 'यदि मेरी यह वार्ता झूठी ही है तो तुम लज्जा के समुद्र में क्यों डूव रही हो ? यदि मैं कम करना चाहूँ तो कम कर नहीं सकती, क्योंकि तुम्हारा भाव स्वाभाविक है, इसलिए मेरी चपलता को क्षमा करो। अपने सौभाग्य पर विश्वास करो, तुम्हारी यह सौभाग्य-सम्पत्ति अचल रहे।'

इस प्रकार अपनी-अपनी सखियों द्वारा व्रज नगर में मुख्य-मुख्य गोपियाँ श्रीकृष्ण के सरस कथा-प्रसङ्ग से रस वढ़ाने लगीं। निरन्तर अनुराग वढ़ने लगा। यह पूर्वरागरूपी नाटक का रङ्गमञ्च तैयार हो गया। ध्वजा, कमल आदि विलक्षण लक्षणवाले चरण-चिह्नों से पृथिवी सुशोभित होने लगी और श्रीकान्ति-वाली यमुनाजी की तरङ्गें छवि वढ़ाने लगीं। श्रीकृष्ण की श्यामलता का श्याम प्रकाश सर्वत्र छा गया। उनके अङ्ग की सुगन्ध से पवन सर्वत्र सुगन्धित हो वहने लगा और श्रीकृष्ण की मुखचन्द्र-चन्द्रिका से धोया आकाश निर्मल हो गया। इस प्रकार सव वस्तुएँ तन्मय हो गयीं और गोपियों ने श्रीकृष्ण के ध्यान से विचित्र तन्मयता प्राप्त की।

गोपियों के नेत्रों में उनका रूप, रसना में उनका अधर-रस और प्राणों में उनकी सुगन्ध छा गयी। उनका स्पर्श उनके सर्वाङ्ग में प्रवेश कर गया। उनके दर्शन विना वे क्षण गिना करती थीं कि 'देखो ! मेरा एक क्षण उनके दर्शन के विना व्यतीत हो गया। मेरे पाँच क्षण उनके विना वीत गये।' वे मानो एक क्षण को एक कल्प के सदृश समझती थीं। निरन्तर अपने प्रेम की परीक्षा के लिए वे पल-पल की गणना करने लगीं, अपने गुरुजनों की ओर से मन हटाकर

दूसरी ओर दृष्टि रखने लगीं, श्रीकृष्ण के जितने सम्बन्धी थे, उनमें अपनत्व मानने लगीं, अपने जीवन को भारी समझने लगीं, चित्त को द्रवित करने लगीं, प्रेम में सरस होने लगीं तथा श्रवणों से उनके गुण सुनने लगीं। उनके मिलन की चिन्ता में उनकी बुद्धि लीन हो गयी, उनके सङ्गम की आशा का सुख ही सुख रह गया, उनके वियोग का दुःख ही अब दुःख रह गया, उनकी समीपता की ही एकमात्र इच्छा रह गयी, गुरुजनों से द्वेष हो गया, श्रीकृष्ण से मिलने जाने का प्रयत्न ही प्रयत्न रह गया, श्रीकृष्ण पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देना ही धर्म रह गया और उनके अतिरिक्त सभी भाव अधर्म हो गये तथा उनका प्रेम ही संस्कार रह गया। इस प्रकार रूप-रस आदि सभी गुण उनमें विराजमान हो गये।

जब उन लोगों में परस्पर सरस वार्तालाप होता, तब वे कहतीं: 'ऐसे मनोहर पुरुषभूषण से अपने हृदय को जो सुन्दरी भूषित नहीं करती, उसके कुल-शील-यौवन को धिक्कार है, उसके रूप-गुण आदि व्यर्थ हैं। मैंने प्रण किया है कि यह जीवन उनका है। अब मुझे सुहृदों से क्या काम है! क्या बड़ों से काम है! मुझे कोई भय नहीं। यदि मैं उनको पाऊँ तो मुझे किसीसे क्या भय है, और यदि वे मुझे नहीं मिलते तो भी मुझे किसीसे कोई भय नहीं है। अगर माधव मुझे मार डालें तो मार डालें और मेरे बान्धव यदि त्याग दें तो त्याग दें। साधु यदि हँसें तो हँसें, मैंने तो उन श्रीकृष्ण को हृदय में धारण कर लिया है। देखो! जिनका नाम ही श्रवणमात्र से अत्यन्त ललित एवं सरस प्रतीत होता है तथा लज्जा को मन्थन करके धैर्य की दीवार को ढा देता है, ऐसे श्रीकृष्ण को मैं नहीं देख पायी! मैं क्या करूँ? मेरा भाग्य कैसा मन्द है!'

सकल कलानिधि श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकाल नित्यप्रति जब वन को जाते और लौटकर आते तो गोकुल-ललनाएँ छतों पर चढ़कर दर्शन करने के लिए खड़ी हो जातीं। उनके मुखचन्द्र से मुरली-वादन सुनकर, नेत्रकमलों से उनके लोचन-अम्बुजों की चञ्चलता निरीक्षण कर परमानन्द प्राप्त करतीं और गलियों में खड़े लोगों को सुख देते नवीन नट के समान जब वे छवि दिखलाते, उस समय कोई यदि केश बाँधती रहती या स्नान करती रहती तो वह तत्क्षण उसे त्यागकर भलीभाँति बिना सँभले हुए ही दर्शन को दौड़ती आती। यदि कोई सखी आँखों में अञ्जन लगाती रहती तो दूसरी सखी उससे कहती: 'अञ्जन छोड़ो, श्रीकृष्ण आ गये।' सुनकर वह एक ही आँख में अञ्जन लगाये चल देती। यदि कोई सखी महावर या चन्दन लगाती रहती तो वह एक ही चरण में महावर लगाकर गीले चरण से मणिमय सीढ़ियों पर अपने पद-चिह्न अङ्कित करती,

अरुण छाप लगाती हुई शीघ्रता से बाहर चली जाती। किसीने एक चरण में नूपुर धारण किया और कोई कटि में किङ्किणी भी ठीक बाँध नहीं पायी और वैसे ही दौड़ पड़ी तो उसकी किङ्किणी जोर से बजने लगी। तब वह गुरुजनों के भय से किङ्किणी को एक हाथ से नीचे दबाकर दौड़ चली। इस प्रकार से दिन में माधव का अवलोकन कर उन्होंने हृदय में उनको बसा लिया। दिनभर निद्रित की तरह होकर वे कमलदल-नयन का ध्यान करती रहतीं। पिंजड़े में बन्द खञ्जन के समान उनके नेत्र प्रातः-सायं ही प्रायः खुला करते।

अब उन कन्याओं का यह मनोरथ होने लगा कि श्रीकृष्ण हमारे भावी पति हों। उनका वह प्रेम सब लोगों की आँखों में, विशेषकर माता-पिता की दृष्टि में आने लगा। वे कुमारियाँ हृदय में उस गोप्य भाव को रखकर अतृप्त भावना से रहने लगीं। किन्तु चेष्टा ऐसी करती थीं कि बाहर लक्षित न होने पाये। इस प्रकार उनको अपना मनोरथ करते हुए कुछ दिन व्यतीत हो गये।

एक बार श्री राधाजी ने मणिमय पिंजरे में से तोते को निकाला और अपने करतल पर बैठाकर उसे पके अनार के दाने खिलाने लगीं। उसकी चोंच के निकट अनार का दाना देते हुए श्रीकृष्ण के अनुराग से सहसा हृदय भर गया; क्योंकि शुक की नासिका को देखकर उन्हें श्रीकृष्ण की नासिका का स्मरण हो आया। प्रेम से हृदय विह्वल हो उठा। वे बोलीं : 'हे शुक ! श्रीकृष्ण कहो !' बार-बार कहने लगीं : 'श्रीकृष्ण कहो ! श्रीकृष्ण कहो !' वह भी बार-बार वही बोलने लगा, फिर भी इनको तृप्ति नहीं होती थी। उस समय सहसा महानुराग प्रकट हुआ और विह्वलता में उनके मुख से यह पद निकला, जिसे वे तोते को पढ़ाने लगीं और स्वयं गाने लगीं :

दुरापजनवर्तिनी रतिरपत्रपा भूयसी
गुरूक्तिविषवर्षणैर्मतिरतीव दौस्थ्यं गता।
वपुः परवशं जनुः परमिदं कुलीनान्वये
न जीवति तथापि किं परमदुर्मरोऽयं जनः॥

अत्यन्त दुष्प्राप्य व्यक्ति में प्रीति रखनेवाली बुद्धि निर्लज्ज होकर गुरुजनों की विषवर्षा से दुःखपूर्ण स्थिति को प्राप्त हो गयी है, शरीर परवश है तथा उत्तम कुल में यह जन्म हुआ है। ऐसे दुःखों से घबराकर तो प्राणी को मर ही जाना चाहिए, किन्तु यह जी रहा है।

वह शुक भी परम चतुर था। पहले-पहल ही उसने यह पद सुना और सुनते ही कण्ठ कर लिया। फिर उसे उच्चारण करने लगा तथा पक्षियों के

स्वभावानुसार 'कृष्ण-कृष्ण' कहता हुआ किशोरीजी के कर-कमल से सहसा आकाश में उड़ गया।

तदनन्तर एक भवन पर बैठा, फिर वहाँ से उड़कर दूसरे पर जा बैठा। ऐसे उड़ते-उड़ते नन्दग्राम में आकर नन्दजी के भवन की देहली पर जा बैठा और कोमल मधुर स्वर से वही पद उच्चारण करने लगा, जो श्रीजी ने पढ़ाया था। वह कानों को मधुर लगनेवाला पद सुनकर श्रीकृष्ण अत्यन्त आश्चर्य में भरकर कहने लगे : 'यह कौन बोल रहा है?' फिर तोते को देखा तो उससे पूछने लगे : 'तुम कौन हो? यह क्या कह रहे हो?' फिर शुक को पकड़ने की इच्छा से वे धीरे-धीरे उसके निकट आये और प्रेमपूर्वक कहने लगे कि 'फिर बोलो, फिर बोलो!' वह शुक वही पद पुनः पाठ करने लगा। श्रीकृष्ण बोले : 'हे बुद्धिमान् शुक! तुमने मुझे कृतकृत्य कर दिया। तुम्हारे मुख से अपने दोनों श्रवणों द्वारा मैं मन को अत्यन्त प्रिय लगनेवाले विद्वानों के-से वचन सुन रहा हूँ। ओहो! तुमने बड़ा सुन्दर पद सुनाया। तुमने तो हमारे मन की बात कह दी। तुम अति धन्य हो!'

वह बोला : 'हे व्रजराजनन्दन! आप वृथा ही मुझे धन्य कैसे कहते हैं! हे श्रीकृष्ण! आप मेरी व्यर्थ प्रशंसा करते हैं। मैं अत्यन्त कृतघ्न हूँ। मैं गाढ़ अनुराग में भरी किसी देवी के हाथ पर बैठा था। वे बड़े प्यार से मुझको कृष्ण-नाम पढ़ा रही थीं। किन्तु मैं जाति-दोष के कारण चञ्चलतापूर्वक उन देवी के कर-पल्लवों से उड़कर भाग आया। हाय! मुझे धिक्कार है। मैं बड़ा अज्ञानी हूँ।'

श्रीकृष्ण कहने लगे : 'अहो! महानुरागवती वह कौन-सी देवी है, जिसके कर-कमलों से तुम पाले गये हो?' फिर बोले : 'हे शुक! तुम थोड़ी देर यहीं रहो, तब तक हम तुम्हारी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कराने की चेष्टा करते हैं।' और अपना कर-कमल उसके आगे बढ़ा दिया। वह शुक भी उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए उनके कर-कमल पर बैठ गया।

उसी समय श्रीकृष्ण का एक 'कुसुमासव' नाम का प्रिय सखा आ गया। वह विप्रकुमार श्रीकृष्ण का हास्यप्रिय सखा था। उसने आते ही कहा : 'यह शुक कहाँ से आया?' श्रीकृष्ण बोले : 'मित्र! यह महाचतुर है। हमारे खेलने के लिए अपने-आप ही आ गया है। इसे अनार के दाने खिलाना चाहिए।' तत्काल अनार के दाने लाकर खिलाये गये। खूब आनन्द मनाया जाने लगा।

इधर कृष्णानुराग में रँगी मृदुलाङ्गी श्रीवृषभानुनन्दिनी करतल से उड़कर गये शुक को खोजने के लिए एक सखी से कहने लगीं : 'मधुरिके! तुम दासी के

साथ जाकर देखो, मेरा शुक कहाँ उड़कर चला गया है ?' दासी और मधुरिका दोनों आज्ञानुसार इधर-उधर खोजती हुई चलीं। सब जगह खोजकर, थककर नन्दग्राम में आयी। वहाँ पर कुसुमासव के सहित बैठे हुए श्रीकृष्ण तोते से वार्तालाप कर रहे थे। उस समय उनके हृदय में पद का विचार कर-करके अद्भुत गाढ़ प्रेम-वेदना उदय हो रही थी और वे विचित्र ध्यान में निमग्न थे।

सहचरी ने देखकर कहा : 'जय जय श्री व्रजराजकुमार ! जय हो ! हे पीताम्बरधारी ! यह शुक कहाँ से लाये ? यह तो हमारी देवी का शुक है। सरलता से इसे मुझे लौटा दो। यदि नहीं दोगे तो अपने ऊपर अपयश लोगे। तुम्हारे बहुत-से गुणगण प्रसिद्ध हैं, और क्या कहूँ !'

कुसुमासव बोला : 'तुम्हारी देवी यहाँ कब आयीं और यदि तुम्हारी बात ठीक भी हो तो हम कैसे मानें ? अगर तुम्हारी देवी का यह तोता है तो देवी को यहाँ बुला लो अथवा तुम्हीं इस तोते को बुलाओ और अगर यह उड़कर तुम्हारे हाथ पर बैठ जाय तो हम तुम्हारा समझ लेंगे।'

सखी ने उत्तर दिया : 'हे सखाजी ! भला व्रजराज-कुमार के कोमल स्पर्श की कौन वाञ्छा नहीं करता, जिसका आस्वादन कर जड़ वन्शी भी उसे छोड़ना नहीं चाहती, फिर यह तो चैतन्य पक्षी है। हमारी देवी शुक आदि के गीत सुनने को अत्यन्त आतुर रहती हैं। वे इस शुक के विना क्षणमात्र भी नहीं रह सकतीं। इसलिए तुम मुझे इसे शीघ्र ही दे दो।'

यह सुनकर कुसुमासव बोला : 'सखीजी ! ऐसे सुन्दर गुणोंवाले शुकरूपी धन की कौन नहीं इच्छा करता ?'

सखी : 'यह तो उनका है ही, अतः दूसरे की कामना कैसी ?'

कुसुमासव : 'कौन हैं तुम्हारी देवी ?'

सखी : 'जैसे तुम्हारे मित्र व्रजराज के लाड़ले हैं, ऐसे ही वे भी (इन्हीं जैसे) किसीकी नन्दिनी हैं; अब तुम्हें (तुम्हारे जैसे ढीठ को) क्या बताऊँ !'

सखा : 'अच्छा, जो भी हो, हम इसको कैसे दे दें ! हमने चोरी तो की नहीं है। तुम नाना कलाओं को जाननेवाली और लालची हो, अतः झूठा दोष लगाती फिरती हो। दैवयोग से यह यहाँ शरणागत होकर आ गया। अतः हमारे शरणागत-वत्सल श्रीकृष्ण ने इसकी रक्षा की है। अब बताओ, शरणागत को कैसे त्यागा जा सकता है ?'

इसी अवसर पर व्रजेश्वरी यशोदाजी वहाँ आ गयीं और बोलीं : 'वत्स ! क्यों विलम्ब कर रहे हो ? भोजन ठंढा हो रहा है, भोजन का समय तुम्हारा जा रहा है, इसलिए चलो, भोजन करो ! तुम्हारे सखा लोग यहाँ आ जाते हैं तो तुम

खेल में लग जाते हो। गौएँ कान उठाकर, नेत्र फैलाकर तुम्हारा पथ देखती हुई टेर लगा रही हैं। इसलिए आओ, भोजन करने के वाद इन सखाओं के साथ खेलना।'

माता की वात सुनकर कुसुमासव उठकर बोला : 'माता! यहाँ बड़ा कौतुक हो रहा है। देखो न, परम बुद्धिमान् के समान कलानिधान यह शुक निधि के सदृश हम सवका हृदय हरण कर रहा है। यह वहुत सुन्दर मधुर वोलनेवाला मेधावी तोता है। यह कवियों की तरह काव्य वोलता है, सब स्वरों का आश्रय है, मन को शान्ति देनेवाला है, मन के समान ही पकड़ में नहीं आता और पर्वत के समान स्थिर तथा परम चमत्कारमय है। यह कहीं से उड़ सहसा यहाँ आकर हमारे सखा के करकमल पर वैठ गया है। इसके विषय में ही अनेक वार्तालाप हो रहे हैं। इसकी वात सुनकर मन को बड़ा आश्चर्य होता है। हमारा सखा भी इसके प्रेम में विलम्ब कर रहा है। इसलिए आप भोजन आदि के ठण्डा होने की चिन्ता छोड़ दीजिये।'

यशोदाजी ने कहा : 'क्या इसी शुक की वात कर रहे हो?' सखा ने कहा : 'जी हाँ, देखिये, यह गोपकुमारी कहती है कि यह शुक मेरी देवी का है। माता! यह झूठ वोलती है। यह इस वहाने से हमसे यह तोता लिया चाहती है। व्रजेश्वरी! यह हमारे सखा का हृदय दुखा रही है।'

यशोदाजी ने उधर देखा और वोलीं : 'क्या यह मधुरिका है? कैसे आना हुआ?' और प्रेमपूर्वक सखी के सिर पर हाथ फेरने लगीं। वह सखी भी श्रद्धा-भक्तिसहित यशोदाजी को प्रणाम करने लगी और वोली : 'व्रजेश्वरी! मैंने मिथ्या नहीं कहा है, यह मेरी देवी श्री राधा का ही शुक है। इस शुक के बिना वे वहुत दुःखी हैं। उनका यह खेल का आधार है।'

तव यशोदाजी उसे एकान्त में ले जाकर वोलीं : 'मधुरिके! तुम इस समय अपने घर चली जाओ। जब हमारा लाला वन चला जायगा, तब मैं इस शुक को स्वयं तुम्हारी देवी के पास पहुँचा दूँगी।'

यह सुनकर मधुरिका प्रसन्न हो गयी और आज्ञा माँगकर प्रणाम करके चली गयी।

यशोदाजी ने पुत्र का करकमल पकड़ लिया और वोलीं : 'आओ-आओ, उठो!' और उन्हें उठाकर ले चलीं। कुसुमासव बोला : 'इस शुक की आत्मवत् सावधानी से रक्षा करनी होगी। इसको खिलाना होगा, स्वर्ण की कटोरी में इसको अन्न देना होगा।'

श्रीकृष्ण वोले : 'मेरे साथ ही यह भोजन करेगा।' और करकमल पर

शुक को बैठाकर पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण उसकी गायी गाथा उससे पुनः-पुनः कहलाकर उसके अर्थ का चिन्तन करने लगे। फिर उन्होंने भी उसके उत्तर में एक पद कुसुमासव को सम्वोधित कर शुक को सुनाया, जिसे सुनकर शुक ने तत्काल ठीक-ठीक दोहरा दिया।

श्रीकृष्ण ने यह गाथा सुनायी :

न वनगमने नाप्यासङ्गे वयस्यगणैः समं
न च मुरलिकानादे मोदो न धेनुगणावने।
इममशृणवं यावत्कीरोत्तमाननिःसृतं
कमपि दयितालापं गाढानुरागभरालसम् ॥

हे सखे ! जव से इस शुक के सुन्दर मुख से निकले हुए प्रगाढ़ अनुराग से भरे किसी प्रिय आलाप को सुना है, तव से न वन-गमन में आनन्द मिलता है, न एकान्त में वैठने में सुख मिलता है। सखाओं के साथ में भी आनन्द की उपलब्धि नहीं होती। न वंशी वजाने में सुख प्रतीत होता है, न गौओं के साथ वन जाने में ही रस आता है (अर्थात् इस शुक की वाणी सुनने के सिवा और कुछ भी मुझे अच्छा नहीं लग रहा है)।

ऐसा कहकर माता के साथ ही चले गये और पद-कमल धोकर भोजनासन पर वैठकर भोजन करने लगे। अपने सम्मुख ही स्वर्ण-पात्र में अपने कर-कमल से सुरभित घृत से सना हुआ भात रखकर शुक को खिलाने लगे। तदनन्तर नित्यप्रति के समान सखाओं के साथ जव श्रीकृष्ण वन में धेनु चराने चले तो माता से प्रेमपूर्वक कह दिया : 'इस शुक की रक्षा करना।' जव वे वन को चले गये, तव लीला-किशोर श्रीकृष्ण की धात्री की पुत्री को वुलाकर यशोदाजी ने कहा : 'इस शुक को श्री राधा के भवन में दे आओ!'

वह कुमारी अपने कर-पल्लव में ललित शुक को लेकर श्री राधाजी के यहाँ आयी। यशोदाजी की भेजी हुई उस सखी को देखकर सखियों सहित श्री राधाजी सहसा उठ खड़ी हुईं। वोलीं : 'आओ, आओ!' और वहुत सम्मान करके अपने वरावर अर्धासन पर वैठाकर कुशल पूछने लगीं : 'तुम्हारी व्रजेश्वरी कुशल से तो हैं?' प्रेम-भक्ति-श्रद्धा से इस प्रकार जव श्री वृषभानुकिशोरी ने पूछा तो वह सखी वोली : 'कल्याणी! तुम्हारे चरण मङ्गलमय हैं! तुम्हारे इस शुक को पाकर हमारे कुमार अत्यन्त आनन्दित हुए। वहुत देर तक इसका सुन्दर भाषण सुनकर वे अपार आनन्द का अनुभव करते रहे। नेत्रवालों के त्रिताप नाश करनेवाले श्रीकृष्ण को इसने आनन्द दिया। जव वे धेनु

चराने के लिए वन चले गये, तव दयावती (तुम्हारा किञ्चित् मात्र भी दुःख सहन न कर सकनेवाली) यशोदाजी ने इसे यहाँ भेज दिया और शीघ्रता से तुम्हारे दुःख का हाल जानने की उत्कण्ठा प्रकट की है।'

श्यामा सखी बोली : 'सुवदने ! भला कहो न, गोकुल में जितने प्रकट और अप्रकट जो कुछ रत्नस्वरूप पदार्थ हैं, वे सब श्री नन्दनन्दन के ही तो हैं। यह पक्षी भी सौभाग्यवान् है, जो कि उनके कर-कमलों का स्पर्श पाकर आया है। इसलिए इसे तो उन्हें अपने खेलने के लिए ही रख लेना चाहिए था। उन्होंने उलटे भिजवा दिया। अच्छा, अव तत्काल वापस भेजना ठीक नहीं। तुम जाओ, जव श्रीकृष्ण गायें चराकर वन से लौट आयेंगे, तव तक ललिता भी आ जायगी, उसीके हाथ इसे यशोदाजी के सामने ही उनको अर्पण कर दिया जायगा।'

श्री राधाजी बोलीं : 'श्यामा ने विलकुल ठीक ही कहा। अच्छा, तुम जाओ। मेरी भी विनती व्रजेश्वरी के चरणों में कह देना !'

नन्दगाँव की सखी के चले जाने पर श्री राधाजी नवीन कृष्णानुराग के समान सम्मुख आये उस उत्तम शुक को देखकर कहने लगीं : 'मेरे शुक ! तुम धन्य हो ! तुमने सौभाग्यरूप धन प्राप्त किया है, जो कि अति दुर्लभ है। तुमने उस दुर्लभ सखा का करस्पर्श पा लिया। अहा हा ! आओ, मेरे हाथ पर वैठो ! तुम्हारे स्पर्श की मुझे तीव्र अभिलाषा है।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण का स्पर्श-सुख अनुभव करने के लिए शुक को हाथ पर वैठा लिया। फिर कहा : 'वोलो, तुमने कहाँ क्या कहा और उन्होंने तुमसे क्या कहा ? वे सव ललित वातें सुनाओ !'

शुक बोला : 'मेरे द्वारा कहा हुआ पद जव उन्होंने सुना, तव उनके हृदय में अत्यन्त अलक्षित भाव भरा हुआ प्रतीत होने लगा। हृदय में उनके गूढ़ आघात-सा लगा। वे किशोरवर गजेन्द्र के समान दीर्घ श्वास लेने लगे। सखा को लक्ष्य करके उन्होंने मुझे सुनाने के लिए कहा कि 'जव से इस श्रेष्ठ तोते के मुख से प्रगाढ़ अनुराग-भरा दयितालाप सुना, तभी से न वन को जाना अच्छा लगता है, न सखाओं के साथ गायें चराना अच्छा लगता है, न वन्शी वजाने में मन लगता है।'

सुनते ही श्यामा सखी ने श्री राधाजी से कहा : 'सुन लिया न ! अव मेरी हँसी मत उड़ाना। मेरी वात सच निकली। अव तुम मेरा दुलार करो और मुझ पर दया करो; क्योंकि उन्होंने 'दयितालाप' कहकर तुमको अपनी 'दयिता' (प्रिया) स्वीकार किया है।'

श्री राधाजी ने कहा : 'कृशाङ्गी ! श्यामसुन्दर की बात तुम नहीं समझ पायी। परिहास मत करो। उन्होंने जो 'दयितालाप' कहा है, उसमें कर्मधारय समास है, षष्ठी-तत्पुरुष नहीं, अर्थात् उसका अर्थ है 'प्रिय वाणी', 'प्रियतमा की वाणी' अर्थ नहीं है। वे तो दुर्लभ पुरुष हैं, असम्भव बात की कल्पना करके मुझे क्यों नीचा दिखाती हो ! और यदि तुम्हारे कथनानुसार षष्ठी-तत्पुरुष समास (प्रियतमा का आलाप) मान भी लें तो उनकी जो दशा तोते ने वर्णन की है, उसका लक्ष्य मेरे जैसा थोड़े भाग्यवाला प्राणी कैसे हो सकता है ! यह अनुमान तुमने कैसे लगा लिया ? तुम मेरी आत्मसदृश होकर भी परिहास में कौतुक सिद्ध करती हो, मेरे दुःख से दुखी नहीं होती !'

श्यामा बोली : 'हे असमीक्ष्यभाषिणी ! देखो, मधुरिका तुम्हारी अनुचरी है, गोकुल में कौन यह बात नहीं जानता ? वही जब वहाँ गयी और स्पष्ट कहा कि 'मेरी देवी का यह शुक है', तब इसके बाद उन्होंने 'दयितालाप' वाली बात कही। उन्होंने तुम्हें लक्ष्य कर 'दयिता' (प्रियतमा) नहीं कहा तो किसके लिए कहा ? यहाँ झूठी कल्पना करने की बात ही नहीं उठती। विवाद अपने-आप मिट जाता है।'

श्रीकृष्ण-जन्मदिवसोत्सव

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-तिथि के समय बड़ा उत्सव हुआ। दुन्दुभि, नगाड़े आदि अनेक बाजे बजने लगे। महान् शब्द हो रहा था। परम आश्चर्यमय ध्वनि उठ रही थी। उसी ध्वनि में परमानन्द से पूर्ण गोपियों के नूपुरों की ध्वनि और गीतों की ध्वनि भी समायी थी। ब्राह्मण मन्त्रों द्वारा पवित्र जल भरे हुए मणिमय घटों की सहस्रों धाराओं से मङ्गलाभिषेक कर रहे थे। उस समय श्रीकृष्ण के अङ्गों की लावण्यमयी शोभा अपूर्व थी। उन्होंने नवीन दिव्य पीताम्बर धारण किया और मणिमय भूषण भूषित किये। उनके अङ्गों से प्रकाश छिटकने लगा। मणिमय कङ्कण और गोरोचन आदि से विशेष कमनीयता दर्शित होने लगी। जननी यशोदा उत्सवानन्द में अत्यन्त चाव से सब व्रजगोपियों का सम्मान करती हुई मङ्गल-गान करके आरती करने लगीं। गोप-गोपियों ने कौतुक-सहित उत्सव मनाया। मोदक, खीर, पूए आदि से सत्कार हुआ। तदनन्तर यशोदाजी ने फिर आरती करके दिव्य आसन पर श्रीकृष्ण को विराजमान कराया। उस उत्सव की सिद्धि के लिए निमन्त्रण-व्यवहार के द्वारा यशोदाजी ने बन्धु वर्गों को निमन्त्रित किया। दूर तथा पास के निमन्त्रित किये गये सनन्द, उपनन्द आदि सकल गोपवृन्द अपनी वधुओं के साथ आये। रोहिणी माता ने भी नाना विधि के भोजनों द्वारा उन

सबको तृप्त किया। परम सुकुमार सब गोपकुमार भी आये। उन सबको तृप्त करके यशोदाजी ने सबको मणिमय हार पहनाये और उचित सत्कार किया।

उस समय (श्री यशोदाजी को अपनी सास माननेवाली) श्री राधाजी भी साग्रह बुलायी जाने के कारण आती हुई दिखलाई दीं। उनके चलने की छटा अनुपम थी। उनके चरणों पर बहुमूल्य वस्त्र का किनारा अतिशय छवि पा रहा था। उनकी मृदुता से ओढ़ने का महीन रेशमी अञ्चल चञ्चल हो रहा था। हृदय में उदय हुआ शीघ्रता का भाव तत्काल ही चञ्चल नयन-कमलों द्वारा बाहर दर्शित हो रहा था। नित्य-प्रति गोपिकाएँ उनके सौन्दर्य को देखती थीं, किन्तु आज महोत्सव के समय उन्होंने कुछ विशेष सौन्दर्य धारण कर रखा था।

उन्होंने आकर सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि घुमायी। उनका मनरूपी सुमन श्रीकृष्ण के प्रति पति-भावरूपी कर्पूर से सुगन्धित था। विलक्षण एवं विशेष गुप्त भाव करके अलक्षित सूक्ष्म उत्तम मन्द कटाक्ष से गोकुल की ललनाओं की ओर देखती हुई वे श्री यशोदाजी के पास आयीं और बहुत दिनों की हृदयाभिलाषा के कारण व्रजराजकुमार के समीप ही श्री यशोदाजी के चरण-कमलों पर शीघ्रता से मस्तक झुकाने लगीं। उस समय सम्भ्रमपूर्ण हृदयवाले तथा अपनत्व मानकर अधीन होनेवाले श्रीकृष्ण अत्यन्त सम्मानसहित श्री राधाजी की ओर देखकर सोचने लगे : 'अहो ! यह नवीन कमल-माला के सदृश वही शुक की स्वामिनी तो नहीं है ?' ऐसी भावना कर अत्यन्त मधुर दृष्टि से मधुसूदन अपनी मनोवृत्ति से कृपा की याचना करने लगे (अर्थात् हे मन ! कृपा करके सावधान रहना, आतुरता न दिखाना)। सकल सौभाग्यमूर्ति श्री यशोदाजी ने मुस्कराते हुए सखियों के साथ आयी हुई श्री राधाजी का सम्मान किया और उन्हें भोजन-स्थल में पहुँचा दिया।

उस समय अनुपम सुगन्धित माला आदि से गौओं की पूजा करके सब गोपों की गोपिकाओं के चरण धुलाकर रोहिणीजी ने नाना प्रकार के भोजन-पान-आचमन आदि से सत्कार किया, मालाएँ पहनायीं, इत्र आदि लगाया और पान खिलाकर उन्हें तृप्त किया।

बलरामजी-सहित सब शिशुओं को आगे करके जब नन्दजी भोजन करने लगे, तब रोहिणीजी ने उनको भोजन परोसा। उस समय भवन में आयी हुई सब कुमारिकाएँ और वधुएँ अपने-अपने हाथ से परोसने को लालायित होकर परोसने लगीं। उस सुखसमुद्र को देखकर कुमारिकाएँ जब भोजन करने बैठीं तो उनके साथ श्री राधाजी भी भोजन करने बैठीं। श्री यशोदाजी स्वयं परोसने

लगीं। मुस्कराते हुए यशोदाजी ने कहा : 'देखो, यहाँ लज्जा मत करना, सब अच्छी प्रकार से भोजन करो।'

जब सब भोजन कर चुकीं, तब यशोदाजी ने प्रत्येक को आलिङ्गन कर भवनों में भेज दिया। फिर बचा हुआ भोजन और पकवान अखिल नगर-वासियों में वितीर्ण करा दिया। नट, नर्तकी, बाजेवाले, बन्दीजन आदि को व्रजराज ने पारितोषिक से सन्तुष्ट किया। जब महोत्सव सम्पन्न हो चुका, तब वे सोचने लगे कि नित्य-प्रति ऐसा ही आनन्द होता रहे तो कितना अच्छा हो!

कन्दुक-क्रीड़ा

दूसरे दिन गौ चराने को जब व्रजराजकुमार सखाओं के साथ वन में गये, तब फूलों को गेंद बनाकर वहाँ कन्दुक-क्रीड़ा प्रारम्भ की। सखाओं ने अनेक पुष्पों के अत्यन्त रुचिर क्रीड़ा के योग्य चन्द्रमा के टुकड़े जैसे गेंद बनाये, जिन्हें लेकर वे इधर-उधर दौड़ते हुए तथा एक-दूसरे को गेंद मारते हुए खेलने लगे। कभी कोई हँसते हुए ऊपर ही ऊपर गेंद पकड़ लेता था, कोई बहुत ऊपर उछाल देता था। ऐसे क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण आकाश की सुन्दरियों में भी रमणीय भावना उत्पन्न करने लगे (अर्थात् उन्हें मोहित करने लगे)। अनुचरों के सहित दौड़ते हुए भगवान् अलौकिक शोभा पा रहे थे। उनका मन विश्राम की इच्छा नहीं करता था। खेल के समय वे जब गेंद फेंकते हुए दौड़ते थे और उनके कुण्डलों की किरणें कपोलों पर पड़ती थीं तो उनके कमलदल-सदृश नेत्रों के कोने उन किरणों को सूर्य की किरणें समझकर शङ्कित हो उठते थे (अर्थात् चौंधिया जाते थे)। उनके सखा जब दौड़ते तो उनकी घुँघराली अलकें चञ्चल होकर बहुत सुन्दर प्रतीत होती थीं। कभी गेंद को ऊपर उछालकर पकड़ने लगते तो पगड़ी गिरने लगती, तब एक हाथ से पगड़ी सँभालते तथा दूसरे से गेंद पकड़ने का प्रयत्न करते उनके सुन्दर मुख की शोभा दमक उठती थी।

इस प्रकार गेंद को पकड़कर अद्भुत चरित्र करनेवाले श्रीकृष्ण के अङ्गों में पसीने की बूँदें छलककर ऐसी सुशोभित होने लगीं, जैसे उनका मुख मुक्ताओं से भूषित हो। उनके थक जाने पर विश्राम के लिए एक विशाल वृक्ष के नीचे किसी सखा ने अपने दुपट्टे की शय्या बना दी और श्रीकृष्ण उस पर विश्राम करने लगे। कोई सखा चरण दबाने लगा। विश्वात्मा श्रीकृष्ण के सब सुहृद्-सखा परम प्यार से यही समझते थे कि यह कृष्ण केवल हमारा ही है। इसी भाव से वे अत्यन्त हर्षित हो रहे थे। बलभद्र-मण्डली भद्र आदि सखा

सख्य, वात्सल्य और दास्य तीनों भाव रखते हैं; सुवल, उज्ज्वल आदि सखा सख्य-दास्य-मिश्रित भाव रखते हैं; श्रीदामा केवल सख्य रसवाले हैं और रक्तक आदि केवल दास्य भाववाले हैं। ये सव पुण्यपुञ्ज सखा सन्ध्या समय वन से श्रीकृष्ण के साथ ही लौट आये।

धेनुकासुरवध-लीला

अगले दिन भी सव लोग गौओं को लेकर श्रीकृष्ण के साथ वन में गये। आकाश में देवता लोग भी उनकी गोचारण-लीला का कौतुक देख रहे थे। श्री वलरामजी-सहित श्रीकृष्ण सखा-मण्डल में नित्य-प्रति की तरह आनन्द-मयी क्रीड़ा करते हुए वृन्दावन के तरु, लता, खग, मृग, भ्रमर आदि का सौभाग्य वलरामजी को सुनाते हुए और सुनते हुए विहार करने लगे। नेत्रवानों का नेत्र-सन्ताप हरण करते हुए विचरते-विचरते गगन-मण्डल में सूर्य मेरुमध्य में आ पहुँचे। श्रमजलकण से कपोल-मण्डल जिनके सुशोभित हो रहे हैं, ऐसे सखाओं के सहित दोनों भ्राता पहले की तरह घनी तरुछाया में विश्राम करने लगे।

उस समय विविध विनोद द्वारा हँसते-हँसाते प्रेममयी मधुरतर कथाएँ कहते हुए प्रेमोद्रेक करने लगे। श्रीकृष्ण क्षण-मात्र विश्राम करके सहसा उठ खड़े हुए और प्रेम दिखलाते हुए वलरामजी के चरण-कमल दवाने लगे। तदनन्तर खेदरहित होकर खेलों से उल्लसित सकल सखा मध्याह्न काल का ताप कम हो जाने पर गौओं के पीछे-पीछे खेल करते हुए धीरे-धीरे वन की भूमि पर विहार करने लगे। उस समय सकल-कला-कौशल जाननेवाले मधुरिमामय श्रीकृष्ण और वलरामजी से सखागण वोले: 'हे राम! हे श्रीकृष्ण! तुम दोनों महाप्रभावशाली हो। हमको वड़ी भूख लग रही है। हमारे पेट की यह पीड़ा क्या तुम नहीं दूर कर सकते! देखो! पास ही से सुगन्ध आ रही है। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर ताल-वन है। वहाँ वहुत अद्भुत फल हैं, किन्तु हैं सव अत्यन्त दुर्लभ।'

जव फलों को पाने की लालसा से सखाओं ने ऐसा कहा, तव उनका प्रिय करने की इच्छा से उन सखाओं-सहित श्रीकृष्ण-वलराम धेनुकासुर-द्वारा रक्षित उस ताल-वन की ओर चले। उत्कण्ठापूर्ण नेत्रों से वहाँ की शोभा देखते हुए वे आगे वढ़े। वहाँ पके हुए पीले-पीले फलों से लदे हुए वृक्ष शोभित हो रहे थे। दुर्लभ व सदा फलनेवाले उन घने वृक्षों की अद्भुत शोभा थी। वहाँ जाकर आश्चर्यपूर्वक अद्भुत सुगन्ध सूँघते हुए वे वोले: 'सखाओ! अव खूब फल चुराओ और गिरा-गिराकर खूब खाओ!' सुनते ही सव सखा

लोहे के सुदृढ़ अस्त्रों-द्वारा फलों को काट-काटकर गिराने लगे और वृक्षों को हिलाने लगे। उस शब्द को सुनकर दिशाओं को धूलि के अन्धकार से भरता हुआ विशाल शरीरवाला गधा-रूपधारी राक्षस 'धेनुकासुर' शीघ्रता से पैर फटकारता हुआ दौड़ा आया। वह राम-कृष्ण को मारने की इच्छा से झपटा। उसको आते देख महाबलवान् बलरामजी ने उसके पीछे के पैरों को पकड़ लिया और आकाश में घुमाकर उसे ताल-वृक्ष की जड़ में पटक दिया। उसके शरीर के गिरने से अनेक वृक्ष और बहुत-से फल गिर पड़े। उसके मरते ही उसके अन्य अनुगामी राक्षस भी दौड़े आये। उनको भी मारकर राम-कृष्ण आनन्दपूर्वक पके फलों को गेंद बनाकर सखाओं के साथ खेलने लगे। कहने लगे : 'यहाँ खाना न चाहिए। इन फलों को लेते चलेंगे।'

इस प्रकार ताल-वन को निर्भय करके मनुष्यरूपधारी भगवान् सखाओं को आनन्द देते हुए बलरामजी के सहित गौओं को लेकर वन की शोभा देखते हुए आनन्दपूर्वक सन्ध्या समय मुरली बजाते व्रज की ओर चले। गौओं के खुरों से उठी हुई धूलि से उनके अलक और मुखचन्द्र शोभित हो रहे थे। प्रिय जनों के नयनों को आनन्द देते हुए तथा मुरली की ध्वनि से व्रजनगर की नागरियों के मनरूपी मणियों को चुराते हुए वे चले आ रहे थे। छतों पर बैठी हुई गोपियाँ उनकी छवि को निर्निमेष नयन-कमल-दलों से पान कर रही थीं। श्रीकृष्ण ने जब अपने भवन में प्रवेश किया, तब माता यशोदाजी ने उनकी धूल आदि झाड़कर स्नान कराया और भूषण-वस्त्र धारण कराये। तदनन्तर भोजन-पान कर श्री बलराम और दामोदर सुखपूर्वक शयन करने लगे।

नवाँ स्तवक

कालियदमन-लीला

एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र विना वलरामजी के ही वन चले गये। गौओं को चराते हुए वन में विचर ही रहे थे कि वहाँ एक आश्चर्य की वात देखने को मिली। सूर्य की पुत्री यमुना के हृदय में रोग के समान, त्रैलोक्य-संचार-शक्ति रुद्र की कालाग्नि के समान, भयानक रस उत्पन्न करनेवाली भूमि के समान तथा मृत्यु के सहायक सुहृद् के समान एक कालिय नाम का व्याल गरुड़ के भय से यमुना के ह्रद के भीतर रहता था। उस यमुना-तट पर कालिय ह्रद के ऊपर उड़ते हुए पक्षी उसके विष की गरमी से तपकर गिर पड़ते थे। वायु भी भस्म होने के भय से वहाँ नहीं वहता था। उसके श्वास से वहाँ का जल ऐसा खौलता रहता था, जैसे समुद्र का जल वड़वाग्नि से खौलता रहता है। पीला-पीला जल का झाग हर समय उठता रहता था। उस महाह्रद के जल से सदा धुआँ निकलते रहने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसके अन्दर अग्नि जल रही हो। उस कालिय के स्त्री-वच्चे भी उसीमें रहते थे। वहाँ के जल-जन्तु विषज्वाला से जलने के भय के मारे भाग गये थे। उसका निवासस्थान महा अनल-कुण्ड के सदृश अथवा प्रलयकालरूपी पुरुष के नाभिह्रद सदृश प्रतीत होता था।

उस स्थान के निकट ही दैवयोग से प्यास लगने के कारण गौओं को ले जाकर गोप-वालकों ने वहाँ का दूषित जल गौओं को पिलाया तथा आप भी पी लिया। जल पीते ही वे सव प्राकृत देह होने के कारण उस विष को सहन न कर सके और मूच्छित होकर गिर पड़े। श्रीकृष्ण भगवान् ने आकर देखा तो उनको अत्यन्त मनोव्यथा हुई। सहसा अमृत-रस बरसानेवाले नयन-कमलों की कोर से देखकर उन्होंने सवको जिला दिया।

जव सव सखा जीकर उठ बैठे तो उनको वड़ा आश्चर्य हुआ। वे सव हँसते हुए परस्पर एक-दूसरे को देखते तथा आलिङ्गन करते हुए आपस में वार्तालाप करने लगे कि 'देखो! अभी-अभी हम लोग जलकर मर गये थे, फिर इतनी शीघ्रता से कैसे जी उठे! लगता है कि अघासुर के उदर में मरे हम लोगों को जिसने जिलाया था, उसने ही हमको यहाँ भी जीवित किया है।'

फिर श्रीकृष्ण की ओर सङ्केत करके कहने लगे : 'यही कोई मृत्यु-सञ्जीवन पदार्थ है।' और प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखने लगे।

श्रीकृष्ण भी कृष्ण वर्णवाली यमुना का हृदय-शोधन करने के लिए उस कालिय नाग को निकालने की इच्छा से अत्यन्त विशाल कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये। कुटिल अलकें जिनके मुख पर सुशोभित थीं, सर्प का मान भङ्ग करने के लिए जिन्होंने फेंटा कस लिया था तथा जिनका माधुर्य और सुन्दरता से पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गवाला किशोर अवस्था का रूप अत्यन्त कोमलता से परिच्छिन्न था, वे महाप्रभावशाली श्रीकृष्ण अब उस सर्प को मर्दन की इच्छा करके हर्ष बढ़ाकर अपने सखाओं की ओर देखकर बोले : 'देखो! तुम लोग भय मत करना। यहाँ पर ही गौओं की सँभाल करते हुए तुम लोग ठहरो।' और हँसकर दन्तावलि की कान्ति छिटकाते हुए उस कालिय नाग को अत्यन्त तुच्छ समझकर खेल ही खेल में लीलापूर्वक उस कुण्ड में कूदने को तैयार हो गये।

उस कदम्ब के वृक्ष के ऊपर से श्रीकृष्ण ताल ठोंककर ऐसे वेग से कूदे, जैसे मच्छरङ्क पक्षी* वेग से जल में गिरता है। उनके कूदते ही वेग से उस दह का जल उछलने लगा और लहरें इधर-उधर बहुत दूर तक फैल गयीं। उस जल के बड़ी दूर तक फैलने से ग्वाल-बाल व बछड़े भयभीत होकर भागने लगे। पाताल के उदर को फोड़ने की इच्छा से मानो दोनों भुजाओं से जल को चीरते हुए श्रीकृष्ण ने ह्रद को कम्पायमान कर दिया।

तब उस कालिय ने विचार किया कि यह अकस्मात् कौन आकर इस कुण्ड के जल को मथ रहा है? फिर उस फणीन्द्र ने देखा कि इन्द्रनील-मणि-सदृश कन्दर्प का दर्प हरण करनेवाला कोई परम मनोहर माधुर्यमय किशोर इधर ही चला आ रहा है। वह क्रोधित होकर अपने विशाल फणों से भीषण फुफकार करते हुए दौड़कर श्रीकृष्ण के शरीर में लिपटने लगा। भगवान् भी उस समय अपने ऐश्वर्य को छिपाकर लीला प्रकट करने लगे। किशोर-मूर्ति श्यामसुन्दर को अत्यन्त छोटा जानकर उस उन्मत्त सर्प ने लपेटना प्रारम्भ किया। लपेटते चले जाने पर भी उसने यही समझा कि मैं अभी अच्छी तरह इनको नहीं लपेट पाया। अपनी इच्छा से ही भगवान् लीला के हेतु बँध गये, अन्यथा उन्हें भला कौन बाँध सकता है! जैसे चन्दन के वृक्ष को सर्प लिपटे रहते हैं, वैसे ही वह लिपट गया। उन कौतुकधारी भगवान् ने तुरन्त ही इसलिए अपने को छुड़ाना पसन्द नहीं किया कि तब तक व्रजवासी लोग

* जल के बहुत ऊपर जाकर जोर से जल में लम्बी चोंच मारते हुए गिरता है।

भी आ जायँ और फणिधर के ऊपर मेरा ताण्डव नृत्य देखें। अपने भक्तों को लोकोत्तर चमत्कार दिखाने की इच्छा से ही वे लिपटे रहे।

अपने अनन्य भक्तों को प्रेम बढ़ाने के लिए धैर्य धारण कर उधर भगवान् ने व्रज में अरिष्ट-कल्पना प्रारम्भ कर दी अर्थात् वहाँ अपशकुन होने लगे। तब तक इधर ग्वाल-बाल और पशु श्रीकृष्ण के न आने से घबरा गये और अपने प्राणेश के दुःख से दुखी हो गये। वे सब शिथिल-जीवन होकर बाण-विद्ध प्राणी की भाँति मर्म-व्यथा से हा-हा करते भागते-दौड़ते चले। अपने माथे पर दोनों कर धरकर रोते हुए भय व शोक से व्याकुल होकर 'हा मरे! हा मरे!!' चिल्लाते हुए गिरते-पड़ते गोकुल में आकर मूर्च्छित हो-हो गिरने लगे।

तब तक व्रज के लोग भी अपशकुन अवलोकन करके अशुभ की आशङ्का से घबरा उठे। वहाँ सूर्य की ओर मुख करके गीदड़ बोलने लगे। और भी अनेक अमङ्गलसूचक बातें दिखाई पड़ने लगीं। सूर्य निस्तेज प्रतीत होने लगा, पवन का स्पर्श अत्यन्त कठोर लगने लगा, पृथिवी में कम्प प्रतीत होने लगा तथा स्त्रियों के दाहिने और पुरुषों के बायें नेत्र फड़कने लगे। इस प्रकार से अनेक अशुभसूचक अपशकुन देखकर सब गोप और व्रजराज भयङ्कर उपद्रव की आशङ्का से और 'श्रीकृष्ण के ऊपर कोई उपद्रव तो नहीं आ गया' इस शङ्का से व्याकुल हो उठे और कहने लगे : 'अहो! आज बलरामजी के बिना ही श्रीकृष्ण वन में गये हैं! कोई अनिष्ट तो नहीं हो गया? हाय! हम क्या करें? हमको तो कुछ पता भी नहीं है। शिव-शिव! बड़ा कष्ट है!'

शीघ्र ही व्याकुल होकर बालक, स्त्री, पुरुष सब श्रीकृष्ण को खोजने के लिए बलरामजी के साथ चले। नन्दजी श्रीकृष्ण के विलक्षण चरण-चिह्नों से अनुसन्धान करते हुए वन में पता लगाते यमुना-तट के उस स्थान पर आये और जड़वत् खड़े होकर इधर-उधर ताकने लगे।

तभी वे सब गोप-बालक रोते हुए परम शोकातुर हो दौड़े आये। वृद्धों ने उनकी ऐसी दशा देखकर उनसे सब हाल पूछा। तब उन्होंने बतलाया कि श्रीकृष्ण तो विष-ह्रद में कूद पड़े। उसमें श्रीकृष्ण का डूबना सुनते ही कालियदह के विष की आग की भयङ्करता जाननेवाले वे सब व्याकुल हो उठे और मूर्च्छित हो पृथिवी पर ऐसे गिर पड़े, जैसे वायु से टूटकर लता गिर पड़ती है। 'हा तात-वत्सल! तुमने यह क्या किया!' ऐसा कहते नन्दजी का रोते-रोते गला रुँध आया और वे मूर्च्छित हो गिर पड़े। 'हे व्रजजन-प्रिय वत्स! तुम कहाँ हो? शीघ्र ही मिलो! आओ, आओ!' इस प्रकार प्रलाप करते हुए गोप-बालक भी

पृथिवी पर गिरकर मूर्च्छित हो गये। श्री यशोदाजी गोपियों के साथ शोक से विलाप करती हुई मूर्च्छित हो-होकर गिरने लगीं और नवीन अनुरागवाली कुमारिकाओं ने जब सुना तो वे भी व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गयीं। सान्त्वना दिये जाने पर भी उनको होश नहीं आया। इस प्रकार तदाकार मन होने के कारण श्रीकृष्ण को ही जीवन माननेवाले सब लोग जब शोक से व्याकुल होकर करुण विलाप करते हुए कालियदह के तट पर आकर बार-बार मूर्च्छित हो-होकर गिरने व फिर उठकर उसी दह में डूबने की इच्छा करने लगे तो पृथिवी शोकमयी हो गयी।

तब श्रीकृष्ण का प्रभाव जाननेवाले श्री बलरामजी बोले : 'हे तात! शोक के कारण हृदय का ताप मत बढ़ाओ। कृष्ण के लिए खेद की आवश्यकता नहीं है। हे माता! मत विलाप करो, धैर्य धारण करो! हे पुरवासियो! आप लोग भी दुखित न हों। हमारे भ्राता के पराक्रम की महिमा को जानकर शान्त हो जायँ। उसको आप लोग नहीं जानते, मैं ही केवल जानता हूँ। देवता भी उसकी महिमा को नहीं जानते। आप लोग विचारपूर्वक देखते रहें, श्रीकृष्ण के द्वारा अभी नाग का पराभव हो जायगा। जैसे पवन वृक्ष को तोड़ डालता है, जैसे सूर्य तिमिर को दूर कर देता है तथा जैसे आग वन को जला देती है, ऐसे ही श्रीकृष्ण इसका नाश कर देंगे। इस क्षुद्र सर्प से क्या भय करना है! आप सन्ताप त्याग दें। आपके देखते ही देखते कृष्ण अभी उससे छूटकर आ जायेंगे। आप लोग उठें। मेरी बात पर दृढ़ विश्वास करें।'

जब बलरामजी ने इस प्रकार से सब लोगों को समझाया तो सबने धैर्य धारण किया। तत्पश्चात् माया से मोहित करके सकल सुरासुर आदि को भ्रमित करनेवाले भगवान् अपना पराक्रम प्रकट करने को उस दह में नाग से लिपटे उछलते हुए दिखाई पड़े। उन्होंने अपना वेग बढ़ाया। उस समय उनका मुखचन्द्र मुस्कान से युक्त था। देवता लोग यह देख आकाश में दुन्दुभि बजाने लगे, शङ्ख-नाद होने लगे और सभा में आनन्द मनाने लगे। उस आनन्द-ध्वनि से सहसा जीवित होकर उठे हुए के सदृश पितामह-वन्दित सौभाग्यशाली नन्दरायजी प्रफुल्लित हो उठे। उस समय अत्यन्त तीक्ष्ण कराल फणोंवाले कालिय के सब फणों से अग्नि की ज्वालाएँ और विष का फेन निकल रहा था। वह जिह्वाओं को लपलपाता हुआ भय उत्पन्न करने लगा। बलदेवजी की बातों का विश्वास करते हुए भी उसका भयङ्कर रूप देख भयभीत होकर सब लोग व्याकुल हो उठे। तब बलरामजी ने फिर समझाया। उधर श्रीकृष्ण कालिय से लिपटे हुए फिर दिखाई पड़े। उसके सैकड़ों फणों से किरणें निकल

रही थीं। बलरामजी कहने लगे : 'देखो ! यह अञ्जन के समान काला भुजङ्ग, जिसके दाँतों से विष की ज्वाला निकल रही है, कैसा भयङ्कर है ! वह देखो, श्रीकृष्ण क्रमशः बढ़ने लगे। वह नाग श्रीकृष्ण के बढ़ने से शिथिल पड़ गया और श्रीकृष्ण छोटे होकर उसमें से निकल आये। अब देखो, पीताम्बर एवं वनमाला धारण किये श्रीकृष्ण ने फेंटे को फिर से कसकर बाँध लिया है और अपने परिकर को सुख देने तथा सर्प को क्षय करने के लिए तैयार हो रहे हैं।'

उनके परमानन्दमय वचन सुनकर सब लोग विकलता भूल गये। सब आश्चर्यपूर्वक देखने लगे। गोपिकाएँ प्रफुल्लित नेत्रों से नयनानन्द श्रीकृष्ण का अवलोकन करने लगीं। शरणागतों का उद्धार करनेवाले तथा कालों के भी महाकाल भगवान् श्रीकृष्ण भी कृपापूर्वक कटाक्षों से देखते हुए कृतार्थ करने के लिए नाग की फण-मण्डलरूपी रङ्गभूमि पर स्वर-ताल सहित विचित्र कर्कश नृत्य करने लगे। गन्धर्व, विद्याधर तथा अप्सराएँ इकट्ठे होकर मृदङ्ग, पणव, गोमुख आदि वाद्य बजाकर नृत्य में सङ्गत करने लगे। वे ता-ता-थेई करके ऊँचे स्वर से आनन्दित होकर नृत्य-कला दिखलाने लगे। तालभेद से शब्दों को उच्चारण करते हुए तथा एक फण से दूसरे फण पर चरण रखते हुए अपनी कल्पित गति से नाचते भी जाते थे और उसीके अनुरूप गान भी गा रहे थे। वैसे ही बाजे भी बज रहे थे। फणों पर नृत्य की कला और मुखचन्द्र से गान-शब्दों की माला निकल रही थी। ऐसा ताण्डव नृत्य था कि पाद-प्रहार से उस नाग के फण झुक-झुक जाते थे। ताल-गति के अनुसार चरण रखने से उनके सुन्दर पदाम्बुज फणों पर अद्भुत छटा दिखला रहे थे। श्रीकृष्ण के नृत्य-गान की गति की थाह न लगा सकने के कारण गन्धर्व एवं अप्सराएँ लज्जित हो रही थीं। आकाश में घन गम्भीर भेरी की तुमुल ध्वनि छा गयी, मुनि-गण स्तुति करने लगे तथा नन्दनवन के पुष्पों की वृष्टि होने लगी। व्रजवासी आनन्दित हो उठे। श्रीकृष्ण के चरणों के आघात से जब कालिय अति दुखित हो उठा तो उसे मरणासन्न देखकर उसकी पत्नी नागिनियाँ व्याकुल हो उठीं। लज्जा त्यागकर भगवान् के सामने आकर वे करुण स्वर से स्तुति करने लगीं :

'जय-जय देवदेव ! जय-जय देव-देवताओं के मुकुटमणि ! आप साक्षात् परब्रह्म हैं, ब्रह्मा-शङ्कर के कण्ठरत्न हैं ! आपके चरण-कमल सिन्धुतनया के करों से लालित हैं। योगीजन आपके चरण-कमलों को सुखपूर्वक हृदय में धारण करते हैं। परमहंस जन हंस के समान मिश्रित क्षीर-नीर में से नीर के समान

पुरुषार्थ समझकर और क्षीरवत् आपको समझकर आपको पाने की चेष्टा करते हैं। आप कृपया हमारा नम्र निवेदन सुनें। हम आपको प्रणाम करती हैं।

हे सच्चिदानन्दघन-विग्रह ! हे विग्रह-मात्र ! सर्वदा नवीन ! सर्व दानवों को मारनेवाले ! सब व्यूहों के परे परमपुरुष ! दुष्टों का नाश करनेवाले आप ही प्राणों के देवता और वासुदेव हैं, आप ही अखिल तपों के कर्षण करनेवाले सङ्कर्षण हैं। आप ही अखिल व्रजवासियों के प्रेम-घन हैं। आप अपनी ही माया से छिपे हुए हैं। आप ही समस्त देवताओं की आत्मा हैं। व्रजवासियों के आप ही प्राण हैं। आप प्रसन्न हो जायँ। यह फणिपति अत्यन्त विकल हो रहा है। इसने कौन-सा सुकृत किया था, जो देवता, गन्धर्व एवं ऋषियों से वन्दित और समाधि साधनेवाले योगियों को ध्यान में भी दुर्लभ आपके चरण-कमलों को अनायास ही अपने प्रत्येक फण पर धारण किया है। इस प्रपञ्च का निर्माण तीनों गुणों से हुआ है, किन्तु आप त्रिगुणातीत हैं। आप भवताप-हारी हैं, सबके मन को शोधन करने के पदार्थ हैं और आप ही वानर के समान डोरी में बाँधकर ब्रह्मा आदि को नचाया करते हैं।

हे निष्किञ्चनप्रिय ! गुणों के तारतम्य से जीव में गुण-दोष होते हैं। इस कालिय का तमोगुण में ही जन्म हुआ है। क्रोध का यह रूप ही है। इसलिए इसका कोई दोष नहीं, क्योंकि इसमें सुशीलता का होना असम्भव ही है। आपकी ही माया से यह बँधा हुआ है। आपकी ही माया से आपको कोई नहीं जान सकता। इसके द्वारा कोई अपराध नहीं हुआ। आपको तो इस पर कृपा ही करनी चाहिए, दण्ड नहीं देना चाहिए। देखिये तो, पीड़ा से सन्तप्त होकर यह कैसा दयनीय हो गया है ! आप दया करके इसकी उपेक्षा न करें। आप समदृष्टि हैं। सम्पूर्ण रास्ते आपके ही बनाये हैं। आप कृपा करके इस पामर जीव को छोड़ दीजिये।

शङ्करजी, लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी आदि एवं यतिवृन्द यत्न करते हुए भी हृदय में आपको नहीं जान पाते। आप माया से छिपे हुए निकट ही रहते हैं। आपके नृत्य करते समय चरणों की चोट से व्यथित होकर हृदय में मर्म के घाव हो जाने से अब इसकी साँस मात्र बाकी है। यह महा विशाल है, इसलिए शीघ्र ही प्राण नहीं छोड़ रहा है। इसका अपराध क्षमा कर दीजिये। हमें विधवा न बनाइये।'

इस प्रकार कातर स्वर से दीनतापूर्वक जब नागिनियों ने प्रार्थना की, तब भगवान् उन पर अनुग्रह करने के लिए शिथिल हो गये; क्रोध त्यागकर

दयालु हो गये और मधुर वाणी से बोले : 'मत भयभीत होओ। उस जल में इसकी महा विष-ज्वाला को देखकर मैं इसे हटाना चाहता था। तुम लोगों के वचनों से मेरा सब क्रोध चला गया। यह पन्नग अब किसीको दिखाई न पड़े, इसलिए हमारे क्रीड़ा-स्थल को छोड़कर जहाँ से आया था, वहीं चला जाय। मेरे चरणों के जो चिह्न इसके फण पर बन गये हैं, उन्हें देखकर गरुड़ अब इसको दुःख न देगा। अतः गरुड़ से इसको कोई भय नहीं है।'

इस प्रकार भगवान् का परम आश्वासन पाकर हृदय का भाररूप गर्व दूर हो जाने से वह लघु हो गया और अपने को दीन मानकर भक्ति-श्रद्धा-सहित बोला : 'हे भगवन् ! आपके प्रभाव को हम नहीं जानते। पृथिवी पर आपका आश्चर्यमय अवतार हुआ है। साधु, असाधु तथा भक्तों को आप यथाभाव शुभाशुभ फल देने तथा अपने मनोविनोद के लिए अवतीर्ण हुए हैं। हे दयामन्दिर ! आपने उचित ही किया है, क्योंकि आपकी क्रीड़ा का साधन यह जल मैंने दूषित कर दिया है। आपका निग्रह मेरे लिए अनुग्रहरूप हुआ। आपने मेरा उद्धार कर दिया। आपका यह नृत्य सकल मङ्गलदायक है और अपने फणों पर आपके चरण-चिह्नस्वरूप लक्ष्मी प्राप्त कर मैं धन्य हो गया हूँ। मैं अज्ञ हूँ, आपकी आज्ञा से मैं अब रमणक द्वीप में जाता हूँ। हे देवताओं में शिरोमणि ! हे कुण्डलधारी ! मैंने जो आपको कष्ट दिया, उसके लिए क्षमा करें।'

ऐसा कहकर दिव्याम्बर मणियाँ और मुक्ताहार आदि उपहार भगवान् के आगे समर्पण और प्रणाम कर वह कालिय सपरिकर चला गया। उसके चले जाने पर शीघ्र ही वहाँ का जल अमृत के सदृश निर्मल और मधुर हो गया। व्रजराजकुमार लीला से यमुना-तट पर निकल आये। कौतुकमय चमत्कार से आनन्द-समुद्र को उमगाते हुए शीघ्रता से आकर माता-पिता व वृद्ध-वृद्ध गोपों को आदरसहित प्रणाम करने लगे। माता-पिता आदि से मिलकर फिर श्री बलरामजी को आलिङ्गन किया। परम अनुरागिनी गोपकन्याएँ अपने सौभाग्य को पुनः लौट आया देख मधुर दृष्टि से देखने लगीं। ऐसे ही परम प्रेमवश प्रफुल्लित नेत्रों से गौएँ भी श्रीकृष्ण की ओर देखती हुई हुङ्कार करने लगीं। प्रेम-रस के रसज्ञ सखागण अत्यन्त आनन्दित हुए। प्रत्येक सखा श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करने लगा। इस प्रकार से आमोद-प्रमोद से प्रसन्न होकर सन्ध्या हो जाने के कारण सब विश्राम की इच्छा करने लगे। सूर्यदेव अस्ताचल को गमन कर चुके थे। अब रात्रि में चलना उचित न समझकर देश-कालोचित बात विचार कर व्रजराज नन्दजी कहने लगे : 'देखो ! अब

रात्रि हो गयी, अँधेरी रात है और भयङ्करता प्रतीत हो रही है। इसलिए अब यहीं यमुना-तट पर ही रात्रि व्यतीत करेंगे।' ऐसा सुनकर सब आनन्दित हो गये।

परम किशोर कमनीयरूपधारी श्रीकृष्ण के दर्शन की सुलभता के कारण विशेषतया अनुरागिनी कन्याएँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। श्रीकृष्ण को मध्य में करके चारों ओर व्रजराज और सखागण विश्राम करने लगे। वधुएँ और कुमारिकाएँ माता व श्वशुर के निकट विश्राम करने लगीं। उसके वाद सब मण्डलाकार विराज गये। उसके वाहर गौएँ, उसके पश्चात् अस्त्रधारी गोपगण! इस प्रकार मण्डली व्यूह वनाकर श्रीकृष्ण के विचित्र चरित्र व कालिय-मर्दन-लीला का परस्पर वर्णन करते हुए सवने अर्ध रात्रि व्यतीत कर दी। स्त्री-पुरुष जव सो गये तो उस रसमय समय में श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र को सानुराग देखती हुई कुमारिकाएँ अपने हृदय व नेत्रों के भोग को भली-भाँति प्राप्त करने लगीं। मुख्य-मुख्य चन्द्रावली आदि गोप-कन्याएँ अत्यन्त नयनोत्सव-सुख प्राप्त कर रही थीं। पहले अङ्कुरित हुआ प्रेम-मनोरथ संयोग से अकस्मात् ही प्राप्त हो गया। उनके हृदय में विचित्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। उस समय परस्पर नेत्ररूपी कमल खिलने लगे। श्री राधाजी के प्रकाश में भगवान् के कटाक्षपात खञ्जन की पूँछ के हिलाने के सदृश और श्रीकृष्ण के प्रकाश में श्री राधिका के कटाक्ष कमल के हिलने जैसे प्रतीत होते थे। इस प्रकार मुहूर्त मात्र मूर्च्छित होते हुए अनुराग-सुमन के पराग का रस लेते हुए चन्द्रावली आदि से छिपकर श्री राधा और कृष्ण की नवीन रति को अनुभव करती हुई सकल गोपिकाएँ सो गयीं। कोई एक-आध कृष्ण-कथा कहती हुई जागती रही।

दावानलपान-लीला

उस समय 'अहो! नाश हो गया, नाश हो गया!' ऐसा कष्टप्रद शब्द सुनकर लोग जग पड़े और पूछने लगे: 'क्या है? क्या है?' वे सव गोपिकाएँ और गोप भय से विह्वल होकर श्रीकृष्ण की ओर देखने लगे। उनको भयभीत होते देख नन्दनन्दन ने आश्वासन दिया: 'मत डरो, मत डरो!' कोई शङ्का करने लगा: 'क्या कालिय फिर आ गया!' कोई कहने लगा: 'कोई वन का हाथी तो नहीं आ गया?' लोग इस प्रकार तर्क कर ही रहे थे कि चारों ओर से वन में आग लग गयी और ज्वालाएँ उठने लगीं। सव रोने-चिल्लाने लगे। सव लोग कहने लगे: 'हम सब जल जायँगे!' सहसा नन्दजी को गर्गजी के वचन याद आ गये और वे कहने लगे: 'हे तात! हे वत्स! हे पुत्र! तुम

हमारी रक्षा करो। यह महान् आग किसी प्रकार भी निवारण नहीं की जा सकती। तुम ही इस समय सबको जलने से बचा सकते हो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई इसका दमन नहीं कर सकता।' माता-पिता और सकल बन्धु जनों को इस प्रकार व्याकुल होते देखकर श्रीकृष्ण बोले : 'मत डरो, मत डरो!' और ऐसा कहते-कहते आगे आ गये। यद्यपि वन में आग लगी थी, तथापि श्रीकृष्ण ने चमत्कारमय लीला के लिए स्वेच्छा से कोई हानि न होने दी। सूखे वृक्षों में चारों ओर से लगकर अग्नि चट-चट ध्वनि करती हुई ज्वालाएँ उगलने लगी। क्षण-क्षण में बड़ी दूर-दूर तक के वृक्षों को भस्म करती हुई वे ज्वालाएँ आ पहुँचीं। मृग-पक्षी घोर ध्वनि करते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। वृक्षों की पंक्ति की पंक्ति पत्तों से रहित हो गयी। भय से व्याकुल होकर कान उठाकर चिल्लाती हुई गौएँ इधर-उधर दौड़ने लगीं। पक्षियों की श्रेणी आकाश में उड़ती हुई धूम से अंधी होने लगी। सुन्दर हरिणों का भय से भागना देखकर लोग कहने लगे : 'हाय! क्या करें, इस समय जल बरसने की भी सम्भावना नहीं है। नदी का तट भी दूर है। वहाँ से भी जल सींचकर इतनी जल्दी आग नहीं बुझायी जा सकती।' बन्धुजनों की व्यथा देखकर श्रीकृष्ण ने सोचा कि अब ये सब लोग अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं। अतः इस आपत्ति का शमन करना चाहिए। तदनन्तर उन्होंने ऐश्वर्य शक्ति के द्वारा उन सम्पूर्ण ज्वालाओं को निमिष मात्र में पी लिया। स्वप्न में देखे हुए के सदृश अथवा भ्रम हो जाने अथवा इन्द्रजाली माया के सदृश वह आग सहसा सबके सामने से अदृश्य हो गयी। उस समय सब व्रजवासियों को ऐसा सुख हुआ, जैसे दरिद्रों का मनोरथ सहसा फल जाय अथवा हतभाग्यों का वैभव उदय हो जाय। सब लोग कहने लगे : 'यह क्या हुआ? हम लोग क्या पागल हो गये थे, जो इस प्रकार प्रलाप कर रहे थे। कहाँ है आग? आग तो कहीं भी नहीं दिखाई देती।'

तब तक प्रातःकाल हो गया और बहुत प्रकार से आनन्द मनाते हुए अपने पुत्र-सहित व्रजराज व्रज को आ गये। व्रजनगरी अत्यन्त दुःखरूपी रात्रि को बिताकर अनुरागवती होती हुई सुशोभित होने लगी और पुनः नित्य की भाँति आनन्द-उल्लास होने लगा।



दसवाँ स्तवक

निमन्त्रणोत्सव

मन में प्रेमाङ्कुर उत्पन्न हो जाने के अनन्तर गोपाङ्गनाओं के हृदय में अपने हृदयेश के अङ्ग-सङ्ग की उत्कण्ठा बढ़ गयी और वे मिलन का उपाय सोचने लगीं। उनका मनोरथ दुर्लभ था। किन्तु मनोज की सहायता से वे अपने हृदय का विश्वास स्थिर किये थीं। अपने अभिप्राय छिपाते हुए भी सखियों में बैठकर वे सभी अपनी-अपनी उत्कण्ठा को वाणी का विषय बनाने लगीं। उनमें से चन्द्रावली अपने अनुराग के बलवान् होने पर पद्मा नाम की सखी से बोली :

किं गौरि गाढगुरुणा गुरुगौरवेण
किं निन्दया बत ननान्दुरमन्दया नः।
किं ज्वालया खलगिरो गरलोपमायाः
श्यामेन मे हृदतिरक्तमकारि पीतम्॥

'अरी गोरी! अब बड़ों के बड़प्पन की कोई परवाह नहीं है। ननद तो मूर्ख है, उसकी निन्दा का भी कोई डर नहीं। दुष्ट लोगों की वाणीरूपी विष की ज्वाला अब मेरा क्या बिगाड़ लेगी, क्योंकि श्याम ने मेरा 'पीत' (पीला या पिया हुआ) हृदय अतिरक्त (लाल या अनुरक्त) कर लिया है।'

पद्मा बोली : 'जब तक राधाजी का नवीन अनुराग बढ़कर श्रीकृष्ण को अपने वश में नहीं कर लेता, तब तक तुम्हें चाहिए कि फल-सिद्धि कर लो। ऐसा उपाय रचो कि श्रीकृष्ण स्वयं ही तुम्हारे निकट आकर तुमसे मिलें। तुम्हारे संग के सुख में वे राधाजी को भूल जायँ। व्रजराजकुमार का मन अवश्य तुम्हारी ओर लगा हुआ है। देखो! उस दिन कालिय-दमन के बाद रात्रि में तुमने देखा ही होगा कि किस प्रकार वे तुम्हारी ओर देख रहे थे।' इस प्रकार चन्द्रावली को आश्वासन देकर और यथायोग्य चेष्टाएँ करने को बताकर वह प्रवीणता से उसी कार्य की सिद्धि के निमित्त स्वयं प्रवृत्त हो गयी।

उधर वैसे ही अधिक उत्कण्ठा से भरी श्री राधिकाजी को सहचरियों के साथ एकान्त में प्रेम-वार्ता करते और अनुरागरूपी व्यथा से कुछ चिन्तामग्न देख हाथ में मौलश्री की मालाएँ ले श्यामा सखी उनके पास आकर बोली :

'राधे ! तुम्हारे होते हुए भी इस गोकुल में गोपियों में रत्न वनकर सौभाग्य-रूपी सम्पत्ति कोई (दूसरी सखी) लूट रही है ! देखा नहीं, उस दिन कालिय-दमन के वाद रात्रि में उस रसमयी रमणी ने हृदय को आकर्षित करनेवाले कटाक्ष से देखा तो व्रजराजकुमार मूर्तिमान् चकोर की तरह उसके मुखचन्द्र को देखने लगे थे। अतः वह उनके अनुराग का पात्र वन गयी है। यह देखकर मुझे वड़ा दुःख हो रहा है। अब मेरे हृदय में सरसता नहीं रह गयी।'

श्री राधाजी ने कहा : 'यह क्या प्रलाप कर रही है री ?

सा काऽऽलि कालियरिपोरनुरागपात्रं
या गोकुले कुलजनैरनुमातुमर्हा।
इन्दुर्विना कुमुदिनीं स्वयमुज्जिहीते
नेन्दुं विना कुमुदिनी विकचत्वमेति॥

सखी ! कालिय-मर्दन के अनुराग का पात्र वह कौन ललना है, जिसके प्रेम का अनुमान गोकुल की कुलवन्ती रमणियों ने भी कर लिया ? क्या तुम नहीं जानती कि विना कुमुदिनी की मदद के चन्द्रमा आप ही उदय हो जाता है, किन्तु कुमुदिनी विना चन्द्रमा के दर्शन के नहीं खिलती।

सम्पूर्ण गोपियों में क्या वही उनके अनुराग का पात्र है ? क्या दूसरा और कोई नहीं हो सकता ?'

श्यामा वोली : 'तुम मेरे वचनों पर सन्देह करके खेद न करो। सच मानो, तुम्हारा सौभाग्य जानो मेरा ही सौभाग्य है।'

ललिता वोली : 'यह आश्वासन वचन मात्र से है अथवा यथार्थ ?'

श्यामा वोली : 'न मानो तो बकुलमालिका सखी से पूछ लो।'

ललिता ने कहा : 'बकुलमालिके ! मैं आग्रह करती हूँ, तुम सच-सच वतलाओ।'

बकुलमाला वोली : 'तुम्हारा यह सन्देह अभी निवृत्त हो जायगा, तनिक धैर्य धरकर सुनो, जो मैं कहती हूँ।

एक वार की वात है, गोवर्धन पर गौएँ चराते हुए और नर्म सखाओं के साथ रस-समुद्र उमगाते हुए, पुष्पों से लदे हुए सघन वन में सुगन्धयुक्त कुसुमों को लेकर श्रीकृष्ण अत्यन्त मनोहर मालाएँ बनाने लगे। मैं धैर्य धारण किये लताओं में छिपी देख रही थी, मुझे किसीने नहीं देखा। देवी के शुक को ग्रहण करनेवाले सखा कुसुमासव ने श्रीकृष्ण को वन-गमन, जन्मोत्सव तथा कालियदमन की रात्रि की दर्शन-स्मरण-सम्बन्धी रसमयी बातों का स्मरण कराते

हुए मधुर वाणी से कहा : 'सखा ! अपने कर-कमलों से रची यह माला उस देवी (श्री राधा) को उपहार में देनी चाहिए । इसको वहीं पहुँचाओ ।'

यह सुनकर श्रीकृष्ण तिलमात्र मुस्कराकर बोले : 'सखे ! ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है ? तुम्हारी यह बात तो आकाश के पुष्पों की माला से आकाश का भूषण बनाने के सदृश है ।'

अपनी बात को व्यर्थ होते देखकर अनेक युक्तियाँ सोचते हुए क्षण-मात्र चित्रलिखित की तरह कुसुमासव सखा खड़ा रह गया । उसी समय पद्मा नाम की सखी तीव्र उत्कण्ठा से कुछ कहने के लिए सामने आ गयी और उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ ।

कुसुमासव : 'क्या है सखीजी ! क्या चतुरता से देख रही हो ? किस प्रयोजन से इस वन में अकेली विचर रही हो ? हमारे रसिक-शेखर सखा के सामने लज्जा छोड़कर बिलकुल निर्भय की भाँति क्यों विचरण कर रही हो ?'

पद्मा भगवान् के सम्मुख होकर बोली : 'देखो, मैं चन्द्रावली की सखी पद्मा हूँ । उनकी आज्ञा से मैं गौरी-पूजन के लिए आयी हूँ । पुष्पों का खोजती फिर रही हूँ । जैसे पुष्प यहाँ मिलते हैं, वैसे अन्यत्र नहीं मिलते । मैं बकुल आदि के पुष्पों को लेने यहाँ आयी हूँ ।'

कुसुमासव : 'उन गौरी का गौरी-पूजन-परायण होना तो प्रसिद्ध ही है, किन्तु श्रद्धा के गौरव से ही देवता तुष्ट होते हैं । अतः उन्हें स्वयं परिश्रम करके आना चाहिए था । वे स्वयं क्यों नहीं आयीं ?'

पद्मा : 'बात यह है कि उन्होंने जलाशय के निकट कृष्ण भुजङ्ग को सहसा कहीं देख लिया है, उसी क्षण से अब तक उनके चित्त को उसका विष दुःख दे रहा है ।'

कुसुमासव ने कहा : 'यदि उनका मन अचेतन हो जाय तो विषबाधा का शमन हो सकता है ।'

पद्मा : 'मैं उस मन को अचेतन कर देनेवाली ओषधि के लिए ही तो भटक रही हूँ ।'

कुसुमासव : 'वह तो अत्यन्त दुर्लभ है ।'

पद्मा चकित होकर बोली : 'ऊँची उत्कण्ठावाले के लिए क्या दुर्लभ है ?'

कुसुमासव : 'यह तो बड़ी विपरीत बात है ! मन की सचेतावस्था में ही उत्कण्ठा हो सकती है । भला उत्कण्ठा के द्वारा मन का कैसे अपगमन हो सकता है ?'

पद्मा : 'उनके मन का अपगमन तो हो ही चुका है। किसी मनोहर ने उनका मन हरण कर लिया है, तथापि उत्कण्ठा है, यही विचित्रता है।'

कुसुमासव : 'तो उस मनोहर को ही ढूँढ़ो।'

पद्मा : 'ठीक है, इस समय तो ये जो वकुल-माला बना रहे हैं, यदि इसीको उन देवी के कण्ठ में धारण करा दिया जाय तो उन्हें कुछ चैन मिल जायगा।'

कृष्ण : 'सखे ! यह बड़ी चतुर मालूम पड़ती है, जो कि शीघ्र ही वकुल-माला द्वारा गौरी-पूजन करने की इच्छा करती है। हमारा माला गूँथने का परिश्रम क्या यों ही चला जायगा ?'

कुसुमासव : 'तुमने बड़ा साहस किया, जो हमारे प्रिय सखा के निज-कण्ठ-भूषण-योग्य इस वकुल-मालिका को पाने की इच्छा करती हो। यह दूसरी रखी माला चाहो तो ले जाओ।'

पद्मा : 'मेरा साहस कैसा ? मुझे कैसे बहका रहे हो ? यदि कुमार का रसमय प्रसाद (कृपा) हो, तब तो वे स्वयं ही दे देंगे।'

कृष्ण : 'सखा ! इसने ठीक कहा, इसलिए इसे पुष्प दे दो। यह स्वयं ही जैसे भी इसकी इच्छा हो, अपनी सखी को सन्तोष पहुँचायेगी और गौरी-पूजन करेगी।'

कुसुमासव ने उसे पुष्प दे दिये और वह उनको लेकर चली गयी।'

वकुलमालिका श्री राधाजी तथा ललिता से आगे कहने लगी : 'हे राधे ! तुम्हारे तीव्र तप का बड़ा प्रभाव है। तभी तो कुसुमासव ने कहा था कि जैसे यह सखी आयी है, ऐसी ही यदि वृषभानुकुमारी की कोई सखी इस समय आ जाय तो शीघ्र ही तुम्हारे हृदय के ताप को शीतलता पहुँच सकती है और यह माला शीघ्र ही श्री राधा को पहुँच सकती है।

मैं पीछे लता में छिपी यह सब सुन रही थी। सुनते ही मैं छलपूर्वक दूर से धीरे-धीरे सामने की ओर से आ निकली। मुझे देख कुसुमासव सहसा उठ खड़ा हुआ और पूछने लगा : 'कौन हो री ? बोलो, बोलो। यहाँ कैसे आयी ?'

जब मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब उसी समय आया हुआ पास बैठा शुक बोला : 'श्री राधाजी की प्रिय सखी ये वकुलमाला हैं और वकुल पुष्पों की माला के निर्माण के लिए ही पुष्पों को चुनने आयी हैं।'

कुसुमासव ने पूछा : 'माला का क्या प्रयोजन है ?'

शुक बोला : 'यह वकुल पुष्प की माला रचकर मेरी देवी को प्रदान करेगी।'

कुसुमासव बोला : 'श्यामसुन्दर ! मेरी वाणीरूपी कल्पलता अव फलने-वाली है।'

शुक ने कहा : 'ब्राह्मणों की वाणी अमोघ है। इसलिए इस सखी को यह वकुलमाला दे दो। यह वहाँ पहुँचा देगी।'

श्रीकृष्णचन्द्र ने मुस्कराते हुए पूछा : 'शुक ! तुम यहाँ कैसे आ गये ? इस हास्यचतुर सखा की वाणी सहज ही गर्व से भरी है। हे प्रिय शुक ! तुम अपनी देवी के पक्षपात से ही ऐसा कहते हो। देखो ! यह माला देवी के योग्य नहीं है।'

फिर श्रीकृष्ण बकुलमाला से पूछने लगे : 'वकुलमाले ! तुम मुझे पहचानती हो ?'

वकुलमाला को मौन देखकर शुक ने उससे कहा : 'ये व्रजराजकुमार हैं। अपने कर-कमलों से गूँथी हुई यह माला तुमको दे रहे हैं।'

तव वकुलमाला शुक से बोली : 'शुक-कुलावतंस ! संसर्ग से दोष हो जाता है, ऐसे ही तुममें दोष आ गया है। तुम स्वभाव से लम्पट हो। पीता-म्वरधारी श्रीकृष्ण का मधुर रस पीकर तुम विगड़ गये हो। तुमने कभी सुन्दर कुल की किसी कुमारिका को परपुरुष की दी हुई माला हृदय में धारण करते देखा है ?'

तव शुक ने कहा : 'अरी ! यह परपुरुष नहीं, परमपुरुष हैं !'

वकुलमाला ने कहा : 'मैंने तो इन्हें 'पुरुष' कहा है, तुम 'अपुरुष' कैसे कहते हो ?'

शुक ने कहा : 'अपनी वाचालतावश 'परम्+अपुरुष' ऐसी सन्धि मत करो, यहाँ कर्मधारयपरक 'परम' शब्द है, जिसका अर्थ है 'दुर्लभ'। अतः श्रीकृष्णजी से सन्धि कर लो और उनकी दी हुई माला को ले जाना रूप कर्म धारण करो।'

इस प्रकार जव अपनी ही चतुरता से जव मैं हार गयी तो फिर अपने स्वभाव और परम्परा के अनुसार उनके प्रति कोई व्यंग्य नहीं किया और मकराकृति-कुण्डलधारी श्यामसुन्दर के पास चली गयी।

तदनन्तर विद्वत्तापूर्वक अत्यन्त सरसता से परस्पर कुसुमासव और शुक का संवाद हुआ और यह निश्चय हुआ कि बकुलमाला द्वारा यह माला उस

परम अगाध अनुरागिनी शुक की देवी को देकर श्रीकृष्ण का शिल्प-कौशल सफल करना चाहिए।

ललिते ! कुसुमासव की वात सुनकर श्रीकृष्ण पुलकित हो गये और प्रफुल्लित होकर उन्होंने अपने कर-कमलों से अपनी प्रणय-माधुरी के समान उस वकुलमाला को लेकर मुस्कराते हुए मुखचन्द्र से मेरी ओर आकर मेरे हाथों में अपने हाथ का स्पर्श करते हुए मुझे माला समर्पित कर दी। तब मैं उस अत्यन्त सुगन्धित भगवान् के हृदय के समान माला को अपने करों में लेकर आयी और अपनी देवी को समर्पण कर दिया।'

इस तरह वकुलमाला ने ललिताजी से श्री राधाजी के सामने सब पहली वार्ता अर्थात् श्रीकृष्ण, कुसुमासव व चन्द्रावली की सखी का हाल यथावत् कह सुनाया। फिर वोलीं : 'ललिते ! उसे लेकर मेरी ये देवी शीघ्रता से सखियों में आयीं। वहाँ पर श्यामा ने सुन्दर ढंग से वह माला इन श्री राधाजी के गले में पहनायी। उस समय वृषभानुकिशोरी श्यामसुन्दर के रसमय स्पर्श से सरस उस माला का स्पर्श पाकर अत्यन्त आनन्द में भरकर प्रफुल्लित हो उठीं। इनके कपोलों पर प्रेम के अश्रु छलक पड़े। आनन्दमय मुस्कानयुक्त इनका वदन-कमल खिल उठा। सुधा-सरस मधुर अधर हिलने लगे। अनुपम रसास्वादन का अनुभव करती हुई सहसा आनन्द से भरकर ये मूर्च्छित-सी होने लगीं।'

इस प्रकार सखी वकुलमाला ने जब यह कथा सुनायी तो ललिता ने वकुलमाला को आलिङ्गन करके कहा : 'श्यामे ! यह वकुलमाला सचमुच वकुलमाला ही है। नाम से नहीं, उस माला के गुण व सौभाग्य से भी इसकी समानता है, क्योंकि श्रीकृष्ण के कर का स्पर्श जैसे माला ने पाया था, वैसे ही इसने भी पाया, वह माला जैसे श्री राधा के कण्ठ का भूषण वनी थी, वैसे ही यह भी श्री राधा के कण्ठ का हार बन रही है और जैसे माला सुन्दर, कोमल व सुकुमार होती है, वैसी ही यह भी सुगन्धित, कोमल तथा सुन्दर है।'

श्यामा वोली : 'ललिते ! तुम्हारी यह बात वड़ी ललित है।'

निमन्त्रण-स्वीकार-उत्सव

कुछ दिन बाद श्री वृषभानुजी ने श्री व्रजराज नन्दजी का उनके पूरे परिवार के सहित निमन्त्रण किया। उन्होंने अत्यन्त कुशलता से भोजन के सब पदार्थ चतुरतापूर्वक सरस और मधुर वनाने के लिए सखियों के समेत श्री राधाजी को बुला लाने के लिए दासी को उनके पास भेजा। दासी वहाँ आयी, जहाँ सखियों के बीच श्री राधाजी बैठी बातें कर रही थीं। उसने सब वृत्तान्त सुनाकर

कहा कि 'तुम्हारे पिता की आज्ञा है, सो तुम चलो। विलम्ब मत करो। हे श्यामे ! हे ललिते ! हे विशाखे ! तुमसे भी कहा है, तुम भी चलो।'

उसके वचन सुनकर परम हर्ष से भरकर ललिताजी बोलीं : 'दासी ! इस समय अकस्मात् निमन्त्रण का महोत्सव कैसे निश्चित हुआ ?'

दासी ने कहा : 'अरी ! अकस्मात् नहीं ! श्रीकृष्ण की जन्म-तिथि के समय जब नन्दजी ने सबका निमन्त्रण किया था, उसी दिन वृषभानुजी ने इच्छा प्रकट की थी कि हम भी सपरिवार ब्रजराज का निमन्त्रण करेंगे। वही मनोरथ अब महोत्सव के रूप में पूरा होने जा रहा है।'

श्यामा बोली : 'राधिके ! यह तो महान् कौतुक की बात है। इसे तो अवश्य देखना चाहिए, पिताजी की आज्ञा भी है। इसलिए उठो !' सबकी सब उठकर चल दीं और आकर मूर्तिमान् महोत्सवरूपी शोभा देखने लगीं।

उन सबने पिताजी को प्रणाम किया। उन्होंने प्रसन्न होकर उनका शिर सूँघा और आशीर्वाद दिया, फिर भोजन बनाने की कला में निपुण श्री राधाजी से कहा : 'कल्याणी ! तुम कमनीयता से चतुरतापूर्वक विचित्रता के साथ भोजन बनाकर अपने कर-कमलों को सफल करो। ब्रजराज अपने पुत्र और परिवार के सहित अपने गृह पर भोजन करेंगे।'

ललिता ने कहा : 'तात ! क्या करना उचित है ?'

वे बोले : 'उनके भोजनार्थ कुशलतापूर्वक उत्तम पदार्थ बनाओ ! भवन में जाओ और जो पदार्थ बन चुके हों, उन्हें देखो और जो न बने हों, उन्हें मधुर सुन्दर सामग्री जुटाकर शीघ्र बना लो।' यह सुनकर वे सब शोभामय भवन में गयीं और माता को प्रणाम कर सब सामग्रियाँ ठीक करने लगीं।

इधर गौओं को लेकर जब श्रीकृष्ण वन से लौटे, तब ब्रजराज ने उनसे मधुर वाणी में कहा : 'वत्स ! बहुत दिन से मनोरथ करते हुए वृषभानुजी ने हम सबका निमन्त्रण किया है, इसलिए उनके प्रेमवश कल वहाँ चलना होगा। तुम कल गौएँ चराने वन में न जाना।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'क्या सखाओं को छोड़कर अकेले भोजन करने जाना होगा ? मैं तो नहीं जाऊँगा।'

उनकी नीति से भरी बात सुनकर यशोदाजी उनकी ओर मुँह करके कहने लगीं : 'तात ! तुम दुखी मत होओ। मैं जानती हूँ, तुमको सखा बड़े प्रिय हैं। ठीक है, तुम सखाओं के सहित ही चलना। कोई भी सखा वन को नहीं जायगा। वृषभानुजी ने अपनी पुत्री के द्वारा प्रेमपूर्वक भोजन कराने को

तुमको बुलाया है।' यह सुनते ही श्रीकृष्णजी ने वन जाने का विचार छोड़ दिया।

प्रातःकाल वृषभानुरूपी भानु के द्वारा भेजी हुई बूढ़ी गोपियाँ नन्द-भवन आकर बोलीं : 'हे यशोदाजी ! आपकी राधाजी के पिता ने जो सन्देश दिया है, सो सुनो !

'तुम्हारी वात्सल्यतारूपी लता में फूल लगे हैं। तुम्हारे गुण कहाँ तक वर्णन किये जायँ। देखो, वृषभानुजी ने कहा है कि आप और रोहिणीजी अपने पुत्रों-सहित आकर हमें कृतार्थ करें ! इसलिए कुमारों के अङ्गों में उवटन-स्नान करा भूषण धारण कर शीघ्रता से चलिये।'

व्रजेश्वरी ने उत्तर दिया : 'तुमने बड़ी विनय सुनायी। तुम्हारी विनय का माहात्म्य अपूर्व है। अव तुम लोग जाओ, हम शीघ्रता से सव कृत्य करके आने के लिए प्रयत्न करेंगे !'

उधर वृषभानुजी को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने व्रजराज के स्वागत के अनुरूप सजावट प्रारम्भ की और उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे।

ग्राम के मुख्य द्वार पर पत्तों की झालर लटकायी गयी और कलशों की श्रेणी पर नारियल के फल रखे गये। मङ्गलमय वीथियाँ सुन्दरता से सजायी गयीं। इधर-उधर फलसहित वृक्ष तथा पुष्पों के तरुवर लगाकर अत्यन्त शोभा वढ़ायी गयी। मधुर मृदङ्ग, पणव आदि वाजे वजाये जाने लगे और व्रजराज की प्रतीक्षा की जाने लगी।

तदनन्तर सखाओं के साथ भवन मङ्गलकारी पीताम्वरधारी विजली-सरिस चमचमाते हुए व्रजराजकिशोर और श्री नन्दरायजी तथा यशोदाजी अपने सव परिवार सहित आते हुए दिखलाई दिये। उनको देखते ही शीघ्रता से वृषभानुजी मुख्य द्वार पर जाकर सम्मानपूर्वक सवसे मिले और श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके अत्यन्त हर्षित हुए तथा सवको अपने नगर में लिवा लाये। सवको यथास्थान पर विराजमान कराकर चरण धुलाये, सव प्रकार से पूजन करके आदरसहित सुगन्ध आदि लेपन किया, तदनन्तर आनन्दपूर्वक सवको भोजन-भवन में विराजमान कराया।

उधर अन्तःपुर में यशोदाजी के स्नेह में वँधी व्रजाङ्गनाएँ उनसे वार्तालाप करने लगीं। पाक-भवन में जाकर यशोदाजी राधाजी को देखकर प्रसन्न हो पूछने लगीं : 'वत्से ! तुम कुसुम से भी अधिक कोमलाङ्गी हो, तुमने वड़ा परिश्रम किया। तुम पाक-कला में वड़ी कुशल मालूम होती हो। सव

कन्याओं में तुम मणि के समान हो। दिखाओ हमको, तुमने क्या-क्या बनाया है ?'

लज्जित होते हुए राधाजी ने जो वस्तुएँ वनायी थीं, सव दिखला दीं। यशोदाजी का हृदय अत्यन्त विलक्षण पकवान और मिठाइयाँ देखकर आनन्द से भर गया। वे प्रेमपूर्वक राधाजी को आलिङ्गन करके वोलीं : 'लाड़ली ! धन्य हो ! तुम पाक-कला में वहुत विलक्षणता प्राप्त करके सदा आनन्द प्राप्त करती रहोगी। श्यामा और ललिता आदि सखियों से वन्दित और प्रसन्न मुख-चन्द्रवाली राधाजी की सुकुमारता का अनुभव करके श्री यशोदाजी वोलीं : 'श्यामे ! ललिते ! विशाखे ! तुम धन्य हो, जो तुम्हारा परस्पर गाढ़ प्रेम है।'

फिर सवसे मिल-जुलकर और सवसे वन्दित होकर वे रोहिणीजी से वोलीं : 'वलभद्र की माता ! देखो, इन गोपियों की आपस में अत्यन्त प्रीति है और यह देखो 'यही श्री राधा हैं।' यह नन्दनवन की लता के सदृश अथवा रूप-रूपी चन्दन की लता के सदृश वृषभानुजी की सुकृतरूपी खान से उत्पन्न होनेवाली मणि-शिरोमणि हैं।'

रोहिणीजी ने कहा : 'कृष्ण की माता ! आप सत्य कहती हैं ! सव सम्भव है। देखो ! व्रजेन्द्रनन्दन सर्व गुणों के सिन्धु हैं और वृषभानुनन्दिनी भी सर्व गुणों की खान हैं। यही दो व्रज की शोभा-सम्पत्ति के कण्ठ-भूषण-रत्न हैं।'

यह सुनकर कोमलाङ्गी श्री राधा लज्जित हो गयीं। श्यामा, ललिता आदि सखियाँ राधाजी का लज्जित मुख अवलोकन करके तनिक मुस्कराकर वोलीं : 'देवि ! तुम्हारा यह गूढ़ वचन हमें भी आश्चर्य में डाल रहा है। तुम धन्य हो। वास्तव में निःसन्देह तुमने वर्षा, शीत, उष्णता सहकर पहले वहुत तप किया होगा, जो व्रज की शोभा के कण्ठभूषण इन दोनों रत्नों का एकीकरण कर दिया। वास्तव में तुम्हारा यह वचन वहुत ऊँचा (अर्थ वतलानेवाला) है।'

अव यशोदाजी ने वृषभानुजी की गृहिणी कीर्तिदा रानी को वुलाकर आलिङ्गन किया और वोलीं : 'देखो ! इस प्रकार से इतना परिश्रम क्यों कर रही हो ? यह वड़ी रानियों को उचित नहीं है। और इस राधा से भी क्यों इतना परिश्रम कराया ? इसने मिठाई व पदार्थ ऐसे वनाये हैं, जो कि वड़ी-वड़ी चतुर गृहिणियाँ भी नहीं वना सकतीं। देखो न, यह कैसी कृश हो गयी है !'

रानी कीर्तिदा वोलीं : 'हे व्रजेश्वरी ! तुम सत्य ही कहती हो। यह भोजन वनाने में स्वभाव से ही अत्यन्त चतुर है और अधिक आनन्द की वात तो यह है कि परम उदार नन्दरायजी और आप लोग तथा नन्दनन्दन इन पदार्थों

का आस्वादन करेंगे, यह बड़े सौभाग्य की वात है। इसीलिए यह स्वयं आदर और प्रेमपूर्वक पाक बनाने में प्रवृत्त हुई थी। न जाने इसने कैसा पाक बनाया है। इसके करों में कोई गुण है अवश्य, क्योंकि इसके बनाने से पदार्थों में सरसता, मधुरता स्वाभाविक ही आ जाती है। इसके पिता ने कौतुक से हठ किया कि राधा ही भोजन बनाये। इसलिए मैं अपने को कृतार्थ मानती हूँ। तुम स्वयं सब जाननेवाली हो, तुमने अपने उल्लास से मुझे अत्यन्त आनन्द प्रदान किया है।'

यशोदाजी बोलीं : 'जो कुछ पदार्थ बनाये गये हैं, उनको रोहिणीजी तुम परोसो।' कीर्तिदा रानी बोलीं : 'देखो, रोहिणीजी श्री नन्दरायजी आदि बड़ों को परोसें और श्रीकृष्ण तथा उनके सखाओं के लिए शीघ्रता से परोसनेवाली ललिता आदि सखियाँ परोसेंगी।'

इतना सुनकर मन्द मधुर मुस्कान से मुस्कराकर लजाते हुए अपने में जड़ता का अनुभव करती हुई श्री राधाजी ने विचार किया कि मैं भी परोसूँगी। तीव्र उत्कण्ठा-सहित वे माता से बोलीं : 'क्या मैं भी सौभाग्यवती व्रजेश्वरी को परोसूँगी? श्यामा भी देहली के बाहर सावधानी से मेरे साथ में परोसेगी।'

परस्पर समान हृदय की जाननेवाली श्यामा बोली : 'राधे! तुम चिन्ता मत करो। परोसने में वही यत्न होना चाहिए, जिससे सब सन्तुष्ट हों; क्योंकि निमन्त्रण में जो व्रजराज आदि पधारे हैं, वे शङ्कर आदि के समान वन्दनीय हैं।'

यह सुनकर कौतुकवश प्रीतियुक्त हो वात्सल्यमयी व्रजेश्वरी बोलीं : 'शुभवती! तुमने बहुत सुन्दर नीति विचारी है। देखो, मैं जैसे बतलाऊँ, उसी प्रकार से तुम लोग परोसते जाना।' ऐसा कहकर यशोदाजी बाहर आयीं।

मणिमय आँगन में, जिसमें देहली रत्न-जड़ित और सर्वतोभद्र चक्र मणियों के बनाये हैं, वहाँ चौकियाँ, आसन तथा स्वर्ण के पीढ़ों पर सब विराजमान होने लगे। श्री व्रजराज रेशमी श्वेत वस्त्र धारण करके पधारे, उनके दक्षिण भाग में स्नेह से भरे बलरामजी तथा वायीं ओर नीलमणि-कान्ति सदृश श्रीकृष्ण विराजमान हुए। श्रीकृष्ण के दाहिनी ओर चतुर कुसुमासव और वायीं ओर सुबल आदि सब सखा सम्मानपूर्वक विराजमान हुए। इस प्रकार सुबल आदि सब सखागण हँसते हुए सुशोभित होने लगे।

तब व्रजेश्वरी के बुलाने पर श्री राधाजी आयीं और उनके कहने से श्रद्धा-भक्तिसहित व्रजराज के आगे थाल परोसा। श्यामा ने बलरामजी को परोसा। अब श्रीकृष्ण के आगे परोसने के समय जब राधाजी कुछ लज्जित होने लगीं, तब यशोदाजी ने कहा : 'श्यामे, तुम शीघ्रता से परोसो! यह राधा तुम्हारे बिना

भलीभाँति नहीं परोस पाती।' यह सुनकर श्री राधाजी उत्साहपूर्वक जाकर श्रीकृष्ण के आगे परोसने लगीं, परन्तु कर काँपने लगा और अनुराग के कारण हृदय धड़कने लगा। तव फिर यशोदाजी ने कहा : 'कुसुमासव आदि सव सखाओं को भी परोसो।'

जव राधाजी सखाओं को परोसने चलीं तो कुसुमासव अपनी प्रशंसा करने लगा : 'अहो! हम ब्राह्मण भी परम धन्य हैं, जो कि वृषभानुकिशोरी के कर-कमल से वनाया हुआ, परोसा हुआ पवित्र पदार्थ पायेंगे! यह देवी साक्षात् लक्ष्मी के समान है। इसके सदृश और क्या हो सकता है? कच्चा हो अथवा पक्का, भोजन तो केवल खाते समय ही अच्छा लगता है। भोजन करने के वाद स्वाद नहीं रहता और भोजन करने के वाद तो हे सखा! तुम ही अच्छे लगते हो।' इस प्रकार वृषभानुकिशोरी की परोसने आदि की गति देखता हुआ, हँसने में धुरन्धर कुसुमासव सवको हँसाने लगा।

तव श्रीकृष्ण ने कुछ झूठा कोप दिखाते हुए उससे कहा : 'हे वाचाल! इस समय हँसी मत करो। तुम्हारे पास तो केवल हास्य ही धन है। वकवाद मत करो।' वह वोला : 'क्या मैं गूँगों की तरह भोजन करूँ? इस समय तो मुझे लगता है कि मैं हजारों मुखों से इन भोज्य पदार्थों की प्रशंसा करूँ, किन्तु खेद है कि मेरे उतने मुख ही नहीं हैं।'

श्रीकृष्ण और कुसुमासव के वीच में उसी समय शुक आ वैठा। श्रीकृष्ण अपने हाथों से उसे खिलाने लगे। तव व्रजेश्वरी कहने लगीं : 'हे द्विजोत्तम! कहो, क्या कहना चाहते हो?'

कुसुमासव वोला : 'क्या मुझ द्विजोत्तम से पूछ रही हैं?'

यशोदाजी ने कहा : 'तुमसे नहीं, शुक से पूछती हूँ।'

शुक वोला : 'हे द्विजकुमार! वहुत वचनों की चतुरता मत रचो। तुम प्रमत्त हो। अनर्गल वातें करते हो, व्रजराजकुमार की वात समझ नहीं पाते। देखो, तुमने वृषभानुकिशोरी को लक्ष्मी की उपमा दी है, यह अपराध किया है।'

सुनकर नन्दजी वोले : 'यहां यह कौन पक्षी है? यह तो महाविज्ञ मालूम होता है!'

यशोदाजी ने शुक के पूर्व आगमन की सव गाथा उन्हें सुना दी।

नन्दजी ने कहा : 'इसने अपनी स्वामिनी का कैसा उत्कर्ष-वर्णन किया है!'

यशोदाजी वोलीं : 'इसने राधाजी के अपमान की आशङ्का और ममता के कारण ऐसा कहा है।'

इधर भवन के भीतर ये सारी बातें सुनती परोसने में व्यस्त सखियाँ मुस्कराने लगीं। उनमें श्री राधाजी मुस्कराती बोलीं : 'श्यामे ! इस द्विजोत्तम की वाचालता के कारण मैं न जाऊँगी, अब तुम ही परोसो।'

जब दूसरी बार परोसने के लिए श्री राधाजी न गयीं तो यशोदाजी समझ गयीं और स्वयं भवन में जाकर श्री राधाजी को अपने सम्मुख तथा पहले के क्रम के अनुसार परोसने के लिए सखियों को तत्पर होते देखकर कहा : 'देखो ! इस सखा की प्रशंसायुक्त बातों से तुम लजा गयी होगी। किन्तु यह ठीक नहीं। पुत्री ! इसे त्याग दो। भलीभाँति जाकर पुनः परोसने लगो। देखो, यह सखा कुछ झूठ थोड़े ही कहता है, सचमुच तुम लक्ष्मी ही हो।' इस प्रकार स्नेह से समझाती हुई फिर बोलीं : 'पुत्री ! यथाक्रम पुनः सब परोस दो।'

यशोदाजी की आज्ञा से श्री राधाजी ने पुनः उसी प्रकार परोसना प्रारम्भ किया। इस प्रकार सरस हास-परिहासपूर्वक पदार्थों का माधुर्य-स्वाद सराहते सब भोजन करने लगे। श्याम-बलराम आदि सब सखागण विनोदपूर्वक भोजन करने लगे।

अब श्रीकृष्ण के हृदय में भोजन करते समय श्रृङ्गार-रस का उदय होने लगा, क्योंकि श्री राधाजी द्वारा ही भोजन बनाया और परोसा गया था। दोनों के अन्तर का भाव गाढ़-अनुरागरूप हो गया था। भोजन के पश्चात् परम-प्रमोदपूर्वक माला-चन्दन-ताम्बूल आदि से सबकी पूजा की गयी तथा स्वयं वृषभानुजी ने विनयपूर्वक सबको विश्राम के लिए कहा।

उधर भवन के भीतर श्री यशोदाजी और रोहिणीजी जब भाजन करने बैठीं तो राधाजी ने उन्हें भी प्रेमपूर्वक परोसा। भोजन का रसास्वादन करते हुए वे परस्पर कहने लगीं : 'देखो, निःशङ्क होकर कुसुमासव ने कैसा वचन कहा था कि भोजन के बाद स्वाद नहीं रहेगा। लेकिन सखा ! बड़े भले लगोगे !' यशोदाजी बोलीं : 'श्री वृषभानु-किशोरी के बिना ऐसा पकवान और कौन बना सकता है ? मेरा पुत्र ऐसा आनन्द और कहीं नहीं पा सकता। इसने तो लजाकर परोसना छोड़ दिया था। जब मैंने समझाया, तब यह प्रसन्न हुई और इसका मन पुनः सरस हुआ।'

कीर्तिदा रानी बोलीं : 'हे ब्रजेश्वरी ! तुम्हारी वाणी सुनकर हमें बड़ा आनन्द मिलता है। तुम कृपा कर आज यहाँ ही रहो। प्रातःकाल सचमुच चली जाना। तुम्हारी कृपा से ब्रज के लोग लोकोत्तर आनन्द प्राप्त करते हैं,

तुम्हारी गति कालचक्र भी नहीं रोक सकता, किन्तु यहाँ रहने से कुछ समय तक भलीभाँति सबको तुम्हारे दर्शन का आनन्द प्राप्त होगा।'

इधर अपने हृदय के अन्तर का भाव प्रकट कर सखियाँ गोकुलचन्द्र के प्रति प्रेम दरसाने लगीं। चद्रावली आदि गोकुल-ललनाएँ जिनका दृढ़ भावना से भजन करती हैं, उन अपने हृदय के नाथ के सङ्ग की भावना से पुष्प लाने के छल से उपवन में अपने अनुरागरूपी कुसुम के सौरभ से विभ्रम पैदा करती हुई वे सब श्रीकृष्ण के सहित गयीं।

उस उपवन में, जहाँ पर किसी प्रकार की शङ्का की किसीको सम्भावना न थी, उन सबको सबके हृदय के प्रेमास्पद के मिलन के इच्छारूप अपने मनोरथ को सफल करने की लालसा उत्पन्न हुई। श्रीकृष्णजी ने उन नित्य सिद्धा गोपियों में, जो लक्ष्मी से भी अधिक उन्हें प्रिय हैं, अपनी योगमाया से स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य-सम्पादन की इच्छा की। श्रीकृष्ण को पति माननेवाली सब छायास्वरूप गोपिकाएँ वहाँ इकट्ठी हो गयीं।

ब्रह्मा व महादेव से भी वन्दित चरित्रवाले नीति-परायण व्रजराजनन्दन ने अप्राकृतिक नव कन्दर्प उत्सव प्रकट करते हुए तथा व्रजराज व व्रजेश्वरी के हृदय में माता-पिता का वात्सल्य भाव बनाये रखते हुए, पौगण्ड वयस् में ही किशोर-सौन्दर्य का अनुभव व्रज-सुन्दरियों को करा दिया। यद्यपि यह असम्भव है, किन्तु द्वादश रस सदा ही उनमें विराजमान रहते हैं, इसीलिए उस अवस्था में भी उनका व्रज-सुन्दरियों के साथ मिलन सम्भव हुआ।

परन्तु व्रजेश्वरी का श्री राधाजी पर पुत्र-वधू तथा नन्दनन्दन पर पुत्र-भाव वैसा ही बना रहा अर्थात् उन दोनों वात्सल्य भाववालों ने उस समय भी पौगण्ड वयस् का ही आनन्द अनुभव किया। यह सब प्रभु की विचित्र शक्ति के कारण सम्भव हो सका।

ग्यारहवाँ स्तवक

विहार-लीला

एक दिन सूर्यतुल्य अङ्ग-कान्तिवाले तथा प्रचण्ड पुरुषार्थ धारण करनेवाले श्रीकृष्ण और बलदेवजी सखाओं के सङ्ग भाण्डीर वट के नीचे स्थित होकर ग्रीष्मोचित विहार में प्रवृत्त हुए। सूर्य की प्रखर किरणों से चरण-नखों को तपानेवाली धूलि मणिमय गिरिगुहा से झरनेवाले झरनों के जल से ही शान्त हो रही थी।

उन्होंने गिरिराज गोवर्धन की गुहा के अन्दर, जहाँ निर्झर के शीतल जलकुण्ड थे, वहाँ प्रवेश किया। बहुत-से पक्षिगण उस समय वहाँ कुण्ड में जल-विहार कर रहे थे। मन्द-मन्द बहते पवन ने उनका स्वेद (पसीना) पी लिया। बड़े-बड़े पेड़ों के सघन दलों के कारण सूर्य की किरणें भूमि तक नहीं पहुँच पा रही थीं। चारों ओर फूलों से भरे कुञ्ज-कुटीर के द्वार पर चन्दन-रसपूर्ण जलयन्त्र लगे थे। द्वार के सम्मुख सुगन्धित शीतल जल के कलश धरे थे। देखने से यही प्रतीत होता था, मानो वनदेवियाँ श्रीकृष्ण के सहचरों की तृष्णा दूर करने को प्याऊ खोले बैठी हों। विकसित मल्लिका एवं कुटज पुष्पों के हार तथा शिरीष के पुष्पों के कान के आभूषण पहनकर सखागण वृक्षों की घनी छाया में बैठ गये। गिरिराज की गुहा से निकलते झरनों का स्वादिष्ट जल पीकर तृप्त धेनुओं को देख श्रीकृष्ण-बलराम अपने सखाओं समेत अति प्रसन्न हुए। कोई उठकर गाने लगा, कोई पत्ते की वंशी बजाता हुआ नाचने लगा। कभी बलदेवजी नृत्य करते तो कृष्ण वंशी बजाते। कभी कृष्णजी नृत्य करते तो सखा एवं बलदाऊजी गाने लगते। उसी समय व्रज-बालकों से नन्दनन्दन इस प्रकार मधुर वचन कहने लगे : 'प्रिय बन्धुओ! अब नृत्य और गाना-बजाना समाप्त करो। चलो, कुछ और नया खेल खेलें।' सखा भी बोले : 'ठीक है, लो, हम सब खेल छोड़ चुके। अब बताओ, कौन-सा खेल खेलें।'

कृष्ण बोले : 'अच्छा, सब लोग दो भागों में विभक्त हो जाओ। जिन्हें हमारे पक्ष में रहना हो, वे हमारी ओर आ जायँ और बाकी सब बड़े भैया की ओर चले जायँ। जिस दल की जीत होगी, उस दल के लोग दूसरे दलवालों के कन्धों पर चढ़कर भाण्डीर वट के नीचे तक जायँगे।'

खेल में दामोदर हार गये। अब पीताम्बरधारी वृन्दावनविहारी अखिल ब्रह्माण्डधारी श्रीकृष्णजी श्रीदामाजी को अपने कन्धे पर चढ़ा भाण्डीर वट तक ले चले। जगदीश्वर की विलक्षण लीलाएँ तर्क से कैसे जानी जा सकती हैं ?

प्रलम्बासुर-वध

उस क्रीड़ा में सकल दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब नामक दैत्य भी अपना रूप छिपा गोपसखा का रूप धारण कर आ मिला। वह सङ्कर्षणजी को कन्धे पर ले ऐसा प्रमुदित हो चला, जैसे कोई दरिद्र बड़ी निधि प्राप्त कर ले अथवा कोई चोर विपुल सम्पत्ति पा जाय। जब वह श्री बलरामजी को भाण्डीर वृक्ष के भी आगे ले चला, तब बलदेवजी अति विस्मित हुए और धीरे से हँसकर कहने लगे : 'भैया दामोदर ! यह सखा तो आनन्द से उन्मत्त हो गया है। देखो न, हमें और भी दूर ले जाना चाहता है, मुझे क्या करना चाहिए ? हे नित-नयी छविवाले कृष्ण ! अब देर न करो, जो कहो, वही करूँ !'

बलदेवजी के ये वचन सुन कौतुक के साथ भगवान् बोले : 'भैया ! तुम तो अकुतोभय हो, फिर भी क्यों मोहित हो रहे हो ? अपना बल दिखाकर इसका जीवन हर लो।'

तब बलदेवजी ने अपने वज्रतुल्य अतुल भुज-बल से थोड़ा-सा बल प्रकट कर उस सखारूपधारी असुर पर मुष्टि-प्रहार किया। प्राण त्यागने के पहले जब वह अपने भयङ्कर अति उन्नत राक्षसी रूप में खड़ा हो गया, तब उसके कन्धे पर श्री बलदेवजी ऐसे शोभित होने लगे, जैसे पर्वत पर चन्द्रमा ! उनके निरुपम अङ्ग असुर की देह से बहे रुधिर से धूम्रवर्ण हो गये। उस समय बलदेवजी सन्ध्याकालीन चन्द्रमा की भाँति शोभित हो रहे थे।

बलदेवजी के कर-कमल के आघात से असुर ने भूमि पर गिरकर प्राण त्याग दिये। यह दृश्य देख इन्द्रादि देवता नाचने लगे और उनकी स्त्रियाँ पुष्प-वृष्टि करने लगीं। तभी से बलदेवजी का 'प्रलम्बघ्न' नाम विख्यात हुआ। अपने सखाओं और श्रीकृष्ण को आनन्द देकर हँसते-हँसते उन्होंने वहीं वह लीला समाप्त की और पूरी मण्डली के साथ भाण्डीर वृक्ष के नीचे जाकर विश्राम करने लगे।

दावानल-पान

इधर सब लोग विश्राम कर रहे थे कि उधर गायें यमुना के निकट इषीक (मुञ्ज तृण) के वन में प्रविष्ट हो गयीं और वहाँ की हरियाली देख छिटककर चरने लगीं। जब सखागण विश्राम कर उठे तो उन्हें गायें बहुत ही कम

दिखाई पड़ीं। वे परस्पर कहने लगे : 'सखे, जिस वन में पक्षिगण और हरिण प्रमोद से विचर रहे हैं, वहाँ केवल 'के वल' (सुख पर ही सबका बल या जोर) है श्रेष्ठ। वहाँ गौओं को तनिक भी डर नहीं है। फिर इनकी संख्या कम क्यों होती जा रही है ?' शङ्कित होकर सब सखा उठे और गायों को ढूँढ़ने के लिए निविड़ वन की ओर चले। अनजाने डर से वे हृदय में दुःख का अनुभव करते सोचने लगे कि श्रीकृष्ण जैसे समर्थ सहायक होते हुए भी गायें कहाँ जा सकती हैं। जब उन्हें पूरी गायें नहीं दिखाई पड़ीं, तब वे श्रीकृष्ण के पास आये।

गौओं का दुःख अनुभव कर सखाओं ने अपने नराकृति, परब्रह्मरूपी, सङ्कल्प-कामधेनु नन्दनन्दन से धेनुओं के न दिखाई देने की बात कही। उनकी बात सुनते ही देवमुकुटमणि श्रीकृष्ण गौओं का विपत्ति से उद्धार करने के लिए उस वन में प्रविष्ट हुए और मुरली के मधुर स्वर में एक-एक गाय का नाम ले-ले टेर लगाने लगे : 'हे मुक्ते ! नन्दिनी ! इन्दुतिलके ! कस्तूरिके ! पिङ्गे ! रङ्गिणी ! कर्पूरिके ! धूमले ! धवलिके ! किञ्जल्किके ! श्यामे ! केतकी ! चन्द्रिके ! शबलिके ! काश्मीरिके ! चम्पिके ! आओ, आओ !' मुरलिका की मधुर तान सुन गायों के कानों में अमृत-सञ्चार-सा सुख होने लगा, किन्तु दूर से ही वे कृष्ण का पथ देखती रहीं, हिल न सकीं, जहाँ-तहाँ चारों ओर अग्नि से घिरी जो खड़ी थीं !

अग्नि से अपने जीवन का नाश निश्चित मानती हुई भी वे मुरली-रव का पान कर आश्वासन पाती वहीं से गद्गद हो 'हम्वा-हम्वा' रव से नन्दनन्दन को आनन्द देने लगीं। गौओं का 'हम्वा'-रव सुन गोपाल श्रीकृष्ण और बलरामजी को कुछ भरोसा हुआ। जब श्रीकृष्ण 'हम्वा' शब्द का अनुसरण करते हुए गौओं की ओर जल्दी से जाने लगे तो चारों ओर से दावानल बढ़ चला। रक्षक-विहीन गौओं के रक्षा-निमित्त चिन्तातुर हो वे बोल उठे : 'हाय ! अब इस विपत्ति से इन गौओं की कैसी रक्षा करूँ, जो अपनी करुण दृष्टि से चारों ओर मुझे ही खोज रही हैं। एक तो इनके हृदय में विरहानल जल ही रहा है, दूसरे बाहर का यह दावानल ! इनके दोनों तापों को मुझे शीघ्र बुझाना ही चाहिए।'

प्रभु सखाओं का नाम लेकर कहने लगे : 'हे सखाओ ! तुम लोग तनिक भी मत डरो और अपनी आँखें बन्द* कर लो। आनन्द का अनुभव करो। मैं अभी सब ठीक किये देता हूँ।'

* आशय कि अपना प्रत्यक्ष ऐश्वर्य-प्रभाव दिखाने से माधुर्य-लीला का भङ्ग हो जाता है।

सखाओं ने अपनी आँखें मीच लीं और सोचने लगे कि देखें, अब क्या होता है ? तब व्रजराज-नन्दन ने अपने कोमल कमल-सदृश अञ्जलि में दावानल को भर ज्यों ही शरद्-चन्द्र-सदृश वदन-चन्द्र में पान करने का सङ्कल्प किया, त्यों ही उनकी ऐश्वर्य शक्ति ने ही प्रकट हो अग्नि का पान कर लिया।

रसमय श्री नन्दनन्दन अपने सुहृद् के बाह्य तथा आन्तरिक कष्टों का इसी तरह सदा निवारण करते हैं। वे घनरसवर्षणकारी जीवों के हृदय के निरन्तर उठने-वाले सारे दुःखों को अपने करुण कटाक्ष से इसी तरह सदैव हरण कर लेते हैं। उन्होंने अपनी ऐश्वर्य-शक्ति से यह छोटी-सी आग बुझा दी और अपने गोकुल तथा गौओं की रक्षा की। यह उनके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं। अखिल सिद्धियों द्वारा सेवित चरणारविन्द, बकरिपु ने अपने अखण्ड प्रभाव से दावानल का पान किया, इस विषय में विज्ञजन कुछ भी विचित्रता की नहीं, रसमय भगवान् की सरसता का ही अनुभव करते हैं। इसलिए जो कोई अघरिपु नन्दनन्दन के चरण में नमस्कार भी करते हैं, उन पर काल का प्रभाव व्यर्थ हो जाता है। उन्हें पुनः जन्म भी नहीं लेना पड़ता।

उस समय स्वर्गलोक से नन्दन-कानन के पुष्पों की वर्षा होने लगी। ब्रह्मादिक देवता आकाश में स्थित हो नन्दनन्दन के चरण-कमलों में प्रणाम कर पुष्पाञ्जलि अर्पण करने लगे। उनके नेत्रों से प्रेम की अश्रुधाराएँ बह पड़ीं। देवताओं की वन्दना स्वीकार कर अपने सखाओं के आनन्द-वर्धन के लिए श्रीकृष्ण अपनी योगमाया शक्ति से उनके सहित भाण्डीर वृक्ष के नीचे अलक्षित भाव से पहुँच गये और सखाओं से कहने लगे : 'अब आँखें खोल दो!' सखाओं ने स्वयं को अपने-आप भाण्डीर वट के नीचे अवस्थित पा परम विस्मय माना। वे सोचने लगे, थोड़ी देर पहले तो हम देख रहे थे कि वन को चारों ओर से दावानल घेरे हुए है! क्या वह हमारे उन्माद के कारण था या था स्वप्न ? यदि ऐसा नहीं तो अब वह दावानल क्यों नहीं दिखाई पड़ता ? न वह वन है, न वे करुणदृष्टि गौएँ! आखिर हम भाण्डीर के नीचे कैसे आ पहुँचे ?

सब गौएँ आनन्द के साथ यमुना-जल पीकर नन्दनन्दन के परम प्रेमास्पद चरणकमलों को अपनी जिह्वा से चाटती और उनके चरणारविन्द-सौरभ को आनन्द से सूँघती उन्हें घेर खड़ी हो गयीं और करुणा से कोमल विग्रहवाले नन्दनन्दन अपने करतल-स्पर्श से उन्हें सुख देने लगे।

वर्षा ऋतु

ग्रीष्म ऋतु के दिन जब व्रजवासियों को ताप देने लगे, तब उनका प्रभाव हरण करने के लिए वर्षा ऋतु का आविर्भाव हो चला। पृथिवी शीतलता प्राप्त कर व्रजवासियों को ऐसा सुख देने लगी, जैसे प्रवल ज्वर का ताप चले जाने पर मनुष्यों को होता है। कुण्डों में कमल खिलने लगे, कमलों में भ्रमर गुञ्जन करने लगे और पवन कमल की सुगन्ध लेकर बहने लगा। ऐसी वर्षा ऋतु के सायङ्काल में स्नान और जलक्रीड़ा के बाद बलदेवजी तथा सखा-सहित कमल-नयन नन्दनन्दन मुरली बजाते गौओं को साथ ले व्रजवासियों के नयनों का उत्सव प्रकट करते अपने घर जाने लगे। अनुकूल पवन नन्दनन्दन के अङ्ग की सुगन्ध आगे-आगे बहाने लगी। वन की तरु-लताएँ और वनवासी पशु-पक्षी आदि उनके गोखुर-रेणु धूसरित वदनकमल और ललाट पर चूर्णकुन्तल और सफेद पाग के दर्शन करने लगे। पर भावी विरह की चिन्ता से उनके नयन भरे हुए थे। जब वे अपनी अव्यक्त ध्वनि से हृदय के भाव जनाने लगे, तब नन्दनन्दन भी मुरली की मधुर ध्वनि से उनको आश्वासन देने लगे। जैसे-तैसे वे वन के बाहर आये।

वन के कुण्ड में कमलों की पंक्तियों और सुगन्धि से थोड़ी देर तक वनवासी लोग भ्रान्त हो नन्दनन्दन का माधुर्य अनुभव करने लगे। बड़े भाई के साथ व्रजवासियों के स्वाभाविक प्रेमास्पद श्रीकृष्ण धीरे-धीरे आगे बढ़े। सभी उनके उन्मत्त गजराज-से गमन का माधुर्य देखने लगे। सखागण अनुराग से भर जब व्रजराजकुमार को देखते-देखते आगे निकल गये, तब स्वयं वे सखाओं का सङ्ग छोड़ सबसे पीछे चलने लगे, ताकि छत पर छोटी चन्द्रशाला में बैठी श्री राधाजी के दर्शन करें। पहले बड़े भाई के सङ्ग चलने के कारण सङ्कोच हो रहा था।

उस समय चन्द्रशालाओं में खड़ी व्रजसुन्दरियाँ अपने वदनचन्द्र के माधुर्य से गगन-चन्द्र को पराजित कर नव-चन्द्र की पिरोयी हुई माला-सी दीख पड़ती थीं। वे अपने नयनों के माधुर्य से नील-कमलों की शोभा को परास्त कर रही थीं। अङ्ग की कान्ति से विद्युत् पर भी उन्होंने विजय प्राप्त कर ली। मणियों के भूषणों से इन्द्रधनुष को लज्जित कर रखा। नयनों की दृष्टि से फूलों की शोभा जीत ली थी। अधिक क्या कहें, लावण्यामृत रस की उत्कण्ठा से भरे हृदयवाली नदियाँ बन गयीं। उनका कण्ठ गम्भीर उत्कण्ठा से पूर्ण था, अतः वे मौन थीं। अनुराग से गोपियों का हृदय सरस हो रहा था। प्रतीक्षा करते-करते सारा दिन उन्होंने बड़े कष्ट से बाह्यज्ञानशून्य होकर बिताया। अब दिन का

अवसान होता देख श्रीकृष्ण-दर्शन के अक्षय आशा-पाश ने उनके जीवन को बाँध लिया।

दूर से ही नवीन मेघ-सा अति सुन्दर श्यामल रूप धारण किये, मस्तक के वाम भाग में श्वेत पाग लटकाये अपने प्रियतम को देख गोपियाँ वहीं से अपनी नयन-अञ्जलियों से उनके रूप-माधुर्य को पान करने लगीं, मन द्वारा अपने प्रियतम को आलिङ्गन देने लगीं, जिह्वा से उनके अधरामृत का पान करने लगीं और निःस्पन्द हो गगन के भीतर चित्र की तरह स्थित हो गयीं। श्री नन्दनन्दन उनके नयनों का काजल बन गये, कानों के कुण्डल हो गये, वक्षःस्थल का नीलमणि-हार बन गये, अङ्गों में कस्तूरिका का अनुलेपन हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण व्रज-बालिकाओं के समस्त अङ्गों के आभूषण ही बन गये।

उसी समय प्रिय नर्मसखा परिहास से कुछ प्रिय वचन कहने लगे : 'प्रिय सखा! इतनी आयु हो जाने पर भी क्या तुमने कभी कहीं ऐसा अद्भुत कान्ति-समूह नहीं देखा? या वन के कुण्डों के कमल खिलते नहीं देखे, जो आज रह-रह-कर चन्द्रशालाओं पर स्थित इन कमलमालिकाओं को इतनी रुचि से अतृप्त हो देख रहे हो? क्या इसलिए कि ये विचित्र कमल गगनरूपी कुण्ड में खिले हैं। हे अखिल-गुणनिधि! तुम तो नीचे हो और कुमुदिनी आकाश में, यह बड़े आश्चर्य की बात है। ठीक है, जगत् में यह विषय भला किसे सुख नहीं देता?'

ऐसा कहते हुए सखागण छल से गोकुल-ललनाओं की श्रेष्ठा भानुनन्दिनी को दिखाने लगे। श्रीकृष्णचन्द्र ने गोपियों पर एक दृष्टि डाल श्री वृषभानु-नन्दिनी के वदन-कमल में अपने नयन स्थिर कर लिये, मानो वे दृष्टि से अपने हृद्गत भावों का विनिमय (आदान-प्रदान) करते हों। इस प्रकार उन्होंने व्रजगोपियों के सारे दिन का विरह-दुःख दूर कर दिया।

जब श्यामसुन्दर सायङ्काल वन से लौटते तो पहले उनके आगे-आगे गौओं की चरण-रज उड़ती दिखाई पड़ती, पश्चात् क्रमशः गौओं के चरण के खुर से भूमि पर आघात का शब्द और उनका हम्बा-रव सुनाई पड़ने लगता। उसके बाद गौओं का दर्शन होने लगता, फिर मुरली-ध्वनि सुनायी पड़ती। तत्पश्चात् सखाओं का दर्शन होता और सबके पीछे नन्दनन्दन अपने अङ्गों का माधुर्य बिखेरते हुए व्रज की सुन्दरियों को दर्शन देते।*

* इस वर्णन के बहाने कवि साधक को ध्यान की विधि का भी उपदेश कर रहे हैं।

यद्यपि गौएँ अपने वत्सों के प्रेमवश तेजी से भागने का प्रयत्न करतीं, फिर भी वन में प्रचुर तृण-भोजन से भारीपन तथा वन्शी की ध्वनि से आसक्ति हो जाने के कारण वे हौले-हौले ही चलती रहीं। अन्ततः धीरे-धीरे वे 'हम्वा-हम्वा' रव करती गोष्ठ में प्रवेश कर गयीं। जब श्रीकृष्ण की गौएँ गोष्ठ में घुस गयीं, तब सूर्य ने भी अपनी गौएँ (किरणें) जगत् से हटा लीं और वे अस्ताचल की ओर चले गये।

श्रीकृष्ण के दर्शनानन्द से भरे अन्तरवाली कृष्ण-जननी और सखाओं की माताएँ अपने भवन से बाहर आकर वनविहारी हरि को देखकर अपना कर्तव्य भूल गयीं। फिर, सँभलकर उन्होंने अपने-अपने पुत्रों का आलिङ्गन किया और उन्हें सिंहद्वार में प्रवेश कराया। तब अपनी-अपनी माताओं के पास खड़े होकर सखागण कृष्ण-जननी यशोदाजी से कहने लगे :

'अम्ब ! आज की आश्चर्य की बात क्या बतायें ! पहले तो बलदेवजी ने अपने बल से सखारूपधारी प्रलम्बासुर का वध कर डाला। फिर इन आपके नन्दनन्दन ने अपने हाथों दावानल का पान कर उससे गोधन और सखाओं की प्राणरक्षा की।'

श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी जननी से विदा ले जब सखा अपने भवन में चले गये, तब यशोदा मैया ने मणिमय दीप से सकल सुखमूर्ति अपने पुत्र की सब बलाएँ दूर कीं और उसे अपने अङ्क में धारण कर कर-कमल से लालन करते-करते अपने भवन में प्रवेश कराया। घर में जब सेविका ने सन्ध्या का स्नान करा दिया, तब मैया ने उन्हें सुखपूर्वक भोजन कराया, भूषण धारण कराये और उनके अङ्गों पर चन्दन का लेप किया। उस समय श्रीकृष्ण के कानों के कुण्डल की छटा बृहस्पति को जीत रही थी। वदन-मण्डल की शोभा से पूर्णिमा का चन्द्रमा तथा श्वेत पाग की शोभा से कलहंस-माला लज्जित हो रही थी। मधुर चरित्रवाले प्रिय नर्मसखा* ने नन्दनन्दन को ताम्बूल का बीड़ा दिया। तब नन्दनन्दन अपने माधुर्य से व्रजवासियों का मन हरण करने बाहर बैठक में पधारे, जहाँ व्रजराज बैठे थे।

गोदोहन-लीला

सिंहद्वार वन्दन-माला से मण्डित और सुशीतल चन्द्रमा की किरणरूपी कर्पूर से पूर्ण होकर नयनों को सुख दे रहा था। सामने चन्द्रकान्त की शिला-सदृश सफेद गायें सुख से बैठी जुगाली कर रही थीं। केवल कृष्णवर्ण सींग ही

* ये सदा नन्दनन्दन के साथ रहते थे, अपने घर नहीं जाते थे।

अलग दिखाई पड़ रहे थे। ऐसे गोष्ठ-स्थान में आकर, जहाँ गोपगण सायङ्काल के समय गो-दोहन करते थे, कृष्णचन्द्रजी अपने हाथों गौओं का दूध दुहने को तैयार हुए। उस समय अपनी चन्द्रशालाओं में चढ़कर बालहरिणी के नयनों की-सी नेत्रोंवाली गोकुल-ललनाएँ अपने-अपने मन की सहायता से भावरूप सखी के कर धारण कर अपने प्रियतम की गोदोहन-लीला का दर्शन करने लगीं। उस समय गोपियों के नयन-चकोरी के लिए नन्दनन्दन का वदन सुधामय चन्द्रमा के सदृश था। वे किसी तरह से भी अपने नयनों को रोक नहीं सकती थीं। देवगुरु बृहस्पतिजी भी उस गोदोहन-माधुर्य का वर्णन नहीं कर सकते, तथापि कवि लोग अपनी रसना को धन्य करने के लोभ से वर्णन करते हैं।

श्रीकृष्ण ने चरण के अगले भाग पर शरीर का भार देकर मेरुदण्ड को सीधा कर लिया और घुटनों के बीच मिट्टी की दोहनी दबाकर पीत वसन को घुटनों पर उठा लिया। सिर की पाग गाय के पेट में छू जा रही थी, पाग का बन्धन शिथिल हो गया था। कर-युगल को कली की तरह करके व्रजराज-नन्दन गाय का दूध काढ़ने लगे। जब वे अङ्गुष्ठ और तर्जनी के अग्रभाग से दूध की धार खींचने लगे तो उनके करकमल के स्पर्श से गायें आप ही आप दूध की वर्षा करने लगीं। नन्दनन्दन के करकमल का स्पर्श उन स्नेहमयी गायों को अपनी बछिया से भी अधिक प्रिय लगता था, अतः प्रेम से आप ही आप दूध की धारा बह निकलती थी। दूध की धार पड़ने से घर्र-घर्र शब्द होता और शीघ्र ही दोहनी भर जाती। जब तक दोहनी बदलें, तब तक वह स्थान दूध से तर हो जाता।

ऐसे अपूर्व गोदोहन-उत्सव का दर्शन कर गोपियों के हृदय प्रणय-पीड़ा से भर उठे। उनके मन में हजारों सङ्कल्प उदित होने लगे। एक गोपी अपनी सखी से प्रीतिसहित यों हृदय की बात कहने लगी : 'अयि सहचरी केल्लितिके! आज मेरे ये नयन सार्थक हैं, क्योंकि नवीन मेघ के तुल्य प्रियतम के अङ्ग-माधुर्य का पान कर रहे हैं। किन्तु गुरुजनों के भय से यह देह केवल दुःख ही प्राप्त कर रही है। सखि! क्या कभी इस देह से प्रियतम को अधीन कर सकूँगी? मेरी बुद्धि कुछ भी निश्चय नहीं कर पाती। सखि! यदि पूछो कि ऐसे दुर्लभ विषय की अभिलाषा ही क्यों करती हो? तो तुम्हीं बताओ कि स्वर्ण-कमलिनी भ्रमर के अभाव में क्योंकर मलिन भाव प्राप्त करती है? सुन्दरि! मैं भी कभी-न-कभी अपने मन्त्र के कौशल से श्यामसुन्दर को यहाँ अपने श्रेष्ठ आँगन में अवश्य लिवा लाऊँगी।'

दूसरी सखी ने पूछा : 'तुम कैसे ला सकती हो ?'

पहली सखी वोली : 'मेरे ग्राम में जिस गैया का पहला वच्चा होता है, उसका दूध कोई नहीं काढ़ सकता। यह देखकर जव गुरुजनों के हृदय में दुःख होगा, तव वे कहेंगे कि हमारी इस गाय का दूध कोई भी नहीं काढ़ सकता, इसलिए जिसके दर्शन से गायें शान्त हो जाती हैं, उन नन्दनन्दन को यहाँ लाकर इस गाय का दूध कढ़वाया जाय। वस, काम वन जायगा।'

यह सुनकर तीसरी चतुर सखी कहने लगी : 'सखि ! इस व्रजनगर में नन्दनन्दन का गोदोहन-माधुर्य व्रजवासियों के आनन्द का हेतु होते हुए भी हम लोगों के हृदय को वड़ा दुःख (क्षोभ) देता है। देखो न, पिता-माता के अधीन होने के कारण ये भी अपना कोई स्वतन्त्र भाव नहीं प्रकट करते।'

दूसरी सखी : 'यह चिन्ता तुम छोड़ दो और मेरी वात सुनो। तुम्हारे हृदय में यही शङ्का आती है न कि नन्दनन्दन दूसरे की प्रार्थना से किसी और के आँगन में न जायेंगे। पर ऐसी शङ्का करना ठीक नहीं, क्योंकि व्रजराज और व्रजेश्वरी व्रजवासियों के सुख-दुःख का भलीभाँति ध्यान रखते हैं। हमारे गुरुजनों के दुःख को सुन दोनों उसी समय अपने पुत्र को यहाँ भेज देंगे।'

आपस में ऐसा रसमय वार्तालाप करते जानकर वनमाली ने उन गोपियों के हृदय में विचित्र लीला-माधुर्य उत्पन्न कराया। वे सव अपने प्रियतम के वक्षःस्थल में चञ्चल मणियों की माला का दर्शन कर आनन्द-सिन्धु में डूब गयीं। जव तक वे अपने नयन-कमलों से प्रियतम के माधुर्य का दर्शन करती थीं, तव तक उनके नयनों के पलक नहीं पड़ते थे। जव किसी काम से दूर चले जाने के कारण नयनों से नहीं देख पातीं, तो हृदय में प्रियतम को और भी निकट पातीं और मन की इन्द्रियों से उनके माधुर्य का आस्वादन करने लगतीं। इस तरह गोपियों का सारे दिन तक न देख पाने का दुःख उस समय मिट गया। दिन के अन्तिम समय में गोपियों के हृदय की उत्कण्ठा जब वहुत वढ़ जाती तो वह समय भी वहुत लम्बा प्रतीत होने लगता था। धेनुपालक उन श्रीकृष्णजी ने ऐसे अनुपम लीला-माधुर्य से विहार करते हुए ग्रीष्म ऋतु को विदा दे दी।

अपने चरित्र-माधुर्य से जगत् को रसमय करके रसमय गोविन्द अपने सव सखाओं और वलदेवचन्द्र के साथ धेनु-पालन के लिए वन जाने की इच्छा करके आकाशरूप दर्पण में अपने अङ्ग के तुल्य मेघ का अङ्कुर देखने लगे। पृथिवी को सुख देनेवाला वह मेघ भी प्रभु के चरणों की सेवा करनेवाला था। उस समय मालती लता में फूल खिलने लगे। कदम्व के पेड़ में पुलक प्रकट होने

लगी और थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी होने लगी। वे बूँदें मानो मेह की आनन्दाश्रु-धाराएँ और वह सुशीतल वहनेवाला पवन मानो वधुओं का श्वास था। मोर सरस होकर अपनी पूँछ फैलाकर ऐसे नाचने लगे, मानो वर्षा ऋतु के केश हों। आकाश में उड़ती सफेद वगुलों की चञ्चल पंक्ति मानो वर्षा ऋतु का मुक्ताहार और वीरवहूटियाँ मानो उसके पैरों में लगा महावर थीं। इन्द्रनील मणि की कान्ति को हरण करनेवाली श्यामवर्ण नवीन तृणराशि मानो वर्षा ऋतु की सुखमयी शय्या, रसवर्षणकारी मेघों का गर्जन ही कण्ठ की ध्वनि, वनों के ऊपर चारों ओर छायी नीलिमा नीलाम्वर (नीला वस्त्र) तथा सलिल से परिपूर्ण कुण्डों में. चञ्चल भ्रमरों की घटा नयन-कटाक्ष थी। श्री नन्दनन्दन सखाओं के साथ ऐसी सजीली वर्षा ऋतु की शोभा का दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए।

ग्रीष्म ऋतु के ताप से जीवों को वचाने के लिए रसमय कालरूप वैद्य मानो रस (पानी) वरसाकर अच्छी ओषधि देने लगे। वर्षभर में इस ऋतु का इसीलिए कवि लोग रसमय और मनभावन वर्णन करते हैं। धरती आनन्द से उछलने लगी। वृक्ष उल्लसित होने लगे। आकाश स्निग्ध हो गया। जगत् का ताप शान्त हो गया। सन्ताप को परदेश में भेज सूर्य शयन को जाने लगा। मोर गर्व करने लगे। दात्यूह (पपीहा) आनन्द देने लगे। चातक जगत् को सरस करने लगे। कदम्व खिलने लगे। हिरण आनन्द से नाचने लगे और अपने मद से ब्रह्माण्ड को पूर्ण करने लगे। पर्वत स्नान करने लगे। वनश्रेणी धुलने लगी। पुलिन को जल ने वैसे ही ढँक लिया, जैसे मांस हड्डी को ढँक लेता है। नदियों में लहरें उठने लगीं। गौएँ ग्राम के निकट ही चरने लगीं। व्रजपुर-पुरन्दर-किशोर वर्षा ऋतु की शोभा देखकर वड़े आनन्दित हुए। उनके आनन्द का यह कारण था कि वर्षा ऋतु के दिनों में सुगन्धित तृण सुलभ हो जाते हैं और गौएँ अपने दाँतों से कोमल तृण का आस्वादन करके जल्दी उदर भर लेती हैं।

वृन्दावन की महिमा से वर्षा ऋतु में मच्छर नहीं हैं। केवल वर्षा ऋतु अपनी सेवा-सम्पत्ति प्रकट करती है, जिससे गौएँ पुष्ट होकर अपनी पूँछें हिलाने लगती हैं, थोड़े ही समय में तृण भक्षण कर तृप्त हो पेड़ों के नीचे विश्राम करती हैं और वहाँ से नन्दनन्दन के वदन-माधुर्य का दर्शन करते-करते सुख से जुगाली करती हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र अपने सखाओं के साथ निश्चिन्त होकर फूलों से गेंद बनाकर कन्दुक-लीला करने लगे। कन्दुक-विहार से अनुरागिणी गोपियाँ दर्शन के लिए

उत्कण्ठित होकर व्याकुल होने लगीं। तभी आकाश से थोड़ी देर के लिए मेघ हट गया और उसी समय भानु का दर्शन करके श्रीकृष्ण ने भानुनन्दिनी को अपने हृदय में धारण कर लिया और कन्दुक-विहार छोड़कर मनोहर सूर्य के दर्शन करने लगे। फिर मेघों की घटा ने सूर्य को ढँक लिया और नन्हीं-नन्हीं बूँदें गिरकर तमालों की गन्ध से वन को भरने लगीं।

तब नन्दनन्दन ने तमाल वृक्ष के नीचे अपने माधुर्य के भार से त्रिभङ्ग भाव धारण कर लिया और गोचारण की लकुटिका के ऊपर वाम वक्षःस्थल को टेककर, वाम चरण के ऊपर दक्षिण चरण धारण कर अपूर्व शोभा और बहुत प्रकार से विलास प्रकट किया। वे मुरली के स्वर से मालव आदि राग प्रकट करने लगे। मधुर रागों से सारा वन भर गया। हिरणों के झुण्ड उत्कण्ठित हो वहाँ आने लगे और गौएँ अपने कानों को ऊँचा करके रागामृत पान करने लगीं। उस समय नन्दनन्दन की रागामृत-धारा को पान करके प्राणियों की इन्द्रियाँ व्यापाररहित हो गयीं। आनन्द के कारण प्रबल मेघों से जल गिरने लगा। थोड़ी बूँदें बरसने से वहाँ कीच भी नहीं हुई। गौओं को कुछ भी दुःख नहीं हुआ, बल्कि वे बहुत तृण-भोजन से शरीर में उत्पन्न हुई गर्मी शीतल करने लगीं। फिर शान्त होकर बैठ गयीं और भगवान् का दर्शन-सुख अनुभव करने लगीं।

वृष्टि की बूँदें पड़ती देखकर सखाओं ने अपने-अपने सिरों के ऊपर ऐसी युक्ति से चादरें धारण कर लीं, जिससे नन्दनन्दन के मस्तक पर छोटा-सा तम्बू-सा बन गया और जल श्रीकृष्ण तथा सखाओं को स्पर्श नहीं कर सका, अपितु धरती पर गिरने लगा। तब सखा व्रजवल्लभ से कहने लगे : 'मालव राग गान करने से जलधर का आगमन स्वाभाविक है। यह जलधारा नहीं है, अपितु आपका गान सुनकर मेघ आनन्द-अश्रु का वर्षण कर रहे हैं, इसलिए अब गान करना ठीक नहीं। गान करने से सूर्य मेघों से ढँक जाता है और समय का पता नहीं चलता। इसलिए सखा! अपनी मुरली से अब यह राग न बजाओ, ताकि जलधारा बन्द हो जाय और हम लोग गौओं को यहाँ से ले चलें।'

सखाओं के ऐसे सरल तथा मधुर वचन सुनकर चरित्रनायक श्री नन्दनन्दन ने मालव राग बन्द कर दिया तथा गौओं को आकर्षित करने के उद्देश्य से अपनी मुरली बजायी। उनकी वंशी का मधुर स्वर सुनकर गौएँ चारों ओर देखने लगीं। कभी नीलकमल की ओर तथा कभी आकाश में मेघ की ओर देखकर वे नन्दनन्दन के माधुर्य को अनुभव करने की चेष्टा

करतीं, पर उन्हें न पाकर अपनी दृष्टि वहाँ से हटा लेती थीं। गौओं की ऐसी दशा देख स्वयं नराकृति परब्रह्म, नीलकमलों के माधुर्य-आधार, पृथिवी के महान् सौभाग्यस्वरूप घनरस-मूर्ति श्रीकृष्ण वेणु बजाते-बजाते व्रजभूमि की ओर उन्हें ले चलने के लिए गौओं के आगे आ पहुँचे।

उस समय दूर से उस व्रजराजपुरी की शोभा ऐसी मूर्तिमती नायिका के समान जान पड़ती थी, जिसने वर्षा का धाराप्रवाह जल पड़ने से मानो स्नान कर लिया हो, तदनन्तर ऊपर छाये कान्तिवान् मेघों से मानो नीले रंग की साड़ी पहन ली हो, प्रत्येक अट्टालिका पर अपनी भीगी पूँछों को फैलाकर सुखाते मोरों के समूहों के रूप में जो अपने भीगे केश फैलाकर सुखा रही हो, फिर पश्चिम दिशा से मेघ हट जाने के कारण सन्ध्या की लाली छा जाने से मानो स्नान करने के पश्चात् सिन्दूर से अपनी माँग भर ली हो, इस प्रकार सायंस्नान, वस्त्रधारण, केश-शोषण और सिन्दूर-प्रसाधन आदि द्वारा सजकर अपने सुकृतों से प्राप्त किये हुए गवाक्ष (खिड़कियाँ) रूप असंख्य नेत्रों से श्रीकृष्ण का दर्शन कर रही हो तथा फहराती हुई पताकाओं के रूप में हाथ हिलाकर अपने मन का उल्लास प्रकट कर रही हो।

पानी बरस चुका था, अतः नगर की नालियाँ स्वच्छ हो चुकी थीं। उनमें अब जो विभिन्न लता-कुसुमों के सम्पर्क से सुवासित जलधाराएँ वह रही थीं, उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो वह नगरी गौओं-समेत श्रीकृष्णजी के पाद-प्रक्षालन के लिए आगे बढ़ी आ रही हो।

ऐसी रसमय ऋतु के सायङ्काल में गोशाला के आगे आकर सखाओं की गौओं को उनकी गोशालाओं में पहुँचाकर और सखाओं को भी उनके भवनों में पहुँचाकर अपने नयनों की प्रीतिपूर्ण दृष्टि से सखाओं के हृदय में सुख प्राप्त कराते हुए मन्मथ को भी मथन करनेवाली शोभा धारण किये श्रीकृष्णजी अपने भवन में आकर जननी की प्रीति के लिए गुरुजनों के सङ्ग पहले दिन से भी अधिक भोजन करके उनसे आज्ञा ले अपनी शय्या पर शयन करने लगे।

अब श्री राधिकाजी की पूर्वराग की अवस्था धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उनके हृदय में कृष्णानुराग की ऐसी तीव्र अग्नि जल उठी, जो सखियों के निरन्तर बहते हुए आँसुओं की जलधारा से भी नहीं शान्त हो सकी। श्री राधिका के अङ्ग आँसुओं से भीगे वस्त्रों से ढँके रहते थे और वे अपनी इन्द्रियों की वृत्ति भी उस समय भूल गयी थीं। प्रियतम की दुष्प्राप्यता की बात सोचकर उनके हृदय का आशा-बन्धन शिथिल पड़ गया और वे बार-बार मूर्च्छित होने लगीं।

उनकी ऐसी अवस्था में सखियाँ उन्हें छोड़कर श्रीकृष्ण के पास भी नहीं जा सकती थीं। उधर कृष्णचन्द्र भी उस दिन से श्री राधिका की अनुराग-बाधा का अनुभव करके अपने हृदय-मन्दिर में उन्हें बैठाकर निरन्तर हर्ष के साथ अन्तर में ही विहार करने लगे और पिता-माता-सखा-दासादिकों के प्रेमानुरोध से उनके सन्तोष के लिए क्रीड़ादि सभी बाह्य व्यापार शून्य मन से (बाह्यवृत्ति मात्र से) करने लगे।

वर्षा के दिनों में गौएँ चराने के लिए वे गिरिराज गोवर्धन के उस भाग पर जाने लगे, जहाँ आवश्यकता पड़ने पर छिपने के लिए सुन्दर गुफाएँ बनी थीं। जलधारा से धुली गिरिराज की बड़ी-बड़ी चट्टानों पर वे सखाओं के साथ सिंहासन बनाकर बैठ जाते और नाना भावों से हास्य रस प्रकट करके सबको आनन्दित किया करते थे। उनके दाँतों की धवल कान्ति और हास्य के माधुर्य से स्थावर-जङ्गम सभी अपनी सुध-बुध खो बैठते। कभी तो वे अपनी लकुटी से नीचे के मेघों को छूने की चेष्टा करते तो कभी मेघों के बीच बिजली की चमक देखकर अपने नेत्र मूँद लेते थे। जब अपने हाथों से मेघों को पकड़ने जाते तो वहाँ बिजली चमकते देखकर भी साहस करके उसका स्पर्श करके गर्जन करने लगते। कभी सखागण नाना प्रकार के धातुराग इकट्ठा करके लाते और उनसे अपना-अपना शृङ्गार करके लताओं को पकड़कर नाचने लगते। कभी सब लोग वन के कन्द-मूल-फलों से ही पूरा भोजन कर लेते। कभी श्रीकृष्णजी सुपारी के पेड़ों से कच्ची सुपारी तथा पके पान की स्वर्ण-सी लता से पान के पत्ते तोड़कर कत्था और कपूर मिलाकर पानों के बीड़े बनाकर सखाओं के साथ पान चर्वण करने लगते। जब कभी वर्षा होने लगती, तब आनन्द से पूर्ण गिरिराज की मणिमय दर्पण जैसी भित्तियोंवाली सुन्दर गिरि-गुहाओं में प्रवेश करके गजशावक के समान विहार करने लगते। गुहा के अन्दर जब सखागण आपस में बहुत लीला-कोलाहल करने लगते, तब उसकी तीव्र प्रतिध्वनि होने लगती। वह ध्वनि सुनकर सखाओं को विचित्र कौतुक होता। प्रतिध्वनि सुनकर सब सखा और भी जोर से हल्ला करते। वैसा करने पर प्रतिध्वनि और भी तीव्र होने लगती। ये सब कौतुक-परम्पराएँ मानो श्रीकृष्ण की शिशुता पर मुग्ध होकर उनकी सेवा कर रही थीं।

जब वर्षा ऋतु अपने हास्य के तुल्य ओले बरसाने लगी तो उन्हें देखकर सखाओं को ऐसा लगा, मानो पृथिवी के वक्षःस्थल पर पड़ा मणिमय हार हो। यत्नपूर्वक उन्हें उठा-उठाकर वे श्री नन्दनन्दन के चरणकमल के सम्मुख इस प्रकार रखने लगे, मानो भेट अर्पित कर रहे हों।

वर्षा हो चुकी तो सब लोग गुहाओं में से निकलकर गिरिराज की शोभा देखने लगे। उसके ऊँचे-ऊँचे शिखर जलधारा से अच्छी तरह धुल गये थे और चमरी गायों की लम्बी पूँछों से पर्वत के तट भी भलीभाँति स्वच्छ हो गये थे। मृगनाभ हरिणों के कारण पूरी वनस्थली सुगन्धित थी। इन्द्रनीलमणि की एक विशाल चट्टान पर आसन जमाकर कृष्णचन्द्र सुख से बैठ गये और चारों ओर अपने अङ्ग के तुल्य मेघों का माधुर्य देखने लगे। कभी तो कदम्ब के फूलों में उन्मत्त भौंरों का मधुर गुञ्जन सुनते तो कभी वनश्रेणी की शोभा देखते। चारों ओर मरकत मणि के अङ्कुरों के सदृश सुगन्धित तृणों से स्थल परिपूर्ण था। पृथिवी समान दिखाई पड़ती थी। सूर्य की प्रखरता वहाँ से हट गयी थी। उस समय उन्हें सूर्य ऐसा दिखाई पड़ा, मानो धरणी देवी का कुण्डल हो।

गिरिराज के तट पर कोई हिंसक प्राणी नहीं रहता था। इसलिए तृण के लोभ से गौएँ निर्भय होकर अपने इच्छानुसार चरने लगीं। नन्दनन्दन अपने दक्षिण करकमल से अपने पीताम्बर का आँचल जब हिलाते, तब नीलमणि के स्तम्भ में सोने के झण्डे की शोभा प्रकट हो जाती थी। वे जिस समय अपने कण्ठ की अपूर्व ध्वनि द्वारा उच्च स्वर से 'अयि शवलिके! धवले!' आदि नाम लेकर पुकारते, उसी समय गौएँ गद्गद होकर चरना छोड़ देतीं और मन्त्रमुग्ध के समान एक ही डोरे में पोयी हुई माला की तरह शीघ्र ही नन्दनन्दन की ओर दौड़ पड़तीं। तब कृपालु नन्दनन्दन उनसे कहते कि 'अरे, इतनी जल्दी मत भागो', तब उनकी मधुर वाणी सुनकर गौएँ धीरे-धीरे आने लगतीं। जैसे भगवत्सेवक भगवान् का आदेश मानते हैं, वैसे ही गौएँ उनकी आज्ञा मानकर उनके पास आ पहुँचती हैं।

मुरली बजाकर सखाओं के साथ जब श्रीकृष्णजी गिरिराज के शिखर से लीलापूर्वक नीचे उतरने लगे तो वहाँ उड़नेवाले भ्रमर तथा वहाँ के रहनेवाले खग-मृग आदि का मन भी उनके साथ नीचे आने लगा। इस प्रकार प्रतिदिन कौतुक के साथ गोचारण-लीला के हेतु चरणकमलों में धारण किये मणिमय नूपुरों के मधुर रव और चरणकमल के स्पर्श से पृथिवी का पाप दूर करते हुए भगवान् वन में विहार करने लगे। जिन चरणकमलों को उमाजी के साथ महादेवजी प्रणाम करके अपने मस्तक पर मणि-सा भूषित करते हैं, भगवान् के वे चरण वर्षा ऋतु के कीचड़ से रञ्जित हो गये। वर्षा ऋतु में व्रजभूमि की शोभा और भी विचित्र हो गयी, क्योंकि सारे वन में चरणचिह्न अङ्कित हो स्पष्ट सुशोभित होने लगे। धरती देवी अपने वक्षःस्थल पर बड़े प्रेम से उन चरणकमलों को धारण किये थी, क्योंकि उन्हीं चरणकमलों के प्रभाव से पृथिवी

की भाररूपा अघ, बक आदि भयरूपा विपत्ति दूर होती है। चरणकमल के चिह्नों को भलीभाँति सुरक्षित रखने के लिए व्रजभूमि पर पत्रावली विकसित हो गयी और उन चिह्नों की रक्षा करने लगी। श्रीकृष्णचन्द्र भी पत्रावली आदि से भूषण बनाने के लिए अपने सखाओं को साथ लिये वन में प्रविष्ट हो गये।

ऐसे वर्षा ऋतु के समय में जब वन की शोभा-सम्पत्ति भलीभाँति प्रकट होने लगी, तब अनुरागरूपी बाधा हृदय में धारण करनेवाली श्री राधा आदि गोपियों के हृदय पूर्वराग का स्वरूप त्यागकर प्रेम की परिपक्व दशा को प्राप्त हो गये।

तब सकल सौभाग्य के आधार श्रीकृष्णचन्द्र बार-बार अपनी स्वरूपशक्ति योगमाया को ऐसी चेष्टा के लिए प्रेरित करने लगे, जिससे गोपियों की अभिलाषा सफल हो सके। योगमाया के लिए यह कुछ असम्भव बात नहीं थी। बाणासुर के मन्त्री कुभाण्ड की पुत्री चित्रलेखा ने जब एक साधारण नारी होते हुए भी अपनी सखी ऊषा के सुख के लिए योगप्रभाव से आकाशमार्ग द्वारा देवताओं से भी दुष्प्रवेश्य द्वारका में जाकर उसका प्रियतम अनिरुद्ध ला मिलाया, तो योगमाया तो भगवान् की परा शक्ति है। वे श्रीकृष्ण की नित्यसिद्ध प्रेयसीरूपा तथा भगवान् के साथ अवतार देनेवाली ऐसी गोपियों का यथाकाल मिलन करायेंगी, इसमें संशय ही क्या है? इस सिद्धान्त से सिद्ध श्री राधा-माधव का विहार कौन रसिक अपने हृदय में नहीं अनुभव कर सकता?[1] भगवान् अपने अप्रकट भाव में नित्य दाम्पत्य-भाव से विहार करते-करते जब पारकीय रस-माधुर्य आस्वादन करने की इच्छा करते हैं, तब जगत् में उस भाव से प्रकट होकर योगमाया की शक्ति द्वारा अपना विलास पूर्ण करते हैं।[2]

भगवान् को दूध पीता अबोध शिशु समझकर उनके प्रति वात्सल्य रस से पूर्ण हृदयवाले माता-पिता के सम्मुख तो योगमाया का वैभव प्रकट करने की आवश्यकता ही नहीं है।[3]

योगमाया की प्रेरणा से उस वर्षा ऋतु की अनेक शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा गोपियों के स्वभाव-रस से परिपूर्ण अतिशय सुखदायिनी एक निशा में मेघों से चन्द्रमा की किरणें अच्छी तरह ढँक गयीं और चारों ओर घना अन्धकार छा गया। ऐसे समय में श्री प्रियाजी अपने प्रियतम के पास जाने को सखियों

---

१. नित्यसिद्धभाव अर्थात् स्वकीयाभाव की योगमाया रक्षा करती है।
२. जगत् के परकीया-भाव से यह दिव्य परकीया-भाव भिन्न है।
३. वल्लभ-सिद्धान्त।

के साथ वन में पधारीं। योगमाया आगे-आगे रास्ता दिखाने लगी। अपने हृदय की उत्कण्ठारूपी दूती के साथ प्रियाजी ने अँधेरी रात-जैसी ही नीली साड़ी पहन ली थी। काली कस्तूरी से लिप्त अपने अङ्गों को वे ऐसे ढँके हुए थीं, मानो मेघों के बीच बिजली की निकलती हुई कान्ति को ढँके हों। स्तम्भ-रूप सात्त्विक भाव का अनुभव करती वे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगीं। आज पहली बार ही घर से ऐसे समय अभिसार के निमित्त निकली थीं, अतः भय भी रोक रहा था। किसलिए और कहाँ जा रही थीं, वे स्वयं नहीं जानती थीं। उनमें कुछ अनोखा अनुराग भरा था। चलते-चलते कभी वे अपने हृदय के चाञ्चल्य-भाव की निन्दा भी करने लगतीं थीं।

उधर कुञ्ज में बैठकर श्री प्रियाजी के आगमन-पथ में दृष्टि देकर श्रीकृष्ण-चन्द्रजी प्रतीक्षा करने लगे। आज के मिलन का सङ्केत किसीने भी पहले से सखी द्वारा नहीं किया, केवल दम्पति-अनुराग ने ही दोनों के मन को सूचना पहुँचा दी। प्रियाजी ने अपने भवन में ही अपने प्रियतम के ध्यान में पहले से सुन लिया कि 'हे प्रिये! कदम्ब के कुञ्ज में आकर हमसे आज मिलो।' श्री वृषभानुनन्दिनी आज ही अपने प्रियतम से मिलने के लिए प्राणवल्लभ के माधुर्य से आकृष्ट होकर पहला अभिसार करने जा रही थीं। जाते समय जब स्तम्भभाव से चरणयुगल रुकने लगते, तब वे सखियों के कन्धे पर अपने हाथ रख लेती थीं। नयनों से आनन्दाश्रु-धारा प्रवाहित होने के कारण पथ का कुछ परिचय उन्हें नहीं मिल पाया। जब प्रेम से अङ्ग कम्पित होने लगते तो वास्तविक भाव छिपाते हुए वे सखियों से कहने लगतीं: 'देखो सखी! रात्रि में भी भ्रमर आकर हमारा शरीर कम्पित कर रहे हैं।' इस प्रकार चलते-चलते बहुत देर हो गयी तो प्रियतम के कुञ्ज के पास आकर भी वे अपने घर लौट जाने की इच्छा प्रकट करने लगीं। सोचने लगीं कि 'ऐसी अवस्था में हम प्रियतम के पास जाकर क्या करेंगी?'

जब सखियाँ कुञ्ज के पास जाने को शीघ्रता करतीं तो प्रियाजी हठ कर वहीं रुक जाती थीं। कभी थोड़ी दूर आगे चलकर फिर पीछे हट जाती थीं। उनके हृदय में उत्कण्ठा तो भरी थी, किन्तु बाहर वे वामभाव प्रकट कर रही थीं। यह देख सखियाँ कहने लगीं: 'हमारी ये प्रियाजी वामा रमणियों की मुकुटमणि तथा परम नवीन हैं न, इसीलिए ऐसी चेष्टाएँ दिखा रही हैं।'

ललिता आदि सखियाँ बहुत प्रार्थना करके प्रियतम के कुञ्ज के पास जब प्रियाजी को ले आयीं, तब लज्जारूपा सखी प्रियतम से मिलने में बाधक बनकर सामने आ गयी। सखियाँ कुञ्ज छोड़कर जब जाने लगीं, तब उनके साथ

प्रियाजी भी जाने को तैयार हो गयीं। उसी समय प्रियतम ने प्रियाजी का कर-कमल अपने हाथों में ले लिया। उनके अङ्ग के स्पर्शरस से विह्वल होकर प्रियाजी वहीं रुक गयीं। किन्तु फिर सखी को पुकारकर प्रार्थना करने लगीं: 'हे सखि विशाखे! इनके हाथों में हमें छोड़कर कहाँ जा रही हो?' प्रियाजी की प्रार्थना सुनकर सखी कुञ्ज के द्वार पर आकर खड़ी हो गयी। प्रियतम की दृष्टि से बचाने के लिए प्रियाजी अपने नयन मूँदने लगीं। श्रीकृष्णजी के मुख से अपना स्वागत-प्रसङ्ग सुनकर वे मौन हो गयीं और लज्जा के कारण उस समय प्रियतम के प्रतिकूल आचरण करने लगीं। उन आचरणों से प्रियतम का आनन्द और भी बढ़ने लगा।

जगत् में रसमय पदार्थ के परम दुर्लभ होने से ही रसमय भाव का आस्वादन हो सकता है। प्रियतम जब प्रियाजी को आलिङ्गन करने की चेष्टा करते तो प्रियाजी कुञ्ज-भवन को छोड़कर किसी स्तम्भ के पास छिप जातीं। तब सखियाँ आकर प्रियाजी से कहने लगतीं: 'अयि हठिनी राधे! अब फिर यदि तुम ऐसे आचरण करो तो तुम्हें हमारे मस्तक की सौगन्ध है।' किन्तु यह सुनकर भी प्रियाजी का हृदय विगलित नहीं हुआ। प्रियतम के अनुनय-वचन सुनकर भी उनके हृदय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु उसी समय अचानक मेघों के घोर गर्जन से भीत होकर वे प्रियतम से चिपक गयीं। मेघमाला ने नन्दनन्दन की प्रिय सखी की कैसी सुन्दर सेवा की! जिस परम दुर्लभ रसमय पदार्थ को वे अपनी चेष्टा से नहीं पा सकते थे, उसे अकस्मात् कोई आकर मानो उनके हाथों में दे गया। उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई, मानो आकाश का चन्द्रमा हाथों में आ गया हो, अथवा अपने सौन्दर्य से अन्धा कर देनेवाली कल्पतरु के फूलों की वह माला अपने-आप कण्ठ में आ पड़ी हो, जिसको किसीने सङ्कल्प में भी नहीं देखा, भृङ्ग ने भी नहीं सूँघा तथा किसीके हाथ में जो कभी भी नहीं पड़ी, अथवा परमानन्द से उन्मत्त होकर किसीने उनके वक्षःस्थल में सुधारस का प्रवाह बिना कहे ही डाल दिया हो।

निष्कपट भाव से प्रियतम के कण्ठ से चिपट जाने पर भी प्रियाजी हृदय में मेघ-गर्जन का डर बने रहने के कारण अपने दोनों हाथों से प्रियतम को पकड़े ही रहीं। उस समय व्रजराज-युवराज स्तब्ध होकर रस के सिवा और कुछ अनुभव न कर सके। प्रिया-प्रियतम के उस माधुर्य का दर्शन करके सखियाँ अपने दुःख का अवसान समझकर अपने जीवन को सफल मानने लगीं और मन में जलधर को बहुत सम्मान देकर प्रिय सखी के पास मेघ की प्रशंसा करते हुए कहने लगीं: 'हे घनरसद! तुम सचमुच रसद हो। आज तुमने

अपने आचरण से सखियों को बहुत सुख दिया। अपने सवर्ण मित्र नन्दनन्दन की तरह प्रियाजी की सखियों के भी तुम मित्र हुए, क्योंकि तुमने जो सेवा की है, वह हम लोगों से नहीं हो सकती। तुम्हारी हुङ्कार सुनकर ही श्री राधिकाजी ने श्रीकृष्णजी को कण्ठ में धारण किया है, इसलिए तुम परम सौभाग्यवान् हो।'

प्रियाजी जब प्रियतम के हृदय में भूषण की तरह शोभित होने लगीं, तब प्रियतम ने प्रियाजी के कपोलों पर जहाँ चन्दन की पत्ररचना नहीं थी, वहाँ चुम्बन किया और यमुनाजल के सदृश प्रियाजी के नयनों की कज्जल-रेखा पोंछ दी। भक्तिरस से जैसे रसिकों के हृदय पूर्ण हो जाते हैं, वैसे ही अपने अधरामृत से वे प्रियाजी के अधर को पूर्ण करने लगे और उनके स्पर्श से महातीर्थ में स्नान करने का-सा सुख प्राप्त करने लगे। उस समय प्रियाजी के मुख से ब्रह्म के स्वरूप-तुल्य 'नहीं-नहीं' शब्द ('नेति नेति' निषेध-वचन) बिजली की तरह उठकर वहीं विलीन होने लगे। उनके नयनों से आनन्दाश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी, कर-युगल कम्पित होने लगे और वसन्तकालीन पवन से तरङ्गित कुण्ड-जल की भाँति उनमें स्वेद और सात्त्विक कम्प प्रकट हो गया। तदनन्तर कुञ्ज-भवन के द्वार पर खड़ी सखियों के सामने से लजाते हुए अपनी प्रिया के कण्ठ पर हाथ डाले श्रीकृष्णजी जब नवीन माधुर्य प्रकट करते हुए बाहर आने लगे, तब सखियाँ आपस में कहने लगीं :

'सखी ! देखो, नवीन किशोर-किशोरीजी के प्रथम मिलन को देखकर आज मनोभव विमूढ़ भाव को प्राप्त हो गया। देखो ! प्रिय सखी का चिरकाल का मनोरथ आज सफल होकर अपने फलभार से मानो इसे व्यथित कर रहा है। सच है, ऐसी अवस्था का सुख और दुःख दोनों ही दुःसह होते हैं। देखो सखी ! प्रियतम अपने करकमल से प्रियाजी के अङ्ग में मोती की माला की तरह पड़े हुए स्वेद-बिन्दु हटा रहे हैं।'

उस समय सेवा का अवसर समझकर जब सखियाँ प्रिया-प्रियतम के सम्मुख आयीं, तब चन्द्रवदनी श्री भानुनन्दिनी अपना वदन अवनत करके सखियों के वदन से अपनी दृष्टि हटाने लगीं। तब सखियाँ परस्पर कहने लगीं : 'सखी ! चलो, हम लोग घर चलें। अभी हमारी प्रिय सखी (श्री राधा) को रति-कला-गुरु से कुछ शिक्षा और लेनी है। हम लोग क्यों यहाँ देर करें ? प्रिय सखी राधे ! तुम कुञ्ज की शय्या छोड़कर यहाँ क्यों आ गयी ?'

सखियों के ऐसे परिहास-वचन सुनकर प्रियाजी उन पर केश की माला (गर्भक) का प्रहार करने लगीं और मृदु हँसी हँसकर बोलीं : 'तुम लोगों के कपटरूप नाट्य की मैं तो क्रीड़ा-पुतलिका मात्र हूँ। सब प्रकार से परवश

हूँ। तुम लोग जब जो कुछ कहती हो, उसका वेदवाक्य की तरह पालन करती हूँ, न सम्पत्ति का विचार करती, न विपत्ति का। अब मुझे क्यों दोष देती हो ? किसके साथ मैं यहाँ आयी और किसके साथ जाऊँगी ? क्या तुम नहीं जानतीं ?'

प्रियाजी की मधुर वाणी सुनकर नन्दनन्दन के श्रवण-युगल अपूर्व वचनामृत से पूर्ण हो गये और वे सखियों से कहने लगे : 'तुम लोगों के प्रसाद से ही हमने प्रियाजी को प्राप्त किया और इनके वदनचन्द्र से यह वचनामृत लाभ किया। अब तुम लोगों की इस सेवा का पारितोषिक हमारे पास एकमात्र प्रति सखी के लिए हमारे अङ्ग का आलिङ्गन ही है।'

नन्दनन्दन का आलिङ्गन पाकर जब सखियाँ स्तब्धभाव को प्राप्त हो गयीं, तब प्रियतम का अपने हृदयानुरूप व्यवहार देखकर प्रियाजी मन्द-मन्द हँसकर कहने लगीं : 'सखियो ! अब तो तुम लोगों को कोई दुःख नहीं है ? हमसे फिर ऐसा परिहास न करना।' उस समय सखियाँ प्रिया-प्रियतम से मिलकर जिस सुख को प्राप्त हुईं, वह सुख यद्यपि अतीत था, फिर भी उसे सखियाँ अपने-अपने हृदय में वर्तमान रूप से अनुभव करने लगीं।

उस वर्षा ऋतु की सर्वश्रेष्ठ रात्रि का जब एक पहर रह गया, तब सखियों ने विचार किया कि रात्रि का अवसान हो रहा है, अतः वे प्रिय सखी को कुञ्ज-भवन से अपने भवन ले आयीं।

प्रभात काल में प्रियाजी की अनन्य सखी श्यामलाजी जब प्रियाजी से हँसते हुए मिलने आयीं तो उन्हें देखकर प्रियाजी लज्जित-सी होती अधोमुख कर बैठ गयीं। तब श्यामलाजी उनकी चेष्टा से अपने हृदय में प्रियतम के अङ्ग-सङ्गरूप उनके परम सौभाग्य को अपना ही समझकर सरल भाव से पूछने लगीं : 'सखी ! आज क्यों हमारे आगे विलक्षण लज्जा प्रकट कर रही हो ? क्या कारण है ? तुम्हारे सारे अङ्ग शिथिल दिखाई देते हैं। मृणाल की तरह तुम्हारे भुजयुगल और ओष्ठ नीरस भाव को प्राप्त हैं। गण्डस्थल में ललित पत्राङ्कुर खण्डित हैं। तुम्हारी अवस्था तो आज ऐसी है, जैसे कोई नवीन लता पवन के प्रभाव से टूट गयी हो, अथवा उन्मत्त गजराज ने किसी कमलिनी की दुरवस्था कर डाली हो अथवा भौंरों ने अपने आघात से कोमल फूल को मलिन कर दिया हो। सखी ! तुम कहो या न कहो, बहुत दिन से जिनका माधुर्य आस्वादन करने के लिए अपने हृदय में तुम अभिलाषा करती थीं, जान पड़ता है, उस दुर्लभ प्रणयी जन को आज तुम प्राप्त हो गयी हो।

यह हमारा सौभाग्य ही है, अन्यथा कैसे हम लोगों का भाग्य-कल्पतरु अपना फल धारण कर सकता ?'

श्यामलाजी के प्रीतिपूर्ण वचन सुनकर प्रियाजी अपने वसन के अञ्चल से वदनचन्द्र को ढँककर मन्द हँसी हँसकर आदर से कहने लगीं : 'सखी श्यामले ! हमारे हृदय की बात तो तुम जान गयी। तुमसे और क्या कहूँ ! तुम्हारे पास अपने हृदय की बात इतनी ही कह सकती हूँ कि प्रियतम के सङ्केत से उस समय मैं कहाँ थी, कहाँ जा रही थी, पथ कैसा था, किसके साथ मैं जा रही थी, प्रियतम के पास जाने के बाद फिर क्या हुआ, यह यदि मैं जानती भी तो तुमको न जना सकती। कारण जिस विषय में अपना मन भी प्रवेश नहीं कर सकता, वहाँ और किसी के प्रवेश की सम्भावना का अवसर ही नहीं है। वह क्या मेरी स्वप्न-दशा थी, अथवा इन्द्रजाल विद्या, अथवा मेरी बुद्धि का भ्रम था, मैं निश्चय नहीं कर सकती ! वह वस्तु कैसी थी—सुखमय अथवा दुःखप्रद अथवा सुख-दुःख-मिश्रित, यह भी नहीं कह सकती ! उस वस्तु के स्वभाव से ही हृदय विगलित हो जाता है और मन को मूर्च्छा दशा प्राप्त हो जाती है, फिर भला कैसे उस (रसोद्गार) का वर्णन करूँ ?'

श्यामलाजी परिहास करते हुए बोलीं : 'अयि नीलकमलनयनी ! तुम्हारे वचन तो नीतिपूर्ण हैं, परन्तु मेरा भी इतना कहना है कि केलि-कला का अध्ययन-कौशल एक दिन में कोई कभी नहीं सीख सकता, इसलिए तुम फिर उन विलासगुरु के पास जाकर यत्न से उस विद्या का अभ्यास करो, तभी तुम उस विषय को अच्छी तरह जान सकोगी।'

यह परिहास-वचन सुनकर सौभाग्यसाराधिका श्री राधिकाजी का अन्तर रसरङ्ग-रूप तरङ्ग से भर गया और वे कहने लगीं : 'अरी सुमुखी ! अब कभी मैं उनके पास नहीं जाऊँगी। दूर से ही केवल उनके माधुर्य का दर्शन करूँगी। मेरी इतनी मेधा (बुद्धि) भी नहीं है। तुम बड़ी मेधाविनी हो। इसलिए उनके पास जाकर तुम यदि पढ़ो तो तुम्हारे मन में बड़ा आनन्द होगा।'

प्रियाजी के वचन सुनकर श्री ललिताजी ललिताक्षर से कहने लगीं : 'सखी श्यामले ! वहाँ जाकर पाठ लेना तुम्हारे लिए योग्य है, परन्तु मेरी इतनी प्रार्थना है कि जब तुम ही उनकी प्रथम शिष्या होकर उनसे पाठ लेने में इनकार कर रही हो, तब ब्रज में कौन उनकी शिष्या बन सकती है ? इसलिए तुम दोनों ही मिलकर उनके पास जाकर बहुत देर तक पाठ का अभ्यास करो।'

उसी समय काल से प्रेरित पवन के सदृश ननद कुटिला को देखकर सबके हृदय में डर (सम्भ्रम) छा गया। कुटिला ने ललिताजी के वचन का पिछला हिस्सा सुनकर समझा कि 'गुरु के पास जाने' के लिए शिक्षा दे रही हैं, अतः सखियों के हृदय में सुख और अनुराग अनुमान करके ललिता से कहने लगी : 'ललिते ! अपनी सखी को क्या सिखा रही हो ?'

ललिता : 'श्री गुरुजी के चरण-शरण लेने की बात।'

कुटिला : 'फिर यह तुमने क्यों कहा कि 'तुम पहली शिष्या हो ?' इसका क्या अर्थ है ?'

ललिता : 'उसका अर्थ यह है कि पहले गुरुजनों का उपदेश सुनते ही सखी मानना नहीं चाहती। उसके हृदय में यह भाव है कि मैं अकेले यह काम नहीं कर सकती। इसलिए मैंने भी कहा, प्रिय सखी श्यामला को साथ ले लो।'

कुटिला : 'सखी ! अभी तुम लोग परलोक[1] (परपुरुष) देखने में क्यों प्रवृत्त हो गयीं ?'

श्यामा : 'कुटिले ! राधा की परलोक (स्वर्ग) दर्शन करने की इच्छा आज से नहीं, वालपन से ही है।'

कुटिला : 'श्यामे ! क्या तुम यह नहीं जानती (अङ्गुली से श्री राधा व सखियों को दिखाकर) कि ये सब श्यामानुरागिणी हैं !'[2]

श्यामा : 'यह तो सब लोग जानते हैं कि ये सब वचपन से मुझसे प्रेम करती हैं।'

कुटिला : 'श्यामे ! ये सब सदा से कृष्णपक्षपाती कलावाली हैं।'[3]

श्यामा : 'यह नहीं हो सकता, क्योंकि कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाओं में कुछ भी शोभा नहीं दिखाई देती।'

कुटिला : 'अरी, ये सब कृष्णवर्त्मचारिणी[4] हैं।'

श्यामा : 'सखी ! आज वह कृष्णवर्त्मा (अनल) कहाँ है ? वह अनल तो कालियदमन की रात्रि में ही प्रकट हुआ था।'

---

१. परपुरुष तथा स्वर्ग।

२. श्याम अथवा श्यामा सखी में अनुराग।

३. कृष्णपक्ष में वढ़नेवाली अथवा कृष्ण-अनुरागिणी।

४. कृष्ण का मार्ग अथवा अग्नि।

कुटिला : 'सखी श्यामे ! तुम मेरी परीक्षा कर रही हो? तुम्हारी ये सखियाँ तो पीताम्वरानुरागिणी हैं।'

श्यामा : 'सखी ! तुम अपने हठ से यह बात कह रही हो। तुम्हारी बात तो प्रत्यक्ष ही विरुद्ध है, क्योंकि इन्होंने तो नीले व अरुण वसन पहन रखे हैं।'

कुटिला : 'श्यामे ! व्रजराजतनय[1] में तुम्हारी सखियों की श्रद्धा है। मेरी इस बात पर तुम विश्वास करो।'

श्यामा : 'सखी कुटिले ! तुम्हारी यह बात मिथ्या ही है। मेरी सखियों को व्रज की चाँदी के गहनों की तनिक भी चाह नहीं है।'

कुटिला : 'सखी ! हरि ने तुम्हारी सखियों के मन हरण कर लिये हैं (हरिणापहृतमानसा)।'

श्यामा : 'हिरण यहाँ कहाँ हैं? कैसे तुम कहती हो कि हिरण ने सखी का मन हरण कर लिया है?[2] तुम क्या वावरी हो गयी हो? तुम्हारी प्रवीणता वचन में ही दिखाई पड़ती है, आचरण में नहीं। जो वात कहती हो, उसका प्रतिपादन नहीं कर सकती हो, अतः यह बात अब छोड़ो।'

कुटिला : 'श्यामे ! तुम्हारी ही चतुरता से मेरा हृदय जला जा रहा है। अच्छा तुम ही कहो, तुम्हारी सखी इस राधा के शरीर में अन्य दिनों से भिन्न लक्षण आज क्यों दिखाई दे रहे हैं?'

श्यामा : 'सखी कुटिले ! मेरी बात सुनो, इसका कारण यह है कि मेरी सखी ने मृगनयनियों को सौभाग्य देनेवाले प्रसिद्ध एवं निष्कलङ्क शशिखण्ड-मौलि (चन्द्रकला जिनके मस्तक में है, ऐसे शिवजी) देवता की आराधना के लिए कुछ कठिन व्रत धारण किया है, इसीलिए फूलों से भी कोमल उनके अङ्गों की यह दशा हो गयी है।'[3]

कुटिला : 'सखी ! वह देवता कहाँ है?'

श्यामा : 'निर्बुद्धिके ! उस देवता को अभी तुम नहीं जान सकती; क्योंकि उस देवता का तभी परिचय मिलता है, जब अपने हृदय में साधुभाव आ

---

१. व्रजराजतनय = श्रीकृष्ण। तथा व्रज + राजत + नय = व्रज की चाँदी का विकार (गहने) लेने में आग्रह।

२. हरिणापहृतमानसा—हरिणा + अपहृतमानसा; हरिण + अपहृतमानसा।

३. प्रथमवर्णविहीनं शशिखण्डमौलि, प्रथम् + अवर्ण + विहीनम् = प्रसिद्ध तथा निन्दारहित, शशिखण्ड + मौलि = शिवजी (प्रथम अक्षर से रहित शशिखण्डमौलि = शिखण्डमौलि = श्रीकृष्णजी)।

जाता है। इसलिए मेरी बात पर विश्वास करो। मेरी सखी के विषय में कोई दूसरा भाव हृदय में न लाओ।'

ऐसे रसमय प्रसङ्ग में जब सखी मग्न हो गयीं, तब चन्द्रावलीजी अपनी सखियों के साथ प्रियाजी से मिलने को आयीं। वे अपनी सखियों के साथ कृष्णाङ्ग-सङ्गरूप रङ्ग-मङ्गल के विषय में बहुत-सा वार्तालाप करने लगीं और सखियों के बीच उस अक्षय आनन्ददायी रसमय प्रसङ्ग द्वारा समय व्यतीत करने लगीं।

वर्षा ऋतु के रसमय समय में रसिक-शिरोमणि ब्रजराज-पुरन्दर-नन्दन श्रीकृष्णजी अपने सखा व सखियों के साथ आनन्दसहित विहार करने लगे। वर्षा ऋतु में शाम को श्रीकृष्णजी गुरुजनों के सम्मुख रहकर धेनु-दोहन करते थे। सवेरे प्रतिदिन गौओं व सखाओं के साथ वन में जाते व आते थे। उस समय आकाश के हृदय में बड़ा दुःख था कि वह भगवान् की कुछ सेवा नहीं कर सकता था। आकाश का दुःख देखकर मेघ एक-एक कर भागने लगे।

उस समय अपनी सेवा का समय समझकर अपने हृदय में बहुत उत्कण्ठा लेकर शरद्ऋतुरूपा वधू सेवा के लिए उपस्थित हो गयी। सारस पक्षी मानो उसके वदन-मण्डल थे। विकसित कास के रूप में वह अपने हृदय का सुख प्रकट कर रही थी। वर्षा ऋतु से भरे कुण्ड उसके हृदय के उद्गार-सदृश लगते थे। हंसों के शब्द उसकी काञ्ची की मधुर ध्वनि तथा नीलकमल उसके नयनों के समान लगते थे।

आकाशस्थल शरद् ऋतु के आगमन से मानो स्वच्छ होने लगा। सज्जनों के मन की तरह कुण्ड-जल स्वच्छ (प्रसन्न) होने लगा और भगवद्-गुण की तरह कास-कुसुम खिलने लगे। निशा में चन्द्रमा की शोभा बढ़ने लगी। ताराओं का मालिन्य हटने लगा, वन में सप्तपर्ण (छतिवन) फूलों का सौरभ बढ़ने लगा। मानिनी रमणियों के हृदय का मान जैसे रसिक जन हटा देते हैं, ऐसे ही कमलों की मलिनता हटने लगी। सफेद बगुले आकाश में उड़ते हुए ऐसे लगते थे, मानो तप करते-करते आकाशरूपी तपस्विनी के बाल सफेद हो गये हों।

तरङ्गवती नदियाँ वर्षारूपी सखी के विरह से सूखने लगीं और उनके पुलिन ऐसे उघड़ गये, मानो हड्डियाँ दिखाई देने लगी हों। नदियों के शुद्ध हृदय की वृत्ति जल की स्वच्छता के रूप में प्रकट दिखाई देने लगी। उनके तटों पर कलहंस, सारस, चक्रवाक, कुरर और कारण्डव आदि पक्षियों के

चरणचिह्न स्पष्ट अङ्कित होने लगे। कह्लार आदि फूलों की सुगन्ध से भारी होकर पवन धीरे-धीरे चलने लगा। साक्षात् सरस्वती भी शरद् ऋतु की उस शोभा का वर्णन नहीं कर सकतीं।

ऐसे विलक्षण लक्षणोंवाली शरद् ऋतु के प्रकट होने पर वनविहारी श्री नन्दनन्दन अपने सखाओं के साथ वन में आकर जलधररहित आकाश की शोभा देखते तथा कुञ्जों में विहार करते हुए गौएँ चराने लगे। कहीं वे कदम्ब के पुष्पों की सुगन्ध का अनुभव करते, कहीं मोरपिच्छ से मस्तक के भूषण बना-बनाकर खेल रचते। शरद् ऋतु के नव जलधर तो श्री नन्दनन्दन ही थे, जिनका पीत वसन विद्युत् और मुरली-ध्वनि मेघों का गर्जन था। इस अपूर्व मेघ का दर्शन करके मोर चारों ओर से आकर उन्हें घेरकर नाचने लगे। उनका वह विहार देखकर वन के पशु-पक्षियों का हृदय अघाता न था। उल्लास क्रमशः बढ़ने लगा। पवत के निर्झरों से जल धीरे-धीरे गिरने लगा। जल-प्रवाह के क्षीण होने से पुलिनप्रदेश बढ़ने लगे। वन के चारों ओर श्यामल कान्ति का विकास होने लगा। अनुरागिणी व्रजसुन्दरियाँ अपने नयन-कटाक्षों से रसमय नवजलधररूपी नन्दनन्दन का हृदय बींधने लगीं।

शरद् ऋतु

वर्षा और शरद् ऋतु के ऐसे मनोरम सन्धिकाल में एक दिन नटराज श्री वृन्दावन-चन्द्र वृन्दावन में पधारे। उस समय उनकी शोभा देखते ही बनती थी। कुञ्चित केशों पर मोर-पङ्ख शोभित थे। कानों में कम्पित कर्णिकार का एक फूल धारण किये थे, उसीको कभी दाहिने, तो कभी बायें धारण कर लेते। वे पीताम्बर पहने थे, वक्षःस्थल पर वैजयन्ती माला सुशोभित हो रही थी। चरणों के ध्वज, वज्र आदि चिह्नों से व्रजभूमि को शोभित करके अधर किसलय (दल) पर वेणु को धारण करके धीरे-धीरे कण्ठ से शरद् ऋतुयोग्य मालव-राग गाने लगे। उस समय नन्दनन्दन के अधर और अङ्गुष्ठ की अरुण कान्ति-धारा से वेणु-छिद्र भर गये और मालव-राग की ध्वनि उनसे बाहर निकलने लगी, मानो अपने भीतर भरा राग न समा सकने से वेणु मालव-राग की मूर्ति में उसे बाहर प्रकट कर रही हो। वेणु बजाते समय मृदु-मन्द हास्य अधर पर विराजित हो रहा था। प्रभु वेणु के छिद्र पर मुख रखकर उसे अपने अधरामृत से पूर्ण करने लगे। परन्तु वह मुरली सरन्ध्रा* (दोष-युक्ता) होते हुए भी श्रीकृष्ण के वदन राग (कान्ति) से नीरन्ध्रा (दोष-

* छिद्रों, खोखलापन और गाँठ होने के कारण।

रहित) हो गयी। मुरली का अन्तर कठिन होने पर भी नन्दनन्दन के स्पर्श से कोमल भाव को प्राप्त हो गया। स्वयं मौन-स्वभाव होने पर भी अपने मधुर स्वरों से मृग-पक्षी को भी मौन धारण करा रही थी। सद्वंश में जन्म होते हुए भी व्रजगोपियों का हृदय व्याकुल करने लगी। स्वयं शून्य होने पर भी वहुत राग से भरी मुरली एक गाँठ (पर्व) की वनी होने पर (स्वयं एकपर्वा या एक उत्सववाली होने पर) भी हजारों पर्व (उत्सव) प्रकट करने लगी। मुरली मनोहर के स्वरों को धारण करके सव जगत् को शब्दरहित करने लगी। अहो, अपनी चेष्टा से मुरली जगत् को वाह्य चेष्टाशून्य करती हुई भी अन्तर से सुखमय वनाती है।

मुरली-ध्वनि सूक्ष्म रूप से निकलकर त्रिभुवनभर में फैल गयी। कानों में प्रवेश करके सव अङ्गों को व्यथित करने लगी। नाना प्रकार के रसों का आस्वाद प्रकट करने लगी। (एक-ध्वनि होते हुए भी भाव-भेद से अनेक प्रकार की ध्वनियाँ मालूम देतीं।) मुरली कभी अमृतधारा, तो कभी विष वरसाने लगी। उसका रव सुन जल स्तम्भित होने लगता, पत्थर पिघलने लगता। सूखे पेड़ों में फूल खिलने लगते और नीचे से ऊपर तक वे पत्तों और फूलों से लद जाते। तप-लोक में ब्रह्मानन्द में लीन मुनियों की भी समाधि भङ्ग होने लगी। श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि जगत् में अनेक आश्चर्यमयी घटनाएँ दिखाने लगी। उसके माधुर्य का आस्वादन कर जगत् उन्मत्त होने लगा। हृदय का सन्ताप मिटने लगा। जङ्गम को स्थावर-अवस्था प्राप्त होने लगी।

व्रजपुर में निवास करनेवाली अनुरागिणी व्रजसुन्दरियाँ अपनी-अपनी सखी को आलिङ्गन कर वेणु का माधुर्य वर्णन करती श्रीकृष्णचन्द्र के गुणगान से दिन विताने लगी हैं। वह गान कुछ ऐसा ही है।

सखी ! तुम्हारे आगे नयन धारण करने का फल क्या वर्णन करूँ ? नयनों का यही परम सौभाग्य है, जो वे वृन्दावन-विहारी वलदेवजी और नन्दनन्दन के गो-चारण-माधुर्य का दर्शन करते हैं। जिस वदन में स्निग्ध हास्य तथा तरङ्गित कटाक्ष विराजित हैं, सदा के लिए जिनके अधर में मुरली विलास करती है, जिनके चूडा में मोर-पिच्छ लगे हैं, फूलों की माला से जिनका वक्षःस्थल सुशोभित है, पर्वतीय धातुरागों से जिनकी देह चर्चित हैं, फूलों के आभूषणों से जिनका अङ्ग-अङ्ग भूषित है, ऐसे नटश्रेष्ठ श्री राम-कृष्ण के रूप-माधुर्य के दर्शन ही नयन धारण करने का मुख्य फल है।

वेणुगीत

व्रज में उनका जन्म धन्य है, जो अपने नयनों से श्रीकृष्णचन्द्र के वदन-

कमल का माधुर्य एवं दर्शन-पान करते हैं। उनका महान् सौभाग्य है, जो वेणु का अशेष अधरामृत पान करती हैं। सखी मुरलिके ! तुम धन्य हो, जो श्यामसुन्दर तुम्हें अपने अधर पर रख, दशनों की कान्ति से सुशोभित कर अपने हृदय के अति मधुर भाव तुम्हारे हृदय में भरकर बाहर प्रकट करते हैं। उन दशनों की कान्ति का क्या निरूपण करूँ, अतिपक्व अनार के दानों के वीच यदि चन्द्रमा भी प्रवेश करे तो भी सम्भव नहीं कि प्रियतम के दशन-चन्द्र और वदन-चन्द्र की तुलना हो सके।

सखि ! मुरली का यह अत्यन्त साहस है, जो वह पराये पेय का वलपूर्वक पान कर रही है। कृष्ण के अधर तो गोपियों की सम्पत्ति है, उस पर वेणु का अधिकार ही नहीं। न जाने पहले जन्म में वेणु ने कौन-सी तपस्या की है, जो विना प्रयत्न के उसका इन पर अधिकार हो गया है। मुरली द्वारा प्रियतम का अधरामृत पान करने के वाद जो कुछ वहाँ पीतशेष अवशिष्ट रह जाता है, स्नानकाल में नन्दनन्दन के अधरों का स्पर्श होने पर यमुना के प्रवाह में वह (अधरामृत) मिल जाता है, जिससे यमुना प्रफुल्लित कमलों के रूप में मानो पुलक विकार प्रकट करने लगती हैं। उनके जल का अधरामृत मिश्रित प्रवाह स्तब्ध हो जाता है, जिसे तटवर्ती वृक्ष खींच लेते हैं। फलतः उन वृक्षों से फूल और मकरन्द की धाराएँ वहने लगती हैं। मानो नदी का सौभाग्य देख वृक्ष आनन्दाश्रुओं की धाराएँ वहा रहे हों।

सखी ! हमारी यह वृन्दावन-भूमि वड़ी सौभाग्यवती है, क्योंकि अन्य लोग तो कभी न कभी प्रियतम के विरह का अनुभव करते हैं, किन्तु इसका प्रियतम से नित्य संयोग ही है। इसके वक्षःस्थल पर तो सदैव नन्दनन्दन के ध्वज, वज्र आदि चरण-चिह्न भलीभाँति अङ्कित हैं। वेणु-माधुर्य का श्रवण करने से हृदय में सरसता आने के कारण सदैव यहाँ नव-नव तृण एवं अङ्कुर रोमाञ्च के रूप से प्रकट होते हैं। सखी ! व्रजभूमि की यह महिमा हम नहीं अनुभव कर सकतीं, क्योंकि वृन्दावन के वीच वेणु-माधुर्य सुन कठोर पाषाण भी पिघलने लगते हैं, पिघली नदियाँ तो स्तब्ध हो जाती हैं। मयूर नृत्य करने लगते हैं। तरु-लताएँ स्पन्दन करती हैं। यह सव वृन्दावन की स्वाभाविक सम्पत्ति है।

प्रेमभरे नेत्रों से व्रज-भूमि के पशु-पक्षियों का अपूर्व सौभाग्य देखकर सखियाँ कहने लगीं :

सखि ! इस हरिणी ने पहले जन्म में कौन-सा दुष्कर तप किया, जो वेणु-

माधुर्य के जन्म-स्थान को अपने नेत्रों से देख रही है (पर हम तो दूर घर में बैठी केवल सुन ही पाती हैं)। मानो इसी सौभाग्य के लिए विधाता ने हरिणियों के नेत्र इतने विशाल बनाये हैं। यह और भी इनका सौभाग्य है कि इनके साथ इनके कृष्णसार (मृग) भी प्रियतम के वेणु-माधुर्य का आस्वादन कर रहे हैं।

सखि ! आकाश में विमान पर चढ़कर जो देवियाँ आयी हैं, अनुराग से उनके हृदय पूर्ण हैं। प्रभु का मधुर वेणु-रव सुन और उनका अपूर्व रूप-माधुर्य देख अपने-अपने पतियों के अङ्क में बैठी उन देवियों को बार-बार मूर्च्छा आने लगी है। कभी तो वे देवियाँ धैर्य धारण कर इन पर नन्दन-कानन के फूलों की वर्षा के साथ अपने नयन-जलों की भी वर्षा करने लगती हैं।

सचमुच हमारे प्रियतम का वेणु-माधुर्य आनन्द से चित्त को हरण कर लेता है। गौओं के भी तृण आदि ग्रास यह वेणु-माधुर्य सुन दशन में ही रह गये। वे नयन-युगल को मूँदे चित्रलिखित-सी शोभित हो रही हैं। वेणु-माधुर्य सुनकर बछियों के मुँह से अपनी माता से पिये दूध की धाराएँ बहने लगती हैं, वह गले के नीचे उतर ही नहीं पाता। सखी ! वेणु-माधुर्य से व्रजभूमि गौओं के दूध की धाराएँ पान करने लगी है।

सखि ! सामने वृक्षों में जितने पक्षी दिखाई पड़ते हैं, वे पक्षी नहीं, मुनि हैं। ये मुनि सुलभ साधना करने के लिए निर्जन वन में आये हैं और कानों से प्रियतम की मुरली का श्रवण, नयनों से रूपामृत-पान तथा मन से उनकी रसमयी मूर्ति का ध्यान कर समाधि-अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। पत्तों पर आसन लगा मौन भाव से बैठे हैं। सखि, देखो, उनकी स्तब्ध अवस्था ! किसी अङ्ग में स्पन्दन नहीं। कोई शब्द भी नहीं कह रहे हैं और कुछ देख भी नहीं रहे हैं। दूसरा शब्द उनके कानों में पहुँच ही नहीं पाता। उन्हें भोजन की कोई इच्छा भी नहीं दीखती। केवल अपने पंख हिलाकर वेणु-माधुर्य का आनन्द अनुभव कर रहे हैं।

वेणु-माधुर्य से नदी की क्या अवस्था हुई, यह देखो। वेणु सुनकर नदियों का हृदय आनन्द से भर आया। उसके चक्रवाक, कलहंस आदि जलचर पक्षीरूपी उनके वसन स्खलित होने लगे हैं (क्योंकि वे पुलिन छोड़ स्तब्ध हो दूर चले गये)। तरङ्गों के आघात से बीच-बीच में झाग और भँवर घनीभूत नदी में उठ रहे थे, मानो मुरली-रव सुन उन्हें व्याधि हो गयी हो। वे झाग और भँवर मानो उस व्याधि में आनेवाले चक्कर हों। वे अपनी

लहरों के करों से फूल उठाकर नन्दनन्दन के चरण-कमलों में अर्पण कर रही थीं।

आकाश में शरद् ऋतु के सूर्य के प्रखर ताप से प्रियतम की रक्षानिमित्त अचेतन मेघ भी मित्र सूर्य को ढँक छत्र-सा लगा चलने लगे।

जलकुण्डों के ऊपर वहनेवाला सुशीतल पवन फूलों के सौरभ से पूर्ण होकर नन्दनन्दन का गोचारण के परिश्रम से निकला पसीना सुखाने लगा।

पुलिन्द रमणी (भीलनी स्त्रियाँ) स्निग्ध नव-नव तृण में लगे नन्दनन्दन के चरणों के लगे कुङ्कुम-यावक (अलता) को छुड़ा अपने वदन और वक्षः-स्थल पर लेपन करती तथा हृदय का विरह-ताप शान्त करती।

मुकुन्द के माधुर्य में अधिकारी, अनधिकारी का विचार नहीं। जिनके हृदय में लोभ है, वहीं अपने-आप वह प्रकट होता है। अनुराग प्रकट होने के बाद उनकी ऐसी ही चेष्टाएँ प्रकट होती हैं।

सखि ! हमारे व्रज में जो गिरिराज है, वह नन्दनन्दन की लीला का सखा और परम भागवतोत्तम (हरिदास) है, क्योंकि वह अपने अङ्गों में भलीभाँति सेवा-सामग्री धारण किये है। उसमें सखाओं के लिए कन्दमूल तथा धातुराग है। गौओं के लिए तृण-ग्रास, निर्झर का जल तथा उनके विश्रामार्थ गुहाएँ हैं। अकेले इतनी सेवा का सौभाग्य गिरिराज के सिवा और किसीको सुलभ नहीं। गिरिराज का आश्रय करने पर श्री नन्दनन्दन की कृपा अपने-आप मिलती है। (महत् पर कृपा होने से उसके आश्रित तरु-लता, पक्षी पर नन्दनन्दन की कृपा स्वतः होती है।) महत् चरण का आश्रय लेने का फल यहाँ अच्छी तरह प्रकट होता है।

जिनके हृदय में नन्दनन्दन के अनुराग का नवीन आविर्भाव है, ऐसी परमधन्या धन्या आदि कुलकन्याएँ कुल की मर्यादा जानते हुए भी अपने हृदय की उत्कण्ठा की प्रवलता से अपनी-अपनी सखियों के साथ मिलकर धीरे-धीरे वेणु-माधुर्य का वर्णन करने लगीं :

वंशीकलः किल हरेः सखि सिद्धवीर्यो
वस्तुस्वभावपरिवृत्तिकरो हि मन्त्रः।
निश्चेतनत्वमुदपादि सचेतनानां
यच्चेतनत्वमुपपन्नमचेतनानाम् ॥

दृश्यतां च तदेतत्—

स्तभ्नन्ति हन्त हरिणाश्च गवां गणाश्च
वृक्षौकसश्च सरितश्च जलेचराश्च ।
भूमिभृतश्च सखि भूमिरुहश्च भूश्च
स्निह्यन्ति च प्रकटयन्ति च रोमहर्षम् ॥

यं कालकूटमिव कालकरं करालं
कालेन कालियरिपुः कलयाञ्चकार ।
तं काऽलि कालयतु केलिमती कुलीना
वंशीकलं किल कुलस्य कलङ्ककीलम् ॥

सखी ! वंशी-ध्वनि में वहुत प्रभाव है । वस्तुओं के स्वभाव का परिवर्तन करने का यह अपूर्व मन्त्र है । यह सचेतन को अचेतन अवस्था प्राप्त कराती है और अचेतन को सचेतन ! प्रमाण प्रत्यक्ष ही है, हरिणी और गौएँ तो स्तब्धभाव को प्राप्त हो गयीं और तरु, नदी तथा पृथिवी में स्नेहरस प्रकट होने लगा है । तृणों के रूप में पृथिवी अपने शरीर पर उस स्नेहरस के रोमाञ्च भाव दिखा रही है ।

श्रीकृष्ण अपनी कैशोर अवस्था में जो वेणु का आलाप प्रकट कर रहे हैं तो उसमें कालियरिपु कालकूट विष (जिससे मृतक-दशा प्राप्त होती है) का मूर्ति-स्थापन कर रहे हैं । कौन कुलवती रमणी अपने वंश में कलङ्क लगाने के लिए ऐसा वेणु-माधुर्य सुन सकती है ?

यह वेणु अपने माधुर्य से हमारे मन की सम्पत्ति को पुष्ट कर उस अति मनोहर त्रिभुवन को रञ्जित करनेवाले व्रजराजनन्दनन्दन की अङ्ग-कान्ति का स्मरण कराती है ।

रूप-माधुरी

सुस्निग्धदीर्घघनकुञ्चितकेशपाशं
मन्दभ्रमद्भ्रमरकावलिभव्यभालम् ।
सुभ्रूलतं स्वलकमुन्नतचारुनासं
घ्रेयं भविष्यति कदाऽस्य तदास्यपद्मम् ॥

माधुर्यसिन्धुमधि यस्य भवेन्निपात-
स्तत्केवलं मधुरिमाणमुरीकरोति ।

उष्णीषसीमनि सहेलगता मुरारे-
गौंच्छन्दरज्जुरपि मज्जति रम्यतायाम् ॥
रत्नोल्लसन्मकरकुण्डलताण्डवेन
विभ्राजमानतममस्य कपोलबिम्बम् ।
ताम्बूलगन्धिरदनच्छदबन्धुजीवै-
र्धन्याः परं प्रमुदिताः परिपूजयन्ति ॥

श्रीवत्सकौस्तुभरमावनमालिकानां
लक्ष्मीभरेण परयाऽपि च हारभासा ।
विभ्राजमानपरिणाहममुष्य वक्षः
का नाम वामनयनेच्छति न प्रवेष्टुम् ॥

जानुद्वयीलवणिमामृतमद्दिधीर्षुः
पार्श्वस्थयोर्मदमनोभवनागयूनोः ।
शुण्डाद्वयीव भुजयोर्द्वितयीयमस्य
कस्या विलोडयति हन्त न हृत्तडागम् ॥

आवेल्लितं सुवलितावलिभिर्वलीभि-
र्मुष्टिप्रमेयमपि पुष्टमिवौजसा यत् ।
लग्नं मुहुस्तदवलग्नममुष्य नोऽन्त-
र्हा हन्त तत्कृशमिदं च कृशीकरोति ॥

लावण्यकल्पतरुकोटरकल्पनाभी-
निर्यत्तनुभ्रमरराजिरिवोन्मुखीयम् ।
रोमावलिर्मलिनिमानमहो वहन्ती
हा हन्त कालभुजगीव ददंश हृन्नः ॥

शोणारविन्दरुचिनिन्दकमङ्घ्रियुग्मं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलक्ष्मलक्ष्मि ।
मञ्जीररत्नकिरणोल्लसदङ्गुलीकं
वक्षस्तटीमहह भूषयिता कदा नु ॥

अरी सखि ! जिनके ऊर्ध्वभाग (मस्तक) पर स्निग्ध लम्बे-लम्बे घने कुञ्चित केशपाश हैं, मन्द-मन्द मँड़रानेवाले भ्रमररूप अलकावलि से जिसका भालप्रदेश भूषित है, सुन्दर भ्रूलता, भले बाल और मनोहर नासिका से युक्त श्रीकृष्ण का वह मुखकमल हमें कब सूँघने को प्राप्त होगा ?

सखी ! यदि कोई माधुर्यसिन्धु में गिर पड़ता है तो वहाँ से केवल मधुरता ही ग्रहण करता है। उसके अङ्ग-अङ्ग से मधुरता ही प्रकट होने लगती है। माधुर्यसिन्धु नन्दनन्दन के माथे के पाग के छोर पर लीलावश बँध गयी रज्जु भी इसी कारण मधुरता में डूब गयी, उससे भी मधुरता टपकने लगती है।

सखि ! रत्नजटित मकराकृत कुण्डल उनके कपोलविम्व पर नृत्य कर रहे हैं। कोई अत्यन्त भाग्यवान् ही परम प्रेम से ताम्बूल-गन्धपूर्ण, दशन के आवरण अपने अधररूप वन्धूक पुष्पों से उस कपोलविम्व की पूजा कर पाता है।

प्रियतम के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न शोभित है। वीच में कौस्तुभ-मणि वनमाला के साथ विलास करती है और मुक्ताहार भी वनमाला के नीचे विराजित है। अयि सखि ! कौन रमणी उनके विशाल वक्षःस्थल के भीतर प्रवेश करना नहीं चाहती ?

जङ्घा-युगल में भरे अमृतरस को ग्रहण करने के लिए जङ्घापर्यन्त लट-कनेवाले श्रीकृष्ण के भुज-युगल मानो दो मतवाले मदन गज के शुण्डाद्वय (दो सूँड़ें) हैं। सखि ! किस भाग्यवती के हृदयरूपी तड़ाग का वे विलोडन करते हैं ?

उनके उदर के नीचे तीन रेखाएँ (त्रिवली) पड़ गयी हैं, उनका कटितट अति क्षीण है। उसके स्मरण से अत्यन्त कृश भी हमारा अन्तःकरण और भी कृशता को प्राप्त होता है। उनका नाभिदेश कल्पतरु का कोटर है। नाभि से लेकर वक्षःस्थल तक फैली रोमावलि मानो कल्पतरु के कोटर से वदन-कमल के मधु को पान करने के लिए उड़ती भृङ्ग-श्रेणी है। सखि ! वह भृङ्ग-श्रेणी नहीं, हमारे हृदय को डसनेवाली काली नागिन है।

लाल कमलों की कान्ति का तिरस्कार करनेवाला उनका चरण-युगल है। उन पर वज्र, अङ्कुश, कमल आदि चिह्न सुशोभित हो रहे हैं। नूपुरों के रत्नों की किरणों से अङ्गुलियाँ उल्लसित हो रही हैं। सखि ! कव मैं ऐसे चरण-कमलों को अपने वक्षःस्थल पर धारण करके अपने हृदय को भूषित कर पाऊँगी ?

इस प्रकार तीव्र उत्कण्ठा से धन्यादि कुमारी-वृन्द के प्राण जव कण्ठ तक आ पहुँचे, तब उनके पूर्वराग की नवमी दशा (मोहदशा) प्राप्त हुई। वे अव केवल आशा का ही अवलम्ब ले जीवन धारण कर सकीं।

ऐसे अनुरागियों के हृदय में अनुराग-सम्पत्ति बढ़ाती हुई शरद् ऋतु चली गयी और व्रज में हेमन्त ऋतु आने लगी। धान के पौधे नीचे की ओर मुँह किये हैं, मानो जड़ में शेष स्वल्प सुगन्धि जल के प्यासे हों। पके हुए वे धान अपने लाल वर्ण से व्रज की भूमि को सुशोभित करने लगे। गेहूँ को थोड़े-थोड़े अङ्कुर आने लगे। हेमन्त ऋतु की यह शोभा देखकर नित्य-सिद्धा व्रजसुन्दरियों के हृदय में नन्दनन्दन से पतिभाव में मिलने के लिए सङ्कल्प उदित हुआ और उन्होंने एतदर्थ भगवती उमा (कात्यायनी) का व्रत प्रारम्भ कर दिया।

बारहवाँ स्तवक

वस्त्रहरण-लीला

जिस दिन से नन्दनन्दन को पतिरूप में वरण का दृढ़ सङ्कल्प व्रजकुमारियों के हृदय में आविर्भूत हुआ, उसी दिन से उन कुलबालाओं के हृदय में श्रीकृष्ण-रूप विशिष्ट पति पाने की उत्कण्ठा भी अत्यधिक बढ़ने लगी। वे विकल हो उठीं, जिससे उनके माता-पिताओं को बहुत दुःख होने लगा। अपनी कोमल कुमारियों की ऐसी अवस्था देख वे लोग इस चिन्ता में पड़ गये कि इनका यह दुःख कैसे मिटाया जाय। वे सोचने लगे कि इतनी कम उम्र में ऐसे कठोर व्रत को ये कैसे पालन कर सकती हैं? माताएँ अपनी कन्याओं से कहने लगीं : 'यह तो बहुत कठिन कार्य है। इसको साधने की शक्ति तुममें नहीं है। तुम इस साधन की अनधिकारिणी हो।'

माता के निषेध वचनों ने कुछ भी असर नहीं किया। व्रजबालाओं का श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग, श्रद्धा दिन पर दिन बढ़ने लगी। तब माताओं ने अपनी कन्याओं से पूछा : 'किस देवता के पूजन की लालसा तुम्हें है? उमा, महादेव, कमला, कमलाकान्त अथवा ब्रह्मा, किस देवता की आराधना की इच्छा करती हो? उनकी कैसी आराधना है? पूजन में कितना धन लगेगा? उस पूजा का आचार्य कौन होगा? विधि क्या है, सब अच्छी तरह विचार कर कहो।'

तब कुमारियों ने माताओं का तर्क काटते हुए विनयपूर्वक कहा : 'जननी! जगत् का नियम तो यह है कि जिसकी जिस देवता में विशेष श्रद्धा एवं प्रीति हो, उसके लिए वही देवता है। इसलिए हम तो देवी कात्यायनी को ही देवता मानती हैं। (कुमारियों ने छल से गुरुजनों को कहा, हमारी श्रद्धा देवी में है, सो उन्हींको हम पूजेंगी। उन्होंने कृष्ण का नाम नहीं लिया, कारण गुरुजन उसके लिए आज्ञा न देते।) हमारा मन ही आचार्य है। उसका उपदेश ही विधि है। उनकी उपासना से हम लोग दुःख के पार हो सकती हैं। मनरूप गुरुजी से हमने जाग्रत अवस्था में कात्यायनी महायोगिनी का मन्त्र पाया है। वही मन्त्र हमारे लिए फलसाधक है।'

कन्याओं के ये वचन सुन और उनकी अति उत्कण्ठा देख माता-पिता ने उन्हें किसी एक शुभ दिन में इस व्रत का अनुष्ठान करने की अनुमति दे दी। परम प्रमुदित हो व्रजकुमारियों ने हविष्य व्रत ग्रहण करना प्रारम्भ किया। व्रत के कारण ताम्बूल का चर्वण न करने से उनके ओष्ठ और अधर की कान्ति वर्षा के जल से धुले नवीन अशोक वृक्ष के पत्तों की तरह दीखने लगी। प्रतिदिन तेल मर्दन न करने के कारण अङ्ग-शोभा केतकी-फूलों की-सी होने लगी। तेल के अभाव से कुमारियों के केशपाश ठीक वैसे ही सूख गये, जैसे ज्ञानी लोग अपनी वैराग्य-साधना के लिए अन्तर से निर्वेद प्राप्त कर बाहर रुक्ष हो जाते हैं। एक वार आहार प्राप्त करने पर भी (७-८ वर्ष की उम्र की उन वालिकाओं ने) कुछ दुर्बलता का अनुभव नहीं किया। प्रत्युत इससे उनके अङ्गों में और भी नवीन माधुर्य प्रकट होने लगा। हार आदि धारण न करने पर भी जगत् का सौभाग्य हरण करने की शक्ति उनमें आ गयी।

प्रतिदिन जब रात्रि समाप्त होने लगती तो वड़े भोर में ही वे व्रजवालाएँ अपनी भूमि-शय्या से उठ जातीं। कृष्ण-प्राप्ति की आशा से सारा आलस्य त्यागकर वे अनुराग से अरुण नयन और वदन को धोतीं और रात के वस्त्र उतार रेशमी वस्त्र पहने प्रभात काल में यमुनाजी नहाने जातीं। जब वे अपने-अपने भवन से यमुनाजी के रास्ते में पहुँचतीं तो अन्यान्य घरों की कुमारियाँ भी आ मिलतीं और कहने लगतीं: 'सखि! तुम्हारी प्रतीक्षा में यहाँ इतनी देर से खड़ी हूँ। अब देर न करो।' सखीभाव से वे अपनी सखी का हाथ पकड़कर यमुनाजी जातीं। उनका वह गमन-माधुर्य देखकर ऐसा लगता, मानो सञ्चारिणी कमलिनियों की माला ही चल रही हो। अथवा सोने की लताओं का वन अपने शाखारूप कर हिलाता जङ्गम भाव को प्राप्त हुआ हो। अथवा अपना-अपना चञ्चल भाव छिपाने को विद्युत् परस्पर गुँथ गयी हो। (बिजली की इस माला की यह विशेषता है कि प्रसिद्ध विजली तो आकाश में दिखाई देती है और यह व्रजकुमारिकारूपी विद्युत्-माला भूमि पर दमक रही है।)

एक-दूसरी के कर-कमलों का आन्दोलन करते जाते समय चटक पक्षी जैसे शब्द सुनाई पड़ने लगे। कमलिनी सूर्य की प्रखर किरणों में भी नहीं मुरझाती। ठीक इसी तरह श्रीकृष्ण-विरहरूप प्रबल ताप से भी व्रजसुन्दरियों की शोभा की हानि नहीं हुई।

इस तरह प्रतिदिन व्रजसुन्दरियाँ कात्यायनी देवी की श्रेष्ठ पूजा-सामग्री को दासियों के सिर पर रख यमुना-तीर जाने लगीं। चलते समय वे उसी तरह मधुर कण्ठ से हरिगुण गाने लगीं, जिस तरह ब्रह्मादिक देवता-वृन्द नन्दनन्दन की

गुणावली का गान करते हैं। उनके वदन-कमल के सौरभ से आकृष्ट हो भौंरे मधुपान छोड़ उनके पीछे चलने लगे। उस समय वे अपने मधुर कण्ठस्वर से वीणा के मधुर स्वरों को भी पराभूत कर रही थीं। इस प्रकार अरुणोदय के पूर्व ही वे सब पूर्ण ताप को हरण करनेवाली, सूर्य-नन्दिनी, यम की छोटी बहन यमुनाजी के तट पर पहुँच गयीं, जिसका जल अन्धकार से काला दिखायी पड़ता था।

व्रजसुन्दरियों का श्रीकृष्ण से पतिभाव से मिलने का सङ्कल्प जानकर यमुनाजी भी चञ्चलतरङ्गरूप करों को उठा 'आओ, आओ' कहती उनका स्वागत करने लगीं। कलहंस-माला के कोलाहल से मानो वे (यमुनाजी) आदरमय स्वागत-वचन प्रकट करने लगीं। जलचर पक्षी जल से उड़कर उनके सङ्कल्प की सिद्धि की सूचना दे रहे थे। चक्रवाक-युगल शुभ शकुन दिखाने लगे। कमलों को नेत्र बना यमुनाजी स्नेह से उन सुन्दरियों का दर्शन करने लगीं।

अरुणोदय न होने से हेमन्त की रात का पाला भी नहीं हटा था। अपनी तीव्र उत्कण्ठा के कारण उन्होंने अरुणोदय की प्रतीक्षा भी न की। आनन्द से व्रज-कुमारियों के हृदय भरे थे। व्रत-पूर्ति की सम्भावना से उनका ठण्डा पड़ा अङ्ग कम्पित हो रहा था। उन्होंने प्रथम देवी कालिन्दी का वन्दन किया। शीत से न डरते हुए वे जल में उतरीं और विधिपूर्वक स्नान करने लगीं। स्नान करके जब वे पूरे उत्साह के साथ यमुनाजी के तट पर खड़ी हो गयीं तो उनके अङ्गों के गिरते जल की शोभा देख लगता कि मानो यमुनाजी उनके अङ्गों का विरह हो जाने से रुदन कर रही हों।

अपने-अपने वस्त्रों से जल को अच्छी तरह निचोड़ व्रजकुमारियाँ कात्यायनी-पूजन के योग्य वस्त्र धारण करने लगीं, तो यमुनाजी में जन्म से वास करनेवाले जलचर पक्षी उन अङ्गों का अपूर्व माधुर्य देखने लगे। वस्त्र धारण करने के बाद केशों से जब वे जल झाड़ने लगीं, तो ऐसा लगता, मानो अन्धकाररूपी अलकों के बीच ही चन्द्रमा (मुख) उदित हो उठा हो। स्नान के बाद स्वर्णाङ्गिनी व्रजाङ्गनाओं के अङ्गों का अपूर्व माधुर्य प्रकाशित होने लगा। उस समय भी अपने कल कण्ठों से वे कृष्ण की गुण-माधुरी गाने लगीं।

अब रमा से भी परम सौभाग्यवती व्रज-सुन्दरियाँ यमुनाजी की रेत में आयीं और दासियों के सिरों से पूजा की सामग्री उतार ठीक सँवारकर रखने लगीं। व्रजकुमारियों के अङ्ग में ठण्ड के कारण जड़ता देख सूर्य भगवान् का वात्सल्य

अपनी पुत्री[1] से भी अधिक उन कुमारिकाओं पर प्रकट हुआ। वे अपने किरणरूप उष्ण करों से उनका लालन करने लगे।

ऐसे निर्जन पुलिन पर, जहाँ केवल जलचर पक्षियों के ही चरण-चिह्न हैं और सर्वत्र कर्पूर-सी सफेद रेत बिछी है, कुमारियों ने अपने-अपने करों से स्थान साफ कर पास में पूजा-द्रव्य रख लिया। बालू से भगवती उमा[2] की मूर्ति बनाने की इच्छा से वे एक-दूसरी से कहने लगीं : 'सखि ! कात्यायनी की मूर्ति तो हमने कभी बनायी ही नहीं, कैसे बनायें ?' एक सखी बोली : 'मङ्गल वस्तु प्राप्त करने के लिए पहले अपने हृदय का भ्रम हटाना चाहिए। फिर उनके चरण-स्मरण कर सेवा में लग जाना चाहिए।' (अर्थात् देवी बिना मूर्ति बनाये ही तुम्हारे सामने स्वयं ही प्रकट हो जायँगी।)

एक सखी पूछने लगी : 'देवी का पूजन सभी मिलकर करें या अलग-अलग ?'

सभी ने कहा : 'हम लोग तो मिलकर ही देवी का पूजन करेंगी।'

तब मधुर कण्ठ से कृष्ण-गुणगान करते सबने देवी कात्यायनी का पूजन प्रारम्भ किया। अपने अङ्गों की सौरभरूप पुष्पाञ्जलि बिखेर वे भगवती उमा की मूर्ति बनाने लगीं। ज्यों ही रेती हाथ में ले वे मूर्ति बनाने का यत्न करने लगीं, त्यों ही स्वयं भगवती ने अपनी मूर्ति वहाँ प्रकट कर दी।

प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन कर व्रजसुन्दरियों को देवी की प्रसन्नता का आभास मिल गया। उनके मन में यह दृढ़ आशा बँधी कि हमारा सङ्कल्प अवश्य ही शीघ्र पूर्ण होगा। अन्तर से अत्यन्त प्रसन्न हो कात्यायनी के पूजन के लिए वे अत्यन्त विनीत हो गयीं। मौन व्रत धारण कर यमुनाजी के जल से घट भर लाये और स्थान एवं द्रव्य का संस्कार किया। निकट ही पूजा-सामग्री रख ली। यत्न से जैसे कोई रत्न धारण किया जाता है, ऐसे ही श्रीकृष्ण को हृदय में धारण कर तथा विधिपूर्वक अपने चरण धो वे सब अपने-अपने आसन पर जा बैठीं। आचमन आदि के बाद सबका एक भाव होने से सभी बालाएँ एक साथ मन्त्र आदि कहकर देवी को पूजा-द्रव्य अर्पण करने लगीं।

पहले वे अपने-अपने अन्तर में देवी कात्यायनी के पूजन के लिए एक ही भाव से आह्वान करने लगीं। आह्वान के बाद बाह्य स्मृति भुलाकर विनय से अवनत होकर श्रेष्ठ आसन हाथ में लेकर मन ही मन यह मन्त्र उच्चारण करने लगीं :

---

१. यमुनाजी। २. कात्यायनी का नाम।

'देवि[1] ! आप यहाँ पधारो और हमारे मन का सन्निधान श्रीकृष्ण-चरण से करा दो। हमारे आपके चरणों में अनन्त नमस्कार हैं।'

फिर वे आसन समर्पण करने लगीं :

'हे देवि ! कृपा करके इस आसन पर वैठिये और ऐसा अनुग्रह कीजिये कि हमारे अङ्क कृष्णचन्द्र के लिए आसन वन उनका स्वागत करें !'

स्वागत करने के वाद स्वर्ण पात्र में यमुना-जल लेकर कहने लगीं :

'देवि ! अपने चरणों के लिए यह जल ग्रहण कीजिये और कृपा कर श्रीकृष्णचन्द्र का समागम हमें प्राप्त कराइये। उनके अङ्गों के स्वेद से हमारे अङ्गों को शीतल कराइये।'[2]

पाद्य देने के वाद अर्घ्य देने के समय कहने लगीं :

'देवि, अर्घ्य ग्रहण कर प्रसन्न होइये और कृपया वहुमूल्य श्रीकृष्ण-सङ्ग-रूप महा-अर्घ्य हमें सुलभ करा दीजिये।'

अर्घ्य देने के वाद आचमन कराते समय वे कहने लगीं :

'इस जल को ग्रहण करिये और हमें कृष्णचन्द्र के वदन-कमल के अधर का आचमनीय वना दीजिये।'

आचमन के पश्चात् घृत, दही, शहद एक पात्र में लेकर कहने लगीं :

'देवि ! इस मधुपर्क को कृपा करके ग्रहण करो और ऐसा करो, जिससे कृष्णाधर-कमल का स्वेद हम आस्वादन कर सकें।'

मधु-अर्घ्य देने के वाद प्रीति से देवी को पुनः आचमन कराती हुई वे हृदय से प्रार्थना करतीं :

'देवि ! आप कृपा करो कि हम श्रीकृष्णचन्द्र के आनन को आचमन कर सकें।'

आचमन के वाद सुगन्धित तैलवाला मणिपात्र आगे रखकर कहतीं :

'देवि ! आपको अङ्ग में लगाने के लिए हम यह तैल अर्पण कर रही हैं। आप कृपा करें कि हमारे अङ्गों में कृष्णचन्द्र का रङ्ग दीख पड़े।'

---

१. मूल ग्रन्थ में इस षोडशोपचार पूजा के अलग-अलग मन्त्र दिये हैं। यहाँ उन मूल संस्कृत के मन्त्र न देकर यह उनका अनुवाद दिया जा रहा है।

२. संकल्पमन्त्र तो नन्दनन्दन का है, मात्र नाम कात्यायनी का है। उनके हृदय में मन्त्र के उद्दिष्ट श्रीकृष्ण ही हैं। देवी तो लीलामात्र उत्कण्ठा छिपाने को है। जो सामने आये, वे उसीसे कृष्णचन्द्र-दर्शन की प्रार्थना करती हैं।

इसके बाद उद्वर्तनीय (सुगन्धित उवटन) हाथ में लेकर मन्त्र उच्चारण करती कहतीं :

'आप इससे प्रसन्न होकर कृष्णाङ्ग-सङ्ग से हमारे हृदय का दुःख दूर करा दें !'

फिर चन्दन और कुङ्कुमों से सुवासित चाँदी की कटोरी में यमुना-जल लेकर कहतीं :

'देवि ! कर्पूर से सुवासित इस दिव्य जल को हम आपके स्नान के लिए अर्पण कर रही हैं। कृपा कर कृष्णाङ्ग-सङ्ग-सुधा की नदी में हमें भी स्नान कराइये ।'

फिर कुञ्चित जरी की साड़ी हाथ में लेकर कहतीं :

'देवि ! कृपा कर यह दिव्य वस्त्र आप धारण कीजिये और नन्दनन्दन के वस्त्र से हमारे वस्त्र का परिवर्तन करा दीजिये ।'

वस्त्र धारण कराने के बाद रत्नमय अलङ्कार हाथ में लेकर देवी से प्रार्थना करतीं :

'देवि ! ये रत्नालङ्कार धारण कीजिये और कृपा कर कृष्णरूप रत्न से हमारे अङ्ग अलङ्कृत कराइये ।'

अङ्ग में लगाने के लिए कस्तूरी, चन्दन आदि अनुलेपन सामने रखकर कहतीं :

'देवि ! आपको यह दिव्य अनुलेपन अर्पण कर रही हैं। ऐसी कृपा करें कि कृष्ण के अङ्ग का सौरभ हमारे अङ्ग में बहने लगे ।'

इसके बाद सुगन्धित धूप देवी को अर्पण करके प्रार्थना करने लगतीं :

'देवि ! यह दिव्य गन्ध हम आपको अर्पण कर रही हैं। कृपा कर नन्दनन्दन की अङ्ग-गन्ध हमें प्राप्त करा दें ।'

उसके बाद वृन्दावन की छह ऋतुओं के पुष्प, जिन पर उस समय भी भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं, देवी को अर्पण करके कहतीं :

'अयि देवी ! कृपा कर वृन्दावन के ये फूल ग्रहण कीजिये और नन्दनन्दन के दर्शनरूप फूलों से हमारे अधर को शोभित कराइये ।'

चन्दन की सुगन्धित धूप जलाकर प्रार्थना करतीं :

'देवि ! यह धूप की सुगन्ध अपनी घ्राणेन्द्रिय से ग्रहण करिये और कृपा करके हमारे उत्तप्त चित्त-धूप को शीतल कीजिये ।'

उसके बाद कर्पूर की बत्ती जलाकर प्रार्थना करतीं :

'देवि ! इसको कृपा कर स्वीकार कीजिये और कृष्णचन्द्र के कौस्तुभ-रूप दीप से हमारे हृदयरूप भवन को आलोकित कराइये ।'

नैवेद्यपात्र* हाथ में लेकर देवी से विनय करतीं :

'देवि ! इस नैवेद्य को आप ग्रहण कीजिये और अपनी कृपा से हमारी नव-अवस्था को कृष्ण का नैवेद्य बना दीजिये ।'

फिर वे इस मन्त्र का जाप करने लगीं :

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥

'हे महायोगिनि ! कात्यायनि ! हम आपको प्रणाम करती हैं । कृपा कर नन्दगोप-सुत पतिभाव से हमें मिला दीजिये ।'

थोड़ी देर जप करके देवी को आचमन कराकर ताम्बूल अर्पण करते समय प्रार्थना करने लगीं :

'देवि ! इस ताम्बूल से अपने अधरोष्ठ रञ्जित कीजिये और हम लोगों के मुख को नन्दनन्दन के मुखराग (ताम्बूल) से अरुण-वर्ण बना दीजिये ।'

दीप जलाकर देवी की आरती करते समय वे प्रार्थना करतीं :

'देवी ! इस दीप से जैसे आपके अङ्ग की आरती हम करती हैं, कृपा कर नन्दनन्दन के अङ्ग प्रदीप से हमारी भी आरती करायें !'

बाद को दण्डवत् प्रणाम कर देवी का स्तव-गान करतीं :

'हे अम्ब ! हे गणेश-जननी ! आपका थोड़ा भी स्तवन तो स्वयं महादेवजी नहीं कर सकते, ब्रह्माजी नहीं कर सकते । देवगुरु बृहस्पति के भी वश की यह बात नहीं । तब औरों की कौन कहे ! तो भी आस्वाद के लोभ से आपके गुण-कीर्तन करने के लिए हमारी रसना खुजला रही है । आप हमारे हृदय की अवस्था जान हम लोगों पर कृपा करें !

आप तो जगत् के कर्ता महाविष्णु की श्रेष्ठा योगशक्ति हैं । आप अपनी शक्ति से कर्तुम्, अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ हैं । आप ही जगत् को सन्तोष प्रदान कर सकती हैं । जगत्-पालन की शक्ति आपमें ही है । जगत् की शान्ति आप ही से हो सकती है । आप तो साक्षात् शान्ति की मूर्ति हैं । आप विद्या (भक्ति) व अविद्या (माया) उभयरूपा हो । आपकी ही कृपा से जीवों की मुक्ति और अकृपा से जीवों को बन्धन होता है ।

* जिसमें शहद, खाँड, चावल, अदरक, सेंधा नमक, मूँग की दाल, केला, नारियल, मिठाई होती है ।

हे जननि ! आप अपनी शक्ति से अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन, संहार और पालन करती हो। सब देवता आपका चरण-वन्दन करते हैं। आपकी आज्ञा सभी देवता अपने शिरसा धारण करते हैं। आप तो श्रीकृष्णपरायणा महावैष्णवी हो। आप दूसरे का भलीभाँति उपकार करनेवाली हो। अयि परमेश्वरि ! आपके चरणों में कोटि-कोटि नमस्कार हैं। आप हमारा मन अच्छी तरह जानती हैं। इसलिए देवि ! हमें गोपनन्दन को पतिभाव से मिला दो।'

स्तव के बाद सभी गोपबालाओं ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार देवी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। पश्चात् सभी ने यमुनाजी में देवीजी की मूर्ति का विसर्जन कर दिया।

इस प्रकार प्रतिदिन गोपकुमारियाँ बड़ी उत्कण्ठा के साथ प्रियतम के गुणगान करती कात्यायनी का अर्चन करने लगीं। भगवती भी क्रमशः उन पर अधिकाधिक आकृष्ट हो चलीं। कुमारियाँ भी अपने हृदय में देवी की क्रमिक प्रसन्नता का अनुभव करने लगीं। इस तरह देखते-देखते उन्होंने महीने के २६ दिन बिता दिये।

प्रश्न होगा कि ये व्रजकुमारिकाएँ तो नित्यसिद्धा कृष्ण-कान्ता हैं। इनके हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति सहज उत्कण्ठा और अनुराग है। उन्हें अपने सङ्कल्प पूर्ण करने के लिए योगमाया आदि देवियों के पूजन की आवश्यकता ही क्या है ? ठीक है, कुमारियाँ नित्यसिद्धा ही हैं, उनमें श्रीकृष्ण के प्रति दृढ़ अनुराग है और वे अनुराग से मिलते ही हैं। फिर भी केवल लौकिक रीति को दिखाने को ही यह भगवद्-लीलामात्र है।

सौभाग्यवती भगवती कात्यायनी प्रसन्न होकर प्रत्येक व्रजसुन्दरी के हृदय में आविर्भूत हो गयीं। हृदय में प्रादुर्भूत होकर वे सादर कहने लगीं : 'अयि ! शुभवति ! भगवत्-रति-देवता ! अपनी प्रसन्नता तथा अभीष्ट पूर्ण करने के लिए आप लोगों को किसी अन्य देवी-देवता की आराधना करने की आवश्यकता नहीं। जैसे सम्पत्ति-कामना पूर्ण करने के लिए सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी श्री लक्ष्मीजी की आराधना ही काफी है, किसी और देवी-देवता की आराधना आवश्यक नहीं, वैसे ही श्रीकृष्ण की कामना के निमित्त आप द्वारा मेरी पूजा अनावश्यक है। तथापि आपकी यह चेष्टा (मेरा पूजन) आपके अन्तर की उत्कण्ठा का ही भूषण है। इससे मेरा यश प्रकट होने लगा है। मैं आप लोगों की सेवा के लिए इतना ही कह सकती हूँ कि थोड़े ही दिनों में आपकी यह उत्कण्ठा ही आपकी अभीष्ट वस्तु आपको प्राप्त करा देगी। इसलिए

यह तप और करने की आवश्यकता नहीं है। इसे आज ही से समाप्त कर दें।' यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं।

उस दिन से व्रजकुमारियों के हृदय में अभीष्ट-प्राप्ति का निश्चय हो गया। देवी के वरदान के प्रमाणस्वरूप उनके वाम नयन, भुज और चरण स्पन्दित होने लगे। वे हृदय से गोविन्दजी के चरणों का स्थिर ध्यान लगाकर समाधिस्थ हो गयीं। अब वे हृदय में केवल प्रसन्नता का अनुभव करने लगीं। उन्हें लगा कि मनोरथरूपा हमारी लता का फूल हाथ लग गया।

इस तरह एक महीना पूरा करके अन्तिम दिन जब कमलिनी की निद्रा भङ्ग करके दिनमणि सूर्यदेव उदित होने लगे, तो उस दिन अन्य दिनों से भी अधिक पूजा की सामग्री लाकर व्रजकुमारियों ने देवी की पूजा की। इस प्रकार आनन्दपूर्वक अपना व्रत पूर्ण कर, हृदय से अभीष्ट की सिद्धि का भली-भाँति अनुभव कर बड़े प्रमोद के साथ वे व्रजकुमारिकाएँ यमुनाजी के जल से एक-दूसरी पर अभिषेक करने लगीं।

यमुनाजी में उतरते समय देशाचार की रीति के अनुसार उन्होंने अपने-अपने अङ्ग के वस्त्र यमुना-तट पर रख दिये और फिर नहाने उतरीं। एक-दूसरी के हाथ पकड़ जल में नाना विहार करने लगीं। इधर योगेश्वरों के अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने चार सखाओं के साथ (जिनकी सवा दो वर्ष आयु होगी) धेनु-चारण के छल से उतने सवेरे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सोच रखा था कि आज व्रजकुमारियों का व्रत पूर्ण होने का दिन है, सो वहाँ अवश्य जाना चाहिए।

श्रीकृष्ण अन्य सखाओं का साथ छोड़कर अन्तर् के वृत्तिचतुष्टयस्वरूप (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्काररूप) चार सखाओं को, जो भगवान् की लीला-पुत्तलिकाएँ (खेल की गुड़िया) हैं, साथ लेकर आये। बल, सुबल, सुदामा आदि सखाओं का जहाँ प्रवेश नहीं, ऐसे स्थान पर व्रजराजकिशोर देवी कात्यायनी के भार को हलका करने लगे और अपनी रसिकता की बड़ाई दिखाने के लिए अलक्ष्य रूप में वहाँ आ पहुँचे।

उस समय कृष्ण होकर भी रक्त* कृष्णचन्द्र ने अपनी अलकों को अच्छी तरह सँवारा, कटि-तट में पीत वसन लिपटा लिया, चरणों के नूपुरों में (उनको मूक करने के लिए) रज भर दी और अपने उन चार सखाओं को

---

* लाल या अनुरागी, विरोधाभास अलङ्कार।

कटाक्षों से बार-बार चुप रहने का संकेत करते हुए झुककर चकित नयनों से मृदु हास्य प्रकट कर व्रजकुमारियों के तटवर्ती वे वसन हरण कर लिये।

सखा पहले से ही कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर बैठ गये थे। नन्दनन्दन एक-एक कर उनको वस्त्र थमाने लगे। सभी के वस्त्रों को अच्छी तरह सजाकर जब वृक्ष पर रखा गया तो नन्दनन्दन उल्लसित हो उठे। इधर कुमारिकाओं ने जल से निकलने की इच्छा से जब तट पर दृष्टि दौड़ायी तो वहाँ एक भी वस्त्र न देख बड़े विस्मय में पड़ गयीं। अपने-अपने हृदय में सोचने लगीं कि आज यह क्या हो गया! क्या किसीने वस्त्र चुरा लिये? किन्तु यहाँ तो सूर्य भगवान् की किरण के सिवा और किसीका प्रवेश सम्भव न था। यदि कोई आता भी तो उसके चरण के चिह्न दीख पड़ते। केवल जलचर पक्षियों के चरण-चिह्न ही यहाँ दिखाई पड़ते थे। तो क्या किसी देवता ने उन्हें हरण कर लिया? क्योंकि सुना है कि देवता भूमि को चरण से स्पर्श नहीं करते। (अर्थात् देवता ही शायद आये थे।)

इस तरह नाना प्रकार के तर्क-वितर्कों से व्याकुल हो जब व्रजकुमारियाँ इधर-उधर अपने-अपने वस्त्र खोजने लगीं तो उनकी वह शोभा देख यही लगता, मानो यमुना के चारों ओर केवल कमल ही खिल रहे हैं।

उस समय वृक्ष पर श्री व्रजराज-युवराज अपने सखाओं के साथ परिहास-रस प्रकट करते हुए उच्च हास्य के साथ कहने लगे: 'अयि व्रजकुमारिकाओ! हम पर वृथा शङ्का मत करो। हमने तुम लोगों के वस्त्र हरण नहीं किये हैं। एक चोर जब तुम लोगों के वस्त्र हरण कर इधर से जाने लगा तो यह जानकर कि ये तुम लोगों के हैं, हमने उससे छीन लिये और अपने पास रख लिये हैं। तुम चाहो तो अपने वस्त्र ले सकती हो, पर सबको एक-एक कर आना पड़ेगा। जिसका जो वस्त्र है, उसीको वह दिया जायगा।'

श्री नन्दनन्दन के ये वचन सुनकर व्रजकुमारियाँ अनुभव करने लगीं कि मानो उनके अपने व्रत का फल प्राप्त हो गया। अथवा ये परम मनोहर वचन उनके अङ्ग के भूषण हो गये। अथवा व्रत की समाप्ति पर अमृत की पारणा कर व्रत का कठोर श्रम दूर हो गया। आज उनको अपनी आशा-लता सर्वतः फलित दीख पड़ी।

यह सोचकर वे वहीं से अपनी कटाक्ष-दृष्टि से प्रियतम के दर्शन करने लगीं। बड़ी उत्कण्ठा से अपने प्रियतम के रूप-माधुर्य का अनुभव कर वे जल में कठपुतली-सी बन गयीं। लज्जा से हृदय के हर्ष को ढँक देर तक वैसी ही खड़ी रहीं और कुछ भी उत्तर न दे सकीं। फिर वहीं एक-दूसरी से धीरे से कहने

लगीं : 'सखि ! तुम ही प्रियतम के वचन का उत्तर दो, तुम ही दो।' ऐसा कहते-कहते लज्जावश उन्होंने कण्ठ तक जल में अपने अङ्ग छिपा लिये और स्पष्ट रूप से कुछ भी उत्तर न देते हुए भी नयनों की भाषा में भलीभाँति से उत्तर देने लगीं।

बहुत देर बाद हृदय से लज्जा थोड़ी दूर कर सभी व्रजकुमारियाँ मिलकर कहने लगीं : 'हम लोग तो आपको परम नीतिनिष्ठ गोकुल का युवराज ही जानती रही हैं। आप व्रज को आनन्द देनेवाले हैं। फिर आज यह कैसा अन्याय कर रहे हैं ? आपके लिए ऐसा करना अत्यन्त निन्दनीय है। व्रज-कुमारियों के वस्त्र चुराने से व्रज में आपकी घोर निन्दा होगी। आप तो व्रज के प्रशंसा-पात्र हैं, इसलिए हम लोगों के वस्त्र देकर व्रज में अपना यश बढ़ाइये।'

तब श्री नन्दनन्दन कहने लगे : 'अयि कमल-वदना व्रजकुमारिकाओ ! हम तुमसे झूठ नहीं कहते। हमारे वचन को तो व्रजवासी जन अमृतरूप ही मानते हैं। फिर तुम्हारे साथ हम परिहास भी नहीं कर सकते। कारण आज तुम लोग व्रतचारिणी हो। इसलिए हमारे कथनानुसार अपने-अपने वस्त्र लेकर हमारी बात की सत्यता का अनुभव करो (हम देते हैं या नहीं)।'

व्रजकुमारियाँ बोलीं : 'हे व्रजतापहरण ! आप तो कभी अधर्म के रास्ते में नहीं चलते। नन्दनन्दन ! आप स्वाभाविक परम कृपालु हो। हम पर क्या आपकी इतनी भी कृपा नहीं हो सकती ? आप अपनी आँखों से हमारी अवस्था देख रहे हैं। जल की शीतलता से हमारे अङ्ग काँप रहे हैं (वास्तव में अनुराग से काँप रही हैं, ठण्ड से नहीं)। हम लोग यमुना-जल में यों ही रहकर भले ही मर जायँगी, पर अपनी लज्जा त्याग आपसे वस्त्र न माँगेंगी। गोपियों के वंश और जाति का यही स्वभाव है। इसलिए पुनः ऐसा न कहें। हम आपके चरणों पर पड़ती हैं। अब अधिक परिहास न करें। हम लोग तो आपकी दासी हैं। आप जब भी जो कुछ कहें, आज्ञा का पालन करने को हम तैयार हैं। पर आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपना धर्म न त्यागें। कृपा कर इन चारों बच्चों के हाथ हमारे कपड़े हमारे पास भिजवा दें।'

ऐसी साम-भाषा कहकर जब कुमारिकाओं का एक यूथ चुप हो गया तब दूसरा यूथ कहने लगा : 'बहुत ही दुःख की बात है कि आज गोकुल में अधर्म का प्रकाश होने लगा। इस व्रजनगर में आज तुमने अन्यायपूर्वक हमारे वस्त्र चुराये हैं। व्रजनगरेन्द्रनन्दन ! अगर हमारे वस्त्र न दोगे तो हम सब मिलकर व्रजराज के पास जाकर तुम्हारी यह गुस्ताखी कह देंगी।'

अब रसराज श्यामसुन्दर मृदु मन्द हँसी हँसकर कहने लगे : 'अगर तुम

लोग हमारी दासी बन चुकी हो तो हम जो कुछ कहें, वही तुम्हें करना होगा। तब हमारे उचित वचन का क्यों नहीं पालन कर रही हो ? दासी होकर क्या कोई कभी अपने प्रभु के वचन टालता है ? अगर हमारे वचनों का पालन ही नहीं करतीं तो दासी कैसी ? इसलिए मेरा यह कठोर आदेश है कि एक-एक करके यहाँ आओ और अपने-अपने वस्त्र ले जाओ। अपने-अपने कुल में कलङ्क मत चढ़ाओ। हमें डर क्या दिखाती हो ? अगर हम तुम्हें वस्त्र देना ही न चाहें तो राजा भी क्या कर सकते हैं ?'

कृष्णचन्द्र के निश्चयभरे ये वचन सुन व्रजकुमारियाँ सोचने लगीं : 'अब तो हमारी हार ही है।' (कारण 'दासी' जो बन चुकीं) अब व्रजकुमारियाँ नन्दनन्दन के आदेश का पालन करने के लिए विचारने लगीं तो हृदय से परम अनुरक्ता लज्जा भी धीरे-धीरे भागने लगी। सभी एक साथ यमुना के तट पर आ गयीं। उस समय उनकी शोभा देखकर यह अनुमान होता था कि यमुना-जल की अधिष्ठात्री देवियाँ ही आज तट पर पधारी हों।

व्रजकुमारिका अपने-अपने लम्बे केश आगे-पीछे दो हिस्सों में विभक्त कर यमुना-तट पर जब आयीं तो लगता कि गगन का चन्द्रमा गहन में उतर आया। यमुना-जल से निकलने से पहले यमुनाजी ने भी व्रजकुमारियों को पूजा के निमित्त अपनी सम्पत्ति अर्पण कर दी अर्थात् नील कमल की शोभा उनके नयनों में भर दी। राजहंस का गमन-माधुर्य उनके चरणों में भेंट कर दिया। पुष्पों का सौरभ उनके अङ्ग-अङ्ग में अर्पण कर दिया। जड़ता से अङ्ग झुकने लगे। शीत से पुलक प्रकट होने लगा। उत्कण्ठा से गमन का स्खलन (एक पैर बढ़ाया और गिर पड़े, ऐसी उत्कण्ठा) तथा ऐसे ही अन्य भी अनेक भाव उनके देहरूपी वन में अपना प्रभाव दिखलाने लगे।

थोड़ा आगे बढ़ने पर लज्जारूपी सखी ने तर्जनी (उँगली) दिखाकर उन्हें वहीं रोक दिया। वे आपस में परिहास कर कहने लगीं : 'सखि ! तुम आगे बढो !' 'नहीं, तुम !' 'नहीं, तुम अकेली जाओ। नन्दनन्दन तुम्हारे ही प्रिय कान्त हैं।' किन्तु परस्पर की सौभाग्य-महिमा समान होने से कोई भी आगे न बढ़ सकी। फिर मजा यह कि पीछे भी पग न रख सकीं। आखिर नीचे नेत्र किये विगलितहृदया वे सभी व्रजकुमारिकाएँ प्रियतम पर टेढ़े कटाक्ष डालती कठिनता से कदम्ब वृक्ष के नीचे तक आ पहुँचीं।

तब रसिकशेखर व्रजराजनन्दन अपने निकट आयी उन गोपियों की लज्जा, उत्कण्ठा आदि भावों का भलीभाँति अनुभव करते हुए एक-एक गोपी को लक्ष्य कर बोले : 'अरी व्रजकुमारिकाओ ! डरती क्यों हो, हृदय के भावों

को क्यों छिपाती हो ? हम तो इस ऊँचे वृक्ष पर से तुम्हारे सब कुछ भाव देख ही रहे हैं। इसलिए निर्भय होकर एक पंक्ति में खड़ी हो जाओ। इस तरह खड़ी हो जाओगी तो तुम लोगों को अपने-अपने वस्त्र लेने में सरलता होगी।'

श्रवण-पुटों द्वारा वचनामृत का पान कर हृदय में परम समाधान का अनुभव करती कुमारिकाएँ नन्दनन्दन की आज्ञा का पालन कर ठीक उसी तरह एक पंक्ति में खड़ी हो गयीं। उनकी वह अवस्था देखकर पीताम्बरधारी व्रजविहारी प्रसन्न हो उठे। मुस्कराते हुए उन्होंने कन्धे पर वस्त्र धर लिये और नयनों से कुमारियों का वदन-माधुर्य पान करते हुए कहने लगे: 'कुमारिकाओ ! तुम्हारा यह आचरण बहुत अनुचित है। व्रत धारण करके भी तुम लोग अपने केश नहीं सँवारतीं, यह बड़ी निन्दनीय बात है। यह अलक्ष्मी का चिह्न है। साधारण जन के आगे भी खुले केश नहीं जाना चाहिए। फिर हम जैसे अतिमान्य जनों के आगे तो ऐसे आना सर्वथा अनुचित है। इसलिए अरी सुकेशिनियो ! अपने-अपने केशपाशों को भलीभाँति सँवारो !'

प्रियतम का वचन सुनकर लज्जा-समुद्र में स्नान कर निर्मल हुई उन व्रजकुमारियों ने अपने-अपने केश सँवारे और फिर अपने वक्षःस्थल को कर-कमल युगल से ढँककर बैठ गयीं।

उनका यह आचरण देखकर गोपीजन-वल्लभ पुनः बोले: 'अयि अङ्गनाओ ! हमारे सामने तुम्हें ऐसा बैठना उचित नहीं। उठो, उठो ! हमारी आज्ञा का पालन करो।' प्रियतम के अनुरोध पर उन्होंने उनके उस आदेश का भी पालन किया।

फिर नन्दनन्दन बोले: 'अयि व्रजकुमारिकाओ ! आज तुम्हारे व्रत में एक दोष दिखाई पड़ रहा है। सूर्य-नन्दिनी कालिन्दी देवी में तुम लोगों ने नग्न होकर जो स्नान किया है, उससे देवी का अपराध हुआ है। इस कारण जब तक देवीजी तुम पर प्रसन्न न हों, इस व्रत का फल तुम्हें प्राप्त नहीं हो सकता। यदि इस व्रत से दुर्लभ फल पाने की तुम लोग हृदय में अभिलाषा रखती हो तो उस अपराध के परिमार्जन का उपाय हम बता सकते हैं। श्रद्धा-पूर्वक उसका अनुष्ठान कर दोषमुक्त हो सकती हो !'

व्रजकुमारिकाएँ अपने व्रत में अपराध की कल्पना सुनकर परस्पर कहने लगीं: 'देवी के निकट यदि अपराध हुआ तो उसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। किन्तु जाने वह कैसा प्रायश्चित्त होगा ? यदि उस उपाय को नहीं किया तो व्रत भी पूर्ण न होगा। हाय ! हम क्या करें ?'

हृदय के भाव जब नयनों से प्रकट होने लगे, तो रसिकेन्द्रशिरोमणि

कहने लगे : 'अयि व्रजबालाओ ! अपने अपराध का प्रायश्चित्त भी अच्छी तरह सुन लो। जैसे तृष्णा की निवृत्ति जल के अतिरिक्त और किसीसे नहीं होती, वैसे ही हमारे वचन समझो। (अर्थात् हम जो उपाय बतायें, उनसे अलग उपाय नहीं है।) अपने अपराध मिटाने का तुम्हारे पास यही एक परम उपाय है कि वहीं से दोनों हाथ मस्तक पर जोड़कर रखें और देवी को दण्डवत् करें।'

उत्कण्ठा की चरम मञ्जिल पर पहुँची व्रजकुमारियों ने किसी तरह का विचार न कर उनकी आज्ञा का पालन किया। उनकी अवस्था कठपुतली जैसी हो गयी। सूत्रधार जैसे उन्हें नचाये, वैसे नाचने लगीं। उनका अनुराग-भरा ऐसा विचित्र आत्मसमर्पण और त्याग देख श्री नन्दनन्दन प्रसन्न हो कहने लगे : 'आज हम तुम लोगों के व्रत तथा भाव से अत्यन्त प्रसन्न हैं। अपने-अपने कर-कमल बढ़ाकर यह वस्त्र ले लो और अपने हाथों देह पर धारण करो।'

जब व्रजकुमारिकाएँ अपने-अपने हाथ उठाने लगीं तो रसिकशेखर (अन्तर्यामी शक्ति से एक-एक वस्त्रों को पहचान) जिसके जो वस्त्र थे, बिना उससे पूछे उसे देने लगे। व्रजकुमारियाँ अपने-अपने वस्त्र पहन जब खड़ी हो गयीं, तो पवन से उड़नेवाले अञ्चलों ने प्रेम के विजय-चिह्न प्रकट किये। (अर्थात् प्रभु तुम हारे, हम जीतीं) वस्त्र धारण करने के बाद प्रभु का कर-स्पर्श होने से उनमें जो गन्ध आ गयी थी, उसका वे दिव्य अनुभव करने लगीं। प्रियतम की अङ्ग-गन्ध का अनुभव कर उनके अङ्ग-अङ्ग से सात्त्विक भाव प्रकट हो चले।

भावों की जड़ता से जब वे वहीं ठक-सी खड़ी रह गयीं, तो गोपराज-युवराज अपने हृदय के भाव यों प्रकट करने लगे : 'सखियो ! नन्दगोप-सुत हमारे पति हों, इस सङ्कल्प-कल्पलता का अङ्कुर तुम लोगों के चित्त में बहुत पहले से प्रकट हो गया था। धीरे-धीरे उसने विशाल लता का रूप ले आज इस अपूर्व फल का दान किया है। तुम लोगों के प्रेम की परीक्षा (निरुपाधिक प्रेम है या नहीं) लेने के लिए आज हम यहाँ आये थे। जैसे तुमने आज हमारे आदेशों का पालन किया, दूसरा कोई नहीं कर सकता। तुम्हारे सङ्कल्प की सिद्धि अवश्यम्भावी है। अब हृदय में तनिक भी संशय न रखो। तुम लोगों को परम आनन्द मिले, मेरा भी यही सङ्कल्प है।

'तुम जैसे स्वाभाविक प्रेमभाव की आकांक्षा लक्ष्मीजी भी करती हैं। मुझे हृदय में धारण कर जो कोई जागतिक भोग या पारलौकिक सुख का सङ्कल्प

करता है, निश्चय ही हम उसे पूरा करते हैं। फिर भी मेरी प्राप्ति के लिए जो सङ्कल्प करते हैं (निष्काम भक्त), उनके मन में कभी भी जड़ विषय-भोग का सङ्कल्प नहीं उठता, जैसे कि भूना हुआ धान कभी अङ्कुरित नहीं हो पाता।'

प्रियतम के वचनामृत को सहर्ष पान कर व्रजकुमारिकाएँ आनन्दाश्रु बहाने लगीं। अब भी वे प्रियतम के पास ही खड़ी रहीं। तब व्रजराजनन्दन बोले: 'अब तुम लोग घर जाओ। आगामी सुखमयी रात्रि में मेरे सङ्ग तुम्हारा विहार होगा। तुम लोग नित्यसिद्धा हो।'

नन्दनन्दन के ये आश्वासनभरे वचन सुन अपने-अपने हृदय में अमर आशाएँ सँजोती व्रजकुमारिकाएँ अपने-अपने भवन में पधारीं।

तेरहवाँ स्तवक

यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह

अनन्तर भगवान् धेनुओं के पीछे वन में आकर तीन प्रहर तक बलदेवजी और सखाओं के साथ विहार करते रहे। विहार करते समय अपने बड़े भाई और सखाओं को सम्बुद्ध कर मधुर स्वर में कहने लगे :

'परम पूज्य आर्य ! हर्षास्तोक ! कृष्ण ! रुचिरांश ! श्रीदाम ! सुबल ! अर्जुन ! विशाल ! ओजस्विन् ! देव ! वरूथप ! आज वन की शोभा अच्छी तरह देखो। देखो ! पत्तों से भरे वृक्ष पवन के झोंके से कैसा मधुर नृत्य कर रहे हैं। इन वृक्षों की ये पत्तियाँ सारी विपत्तियाँ दूर करने में समर्थ हैं। देखो, इनकी शाखाएँ कितनी दूर-दूर तक फैली हैं, जैसा कि साधक का हृदय-वन आशापर्णों से दूर-दूर तक फैला रहता है। नाना प्रकार के पक्षी इन वृक्षों पर वास कर रहे हैं। इनके फूलों को देखकर देवता भी मोहित हो उठते हैं।[1] कैसी स्निग्ध अरुण-कृष्णवर्ण गुञ्जाफल की शोभा दिखाई पड़ती है। हम वृन्दावन के वृक्षों की महिमा का क्या वर्णन करें ! स्वयं ब्रह्मदेव भी वृन्दावन में वृक्षयोनि में जन्म लेना चाहते हैं। यह वृक्षों के पत्ते शत्रुओं से रक्षा करने के लिए मानो बाण धारण किये वीर खड़े हैं।[2] फूल शुद्ध चित्त करने का उपदेश दे रहे हैं। फल व्रजवासियों को उपकार का पाठ दे रहे हैं। छाल तथा उसके नीचे की लकड़ी दूसरे की सेवा में अपने को भस्म तक करा देने को प्रस्तुत रहती है।'

ऐसे मनोहर वचन कहते हुए श्यामसुन्दर ने बड़े भाई बलदेवजी को आगे किया और स्वयं उनके गौओं के पीछे-पीछे सखाओं के साथ जल-पान करने यमुनाजी की ओर चलने लगे।

कालिय-दमन का मनोहर चरित्र करनेवाले श्रीकृष्ण ने यमुना-तट पहुँचकर गौओं को जलपान कराया, फिर सखाओं के साथ स्वयं जल-पान किया। गौओं की पिपासा देख श्रीकृष्ण को याज्ञिक ब्राह्मणियों की उनसे मिलने की पिपासा स्मरण हो आयी। उनका ध्यान आते ही वे कुछ देर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

---

१. अर्थात् देवलोक में भी ये फूल सुलभ नहीं हैं।

२. अर्थात् साधक का मन हरण करने में समर्थ हैं।

गौओं के पीछे लगातार दौड़ते रहने और सवेरे भोजन भी न पाने से सखाओं के मुख मुरझा गये थे। सखाओं ने अपने प्रिय सखा श्रीकृष्ण का भी भूखे होने का अनुभव किया तो व्याकुल हो उठे। वे श्री राम-कृष्ण के आगे कातरता के साथ कहने लगे : 'जगत्श्रेष्ठ! मनोरम राम! आप लोगों की भुजाओं में तो बहुत बल है। अभी हमें बुभुक्षा (भूख) सर्पविष-सी भीषण सता रही है। इसकी शान्ति कैसे हो? हम क्या उपाय करें?'

सखाओं के वचन सुनकर उनके दुःख से नन्दनन्दन का हृदय पिघल गया। हँसते हुए वे देश-काल के अनुरूप वचन कहने लगे : 'अगर तुम्हें इतनी भूख लगी है तो उसकी शान्ति का उपाय भलीभाँति सुन लो। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण पास में ही आङ्गीरस यज्ञ कर रहे हैं। वे ब्राह्मण नित्य वेदपाठी हैं। दूसरे को तत्त्वोपदेश करनेवाले गृहस्थ हैं।* वहाँ जाकर प्रेम-भक्तिपूर्वक पहले उनको दण्डवत् प्रणाम करो और फिर पूज्य बड़े भाई के साथ मेरा भी नाम लेकर उनसे भोजन की प्रार्थना करें। माँगने में लज्जा लगती हो तो वह व्यर्थ है। ध्यान रखें कि निर्लज्ज हुए बिना कोई अपना स्वार्थ नहीं साध सकता।'

भगवान् का यह उपदेश सुन सानन्द सखागण याज्ञिक ब्राह्मणों के पास पहुँचे, जहाँ अत्यन्त विधिवत् यज्ञ हो रहा था। अग्नि में मन्त्र उच्चारण कर घृत हवन हो रहा था। यज्ञ की सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। उदात्त-अनुदात्त (ऊँचा-नीचा स्वर, उच्चारण भेद से) स्वरों से सामवेद का गान हो रहा था।

सखाओं ने उस यज्ञशाला में प्रवेश किया, जहाँ गृहस्थों की दक्षिणाग्नि जल रही थी। ब्राह्मण-गण अपने-अपने करों में कुशा लिये हुए थे। सभी पात्र घृत से भरे थे। एक तरफ यज्ञ-काष्ठ पड़े थे।

थोड़ी देर तक यज्ञ की शोभा देख सखाओं ने धीरे-धीरे ब्राह्मणों के आगे दण्डवत् प्रणाम किये और हाथ जोड़ उनसे निवेदन करने लगे : 'पूज्य चरणो! हमारी विनम्र प्रार्थना सुनें। श्री बलदेवजी तथा कृष्णचन्द्र सखागणों के सङ्ग आपके निकट वन में पधारे हैं। किन्तु भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है। इसीलिए बलदेवजी ने हमें आपके पास भेजा है। आप लोग कृपा के सागर हैं। सब जीवों पर आपकी निरुपधि कृपा रहती है। ब्रह्म को जाननेवाले ब्राह्मण भोजनादि के प्रदान से दूसरों के दुःख दूर करते हैं। आज राम-कृष्ण ने सबेरे

* अतिथि-सेवा उनको करनी चाहिए, यह धर्म जानते हैं।

भी भोजन नहीं किया। श्री राम-दामोदर बहुत दुःख पा रहे हैं। आदरसहित श्री राम-दामोदर को अन्नदान करना आपका उचित कर्तव्य है।'

ब्राह्मणों ने उनकी प्रार्थना सुन ली। बहुत देर हो गयी, फिर भी उनकी ओर से कुछ भी जवाब नहीं मिला। उनके हृदय को यह अभिमान मथ रहा था कि हम तो परम पवित्र ब्राह्मण हैं और ये ग्वाल, अहीर और फिर बालक! (अर्थात् अज्ञ)

जिनके हृदय में भगवान् की कृपा का अभाव है, जो सौभाग्य-हीन हैं, वे भगवान् को अन्नदान कैसे कर सकते हैं? इसलिए उन्होंने सखागणों के वचनों का तनिक भी आदर नहीं किया। बहरे-गूँगे की तरह सुना-अनसुना कर मौन रहे।

जब बहुत देर तक ब्राह्मणों से कुछ उत्तर नहीं मिला तो निराश और दुःखी होकर सखागण श्रीकृष्ण के पास लौट आये।

श्री दामोदर ने दूर से ही देख समझ लिया कि सखाओं का जाना व्यर्थ हो गया। वे कहने लगे : 'सखाओ! इन ब्राह्मणों में और तो सारे गुण हैं, केवल दया ही का अभाव है।'

सखागण बोले : 'बलदेवजी! यज्ञशाला का तो बहुत ही विचित्र सौन्दर्य है, जहाँ ये ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। किन्तु स्वयं वे ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं हैं। अरे, ब्राह्मण नहीं, बैल हैं। आपके नाम से प्रार्थना करने पर भी उन्होंने हमारी एक न सुनी। कुछ नहीं दिया, इसका सोच नहीं है। पर बात का जवाब तो देते। वहाँ हमें यही शब्द चारों ओर सुनाई पड़ रहे थे : 'यज्ञ का कार्य हो रहा है! आइये, जाइये, लीजिये, चलिये, जलपान कीजिये!' हम देर तक यही सुनते रहे। हे सखा कृष्ण! तुम्हारे आदेश का पालन करने के लिए वहाँ बहुत देर खड़े रहने से धुएँ से हमारे नयन भर गये। बस, यह धूम ही हमें वहाँ मिला। इसके सिवा और कुछ नहीं।'

वल्लभेश्वरनन्दन श्री भगवान् मधुर स्वर से कहने लगे : 'सखाओ! अपने हृदय में अपमान न मानो। स्वार्थसाधनार्थ सभीको अपमान सहना पड़ता है। ब्राह्मणों में दोष नहीं देखना चाहिए। वे लोग तो अपने काम में मग्न थे, इसलिए तुम्हारी बात पर ध्यान न दे सके हों। अब मैं तुम लोगों को सबसे अच्छा उपाय कहता हूँ। इसका अवश्य पालन करके देखो। वहाँ याज्ञिक ब्राह्मणियाँ भी रहती हैं। वे दया की मूर्तियाँ हैं। जन्म से परम पवित्र और मृत्युलोक में रहकर भी अमर्त्य हैं। किसीके साथ कोई प्रतिकूल आचरण नहीं करतीं। अपने दर्शन से ही दूसरे को आनन्द देती हैं। विपुल भिक्षा

देकर याचकों की आशाएँ पूर्ण करती हैं। ब्राह्मणों की स्त्री होकर भी स्वर्ण आसन पर बैठती हैं।[१] उन याज्ञिक ब्राह्मणियों के पास जाकर तुम माँगोगे तो वहाँ बहुत-सा अन्न तुम्हें मिल जायगा। जैसे कल्पवृक्ष जीवों की सभी आशाएँ पूर्ण करते हैं, वैसे ही वे भी तुम लोगों की आशा पूर्ण करेंगी। हमारे इन प्रीतिपूर्ण प्रिय वचनों को वेद-वचन-सा मान तुम लोगों को उनके पास अवश्य जाना चाहिए।'

नन्दनन्दन के ये वचन सुन सखागण मिलकर आनन्द के साथ अशोक कानन से होते यज्ञ-वाटिका के अन्दर जा पहुँचे। उन्होंने वहाँ उन याज्ञिक ब्राह्मणियों का दर्शन किया, जिनके चरणों का देवता भी वन्दन करते हैं। उनकी शोभा निराली ही थी! मेघ न होते हुए भी वे विजली-सी अपने अङ्ग-माधुर्य द्वारा झलकती हैं। जलाशय नहीं, पर कमलिनी-सी हैं।[२] बगीचा नहीं, पर उसकी सारी शोभा उनमें है। मानो वे सञ्चारिणी स्वर्ण-लताएँ हैं। वे रात्रि नहीं, फिर भी चन्द्रमा की अपूर्व चन्द्रिका हैं। वे यज्ञ की मूर्ति हैं। अग्नि की शिखा के तुल्य हैं। सस्नेह होकर भी अस्नेह दिव्यौषधियों की तरह चमकती हैं। भगवत्-प्रीति की चेष्टा उनके अङ्ग-अङ्ग में है। अथवा भगवत्-प्रीति की मूर्तियाँ ही हैं। क्षमा गुण से वे पृथिवी को आश्रय दे रही हैं। (अर्थात् केवल क्षमा इन्हींमें है।)

अनन्त गुण-सम्पन्न याज्ञिक ब्राह्मणियों को देख सखागण कहने लगे : 'आपके चरण-कमलों में हमारे शत-शत प्रणाम हैं। कृपा कर हमारे वचन सुनिये। हम लोग कृष्णचन्द्र के सखा हैं।'

सखाओं के मुख से सहज प्रिय लगनेवाला 'कृष्ण' नाम सुनते ही ब्राह्मणियाँ अपना सारा कार्य भूल गयीं। जैसे कोई मोहिनी मन्त्र से अपनी ओर आकर्षण कर ले, ऐसे ही कृष्ण-नाम ने याज्ञिक-ब्राह्मणियों को सखागण की ओर बरबस आकृष्ट कर लिया। वे ससम्मान उनकी ओर देखती ही रहीं।

ब्राह्मण-पत्नियों की यह अवस्था देख सखाओं के हृदय में आशा बँधी और वे आगे कहने लगे : 'अयि भूदेवियो![३] आप लोगों के व्रजराजकुमार वन में विहार करते-करते अशोक कानन में आ गये हैं। सवेरे से ही उन्होंने भोजन नहीं किया है। इसलिए बहुत भूख-प्यास का अनुभव कर रहे हैं।

१. अर्थात् जैसे ब्राह्मण निर्धन होते हैं, वैसी नहीं, धनाढ्य हैं।

२. विरोधाभास अलङ्कार—जल नहीं, पर कमल की शोभा उनके वदन में है।

३. ब्राह्मणियाँ।

हम सब भी उनके सङ्ग हैं। उनके लिए हम अन्न की प्रार्थना करने आये हैं। उनके साथ उनके बड़े भाई वलदेवजी भी हैं। व्रज में वलदेवजी को सभी जानते हैं। आपने भी अवश्य उनका नाम सुना होगा।

'हमारे सखा ने तो ६ दिन की अवस्था में पूतना का वध किया। तीन महीने के थे, तो तृणावर्त को मारा। तीन साल के हुए, तो बकासुर, अघासुर और कालियनाग दमन कर व्रजवासियों को सुख पहुँचाया। उनके गुण आपके सम्मुख क्या वर्णन करें? ब्रह्मादिक देवता भी उनके चरण-कमलों की वन्दना करते हैं।'

सखाओं के सुख-सने ये वचन सुनकर ब्राह्मण-पत्नियाँ सुख-सिन्धु में डूब गयीं। सोचने लगीं कि जिनके दर्शन के लिए हम अति लालायित थीं, अब तक जिनका केवल स्मरण करके समाधान मानती रहीं, आज वे ही प्रियतम स्वयं हमारे भवन के पास पधारे हैं। उनके समस्त अङ्गों में सात्त्विक भाव प्रकट होने लगे। उनका हृदय विगलित हो उठा। नयनों से अश्रुधाराएँ वह चलीं। अङ्ग में रोमाञ्च हो आये। बाह्य ज्ञान जाता रहा। मानो नव जीवन मिल गया हो! अपने सौभाग्य से आज दूसरे ही शरीर को प्राप्त हुई हों! श्रीकृष्णचन्द्र के साक्षात् दर्शन की उत्कण्ठा से उनका हृदय भर आया।

ब्राह्मण-पत्नियों की यह दशा देख सखा विस्मित हो मन में नाना शङ्काएँ करने लगे: 'हमारी बात सुन देवियाँ कुछ बोलती ही नहीं और न आगे भी बढ़ती हैं। (स्तब्ध) नेत्रों से भी मानो इन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। क्या किसी दुष्ट ग्रह ने इन्हें ग्रस तो नहीं लिया? अथवा अवज्ञावश इन्होंने हमारी प्रार्थना ही नहीं सुनी? आखिर अभी तक ये क्यों नहीं कुछ बोलतीं? इन्होंने हमें कुछ दिया भी नहीं।'

सखाओं के ये वचन सुनकर भी उत्कण्ठाविशेष के कारण देना चाहते हुए भी ब्राह्मण-पत्नियों ने तुरन्त अन्न देने में अपने अङ्गों को असमर्थ पाया। इस विचित्र चेष्टा का रहस्य यही था कि जिन्हें वे इतने दिनों से चाहती थीं, वे अकस्मात् इतने पास आ गये, यह सुन वे हर्ष से जड़वत् हो गयीं। सखागण ब्राह्मणियों की यह दशा देखकर अपनी प्रार्थना स्वीकार न होने पर भी हृदय में परम आनन्द का अनुभव करने लगे।

थोड़ी ही देर में भूदेवियों ने स्वयं को सँभाला और अपने प्रियतम के लिए चारों प्रकार के भोजन, जिनमें उनका अनुराग था, लेने के लिए रसोई-घर में गयीं। अपने को अत्यन्त प्रिय लगनेवाली मिठाई और पिष्टक

(बालूशाही), पुवा, केला, खीर तथा षड्रस व्यञ्जन, जिनसे सुगन्ध उड़ रही थी और जिनका भोग कृष्ण को लगाने का बहुत दिनों से वे सङ्कल्प कर रही थीं, आज सब उन्होंने बड़े स्नेह से शीघ्र तैयार किये। सोने के वर्तनों एवं मणिमय कटोरियों में भरा और कुछ अपने मस्तकों पर तो कुछ दासियों के सिर पर रख पतियों के निषेध की परवाह न कर सञ्चारिणी कल्पलता-सी वे भूदेवियाँ श्रीकृष्ण के सखाओं के सङ्ग चल पड़ीं। आगे-आगे सखा उन्हें रास्ता दिखाते चलने लगे।

जब ये भूदेवियाँ अपनी-अपनी सखी के हाथ पकड़कर अशोक-कानन की ओर जाने लगीं, तो लगता था, मानो सोने की माला जा रही हो। अङ्ग और अन्न के भार से उनके पैर धीरे-धीरे पड़ते थे। फिर भी चूँकि वे अपने प्राणवल्लभ के पास जा रही थीं, इसलिए उस बोझ से वे कुछ कष्ट अनुभव नहीं करती थीं। जब वे उत्कण्ठावश जोर से चलना चाहतीं, तो अन्तर में प्रणय-पीड़ा उठ चरणों को स्तब्ध कर देतीं। कुछ दूर चलने के बाद उन्हें बहुत-सी गायें दृष्टिगोचर हुईं। तब उन्हें विश्वास हो गया कि आज निश्चय ही प्रियतम के दर्शन होंगे।* उन्हें विश्वास हो गया कि अवश्य ही यहाँ हमारे प्राणवल्लभ हैं। कुछ ही दूर आगे अशोक-वन में उन्हें अपूर्व दिव्य ज्योति दिखाई पड़ने लगी। उस ज्योति का वर्ण श्याम था। वह श्याम ज्योति उनके नयनों में काजल-सी लग गयी, कुछ तो उनके केशों में प्रवेश कर गयी, तो कुछ नीलमणि का हार बन हृदय में प्रविष्ट हो गयी। धीरे-धीरे उनके सारे अङ्गों में वह ज्योति भर गयी। अब तो नन्दनन्दन उन्हें लावण्यरूप समुद्र की तरङ्ग-से दिखाई पड़ने लगे।

नन्दनन्दन उस समय अपनी वाम भुजा प्रिय सखा के कन्धे पर रखे दक्षिण कर से लीला-कमल घुमा रहे थे। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स-चिह्न सुशोभित हो रहा था। पीताम्बर पहने हुए थे। गुञ्जा और वैजयन्ती माला गले में धारण किये हुए थे। भुजा व वक्षःस्थल धातुराग से चर्चित था। मस्तक की अलकावली में फूलों का गुच्छ सुशोभित हो रहा था।

जब भूदेवियों ने ऐसे अपूर्व श्यामरूप के दर्शन किये तो वे चञ्चल हो अपने अङ्गों से प्रेम के विकार प्रकट करने लगीं। जैसे चातकी चन्द्रिका के प्रति सतृष्ण रहती है, वैसे ही उन ब्राह्मणियों के हृदय में श्रीकृष्ण की तृष्णा

* उद्दीपन भाव—जिससे प्रेम हो, उससे सम्बद्ध सभी वस्तुओं से रतिभाव परिपुष्ट होता है।

थी। वे सोचने लगीं कि क्या आज कोई दिव्य नट अपना नटवर वेष वन में दिखा रहा है ? अथवा कोई कन्दर्प की मूर्ति विराजमान है ? अथवा रस का कोई अलौकिक विग्रह है ? क्या यह साक्षात् प्रेम और आनन्द तो नहीं है ? अथवा लीला ही ने यह मूर्ति धारण की है ? वे अपने अन्तर में ऐसी कितनी ही कल्पनाएँ करने लगीं। विचार करते-करते जब उन्होंने अपने अभीष्ट श्रीकृष्ण को अपने हृदय से निकल अशोक-कानन में विहार करते देखा तो वे अति विस्मित हो उठीं।

उधर दूर से नन्दनन्दन ब्राह्मणियों को देख विचार करने लगे : 'क्या ये हमारी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली कल्पलताएँ हैं अथवा ओषधिलता के कानन अपने अङ्गों की छटाओं से वन को आलोकित करते आ रहे हैं ?' जब वे पास आ गयीं तब वे बोले : 'अयि मृगनयनियो ! तुम लोगों का स्वागत है ! रास्ते में तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? आओ, हमारे सामने बैठ जाओ। खड़ी-खड़ी क्यों हो ? व्रज में तुम लोग ही धन्य हो, क्योंकि मेरे ऊपर तुम्हारा सत्यभाव है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि मेरा दुःख सुनने के साथ ही तुम अपने सिरों पर धरकर भोग्य पदार्थ ले आयी हो। तुम लोगों का प्रत्युपकार करने की मुझमें सामर्थ्य ही नहीं। तुम लोग अपने सद्भाव से सन्तुष्ट होकर मेरी त्रुटि क्षमा करो।'

वे याज्ञिक-ब्राह्मणियाँ शरद्चन्द्र की चन्द्रिका-से मधुर इन वचनों को सुन अपने-अपने जन्म सफल मानने लगीं। उन्होंने नयनों द्वारा प्रियतम का रूप-पान कर हृदय में धारण कर लिया। फिर हृदय में ही अपनी भुज-लता से उनका आलिङ्गन कर अपने अङ्ग के सौरभ-सौन्दर्यरूप दीप तथा अनुरागरूप फूलों से प्रियतम की मानस-पूजा करने लगीं।

नन्दनन्दन ब्राह्मणियों का मन मोहित करने और उनके हृदय के दुःख मिटाने के लिए पुनः कहने लगे : 'अब तुम लोग अपने-अपने भवनों में लौट जाओ और अपने पतिरूप देवताओं के साथ यज्ञ को पूर्ण करो। यज्ञ मेरी ही मूर्ति है। जो लोग उसका अनुष्ठान करते हैं, उनसे हम परम सन्तुष्ट होते हैं।'

प्रियतम के चन्द्रवदन से कालकूट विष-से ये वचन सुन भूदेवियों के हृदय की आशा-लता उसी समय मुरझा गयी। बहुत दिनों से जिनके गुण सुन और निरन्तर उनका चिन्तन कर जिस आशा-लता को अब तक सँजोये रखा था, आज वही विफल हो रही है। यह विचार कर वे व्याकुल हो उठीं। अपने मुख नीचे कर बोझिल हृदय से अश्रु बहाती हुई वे धीरे-

धीरे नन्दनन्दन से प्रार्थना करने लगीं : 'नाथ ! तुम प्राणिमात्र के प्रिय होकर भी अपने प्रिय जनों के लिए इतने निष्ठुर वचन कैसे कहते हो ? तुम्हें तो ऐसी बात कहना सर्वथा अनुचित है। जिनका हृदय करुणा से परिपूर्ण होता है, उन लोगों के ऐसे आचरण नहीं होते। काया, वाचा और मन से वे कभी दूसरे को दुःख नहीं देते। तुम्हारे ये वचन नहीं, हृदय को तोड़नेवाले वज्र-सदृश हैं। हम लोगों की प्रार्थना सुनो ! हमें मत त्यागो ! हमारे नयनों का सुख हमारे आगे से न हटाओ ! भला हम कैसे अपने घर जा सकती हैं ? जो नदी जिस पर्वत से निकलती है, लौटकर फिर वहाँ नहीं जाती, बल्कि समुद्र (रत्नाकर) की ओर ही उसकी गति होती है। समुद्र भी आदर से उसको स्वीकार करता है। हे निष्किंचनप्रिय ! आपके सिवा हमें इस जगत् में कुछ और प्रिय नहीं। ऐसी अवस्था में हम अपने-अपने भवन कैसे जा सकती हैं ?

(यदि कहो, फिर इतने दिन कैसे भवन में रहीं ? तो सुनो !) जैसे कोई निविड अन्धकार में रहनेवाला कभी सौभाग्य से आलोकमय जगत् में आ पहुँचे तो फिर वह कभी उस आलोक को छोड़ अँधेरे में न जायगा ! जन्म से अन्धे को यदि अकस्मात् दिव्य दृष्टि मिल जाय तो फिर वह कभी अन्धा बनना स्वीकार न करेगा। तुम्हारे इन वचनों को सुन हमारे हृदय को सुख नहीं हुआ। हे न्यायपरायण ! हम लोग तुम्हारी शरणागता हैं। हमें चरणों में स्थान देकर अपना यश प्रकट करो।

हे दामोदर ! अपना कोटिकन्दर्प-विजयी रूप अपने नयनों से पहले देख लो। फिर तब कुछ कहना चाहो, उचित समझो तो कहो। जन्म में एक बार भी कोई 'मैं तुम्हारा हूँ' कहकर तुम्हारी शरण लेता है, उसे तुम कभी नहीं त्यागते, अपनी इस प्रतिज्ञा का तो पालन करो। हे कृष्णजी ! नीरस कर्मकाण्ड से पूर्ण भवन को छोड़कर हम लोग तुम्हारी दासी बन गयी हैं।

नन्दनन्दन ! आपकी आज्ञा से अब अगर हम अपने घर भी जायँ, तथापि ब्राह्मण लोग अब हमें अपनी स्त्री के रूप में घर में न रखेंगे। माता-पिता, गुरुजन आदि भी हमें स्थान देंगे या नहीं, इसमें भी संशय है। नहीं-नहीं, यह बात हम सोच ही नहीं सकतीं। तुम्हारी चरण-सेवा में यदि कोई निन्दा करे तो करे। माता, पिता, भाई, मित्र भी त्याग दें तो कोई बात नहीं। हम तुम्हारी सेवा में ही जीवन बिता देंगी। निवेदन यही है कि कृपा करके आप हमारा सङ्कल्प पूरा कीजिये।

करुणासिन्धो ! शरणागत को अङ्गीकार कीजिये। देव ! जैसे सखाओं के

साथ विहार करते हो, वह लीला हमें पुनः दिखाइये। आपके चरण-कमल की प्रसादी माला दीजिये, जिसे हम मस्तक पर धारण करके अपना जीवन धन्य करें।'

ब्राह्मणियों के वचनामृत को पान कर और उन्हें उदास देख मृदु हँसी हँसते हुए दामोदर कहने लगे : 'भूदेवियो, सुनो! हृदय दुःखी न करो। अपना हठ त्याग दो। हमारे वचनों पर ध्यान दो। जैसे श्रवण, स्मरण, कीर्तन में अपने अभीष्ट के माधुर्य का आस्वादन होता और हृदय का भाव बढ़ता है (और भाव से ही अभीष्ट की प्राप्ति होती है), वैसा मेरे पास रहने से भाव जाग्रत नहीं होता। इसलिए घर जाकर मन में मेरा ध्यान रखो। घर में बैठ भजन करने पर वहीं मुझसे मिलोगी। यदि तुम लोगों की हमसे प्रीति है तो हमारा मङ्गल भी तुम लोगों को देखना चाहिए। इस जगत् में हमारा गोप-वंश में जन्म है और तुम ब्राह्मणियाँ हो। हम तुम्हें पत्नी बनायें, यह अमङ्गल का कारण है। सो हम तुम्हारी देह के नहीं, भाव के पति बन सकते हैं। अपने-अपने घर न जाने से तुम्हारे पतियों को क्रोध आयेगा। मेरी बात पर विश्वास करो। तुम्हें तुम्हारे माता-पिता आदि सभी कोई पुनः आदर से स्वीकार कर लेंगे। (क्योंकि भगवत्-चरणों में जिन्होंने सब कुछ समर्पण कर दिया है, उनसे भला द्वेष कौन कर सकता है?) सो अपने हृदय की सारी शङ्काएँ त्यागकर आनन्द से अपने-अपने घर जाओ।'

ऐसी अनेक युक्तियाँ बता अपने वचनामृत का पान करा गोविन्द ने ब्राह्मणियों के हृदय मोहित लिये। वे अपना सङ्कल्प भूल गयीं। अब ब्राह्मणियाँ नन्दनन्दन का आदेश पालन करने को तैयार हो गयीं। परम उत्कण्ठित वे रूप-माधुर्य का पान कर प्रभु के वचनों का ध्यान करती सात्त्विक भावों से भूषित हो (नयनों में अश्रु, अङ्गों में स्वेद आदि) बड़े दुःख के साथ अपने-अपने भवनों की ओर लौट चलीं।

जब याज्ञिक-ब्राह्मणियाँ सखाओं से बातें करती उनके सङ्ग अपने घर पहुँचीं तो उनमें से दो-चार ब्राह्मणियों को उनके पतियों ने हठपूर्वक रोक दिया था। उन ब्राह्मणियों को अपने भवन में ही हृदयस्थ व्रजराज-युवराज का रूप-लावण्य स्फुरित होने लगा। वे बाह्यज्ञानशून्य हो गयीं। हृदय से स्फूर्ति प्राप्त कर उसीसे नन्दनन्दन का मोहक स्वरूप देखती उन भूदेवियों ने उसी शुभ मुहूर्त में इस नन्दनन्दन से मिलने के अयोग्य अपने भौतिक देह वहीं त्याग दिये और नन्दनन्दन से मिलने योग्य अप्राकृत दिव्य देह को धारण कर अन्य ब्राह्मणियों से पहले ही नन्दनन्दन से जा मिलीं।

जिनके हृदय में इतना अनुराग था, उनको कोई किस प्रकार रोक सकता था ? जब अन्तर में भगवत्-स्वरूप का स्वाभाविक भाव प्रकट होता है, तब ऐसे अनुरागी जन किसी भी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं करते।

उन ब्राह्मणियों ने उन देह को छोड़ दूसरी देह वैसे ही प्राप्त की, जैसे नख से लता का ऊपरी हिस्सा तोड़ने पर भी उसकी जड़ नहीं कटती और उसे नया तना आ जाता है। उनमें प्रभु का भाव (जड़) तो बना ही रहा, इसलिए प्राकृतिक देह नष्ट होने पर भी वे सिद्ध देह (लता) पा गयीं।

इन ब्राह्मणियों को इतना सौभाग्य मिला कि नन्दनन्दन की कान्ताएँ हो गयीं। (ब्राह्मण-देह छूट गयी, जो कान्ता बनने में बाधक थी सो फलस्वरूप शरद् के महारास में ये भी उपस्थित हो गयीं।) भगवद्-भक्तों के लिए कोई भी बात असम्भव नहीं होती।

उनमें कितना प्रेम था, इसे आचरण द्वारा उन्होंने अच्छी तरह प्रकट कर दिया। जैसे योगी समाधि में साधन की शक्ति (सिद्धि) से पाञ्चभौतिक देह त्याग देते हैं, वैसे ही जिस समय मन में आया, उसी समय ब्राह्मणियों ने देह त्याग दी। सम्पत्ति, घर-द्वार सब कुछ तृणतुल्य मान निमेष काल में उन्हें सर्वथा त्यागकर प्रेम का प्रभाव दिखा दिया।

ब्राह्मणियों का यह देह-त्याग देख ब्राह्मणों के हृदय में निर्वेद* और अनुताप होने लगा। वे कहने लगे : हमने जो कर्म-काण्ड में दीक्षा ली, उसे धिक्कार है ! जो कुछ आज तक दान दिया, उसे भी धिक्कार है ! जो कुछ स्वाध्याय किया, वह भी व्यर्थ गया ! हम जो अपने को ज्ञानी समझते रहे, हमारे उस आत्मज्ञान को भी धिक्कार है ! सदाचारी होने के अभिमान और यज्ञानुष्ठान की दक्षता को भी धिक्कार है। हमारे ध्यान, आसन, धारणा को भी शत-शत धिक्कार हैं। कारण, वेद के वास्तविक प्रतिपाद्य वस्तु को हम लोग अब तक कुछ भी नहीं जान पाये। जिनके हृदय में श्रीकृष्ण-प्रीति नहीं, सचमुच उनका जन्म ही व्यर्थ है !

देखो ! इन ब्राह्मणियों में कोई खास सदाचार नहीं है। ये न वेद पढ़ी हैं और न मन्त्र ही जपती हैं। ये न होम करती हैं और न इनका उपनयन-संस्कार ही हुआ है। आत्मज्ञान-विषय भी इन्होंने न कुछ सुना, न विचार किया और मनन ही किया है। केवल नन्दनन्दन के सखाओं से उनके गुण-गण सुनकर जिनकी ऐसी अवस्था हुई, न जाने उनमें कितना प्रेम है ? प्रेम की

* शास्त्र-ज्ञान से जगत् को मिथ्या जान विरक्त होना।

महिमा से इन्होंने लज्जा भी त्याग दी। गुरुजनों का गौरव भी इन्हें न रोक सका। अपनी प्रभु-उत्कण्ठा में बाधक पति, पुत्र, सुहृद् आदि सभी का अनुरोध त्यागकर ये अपने प्रियतम से जा मिलीं। कृष्णचन्द्र के अनुग्रह ने उनको ग्रस लिया है। ऐसा विचित्र अनुराग जगत् में कहीं भी नहीं देखा।

(मृतक ब्राह्मणियों की पड़ी देह को देख ब्राह्मण कहने लगे :) 'योगीश्वर योग-साधना द्वारा षट्चक्र भेदन कर अपना प्राणवायु अपने अधीन कर इस देह को त्यागते हैं। पर इन ब्राह्मणियों ने तो अपने प्रियतम के दर्शन की अभिलाषा में बाधा प्राप्त होने पर योगिश्रेष्ठों के लिए भी दुर्लभ नन्दनन्दन के परम पद को प्राप्त किया। हम लोग अपनी दुष्टता कहाँ तक कहें? भगवान् के साक्षात् अनुचर हमारे पास कृपा कर आये, पर आँख उठाकर उन्हें हमने एक बार भी न देखा। उनकी प्रार्थना सुनकर भी अनसुनी कर दी। यही लगता है कि भगवान् ने ही उन पर कृपा करने के लिए अपनी माया से हमारी बुद्धि को उस समय मोहित कर लिया था।'

बहुत देर तक ब्राह्मण अपने घरों में बैठ जब इस तरह अनुताप करने लगे, तो नन्दनन्दन की प्रसन्नता से पूर्ण याज्ञिक-ब्राह्मणियाँ अपने भवनों में आ पहुँचीं। उस समय उनके हृदय नन्दनन्दन के दर्शनानन्द से परिपूर्ण थे। उनका शरीर नया भाव प्रकट करने लगा। नयनों से आनन्दाश्रु की धाराएँ बहने लगीं। बाह्य ज्ञान कुछ न था। वे पूर्व अभ्यास से अपने-अपने भवन में जाने लगीं। उस समय वे दया की मूर्तियां बन गयी थीं। उनको देखकर दूसरे के हृदय में भगवान् के अनुराग का सञ्चार होने लगा। माया के सब बन्धन निवृत्त हो गये। इस जगत् का कोई भी सङ्कल्प हृदय में नहीं रहा।

अपनी-अपनी ब्राह्मणियों का दर्शन कर ब्राह्मण लोग पहले से भी अधिक आदर और श्रद्धा के साथ आगे बढ़े और स्वागत करते हुए उन्हें घर में लिवा लाये।

इसमें विस्मित होने का कोई कारण नहीं। श्री भगवान् के दर्शन का यही फल है कि शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। वे उस समय एक तो दर्शन होने का आनन्द और दूसरे अब वह नहीं रहा, इसका विषाद—इस तरह परस्पर विरुद्ध भावों का एक साथ अनुभव कर रही थीं। वे कहतीं : 'व्रज में उसीका जन्म सफल है, जिन्हें नन्दनन्दन से मिलने योग्य देह मिली। (हमारी ब्राह्मण-देह इसके अयोग्य है) ऐसी भाग्यशालिनी नित्य नव-नव भाव से अपने प्रियतम का माधुर्य आस्वादन करती हैं।' (हम तो अधन्य हैं)

इधर ब्राह्मणियाँ जब ऐसा सोचतीं तो उधर श्रीकृष्ण का हृदय उन अपनी

अनुरागिणी ब्राह्मणियों के देह-त्याग का विचार कर कृपा से द्रवित हो गया। सखाओं के साथ भोजन में बैठकर भी वे कुछ ही क्षणों में कहने लगे : 'आज मेरी भोजन में रुचि नहीं है।' उन्होंने उन भोज्य पदार्थों से सखाओं को ही अच्छी तरह भोजन करा दिया। बलदेवजी के अति अनुरोध पर सबके पीछे थोड़ा-सा कुछ खा लिया। यों भोजन स्वाभाविक ही सुमधुर था। उसमें अनुराग-रस भी भरा होने से वह श्रीकृष्ण का परम आस्वादनीय हो गया।

परम प्रिय नर्म-सखा सुबल, मधुमङ्गल आदि अपने सखा श्रीकृष्ण का भावान्तर कराने के लिए नाना प्रकार के परिहास-वचन कहने लगे। सायङ्काल होता देख प्रभु ने गौओं को आगे किया और सखाओं के साथ पीछे-पीछे अपनी वेणु बजाते वन के पशु-पक्षी, तरु-लता आदि से विदाई लेने लगे। साथ ही व्रज-सुन्दरियों को उसी वेणु-नाद से अपने आगमन की खबर पहुँचाने लगे।

वेणु का रव सुनकर अनुरागिणी गोपियों का सारे दिन का सन्ताप मिटने लगा। जब प्रभु व्रजपुर की ओर चलने लगे, तो गौओं की चरण-रज से वे कुन्तल से चरण तक धूलि-धूसरित हो गये। ढीली व टेढ़ी पाग मस्तक पर सुशोभित हो रही थी। पाग पर फूलों का गुच्छा और उस पर मोरपिच्छ झलक रहा था! कानों के कुण्डल गण्डस्थल पर नृत्य कर रहे थे। धीरे-धीरे चलने के समय चरणों के मणिमय नूपुर मधुर गुञ्जार करने लगे। मुरली की रव के साथ उनके शब्द मिल गये। नन्दनन्दन के आगे उनके बड़े भाई बलदेवचन्द्रजी थे और दक्षिण और वाम भागों में उनका सहचर-वृन्द! उस शोभा को देख दर्शक उन्हें साक्षात् प्रेमानन्द का विग्रह समझने लगे। इस प्रकार नन्दनन्दन ने व्रज में प्रवेश किया।

व्रजवासियों को नन्दनन्दन के आगमन का पता चला। पहले तो सायङ्काल होते ही उनके हृदय को प्रभु के आने की खबर मिली। उसके बाद गो-पद-रज भी दीखी। फिर गौ का 'हम्वा' रव सुनायी पड़ा। फिर वेणु-ध्वनि ने गोपियों का मन हरण कर लिया।

गोपाङ्गनाएँ हार्दिक उत्कण्ठावश दिन में कुमुदिनी जैसी मलिन हो जातीं। उन्हें दिन का एक-एक क्षण हजार वर्षों के तुल्य अनुभव होने लगता। इसी भाव से वे सूर्य को देखतीं कि कब अस्त होगा? जब सूर्य पश्चिम दिशा को जाने लगता, तो वे नन्दनन्दन के आगमन की प्रतीक्षा में लज्जा त्यागकर मार्ग में जा खड़ी हो जातीं। जब (सन्ध्याकाल में) कमल-बन्धु (सूर्य) वारुणी मदिरा पान कर अपने नेत्रों में अरुणिमा प्राप्त करते, तब नक्षत्र

की अपेक्षा कर वधुओं का वदन-चन्द्र उदित होने लगता। सन्ध्या का आगमन देख जिनमें यह विचार करने की सामर्थ्य नहीं रहती कि इस समय क्या करना चाहिए, वे व्रजवालाएँ इस सध्या समय अपने सौभाग्य का निशान उड़ाने लगतीं। नयन की चञ्चलता से उनके भ्रू-युगल नृत्य करने लगते। वदन में आलस्य से जँभाई आने लगती।*

दूर से ही श्रीकृष्णचन्द्र के वदन का दर्शन कर उनका हृदय नाना विचित्र भावों से पूर्ण होने लगा। उनका अनुराग उनकी प्रिय वस्तु की प्राप्ति की आशा दिलाने लगा। हरएक विचारने लगी कि प्राणवल्लभ इस समय केवल मेरे सम्मुख ही अपना वदन-माधुर्य प्रकट कर रहे हैं। सो मेरे पास अवश्य आयेंगे।

कोई गोपिका धैर्य त्याग अपने कर-कमल में मुक्ता-लता ले अपनी सखी से कहने लगी: 'अयि सखि कुन्ददन्ति! अयि गजगामिनी! इससे पहले कि हमारे प्रियतम दूसरे किसीके घर पहुँचें, तू प्रियतम को जैसे-तैसे करके यहाँ ले आ। ले, यह मेरा एकावली हार ले जा! इसे प्रियतम को पहना-कर मेरा नाम लेकर लम्वा दण्डवत् करके कहना कि 'अगर हमारे प्राणों की रक्षा करने की इच्छा हो तो विलम्व न कीजिये, तुरन्त हमारे पास पहुँचिये'।'

दूसरी कोई गोपी अपनी सखी से कहने लगी: 'गुरुजन के तिरस्कार से हमें क्या हानि है? उन्हें करने दो। कुलवधू होकर हम नन्दनन्दन से कैसे मिलें, इस विषय में जो लज्जा है, वह वड़ी पीड़ादायिका है। चलो सखि! जैसे लता तमाल को लिपट जाती है, हम भी अपनी देह-लता को अपने मनोरथरूप तरुण कल्पतरु से लिपटायें और आनन्द-सिन्धु में डूबकर सारे ताप भूल जायँ। सखि! आज तो व्रजराज के भवन में अवश्य ही जाना चाहिए। वहाँ गये विना हमारा मङ्गल नहीं।'

गोपियाँ भाव से विभोर होकर ऐसे वहुत कुछ प्रलाप करने लगीं। उधर श्री नन्दनन्दन इन अनुरागिणियों की ओर अपने नयन की कृपामृतवर्षिणी दृष्टि फेरते जव चलने लगे तो व्रजगोपियों के मनोरथ सफल हो चले। इस प्रकार नन्दनन्दन ने प्रत्येक व्रजसुन्दरी का माधुर्य देखते हुए अपने भवन में प्रवेश किया।

नन्दनन्दन जव अपने भवन में पहुँचे तो व्रजगोपिकाएँ भी अपने प्रियतम

---

* अर्थात् वे अभ्यास करने लगतीं कि जव वे आयेंगे तो कैसे देखें?

का दर्शनानन्द हृदय में धारण करके सात्त्विक भाव प्रकट करती अपने-अपने घरों में चली गयीं।

सखागण भी अपने-अपने घर पहुँच गये। अब श्री बलदेवजी के साथ दामोदर ने पिता-माता की चरण-वन्दना की। उन्होंने दोनों के मस्तकों से कर-स्पर्श कर आशीर्वाद दिया। फिर दोनों भैया औरों से मिलने लगे। नित्य की तरह दोनों माताएँ अपने वसन के अञ्चलों से पुत्रों के अङ्ग की रज झाड़ने लगीं। उन्होंने पुत्रों को अच्छी तरह नहलाया, नवीन वस्त्र पहनाये और भूषणों से सजा दिया। पश्चात् वात्सल्यरसमय भोजन कराकर दोनों को अपनी-अपनी उत्तम शय्या पर शयन करा दिया।



चौदहवाँ स्तवक

वसन्त ऋतु-लीला

जब हेमन्त ऋतु की रजनी का अवसान हो गया और वसन्त ऋतु की पञ्चमी का प्रभात उदित हुआ तो व्रजतिलक श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ गौओं के पीछे नवीन नटवर वेश धारण कर, ऋतुराज के फूलों से अपना शृङ्गार कर विहार करने के लिए तथा खग, मृग, तरु, लता आदि का विरह-दुःख मिटाने के लिए नन्दन-वन में पधारे। उस समय नन्दनन्दन के प्रिय नर्म-सखा ब्राह्मण-बालक कुसुमासव (मधुमङ्गल) ने स्वच्छ चित्त-वृत्ति से अपूर्व लीलारस अनुभव कर दैवज्ञ (ज्योतिषी) का रूप ले अकेले ही गोकुल नगर में प्रवेश किया। वृद्धा गोपियों ने उन्हें देख बड़े आदर के साथ अपने पास बुलाया। प्रणाम करके आसन पर बैठा वे पूछने लगीं : 'आप तो नन्दनन्दन के प्रिय नर्मसखा हैं। आपकी बुद्धि की बड़ाई व्रज में सभी करते हैं। इसलिए हम तो जानना चाहती हैं कि आपने कौन-कौन-से शास्त्रों का अध्ययन किया है?'

मधुमङ्गल (हँसकर) : 'हम केवल ज्योतिष और आगम-शास्त्र पढ़े हैं।'

वृद्धा गोपी : 'हे जगदुत्तम ! ज्योतिष-शास्त्र किसे कहते हैं और आगम भी क्या है?'

मधुमङ्गल (उल्लसित होकर) : 'व्रज की बूढ़ी दादी ! ज्योतिष-शास्त्र का बहुत बड़ा प्रभाव है। जगत् का मङ्गल और अमङ्गल तथा जीवों का भूत-भविष्य इसी शास्त्र से जाना जाता है।'

आगम उस शास्त्र का नाम है, जिसमें देवता की आराधना से कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् की शक्ति वर्णन की गयी है।

वृद्धा गोपी : 'बलिहारी ! आज मुहूर्त भी अच्छा है, इसलिए तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ। दक्षिणा में बहुत-से लड्डू देने का विचार है। मेरा एक प्रश्न है, जो गोकुल में किसी और से मैं नहीं पूछ सकती। आपको मङ्गलमय जान पूछती हूँ। हमारे प्रश्न का उत्तर दे मन का संशय दूर कर अपनी विद्या से हम पर उपकार कीजिये। इस जगत् में कौन विद्वान् अपनी विद्या से दूसरों का दुःख नष्ट करने की नहीं सोचता?'

मधुमङ्गल (हँसकर) : 'लड्डू से इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता। यदि अच्छी-अच्छी वहुत-सी गायें दोगी, तव तो हम अच्छी तरह उत्तर दे सकेंगे। यह न समझो कि तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने की हममें सामर्थ्य नहीं है। मेरा ब्राह्मण-शरीर है, सो सर्वज्ञता-शक्ति तो सदैव मुझमें विराजमान है।'

वृद्धा : 'दैवज्ञवर ! हमारे प्रश्न का यदि ठीक-ठीक उत्तर दोगे तो गायें ही क्या, जो माँगोगे हम देंगी।'

मधुमङ्गल : 'हम तुम्हारा धन नहीं चाहते। व्रज में अपनी प्रतिष्ठा फैलाने के लिए हम गाय माँगते हैं। अच्छा, अव अपना प्रश्न पूछो।'

वृद्धा : 'हम लोगों के हृदय को परम ताप देनेवाला वह एक अनिर्वचनीय प्रश्न है। वात यह कि पहले तो व्रजराज के इस व्रजनगर में हम लोग निष्कण्टक निवास करती थीं, किन्तु अव हमारे मन में एक वात शल्य-सी चुभती है। हमें एक विलक्षण मानसिक व्याधि हो गयी है। हमारा व्रजवधू वर्ग विवाह के दिन से आज तक अपने पति का नाम तक सुनने में वहरा हो गया है। तुमसे क्या कहूँ, कृष्ण में अनुराग और अपने पतियों के प्रति ऐसा विमुख भाव हमने न कभी देखा और न सुना। व्रजगोपियाँ मन में भी हमारे पुत्रों को अपना पति नहीं समझतीं। आखिर इसका कारण क्या है ? यही मेरा प्रश्न है। दूसरा प्रश्न यह कि इसका प्रतीकार किस उपाय से हो सकता है ? आप अपने शास्त्र से इसका ठीक-ठीक विचार कर हमें समुचित उत्तर दे व्रज में चारों ओर अपना यश फैलाइये।'

मधुमङ्गल (दिखावटी मौन रहकर) वृद्धा के रोग का कारण सोचने लगे। वहुत देर तक विचार कर, आचार्य का अभिनय कर खिन्न-सा मुँह वना शुष्क हास्य हँसते हुए कहने लगे :

'आज हमारा अन्तर कुछ कौतुकमय विषय में भ्रमण कर रहा है। अयि कल्याणवति ! तुमसे मेरी एक प्रार्थना है, मेरे तुम्हारे पास आने और जो कुछ गणना कर रहे हैं, उसकी खवर कृष्ण के कानों तक न पहुँचे। नहीं तो वे अपने साथ हमें मिलने भी न देंगे। यह विषय अत्यन्त गोपनीय रखो। अच्छा, अव एक फल ले आओ, हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर अभी देंगे।'

(गोपी से फल पाकर विस्मित हो वे वोले :) 'तुम्हारे प्रश्न में लौकिक और अलौकिक दो तरह के दोष दिखाई देते हैं। लौकिक दोष तो तुम्हें भी मालूम है, अर्थात् पति-विपक्षता ! अलौकिक विषय अव सुनो : इस व्रज में योगी भी जिनके चरण-वन्दन करते हैं, जो अपने प्रभाव से सूर्य के प्रभाव को भी दमन कर सकती हैं, जिनका योगमाया नाम है, वे तुम लोगों के प्रतिकूल

हैं। उन्होंने तुम्हारे पुत्रों के साथ इन वधुओं का मिथ्या विवाह कराया है। जो कोई योगमाया को जानते हैं, वे इस विवाह को स्वीकार नहीं करते। यही कारण है कि इस नरलोक में अयोग्य पति-विद्वेष प्रकट हुआ है। ये गोपियाँ मानवी (साधारण) नहीं हैं। इन पर योगमाया की अत्यधिक प्रीति है। इसी कारण किसी भी मनुष्य के साथ इनका मिलन सम्भव नहीं। योगमाया अपने प्रभाव से तुम लोगों के घरों में इन गोपियों को रखकर भी पतिमान्य गोपों का स्पर्श भी नहीं होने देती। योगमाया का यह विचित्र प्रभाव है। इसलिए आप लोग आज से गोपियों को अपनी पुत्रवधुएँ मत समझो। फिर भी उन पर उदास न हों। उनसे प्रीति तो अवश्य करनी चाहिए, उससे आप लोगों का ही वहुत मङ्गल हो रहा है। यदि तुम लोग अपने पुत्रों के जीवन चाहती हों तो तुम्हें यही प्रयत्न करना चाहिए कि तुम्हारे पुत्रों का इन गोपियों से कभी स्पर्श न हो।

'देखो! कृष्णभुजगावला[1] (कालिय-नाग-स्त्री) से कोई भी स्पर्श कर सुख नहीं पाया करता। तुम्हारे पुत्रों का वड़ा सौभाग्य है कि उनके साथ गोपियों का विवाह हुआ।'

वृद्धा (दुःखित होकर): 'ब्राह्मण-वटो! तुम तो प्रमाण (वेद) की मूर्ति हो। तुम्हारी बात साधारण मनुष्य की-सी नहीं, सर्वज्ञ की-सी है। तुमने अपनी ज्योतिष-विद्या-निपुणता तो दिखायी। अव आगम-विद्या का प्रभाव दिखाओ। किस देवता की आराधना से योगिनी की प्रतिकूलता हम मिटा सकती हैं? उनकी आराधना की विधि भी भलीभाँति कहो।'

मधुमङ्गल (उत्साह से): 'हाँ-हाँ, कोपिनी रुष्टा योगिनी का कोप दूर करने के लिए देवता की आराधना भी तो है ही।'

उनके वचनों को अपने कण्ठ का हार समझकर वृद्धा अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह दुःख मिटाने के उपाय की जिज्ञासा करने लगी: 'ब्राह्मण-वटो! तुम तो गुणरूप रत्नों की खनि हो। इसलिए हम तुमसे पूछती हैं कि योगमाया का कोप मिटानेवाली वह कौन-सी देवता है? उसका नाम क्या है? उसकी उपासना कैसे की जाती है? सारा विषय सुस्पष्ट वर्णन कर कहो।'

मधुमङ्गल (हर्ष से): 'हे महाभाग्यवती! इस वृन्दावन में कोई एक अतिकाल[2] काल-कुमार[3] नामक एक मूर्तिमान् कुञ्ज-देवता हैं। सव देवता-

---

१. श्लेष है—दूसरा अर्थ कृष्ण-कान्ता।

२. श्लेष—कालातीत दूसरा अर्थ है।

३. श्लेष—श्यामल युवराज = कृष्ण।

वृन्द भी उसके चरणों की वन्दना करते हैं। योगिनियाँ भी उसकी दासी हैं। तुम्हारी वधू यदि उनकी उपासना करें तो कदाचित् वह देवता तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं। वह जिस पर भी प्रसन्न होते हैं, वह कभी कुछ दुःख नहीं पाता। जिस पर रुष्ट होते हैं, उसकी 'पिनाक' धनुष लेकर महादेव भी चाहें तो रक्षा नहीं कर सकते। वे देवता कुञ्ज-कुञ्ज में विहार करते हैं। कोई भी उनके दर्शन नहीं पाते। एकाग्रता से जो उनका ध्यान करते हैं, उनके हृदय में वे आविर्भूत हो जाते हैं। उनकी पूजा में काल का नियम नहीं है। इसलिए व्रज में जितने पुण्यवान् जन हैं, उनकी आराधना करते हैं। अब उनकी पूजा का नियम सुनो :

उत्तम वसन और भूषणों से सुसज्जित हो पूजा के लिए वन से स्वयं ही फूल तोड़कर लाने पड़ते हैं। पूजा के प्रारम्भ से समाप्ति तक एक भाव रहना पड़ता है (किसी और की चिन्ता नहीं होनी चाहिए)। उसके प्रसङ्ग के सिवा और कुछ न कहना चाहिए। पूजा के विषय में लोक-लज्जा भी त्याग देनी पड़ती है। मौन होकर पूजा की सामग्री इकट्ठी करनी होती है। कुञ्ज-कुञ्ज में जाकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य के साथ आनन्द से उनकी पूजा करनी पड़ती है। त्रिसन्ध्य पूजन उनके पूजन की श्रेष्ठ विधि है। पूजा के अन्त में कुञ्ज में भूमि की शय्या बनाकर जागरण करना पड़ता है। प्रातःकाल और मध्याह्नकाल यदि पूजा न भी कर सकें, तो भी सन्ध्याकाल की पूजा अवश्य ही करनी चाहिए। कालकुमार देवता की त्रिकाल पूजन-विधि तुम्हारे सामने बतायी। हमारी समझ से इससे श्रेष्ठ और कोई पूजन इस जगत् में नहीं है। इस देवता की पूजा के सब मन्त्रों में बड़ी शक्ति है। तथापि अष्टादशाक्षरी (१८ अक्षर के) मन्त्र में श्रद्धा विशेष हो तो उसको बता सकते हैं।'

वृद्धा : 'हे बालाचार्य ! क्या मन्त्र के बिना भी सिद्धि हो सकती है ? सो मन्त्र अवश्य ही बताओ। हम तुमसे सुनकर अपनी-अपनी वधुओं को उपदेश करेंगी।'

मधुमङ्गल : 'अच्छा ! 'हे कुञ्जेश्वरी देवता ! तुम मुझ पर प्रसन्न होओ' देश और कालोचित यह मन्त्र उच्चारण करना होगा।'

'अचिन्त्यमहसे कुञ्जदेवतायै रसात्मने स्वाहा'* इस मन्त्र का उच्चारण करके वे आगे बोले : 'आगम-शास्त्र का उपासना-काण्ड तुम्हारे सामने वर्णन किया है। अच्छी तरह इसका अनुष्ठान करने से प्रतिकूला योगिनी थोड़ी ही देर में अनुकूल आचरण करने लगेगी।'

---

* प्रभाव जिनका अचिन्त्य है, रसरूप जो हैं—ऐसे कुञ्ज-देवता।

मधुमङ्गल इतना कहकर वहाँ से उठकर चले गये। वृद्धा ने उसकी बातों पर भलीभाँति विचार किया। घर जाकर वधुओं को बुलाकर उपदेश करने लगी :

'अयि सौभाग्यवती! व्रज में तुम लोग धन्य हो, फिर भी तुममें पति-वैमुख्यरूप दोष है। उसका उपाय अवश्य करना चाहिए। उस विषय में मैं आज कुछ तुमसे कहना चाहती हूँ। तुम्हारे पतियों के आनन्द तथा श्रद्धा-प्रीति बढ़ाने और हमें भी सुख देने के लिए वृन्दावन के बीच अनुपमा-कुञ्जेश्वरी एक देवता हैं। उनकी पूजा से इस विषय को साधन कर सफलता प्राप्त कर सकती हो।'

व्रज-गोपियाँ शङ्कावश मन में विचार करने लगीं कि आज गुरुजन हमारे अन्तर की परीक्षा कर रही हैं। इनके वचन का कुछ भी अर्थ समझ में नहीं आता। वे थाड़ी देर मौन रहीं। वृद्धा ने कुञ्जेश्वरी देवता की पूजा-विधि प्रारम्भ से अन्त तक वर्णन कर सुनायी।

श्रवण-रसायन वचन को सुनकर मधुमङ्गल की चतुराई पर सन्तोष प्रकट करती वे गोप-वधुएँ ऋतुराज का महोत्सव हृदय में अनुभव करके फिर पूछने लगीं :

'पूज्यपादा! इस व्रज में गुरुजन के वचन कौन रमणी नहीं पालन करती? सो आपका आदेश हम अवश्य पालन करेंगी। उस देवता के अर्चन में सब कठिनाई सहने को हम तैयार हैं। देवता की पूजा में चाहे हमारे शरीर कृश से भी कृश हो जायँ, तो भी वह पूजन हम अवश्य करेंगी।'

यह सुन बुढ़िया बोली : 'तब घर में रहकर क्यों देर कर रही हो?'

गोपी बोली : 'अभी से हम पूजा करने को तैयार हैं।'

वधूवृन्द गुरुजनों का आदेश पाकर वसन-भूषणों से सुसज्जित हो बहुत-सी सखियों को सङ्ग लेकर अपने भवन से फूल चुनने प्रतिदिन वृन्दावन में जाने लगीं। फूल चुनते समय हृदय में नन्दनन्दन के दर्शन की अभिलाषा धारण कर सब व्याकुल होने लगीं। अत्यधिक उत्कण्ठा से वे रथ से भी तेज चलने लगीं।

यह तो विवाहिताओं (प्रौढ़ाओं) की बात हुई। उधर कुमारिकाओं को देखकर उनके गुरुजन प्रश्न करने लगे : 'अरि कन्याओ! अपने मङ्गल के लिए तुमने जो देवी-पूजन किया था, उसका फल क्या मिला, यह तो हमें पता ही न चला?'

प्रश्न सुनकर उनमें से एक धात्री-कुमारिका तरङ्गवती उत्तर देने लगी :

'गृहेश्वरि ! विना आपके प्रश्न किये हम पूजन के फल का क्या वतातीं ? आज आपने पूछा, सो हम भी उसका उत्तर देना चाहती हैं, यदि इस पर आपका अनुमोदन हो !'

उनके अनुमोदन की अपेक्षा भी न कर तरङ्गवती उत्सुकतावश आगे कहने लगी : 'व्रत-पूर्ति के दिवस में भगवती योगमाया ने प्रकट हो हमें यह आशीर्वाद दिया कि 'थोड़े ही दिनों में तुम लोगों को महासौभाग्य का अनुभव होगा। महाप्रभावशाली, लीलाविलासी उत्तम पति प्राप्त करोगी, जिसके सङ्ग से रमा देवी से भी श्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त होगा। किन्तु इस व्रत का अन्तिम अनुष्ठान रह गया है, उसे भी तुम लोग पूर्ण कर लो।' हम लोगों के यह पूछने पर कि 'माताजी, वह कौन-सा अनुष्ठान है ?' तो देवी ने कहा : 'मेरे स्वरूप से अभिन्न वृन्दा नाम की इस वन की पालिका देवी हैं। उनके साथ तुम लोगों को प्रतिदिन वन में अनुगमन करना चाहिए। यह वन सिद्धस्वरूप है (साधन-क्षेत्र नहीं है)। यहाँ जाने से सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। हो सके तो आज से ही तुम लोग दिन-रात वृन्दावन के वीच रह सको, ऐसा उपाय करो।' माताजी, आपके विना पूछे हम यह वात आपसे कैसे कहती या कर सकतीं ?'

कुमारी कन्याओं से देवीजी का यह आदेश सुनकर उनकी माताएँ प्रसन्न हुईं और सभीने अपनी-अपनी कुमारियों को उसी समय वन जाने की अनुमति दे दी। इस प्रकार धन्यादि कुमारिकाएँ भी वृन्दावन जाने लगीं। अव तो कुमारिकाएँ और प्रौढ़ाएँ (ब्याही) विना किसी वाधा के वृन्दावन में आने लगीं।

अव शीत ऋतु ने विदाई ले ली। रसमय वसन्त का आविर्भाव होने लगा। शीत-ऋतुरूप हाथी को वुढ़ापा आ गया। गलित कुसुम (दाँतों की तरह) झड़ने लगे। वसन्त-ऋतुरूप सिंह-शावक के केसर-से दाँत उगने लगे। शीत ऋतु जाने के वाद काल-पुरुष अपनी दक्षिण नासा से साँस लेने लगा (दक्षिण मलय पवन चलने लगी)। लताओं के गर्भ में कलियाँ भर गयीं। कोयल (आम के पेड़ पर वैठ) अपना कण्ठ साफ करने लगी अर्थात् कूक करने लगी। मलय पर्वत से पवन ने प्रस्थान तो किया (विदा तो ले ली), पर उसका अभी वहना शुरू नहीं हुआ। केवल शीत ऋतु के जाने की अपेक्षा कर रहा है। कुछ ही दिनों वाद कलियाँरूप सन्तान जिन लताओं के होंगी, उनके पास भृङ्ग-वृन्द सुहृदय की तरह आकर, गुञ्जन कर लताओं की खोज-खबर ले रहे हैं (कि कितनी देर में प्रसव होगा ?)।

आम्र के वृक्ष पर बैठकर भृङ्ग नवीन मौर का अनुसन्धान कर रहे हैं। कोयल उनके पास प्रतीक्षा में बैठी है। पवन मौर की सुगन्धि प्रकट कर आश्वासन दे रही है कि अब देर नहीं। तब आनन्द से कोयल एक बार 'कुहू'[1] कहकर भीत होकर फिर देर में 'कुहू' कहती है। इस तरह धीरे-धीरे फूलों का सौरभ प्रकट कर ऋतुराज वसन्त ने जब शीत ऋतु का मर्म स्थल तोड़ दिया (प्रभाव न रहा), तब वृन्दावन नवीन माधुर्य से अभिषिक्त (उल्लसित) हो उठा। लताओं का नव-जीवन पक्षी अपने मधुर कूजन की उत्कण्ठा से प्रकट करने लगे। चारों ओर फूल खिले, मानो दिशाएँ हँस रही हों। चन्द्र की चन्द्रिका से वसन्त की रजनी चन्दन-चर्चित हो चली। मलय पवन के स्पर्श से वन अङ्कुरित-सा हो रहा था! चारों ओर सुगन्ध से भृङ्गों ने अपनी गोष्ठी वना ली। माधवी लता जग उठी। वृन्दावन का नवीन माधुर्य प्रकट होने लगा।

यद्यपि वृन्दावन में छहों ऋतुओं का प्रकाश वर्णित है, तथापि लीला के अनुसार[2] ऋतुविशेष का आगमन और अन्तर्धान होता है। ऐसी स्थिति में व्रजराज-नन्दन पूर्वानुरागवती व्रजसुन्दरियों को आनन्द देने के लिए ऋतुराज वसन्तोचित उत्सव का विचार करने लगे।

व्रजराज-नन्दन के सङ्कल्प को जान वनदेवी वृन्दा अपनी दासियों के साथ वन का संस्कार करने लगीं। वृन्दावन के फूलों की सुगन्ध से सुरभित होने पर भी वृन्दादेवी अपनी कला-विद्या प्रकट कर वहाँ समस्त अप्राकृत जगत् का सौन्दर्य इकट्ठा करने लगीं।

वन का संस्कार इस प्रकार होने लगा। गाय अपनी पुच्छ से वन का मार्जन करने लगी। मृग-नाभि हिरण वन में आकर सुगन्ध फैलाने लगे। फूलों की मधु-धार वन में छिड़काव करने लगी। पेड़ पर जितने पक्षी और भृङ्ग थे, वे गान करने लगे। लताएँ नृत्य करने लगीं। इस प्रकार ऋतुराज के पहले दिन श्यामसुन्दर ने अपने अङ्ग की श्याम लता से चारों ओर वृन्दावन को श्याम रङ्ग चढ़ा अपने अङ्ग-माधुर्य की धारा वहा दी (वसन्त नहीं, मानो वर्षा ऋतु है)। ऐसा अपना नवीन माधुर्य प्रकट कर नन्दनन्दन मूर्तिमान् वसन्त-उत्सव करने के लिए वन में पधारने लगे।

---

१. यह श्लिष्ट पद है, जिसका दूसरा अर्थ अमावस्या है। शुक्ल पक्ष में मौर आये हैं, सो उन्हें यह ध्यान आया कि हम कुहू यानी 'अमावस्या' क्यों पुकारती हैं, इसलिए वे देर से 'कुहू-कुहू' करने लगीं।

२. काल के अनुसार नहीं।

जब इसका पता चला कि नन्दनन्दन वसन्त-उत्सव प्रकट करनेवाले हैं, तो स्वाभाविक अनुरागवती चन्द्रावली अपनी सखियों के साथ, श्री राधा अपने परिजन के सहित और श्यामलाजी अपनी सहचरियों के साथ मूर्तिमान् वसन्त-उत्सव देखने वृन्दावन में पधारीं। वृन्दादेवी ने प्रीति और आदरसहित अपनी दासियों को साथ लेकर उन सबका सम्मान किया और उत्तम आसन पर विठलाकर वसन्तोचित मङ्गल वेष से सुसज्जित करा दिया।

उधर व्रत-पूर्ति के दिन नन्दनन्दन से प्राप्त आश्वासन से अन्तर की उत्कण्ठा वढ़कर कुमारियाँ क्षण को हजार वर्ष की तरह अनुभव करने लगीं। वे भी वन में उत्सव-दर्शन करने चल पड़ीं। जब वे अपने भवन से वन जाने लगीं तो उनकी शोभा ऐसी दीखती, मानो स्वर्णलता की श्रेणी जङ्गम हो गयी हो। वनदेवी वृन्दा ने प्रणय के साथ उनको भी औरों की तरह वसन्त के योग्य वसन-भूषण धारण कराये। आज उनके श्रृङ्गार में अधिक विशेषता रही। केशों में नागकेसर के फूल अलङ्कृत थे। मौलश्री ललाट की अलकावली में धारण किये गये थे। मस्तक में सिन्दूर की जगह अशोक फूल लगे थे, तो श्रवण में आम्र का मौर। गले में वासन्ती फूल की माला लटक रही थी। श्री वृन्दादेवी ने स्वयं श्री वृषभानुनन्दिनी को सुसज्जित किया और उनकी दासियों को भी समुचित वेष धारण करवाया।

उधर कल्पवृक्ष अपने प्रभाव से रत्नमय अलङ्कार, जरी की साड़ियाँ, ओढ़नी, ताम्बूल, अनुलेपन, फूलों की मालाएँ देने लगे। कुङ्कुम तथा मृगमद, पुष्प, धनुष, वाण, फूलों का गेंद, रत्नमय पिचकारी आदि भी वे देने लगे।

सङ्गीत-शास्त्र की आचार्याणी मातङ्गी देवी नाना वीणा-प्रवीणा अपनी सखियों के साथ 'सा रे ग म प ध नी' रूप सप्त स्वरों तथा मूर्तिमान् वसन्त राग को स्त्री-वेष से भूषित कराकर श्रुतियों (गान) को भी सङ्ग ले वहाँ आविर्भूत हुईं। मातङ्गी देवी जव श्री वृषभानुनन्दिनीजी के पास विनीत भाव प्रकट करती सामने आयीं तो वृन्दादेवी राधाजी को उनका परिचय देने लगीं: 'गुणमयी राधे! इनका नाम 'मातङ्गी देवी' है। ये सङ्गीत-शास्त्र की प्रथम आचार्या हैं। आज अपनी मण्डली के साथ आपको आनन्द देने यहाँ आयी हैं। (श्रुतियों को दिखाकर) ये इनकी सखियाँ हैं और ये (जिनके मस्तक पर मोर-पिच्छ है) वसन्त राग हैं, जिनका मेघ का-सा श्याम वर्ण है और उन्मत्त स्वभाव है। इन्हें अङ्ग में पीत वर्ण की साड़ी पहनाकर (स्त्री बनाकर) लायी हैं।'

वसन्त राग का अपने प्रियतम का-सा वर्ण-माधुर्य देख प्रियाजी ने जब अपनी कृपा-दृष्टि उन पर डाली तो नारी-वेषधारी वसन्त राग अपना जन्म धन्य मानने लगा।

मातङ्गी देवी कहने लगीं: 'अयि कृष्णकान्ते! आपके चरणों के सेवा-निमित्त हम सब आज आयी हैं। यह ७ स्वर की मूर्ति और २२ श्रुतियाँ हैं, जिन्हें किन्नरियाँ भी अपने कण्ठ से आलाप नहीं कर सकतीं।' (केवल वीणा ही कर सकती है।)

यह सुनकर श्री ललिताजी प्रियाजी को आनन्द देने के लिए बोल उठीं: 'सङ्गीत-देवि! किन्नरियाँ अपने कण्ठ में श्रुतियों का विभाग क्यों नहीं कर सकतीं?'

मातङ्गी देवी ने कहा: 'वात, पित्त और कफ से कण्ठ दूषित होने से उससे श्रुतियों का विभाग नहीं हो सकता (वीणा में ही हो सकता है)।

ब्रह्मा ने चल-अचल दो प्रकार की वीणाएँ बनायी हैं। उनमें से चल वीणा से २२ श्रुतियाँ और अचल वीणा से ७ स्वर प्रकट होते हैं। आपके सामने अधिक क्या कहूँ? सन्देह हो तो परीक्षा कर देखें। षड्ज (स) स्वर की ४ श्रुतियों को अभी मैं चल वीणा में प्रकट कर दिखाती हूँ।'

तब मूर्तिमान् षड्ज स्वर को बुलाकर राग आलाप करने का जब सङ्गीत-देवी ने आदेश दिया, तो वे श्रुतियों का विभाग कर नहीं दिखा सके। फिर चल वीणा पर सङ्गीत-विद्या ने षड्ज का आलाप कर क्रमशः ४ श्रुतियाँ अच्छी तरह से प्रकट कर दिखायीं।

इस तरह सङ्गीत-देवी ने अपनी विद्या से सबको विस्मित कर दिया।

तब श्री राधाजी की एक सखी ने परिहास करते हुए कहा: 'अयि सङ्गीत-देवी! आपका यह बहुत कौशल है कि आपने एक स्वर की चार श्रुतियाँ वीणा के तारों पर बजाकर दिखायीं, एक भी श्रुति ने न तो निषाद (नी) और न ऋषभ (री) को स्पर्श किया। जो स्वर को जानते हैं, उनके लिए यह सम्पत्ति दुर्लभ है। किन्तु मेरी सखी श्री वृषभानुनन्दिनीजी की नवीना ललिता सखी अपने कण्ठ से श्रुतियों का विभाग कर सकती हैं। यदि आप सुनना चाहें तो अभी वे सुना सकती हैं। कौन-से स्वर की कौन श्रुति है, यह आपसे वर्णन करने की तो आवश्यकता ही नहीं है और न यह कि हरएक श्रुति की अनेक प्रतिश्रुतियाँ (प्रतिध्वनियाँ) भी होती हैं।'

वृन्दादेवी सङ्गीत-विद्या का मान रखने को कहने लगीं: 'अयि सङ्गीत-विद्ये! आप जिस विद्या की बात कहती हैं, वे ब्रह्माजी के ४ मुखों से निकली

हैं और जिन्हें यह सखी कहती हैं, वे ब्रह्मा के प्रपञ्च से बाहर हैं। सो दोनों की ही बातें ठीक हैं।'

मातङ्गी देवी में विषमता का भाव देख करुणामयी श्री राधाजी दुःख अनुभव कर कहने लगीं : 'सङ्गीत-विद्ये ! तुम्हारी बात यथार्थ है। जब देवता भी अपने कण्ठ में श्रुति-भेद नहीं दिखा सकते तो मनुष्यों की कौन कहे ?'

अपनी सखी का तिरस्कार कर वे कहने लगीं : 'अयि मिथ्यावादिनि ! चुप रह ! जो कार्य लक्ष्मी नहीं कर सकतीं, ललिता कैसे कर सकती है ?'

पुनः मातङ्गी से कहने लगीं : 'अयि प्रिय सङ्गीत-विद्ये ! आपकी विद्या से हमें और वृन्दाजी को बहुत ही सन्तोष हुआ।'

वृन्दादेवी कहने लगीं : 'जब तक श्री नन्दनन्दन अपना नव माधुर्य प्रकट कर वसन्त राग गाते हुए उसे मूर्तिमान् (प्रकट) नहीं करते, तब तक मातङ्गीजी ! आप वसन्त न गायें।'

वृन्दाजी के वचन सुनकर सङ्गीत-विद्या अनुराग के साथ बिलावल राग अलापने लगीं। उनके सङ्ग उनकी सहचरियाँ भी गाती थीं। एक साथ पाँचों वीणाओं (विपञ्ची, महती, लासिका, काच्छपिका, मण्डिलिका) पर आप ही आप श्रुतियाँ प्रकट होने लगीं। (पाँचों वीणाएँ ऐसी बजीं कि मालूम होता था, केवल एक ही वीणा बज रही है।) सङ्गीत-रस का पान कर सभी आनन्द-समुद्र में डूब गये।

इस तरह जब सभी गान में मग्न हो गये तो देवलोक को चमत्कृत करनेवाले श्रीकृष्णजी के गान की ध्वनि सुनाई देने लगी। उस गान में वीणा, वेणु, मृदङ्ग, वंशी, झाँझ भी एक स्वर से बजते थे। जब तक उन यन्त्रों को न देखें, तब तक यही लगता, मानो एक ही बाजा बज रहा हो।

अपने कानों में यक्ष-कर्दम*-सा आनन्द देनेवाले शब्द सुनकर व्रजगोपियाँ राग, लय, ताल आदि से भरे मातङ्गी देवी के सङ्गीत-रस को त्याग हिरणी-सी कान खड़े कर और नयन विस्तृत कर चारों ओर देखने लगीं कि कहाँ से यह शब्द आ रहा है ?

उस समय स्त्रीवेषधारी मूर्तिमान् वसन्त राग स्वयं ही ध्वनित हो उठा (प्रतिध्वनि होने लगी)। मातङ्गी देवी विस्मित हो गयीं। वसन्त राग सुनते ही नन्दनन्दन के आगमन का अनुमान कर सखियाँ कहने लगीं : 'अयि वृषभानु-नन्दिनि ! नन्दनन्दन के आगमन के बिना नयन और कानों को कभी

* एक ओषधि, जो अङ्ग में लगाने पर सब अङ्गों का ताप दूर कर देती है। उस ओषधि में कुङ्कुम, कस्तूरी, अगर, चन्दन होते हैं।

इतना आनन्द नहीं मिल सकता। देखिये, तुम्हारे प्राणवल्लभ ऋतुराज के आगमन से गुरुतम आनन्दित हो तदुचित वेष-भूषा धारण कर, सखारूप नक्षत्रों के वीच चन्द्र की तरह मधुमत्त मदनसहित वसन्त-उत्सव खेलने के लिए विविध सामग्री सहित आ रहे हैं। आपकी उस सौभाग्य-सम्पत्ति (नन्दनन्दन) की महिमा का माधुर्य हम क्या वर्णन करें ? तथापि देखिये, आज उनके केशों में एक ही मोर-पिच्छ है। मलय पवन उसे धीरे-धीरे हिला रहा है। उसके पीछे नागकेसर का गुच्छा है, जिस पर भृङ्ग गुञ्जार रहे हैं। मस्तक पर सफेद सूक्ष्म पाग लटक रही है। उस पर गुलाल लगा है। पाग शिथिल हो रही है। नील मणि के कुण्डल श्रवण-युगल में विराजित हैं, जिनके नृत्य करने से कानों के छेद वढ़ गये हैं। सो उनमें आम का मौर धारण किये हैं। स्वच्छ कुण्डलों में उनका प्रतिविम्व पड़ रहा है। कन्धे पर केशपाश अच्छी तरह मालाओं से वँधे हैं। पीत वर्ण का जामा अङ्ग पर धारण किये हैं, कटि-तट जरी की डोरी से वँधा है, वहीं गुलाल रखने की एक थैली भी है। कटि-तट में किङ्किणी, वाम कर में वेणु, चरण में नूपुर और दक्षिण कर में सिन्दूर का गेंद लिये हैं। उसे थोड़ा ऊँचा उछाल लपककर पकड़ते आ रहे हैं।

वे कभी वसन्त राग अलापने लगते हैं। सुवल आदि प्रिय सखा उनका सम्मान करते तो मस्तक हिलाकर उनको शावाशी देते हैं। उनके नयन-युगल अनुराग-रस से घूम रहे हैं। वाम और दक्षिण ओर दोनों प्रिय सखा सोने की डिवियाओं में ताम्बूल के वीड़े लेकर खड़े हैं। श्यामसुन्दर गान की ताल के साथ कभी दक्षिण, तो कभी वायीं ओर मुँह फेर ताम्बूल लेते हैं। सखा लोग फूलों के पराग और अवीर हाथ में ले जव ऊँचा फेंकते हैं तो हलका होने से वह आकाश में उड़ जाता और वह चूर्ण नन्दनन्दन के मस्तक, तिलक, कुन्तल को स्पर्श नहीं कर पाता।* सखा लोग द्विपदिका 'चर्चरी' वसन्त राग गाते-गाते आपस में फूलों की गेंद उछालने लगते हैं। इस प्रकार आज तुम्हारे प्राणवल्लभ सखाओं के साथ नृत्य और विहार कर रहे हैं।

सखि ! नन्दनन्दन का परम मनोहर उत्सव देख वन-लताओं के हृदय में अनेक भाव उदित होने लगे हैं। देखो, यह लता मलय पवनरूप गुरु के उपदेश से अपने पत्तेरूप अग्रहस्तों (कर) को अभिनयपूर्वक दिखाती हृदय का भाव प्रकट कर रही है। लताओं का नृत्य देख भ्रमर गान करने लगे हैं। नन्दनन्दन के पास आने से भीत हो लता अपने पत्तेरूप कर

---

* पवन की सेवा।

हिला रही है। फूल विकासरूपी हास्य से भ्रमरों की घटाओं पर कटाक्ष-पात कर रिस दिखा रहे हैं। सखि! तुम्हारे प्राणवल्लभ को देख यह लता अपने पत्तेरूप कर को हिला यह कह रही है कि नहीं-नहीं! यहाँ नहीं, वहाँ जाओ!' दूसरी लता अपने पत्तेरूप करों से अपनी सखी को बुला रही है: 'सखि! जहाँ अचेतन की यह दशा है, वहाँ सचेतन कैसे धीरज धर सकते हैं?'

मन्द मधुर मुस्कान के साथ भानुनन्दिनी के हृदयगत भाव को जान श्यामलाजी वृन्दादेवी से कहने लगीं: 'तुम तो लीला की पुष्टि अच्छी तरह करो। हम लोगों की चञ्चलता से तुम्हें क्या मतलब? हमारे हृदयों में तो यह कौतूहल है। पर उत्तम वंश में जन्म होने और उत्तम कुल-जाति के कारण हमारी प्रिय सखी के हृदय का लज्जारूपी द्वार इतना कठोर है कि उत्कण्ठा-रूपी कुठारी उसे तोड़ नहीं सकती। इसीसे हमारी प्रिय सखी अपना हित समझ-कर भी वाञ्छित पदार्थ की प्राप्ति के लिए हृदय में अति वेदना अनुभव करती हुई भी उसे छिपाये रखती हैं। इसलिए आज वसन्त-उत्सव के दिन अच्छी तरह अपने-अपने हृदय में धीरज धारण कर जो कुछ करना हो, करो। फिर भी शिष्टाचार के क्रम से प्राप्त अनङ्गदेव के पूजन की अभिलाष हृदय से नहीं हटती। कन्दर्प देवता के अर्चन के लिए फूल लाते समय अनायास सखाओंसहित नन्दनन्दन का वसन्त-उत्सव देखने की अभिलाषा बनी है।'

श्यामलाजी के रसमय वचन सुन वृन्दादेवी वृन्दावनेश्वरी श्री राधाजी से कहने लगीं: 'ये तो आप लोगों के नाम, रूप, आकार और स्वभाव के अनुरूप वचन हैं, तथापि मेरी तो यही इच्छा है कि मातङ्गी देवी के साथ चन्द्रावली आम्रवन में पधारकर अपना महोत्सव प्रकट करें। उस उत्सव में आगे-आगे चन्द्रावलीजी की प्रिय सखी चारुचन्द्रा होरी-गान गायें। सखी का इस उत्सव का दर्शन कर हम नयनों को सफल बनाया चाहती हैं। वहाँ वसन्त राग के स्वर और श्रुतियों की मूर्ति प्रकट करनी चाहिए। यह काम तो सङ्गीत-विद्या का है।'

वृन्दादेवी के ये वचन सुन चारुचन्द्रा के साथ चन्द्रावली नाना प्रकार की वीणा ले सङ्गीत-विद्या श्रुति आदि सहित सुखद वसन्त आदर से गाती हुई आम्रवन में चली गयी।

उस समय कल्पवृक्ष से अबीर, फूलों का पराग, जलयन्त्र, अगर, कस्तूरी, कर्पूर, गुलाबजल आदि महोत्सव की सामग्रियाँ प्रकट होने लगीं। वसन्त राग के ताल के साथ नृत्य करती-करती व्रज-युवतियाँ जब वन की ओर चलने लगीं तो

स्वर्ग की अप्सराओं के भी सौन्दर्य और नृत्य-गीत-माधुर्य का तिरस्कार करने लगीं। वहाँ पधारकर उन लोगों ने वसन्त-उत्सव प्रारम्भ कर दिया। तब श्री राधाजी ने वृन्दादेवी की चातुरी समझकर अपनी प्रिय सखी के साथ निर्भय होकर फूल चुनने के लिए कुसुम-कानन में प्रवेश किया।

उधर नन्दनन्दन भी अपने सखाओं को साथ लेकर नाचते, गाते, बजाते इधर ही आने लगे। व्रजयुवराज की मण्डली के आगे विदूषक (मधुमङ्गल) अपने कण्ठ में मनोहर हार धारण कर कौतुक के साथ हँसता, चारों ओर दृष्टि डाल दूर ही से महोत्सव में प्रवृत्त चारुचन्द्रा, चन्द्रावली का मधुर सङ्गीत और आभूषणों की ध्वनि के साथ करताली, मृदङ्ग, वीणा, पखावज, विलासिका आदि की ध्वनि तथा चरणों की मणिमय मञ्जीरों का मधुर शब्द सुन अङ्गों को पुलकित करता सोत्कण्ठ प्रिय सखा श्रीकृष्ण से कहने लगा : 'प्रिय वयस्य ! यह दूसरा उत्सव शब्द क्या हमारे ही शब्द की प्रतिध्वनि है या और किसीके महोत्सव की ध्वनि ?'

मधुमङ्गल की बात सुनकर नन्दनन्दन बोले : 'सखे ! तुम वहाँ जाकर खबर लाओ कि क्या हो रहा है ?'

प्रिय सखा का प्रोत्साहन पा मधुमङ्गल शीघ्र उत्साह के साथ आम्र-वन में पहुँचा। वहाँ उसने एक ओर लक्ष्मीजी को भी विजित कर लेनेवाली रमणियों की सभा और दूसरी तरफ जवाकुसुम-से अरुण कर-चरणवाली माधवी लता की शाखा धारण किये फूल चुन रही श्री वृषभानुनन्दिनीजी के दर्शन किये। उनको देख ऐसा मालूम होने लगा कि साक्षात् वसन्त-लक्ष्मी ही आज इस रूप में जगत् में अवतीर्ण हुई हो। श्री वृषभानुनन्दिनी के आगे श्री ललिताजी और श्यामलाजी हैं, तो उधर चारुचन्द्रा और चन्द्रावली !

यह देख मधुमङ्गल ललिताजी के आगे आकर बोले : 'अयि साहसिके ललिते ! यह क्या कर रही हो ? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आज हमारे प्रिय सखा नवीन वसन्तोत्सव में प्रवृत्त हैं, इसलिए यहाँ का एक भी फूल किसीको नहीं चुनना चाहिए। यह वन हमारे सखा को अतिप्रिय है और तुम लोग तो यहाँ के फूल-पत्ते तोड़ वन की शोभा ही बिगाड़ रही हो। तुम्हारा यह आचरण देख तुम्हारे गर्वीले-हठीले हृदय का ही परिचय मिलता है। क्या तुम हमारे सखा का प्रभाव नहीं जानतीं ? अभी उनसे कहकर तुम लोगों का सारा गर्व चूर-चूर करा देते हैं।'

इतना कहकर मधुमङ्गल श्रीकृष्ण के पास आये और बोले : 'सखा !

आज तुम्हारा उत्सव व्यर्थ है, क्योंकि वसन्त-लक्ष्मी अपनी विभूतियों के साथ यहाँ से थोड़ी ही दूर पर वसन्तोत्सव मना रही हैं। उनके उत्सव की वाद्य-सम्पत्ति (सङ्गीत) की तुलना इस जगत् में कहीं भी नहीं है। ऐसा गान हमने भी कभी नहीं सुना। वहाँ जितनी लीला-सामग्री देखी, ब्रह्मा की सृष्टि के बीच अन्यत्र कहीं सुलभ नहीं है। उस उत्सव को देख तुम्हारा उत्सव फीका लग रहा है।'

मधुमङ्गल की बात सुन दूसरा सखा कहने लगा : 'कुसुमासव ! दूसरे की इतनी प्रशंसा मत करो। हमारे सखा का उत्सव हमारे लिए सब कुछ है। तुम्हारी बात सुनकर मालूम होता है कि तुमने बहुत मधुपान किया है, सो उन्मत्त हो गये हो।'

मधुममङ्गल बोले : 'हमारा नाम 'कुसुमासव' है। हम स्वयं तो उन्मत्त नहीं होते, दूसरे को उन्मत्त करते हैं। फिर भी हम फूलों की मधु भी नहीं हैं, जो हमें पीकर तुम लोग उन्मत्त हो जाओ। हमारे केवल एक शब्द 'तू' उच्चारण करने से ही पागल हो जाओगे।'

तब श्रीकृष्ण बोले : 'सखा ! धन्य हो, धन्य हो ! पुनः तुम उसी महोत्सव-स्थान पर पधारो। हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहे हैं।'

मधुमङ्गल नन्दनन्दन के सरस वचन सुन पुनः कुसुम-कानन में आये और श्री वृषभानुनन्दिनी के आगे गर्व दिखाते हुए बोले : 'अयि दुर्ललिते ललिते ! हमारे प्रिय सखा कमल-नयन के आदेश से तुम लोग यहाँ से चली जाओ। यहाँ का एक भी फूल न तोड़ो। अगर तोड़ोगी तो उसका फल पाओगी।'

ललिताजी बोलीं : 'अये कपटी ! आज तुम्हारा बहुत साहस देख रही हूँ। ऐसे निन्दनीय वचन कहकर क्यों अपनी सुजनता बिगाड़ रहे हो ? व्रज की यह प्राचीन रीति है कि वसन्त-पञ्चमी के दिन व्रज-गोपियाँ वसन्त राग गाती यमुना के तट पर रक्त अशोक वृक्ष के नीचे मदनदेव का अर्चन करती हैं। उसीके लिए हम अपनी प्रिय सखी राधिकाजी के साथ यहाँ फूल तोड़ रही हैं। तुम क्यों उन्मत्त हो प्रलाप कर रहे हो ?'

मधुमङ्गल बोले : 'अरी ! हमारे सखा के सिवा और कौन मदन है ? जहाँ मदनदेव साक्षात् विराजित हैं, वहाँ अदृश्यरूप मदन का पूजन उचित नहीं। तुम लोग जो परोक्ष मदन को पूजती हो, सो बावली हो। भलीभाँति हमारी बात सुनो, हम तुम्हारी पूजा के पुरोहित बनेंगे। स्वस्ति-वाचन से लेकर सब कुछ हम ही करा देंगे। आओ, मेरे साथ चली आओ ! आगे ही मदनदेव विराजित हैं।'

श्री राधाजी हँसकर बोलीं : 'यह ब्राह्मण तो पूजा के पात्र हैं। इसलिए हमारा नाम लेकर चारुचन्द्रा और चन्द्रावली से कहो कि इस पुरोहित का अच्छी तरह पूजन कर दें।'

ललिताजी ने ज्यों ही जाकर यह कहा, त्यों ही उत्सव के आनन्द में अन्ध चारुचन्द्रा और चद्रावली ने मधुमङ्गल को पकड़कर नाना वर्ण के गुलाल, चन्दन, गुलावजल, अगर, कस्तूरी, कुमकुम-पराग से अच्छा-सा भूत ही बना डाला।

मधुमङ्गल जोर-जोर से पुकारने लगे : 'सखे ! इन ब्रजगोपियों ने वसन्त-उत्सव से वावली होकर हमें अन्धा वना दिया और रङ्ग से भिगो-भिगोकर जड़ वना दिया। हम यहाँ से भाग भी नहीं सकते। अव तुम ही रक्षा करो। देखो, उत्सव के दिन ब्रह्म-हत्या न होने पाये।'

दूर से मधुमङ्गल की आवाज सुन श्रीकृष्ण समझ गये कि आज उनकी वुद्धि वहाँ न चली। नन्दनन्दन छैला सखाओं के साथ 'होरी-होरी' करते-करते उधर चलने लगे।

ब्रज-देवियाँ दूर से ही आदर और लज्जा के साथ अपने प्रियतम के माधुर्य का दर्शन करने लगीं। नन्दनन्दन मधुमङ्गल की यह अवस्था देखकर कुटिलता से वाहरी असन्तोष दिखाते और वनावटी रिस प्रकट करते कहने लगे : 'क्योंकर हमारे निर्दोष सखा को आज इतना दण्ड दे रही हैं ? ध्यान रखो, इस अपराध का खारा दण्ड भी तुम लोगों को भुगतना पड़ेगा।'

इतना कह सखाओं की ओर देखते हुए नन्दनन्दन उनके हाथों में फूलों की गेंद और कुङ्कुम देने लगे। सभी एक साथ दोनों हाथों से गोपियों के वक्षःस्थल पर खींच-खींच उसे मारने लगे। सभी ब्रजगोपियों के अङ्गों पर गेंदों और कुङ्कुमों की वर्षा होने लगी। उनकी यह लीला देख आकाश में से देवियाँ 'धन्य-धन्य' कहने लगीं।

इस प्रकार दोनों पक्षों के अनीतिपूर्ण संग्राम के अन्त में आपस में होली-विहार होने लगा। सखा और सखी फूलों के पराग, अवीर और पुष्प के गेंद एक-दूसरे पर फेंकने लगे। उसके वाद वारुणास्त्ररूप जलयन्त्र से सुगन्धित रङ्ग की वर्षा होने लगी। आकाश में देवियाँ हाथ जोड़ दोनों पक्षों की स्तुति कर धन्य-धन्य कहती थीं। धीरे-धीरे जव चारों ओर अरुण-रज से अँधेरा छा गया, तो नन्दनन्दन अकेले ही सखी-सेना में घुस गये। अरुण-रज हलकी होने से आकाश में उड़ती और नभोमण्डल आच्छादित हो जाता। उस समय कौन सखा और कौन सखी कहाँ है, यह भी न मालूम पड़ता। सखियों के वीच

श्रीकृष्ण की वेणु अपने-आप वजने लगी। उस समय कृष्ण का वह वेणु-नाद अनङ्ग की लड़ाई की भेरी (नगाड़ा) लग रही थी। प्रत्येक सखी के नयन-कटाक्षरूप वाण एक ही साथ प्रियतम पर वर्षा करने लगे।

इस लीला सङ्ग्राम में नन्दनन्दन ने अपना परस्वापन* वाण भ्रू-धनुष पर चढ़ा ज्यों ही व्रजगोपियों पर छोड़ा, त्यों ही विवश हो सभी गोपियों ने अपने-अपने नेत्र मूँद लिये। उन्हें आलस्य से जँभाइयाँ आने लगीं और शीघ्र ही सभी घोर निद्रा को प्राप्त हो गयीं।

अपनी सेना की यह अवस्था देखकर चन्द्रावली ने आगे बढ़कर नयन-कोण से नाराचिका-अस्त्र (क्षुद्र शर) मारा और मोहन को मोहित कर दिया। थोड़ी ही देर में मोह-दशा को सँवारकर रङ्ग-रज के अँधेरे के वीच ही वीर श्यामसुन्दर ने सेना में घुस सखियों की ऐसी अवस्था कर दी, जैसे कमलिनियों के वन के वीच हाथी प्रवेश कर वन की अवस्था कर देता है।

जव गुलाल और परागों का धूम शान्त हो गया तो अनुराग का धूम प्रवल हो उठा। घोर सङ्ग्राम के वाद जैसी अवस्था रणाङ्गण की होती है, वैसी अवस्था आज वहाँ हो गयी। व्रज-गोपियों के मानरूप हस्ती के वध से सङ्ग्राम-क्षेत्र उस (मानरूप हस्ती) के रुधिर (रङ्ग) से भर गया। मणिमय जलयन्त्र उस समय मानो उसकी हड्डी हों।

व्रज-गोपियों की यह अवस्था देख मधुमङ्गल सुख-समुद्र में डूवने-उतराने लगे। ऊँचा हाथ उठाकर नाचते हुए, 'ही ही' कहते कृष्णजी के पास आकर 'धन्य-धन्य !' करने लगे। वोले : 'प्रिय वयस्य, अपनी इतनी आयु में हमने कभी ऐसा सुख अनुभव नहीं किया। जैसा इन लोगों ने कृष्णचन्द्र के सखा का अपमान किया था, वैसा ही फल पाया। कञ्चुकियाँ फट गयीं। गले में हार नहीं रहे। उत्सव की सारी सामग्री धराशायी हो रही है। मस्तक की अलकावली, ललाट, गण्डस्थल, नयन और वक्षःस्थल सभी कुछ लाल हो गया है। इसमें हमारा क्या दोष है ? अपने अपराध का फल भोग रही हैं। किन्तु सखे ! ये वड़ी चतुर हैं। चतुरानन की सृष्टि से परे इनकी चातुरी है। सो जव तक ये सखियाँ वृषभानुनन्दिनी की सखियों के साथ मिलकर तुम्हें पराजित करने का साहस नहीं करतीं, तव तक यहाँ से भाग चलो। शत्रु रिस से क्या नहीं कर सकता ?'

साथ के सखा हँसते हुए कहने लगे : 'अपनी मूर्खतावश मधुमङ्गल

* मोहन वाण, जो सवको सुला देता है।

कभी डरते हैं तो कभी रिस दिखाते हैं। श्यामसुन्दर ! इसलिए अब मधुमङ्गल को समझाकर उनका दुःख मिटा दो।'

कृष्णचन्द्र मधुमङ्गल से बोले : 'सखे ! जिनसे तुम्हें भय हो, मुझे दिखाओ, तुम्हारा सारा डर दूर किये देता हूँ। मेरे सङ्ग रहते तुम्हें डर किसका है ?'

अब मधुमङ्गल ने निर्भय हो कहा : 'सखे ! इत को आओ !' (जहा श्रीजी फूल तोड़ रही थीं) यह कहकर मधुमङ्गल श्रीकृष्ण को माधवी लता के आगे ले आया और अतीन्द्रियरूपा (प्राकृत इन्द्रिय जिनका रूप नहीं ग्रहण कर सकतीं) श्री राधिकाजी को दिखाया। उस रसमय समय में सखी के कुटिल कटाक्ष बाण से नन्दनन्दन विंध गये। तत्काल उन्होंने भी अपना कटाक्ष-बाण श्री राधिका को लक्ष्य कर छोड़ा। वह बाण उनके वक्षःस्थल में लग लज्जारूप कवच को थोड़ा-सा ही भेदकर गिर पड़ा।

अब वृषभानुनन्दिनी ने तीक्ष्ण कज्जलरूप कालकूट विष से बुझाये कटाक्षरूप अपने बाण पर मुस्कानरूप धार चढ़ा हरि के हृदय को लक्ष्य कर छोड़ा और उसे विदीर्ण कर दिया।

बाण के आघात से कृष्णचन्द्र को विवशभाव प्राप्त होता देख मधुमङ्गल उत्साह के साथ बोले : 'सखे ! तुम्हारा श्रेष्ठ मन्त्री मैं तुम्हारे पास हूँ। ऐसी विषमता को मत प्राप्त होओ। हाथ में गेंद लेकर सखियों पर ऐसा प्रहार करो, जिससे वे भाग जायँ। हम जिसके मन्त्री हैं, उसकी कभी पराजय नहीं हो सकती।'

इसी बीच वृषभानुनन्दिनी ने अपने कर-कमलों से एक पुष्प-कन्दुक, जिसमें सिन्दूर का रङ्ग भरा था, लेकर अपने हृदयेश को लक्ष्य कर इस चतुराई से छोड़ा कि किसी सखा और सखी तक ने न जान पाया। गेंद के आघात से केसरीकिशोर जब सावधान हुए और अपने कर-कमल में गेंद ले जब प्रियाजी के पीछे जाने लगे तो ललिताजी बोलीं : 'नागरेन्द्र ! न जाने किस रसिकिनी ने अपने हृदय के रक्त अनुरागरूप सिन्दूर से तुम्हारे हृदय पर प्रहार किया है। फिर क्यों हमारी सखी के पीछे दौड़ते हो ?'

प्रियाजी ने अपने नयन के सङ्केत से सखियों के बीच में छिपी श्यामला-जी को दिखा दिया। होली के दिन छिपना भी दोष है। अपनी प्रियतमा के उस इङ्गित को समझकर प्रभु ने पीछे से जाकर श्यामलाजी के अङ्ग गुलाल और रङ्ग से लीप दिये।

वह अन्याय देख उनकी सखी बकुलमाला रिसकर कहने लगीं : 'तुम्हारी रसिकता देख हमारा हृदय जल जाता है। जिसने गेंद फेंकी, उसके अधर में

हास्य-सुधा विराजित है। उसे छोड़ जिसका कुछ भी दोष नहीं, ऐसी मेरी सखी को तुम्हारा ऐसा दुःख देना ठीक नहीं।'

बकुलमाला के वचन सुनकर श्यामसुन्दर श्री राधिका के आगे आकर कहने लगे : 'अयि गर्विणि! अपनी शक्ति दिखाओ। हमारे आगे गेंद फेंको।' इतना ही कहकर अपना भुज-युगल पसार जब प्रियतम आगे आने लगे तो प्रियाजी ने सखियों को पुकारकर कहा : 'आज अच्छी तरह प्रियतम को घेर लो।'

प्रियाजी के वचन सुन चारों ओर से सखियों ने प्रियतम को घेर लिया। व्रजवधुओं से रसराज बन्दी हो गये। तब सारी सखियाँ मिलकर फूलों की पराग और गेंद उन पर बरसाने लगीं। कोई सखी मणिमय जलयन्त्र से प्रियतम का अभिषेक करने लगी, कोई अङ्ग में कुमकुम, चन्दन और कस्तूरी का लेपन करने लगी। उस समय वसन्तोत्सव के आनन्द से सखियों के हृदय से लज्जा हट गयी। इसलिए जैसे मेघ को चन्द्रिका घेर लेती है, वैसे ही उन्होंने प्रियतम को घेर लिया।

इतने में ही सङ्गीत-विद्या अपनी मण्डली के साथ आकर वीणा बजा वसन्त राग गाने लगीं। उनके साथ भृङ्ग, कोकिल आदि भी गाने लगे, स्तव-पाठ करने लगे। पवनरूप गुरु का उपदेश पा लताएँ नृत्य करने लगीं। सखा भी नाना यन्त्र बजाने और वसन्त राग गाने लगे तथा आपस में ही फूलों का पराग एवं गेंद फेंकने लगे। सखाओं के साथ मधुमङ्गल हाथ उठा नाच-नाचकर कहने लगे : 'इसीलिए तो हम दैवज्ञ (ज्योतिषी) बने थे!'

जब व्रजयुवतियाँ अपने कर-कमल को उठा गेंद फेंकने लगीं, तो उनके किङ्किणी का मधुर शब्द सुन तथा अपनी प्रिया से पराजय प्राप्त कर श्रीकृष्ण अपना भाग्य सराहते प्रसन्नता दिखाने लगे। इसी बीच किसी सखी ने श्याम की वंशी हर ली, किसीने पिचकारी छीनी, किसीने पुष्प-बाण बढ़ा दिये, कोई प्रियतम के आभरण हटाने लगी, तो प्रियाजी ने मुसकान करते हुए उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

प्रियाजी प्रियतम के पास पहुँचीं और अपने वसन के आँचल से उनके अङ्ग से फूलों का पराग, गुलाल झाड़ धीरे-धीरे पसीना पोंछने लगीं। उस समय वे इस तरह अपने प्रियतम का माधुर्य पान कर रही थीं, मानो सङ्ग्राम में (जीतने के बाद) वीर पान कर रहा हो। उन्होंने अपनी सखी के हाथ से ताम्बूल लेकर प्रियतम के अधर में अर्पण किया और नयनों के सङ्केत से श्यामलाजी को पंखा झलने की सेवा में नियुक्त कर दिया।

उस समय पुष्पों के पराग से भूषित हो मधुमङ्गल उत्साह के साथ मेघ की गर्जना की तरह बोलने लगे : 'आज तो हमारी ही जय है (नहीं तो ये सखियाँ हमारे सखा की सेवा क्यों करतीं ?) । हमारे सखा के अनन्त प्रभाव और महिमा से स्वयं वृषभानुसुता उनकी दासी बन गयी हैं, इससे बढ़कर हमारे आनन्द की और क्या बात हो सकती है ? हम जिसे सम्मति देते हैं, उसकी कभी भी पराजय नहीं होती ।' वे अपने हाथ उठा-उठाकर नाचने लगे ।

मधुमङ्गल की प्रतिभा (नव-नव बुद्धि) देख दोनों पक्षों को आनन्द हुआ । वृषभानुनन्दिनी ने सन्तुष्ट हो अपने अङ्ग से हार उतारकर मधुमङ्गल को उपहार कर दिया ।

बहुत देर तक वसन्तोत्सव में विहार से प्रिया और प्रियतम के श्रम का अनुभव कर वृन्दादेवी दासियों सहित उनकी सेवा करने लगीं और सङ्गीत-विद्या भी श्री राधाजी के सखियों के गान की प्रशंसा करने लगीं ।

इस प्रकार जब वसन्त का उत्सव समाप्त हो गया, तो श्यामसुन्दर अपने गले में वनमाला पहन और हाथ में वेणु ले सखाओं के साथ वृक्षों की छाया में जा बैठे और उत्सव के बाद में भी आपस में उसी आनन्द का अनुभव करने लगे । उधर सखियों के साथ वृषभानुनन्दिनीजी अपने प्रियतम का लीला-माधुर्य वासन्ती-मण्डप में जाकर अनुभव करने लगीं और वहाँ मातङ्गी देवी को बुलाकर बहुत-सा पारितोषिक देकर उनको विदा कर दिया ।

पन्द्रहवाँ स्तवक

श्री गिरिराज-धारण-लीला

वसन्त ऋतु में ऐसा विहार करने के बाद अन्य ऋतुओं में भी नव-नव विलास प्रकाश कर रङ्गीले-श्रेष्ठ श्यामसुन्दर व्रजगोपियों के अनुराग के साथ अपने अङ्ग का माधुर्य भी अधिकाधिक बढ़ाने लगे, जैसे चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में कलाओं से अपनी मधुरता बढ़ाता है।

सखाओं के साथ गोचारण-कौतुक में विहार करते-करते उन दिनों श्रीकृष्ण ने अनेक असुरों का भी वध किया।

कार्तिक मास की चतुर्दशी को (अमावस्या के पहले दिन) बहुत-से गोपालों को साथ ले व्रजराज गिरिराज के पास इन्द्र-टीले पर बैठ नाना सामग्री इकट्ठी करने लगे। उस सभा के बीच बैठे श्री नन्दनन्दन ने अपने पूज्य पिताजी से प्रश्न किया : 'पूज्यपाद! आप यह कौन यज्ञ कर रहे हैं? इसका कौन देवता है? कौन आचार्य है? क्या विधि है और इसका प्रयोजन क्या है? सारे व्रजवासी क्योंकर बिना समझे-बूझे आपके अनुगत होकर इस कार्य में लगे हुए हैं? मेरे हृदय में तब तक श्रद्धा नहीं होगी, जब तक आप यह सब समझाकर न बतायें। अन्ध-विश्वास ठीक नहीं होता। यदि मुझे बालक समझकर आप इसका उत्तर नहीं देंगे तो वह बड़े दुःख की बात होगी। यदि इसमें कोई गोपनीय उद्देश्य हो तो भी हमारे सामने कहें। हम तो आप लोगों के ही हैं और इस विषय में जानने की तीव्र इच्छा हमारे हृदय में है। सो आपका वर्णन करना ही अच्छा है।'

पुत्र के नीतिपूर्ण वचन सुनकर स्नेह से विगलित होकर व्रजराज कहने लगे : 'इस यज्ञ का प्रमाण तो हम तुम्हें नहीं बता सकते। किन्तु इतना सच है कि यह परम्परा से चला आ रहा है। हमारे वंश में किसीने इस अनुष्ठान का भङ्ग नहीं किया। यह देवराज इन्द्र के पूजन और प्रसादार्थ किया जाता है। हमारा परम धन तो केवल गौएँ हैं और उनका जीवन है तृण। यदि देवराज वर्षा न करें तो एक भी तृण न पैदा हो। इसलिए देवराज का पूजन व्रज में प्रवृत्त हुआ है। देवराज व्रजवासियों की पूजा ग्रहण करके प्रतिवर्ष सुभिक्ष करते हैं, यथासमय समुचित वर्षा करते हैं। देवलोक में जो वास

करते हैं, मनुष्यों द्वारा पूजन से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। इस पूजा में उनकी इतनी प्रीति है कि स्वर्ग की सुधा भी उन्हें इतनी रुचिकर नहीं लगती। मनुष्यों से आराधित हो वे उनकी अनेक बाधाएँ दूर कर उन्हें ऊँचा पद प्राप्त कराते हैं।'

व्रजराज के ये वचन सुनकर, देवराज का उत्कर्ष और व्रजवासियों का मन मोहित करने के लिए नन्दनन्दन मीमांसा-शास्त्र की युक्ति का वर्णन करने लगे : 'पिताजी ! आपसे यह नयी बात सुनी कि देवराज हमारी गौओं को बचाते हैं। सच तो यह है कि कर्म से ही प्राणिमात्र के जन्म होते हैं और कर्म से ही मृत्यु। इस जगत् के सभी सुख-दुःख कर्म से ही प्राप्त होते हैं। इसलिए कर्म ही देवता है। साधु लोग कर्म के सिवा अन्य किसीको देवता नहीं मानते। जब कर्म से अधिक फल देने में उनकी सामर्थ्य नहीं तो क्यों हम उन देवताओं की अपेक्षा करें ? वे कर्म करने या कराने में अन्तर्यामी को अधिष्ठाता स्वीकार नहीं करते। सब जीव अपने स्वभाव से ही मङ्गल या अमङ्गल कार्य का अनुष्ठान करते हैं। इस जगत् का सृजन, पालन, नाश भगवान् से नहीं होता। वह तो तीन गुणों की स्वाभाविक क्रिया ही है। मेघ रजोगुण का विकार है। रजोगुण का स्वभाव है वर्षा करना। इसलिए वे बादलों के देवता इन्द्र को नहीं मानते। क्या कभी नदियों के प्रभु समुद्र को किसीने देवराज का पूजन करते देखा ? फिर भी वहाँ इतना जल क्यों बरसता है ? सो हम तो यह आपकी बात स्वीकार नहीं करते। इस विचार से आपको देवराज का पूजन करना ठीक नहीं है।

ब्राह्मणों का कर्म वेदपाठ है, क्षत्रियों का युद्ध, वैश्यों का खेती आदि तो शूद्रों का सेवा-वृत्ति कर्म है। हम वैश्य जाति में उत्पन्न हैं। वैश्य जाति की वृत्ति गो-रक्षण है और गिरिराज के तट पर उनकी रक्षा होती है। इस तरह जब गिरिराज हमारी गौओं की रक्षा करते हैं तो देवराज की आराधना से क्या प्रयोजन है ? जैसा गिरिराजजी का नाम है अर्थात् 'गो + वर्धन', वैसा ही उनका व्यवहार भी है। इसलिए यहाँ जो सामग्री इकट्ठी हुई है, उससे आज गिरिराज का ही यज्ञ करना चाहिए। गिरिराज के पूजन के लिए आज से ही सब गौओं का दूध काढ़ना चाहिए। तीन दिनों का दूध केवल गिरिराजजी के पूजन-निमित्त अलग रखिये। उस दूध से खीर, खोये की मिठाई तथा घी-माखन और अन्न, व्यञ्जन बनाये जायँ। व्रज में जितने ब्राह्मण हैं, उनको निमन्त्रित करें। उस यज्ञ में ब्राह्मण-भोजन कराने की बड़ी महिमा है। उससे स्वर्ग से ऊँचा पद प्राप्त होता है। गिरिराज-पूजन में हवन भी होना चाहिए।

हवन के बाद ब्राह्मणों को धेनु की दक्षिणा देनी चाहिए। रोटी, दाल, अन्न की रसोई बनाकर आदि से लेकर अन्त तक यथाविधि गिरिराज का पूजन किया जाय। यज्ञ के अन्त में ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक, जो भी व्रजवासी हों, सबको भोजन कराया जाय।

यज्ञ के समय नाना प्रकार के बाजों का प्रबन्ध किया जाय। ब्राह्मण लोग वेद-पाठ करें और वन्दी स्तव-गान। पूजा के बाद दिव्य वस्त्र धारण कर वीणा, मृदङ्ग आदि वाद्यों के साथ नृत्य-गीत-महोत्सव किया जाय।

फिर व्रजवासियों को आगे कर आनन्द के साथ गिरिराज की परिक्रमा की जाय। किसीके मन में यह अविश्वास न हो कि पहाड़ कैसे हमारा सङ्कल्प पूरा करेगा ? गिरिराज महादेव के समान आशुतोष हैं। सब कुछ पूरा करने की इनमें सामर्थ्य है। गिरिराज की महिमा आपके सामने हम क्या वर्णन करें ? इतना ही जान लें कि गोवर्धन-यज्ञ हमें अत्यन्त प्रिय है। यदि आपकी इसमें श्रद्धा हो तो इसका अनुष्ठान कीजिये।'

नन्दनन्दन की बात सभी व्रजवासियों को जँच गयी। सब उसी समय गिरिराज-यज्ञ करने को तैयार हो गये। नन्दनन्दन ने आचार्य का पद ग्रहण किया और गिरिराज-यज्ञ शुरू हुआ। वे देवराज इन्द्र का रिस बढ़ाने लगे। गिरिराज के पूजन की जैसी विधि नन्दनन्दन ने बतायी, तदनुसार यथारीति उसका पालन किया गया। वेद की मङ्गल ध्वनि दशों दिशाओं में गूँज उठी। व्रजवासी उस पूजन के आनन्द-सिन्धु में डूब गये। व्रज-गोपियाँ (केवल कृष्ण-कान्ता नहीं) यज्ञ में गीत गाने लगीं। पहले गौओं का पूजन हुआ। उसकी विधि इस प्रकार सम्पन्न की गयी : गौओं के चरण चाँदी से और सींग सोने से मढ़े गये। पीठ पर रत्न की झूल, गले में सोने और मोतियों की माला पहनायी गयी। उनका नया वेश देखकर उनकी बछिया तक अपनी माता को न पहचान सकीं।

व्रजराज-नन्दन की इच्छा से गिरिराज-पूजन होने लगा। उनके आगे पूजा की सामग्री रखकर पाद्य-अर्घ्य-आचमन प्रदान करके अन्न का पर्वत बनाया जाने लगा। बीच में अन्न का पर्वत और चारों ओर नाना प्रकार के साग, पास में मिठाइयाँ ! अन्न और मिठाई के पहाड़ के नीचे दही, खीर का कलश और कपूर, इलायची, लौंग आदि सुगन्धित वस्तुएँ भी वहाँ रखी गयीं। अन्न पर गाय के पीत घृत की धार देख मालूम होता था कि मानो कैलास पर्वत से सोना पिघलकर गिर रहा हो। अन्न पर फूल और फल भी रखे गये।

अन्नकूट की शोभा देखकर व्रजराजनन्दन आनन्दित हो पिता और

व्रजवासियों के विश्वास-हेतु गिरिराज पर अपना दूसरा विग्रह प्रकट कर उनसे कहने लगे :

'पूज्यपाद ! देखिये, देखिये !! आपकी श्रद्धा-भक्ति से गिरिराज ने अपनी मूर्ति प्रकट कर दी। यह उनका विशाल वदन है। ये भुज-युगल और ये चरण हैं। स्थावर पर्वत पर गिरिराज का जङ्गम विग्रह देखिये। इनका इन्द्रनीलमणि-सा विशाल वक्षःस्थल, पर्वतों के शिखर-सी दन्तावली, धातुराग-से ओष्ठ और अधर हैं। गिरिराज क्षुधातुर हो अपना हाथ आगे वढ़ा अन्न स्वीकार कर रहे हैं। आज तो आपका पूजन और सङ्कल्प सिद्ध हुआ है। इसलिए आप इन्हें दण्डवत् कीजिये।' नन्दनन्दन ने स्वयं भी गिरिराज को दण्डवत् प्रणाम किया।

गोवर्धन का अग्नि-सा उज्ज्वल स्वरूप देख व्रजवासी लोग मस्तक पर अञ्जलि वाँधकर भक्ति-श्रद्धा के साथ दण्डवत् करने लगे। उस समय व्रजवासियों के अङ्गों में पुलक और नयनों में अश्रु भर गये। वे कहने लगे : 'आज बड़े सौभाग्य की वात है कि प्रभु के दर्शन हुए।'

उनके आगे वाजे वजने लगे। स्तावक स्तव-गान करने लगे और पुरुष लोग नृत्य-गान में रम गये। उस समय यह न निश्चय होता था कि गन्धर्व गान कर रहे हैं या मनुष्य ? उस आनन्द में सभी लोग डूब गये। चारों ओर से सभी लोग गिरिराज की महिमा गान कर कहने लगे : 'ये ही व्रज-वासियों के भगवान् हैं, जो सबके सामने अपना विग्रह प्रकट कर व्रजराज की पूजा स्वीकार कर रहे हैं। पृथिवी का दुःख-मोचन करने को गिरिराज मूर्तिमान् रूप धारण कर प्रकट हुए हैं।'

व्रजराज ने गिरिराज का पूजन समाप्त कर पंक्तियाँ लगा व्रजवासियों को भोजन करने को विठाया। भिन्न-भिन्न पंक्तियों में यथाधिकार ब्राह्मण से चाण्डाल तक थे।

भोजन के वाद दिव्य वस्त्र धारण करके उत्सव के आनन्द में मत्त हो व्रजवासी गिरिराज की प्रदक्षिणा करने लगे। आगे-आगे वाजेवाले चल रहे हैं। उनके पीछे मणि और स्वर्ण से मण्डित गौएँ। गौओं के पीछे सखा लोग हाथ में लकुटियाँ धारण किये थे। उनके पीछे वीणा-वेणु के साथ गान करते-करते नर्तक चल रहे हैं। उनके पीछे गोपीजन मधुर कण्ठ से नन्दनन्दन के चरित्र गा रही थीं। नन्दनन्दन अपने प्रिय नर्मसखा के साथ सव मण्डलियों के वीच घूम रहे थे। सबके पीछे अपने गोपवृन्द के साथ स्वयं व्रजराज थे।

ब्राह्मणों को यथाविधि दक्षिणा देकर, गिरिराज की प्रदक्षिणा कर व्रजवासियों को इतना आनन्द हुआ कि वे उसका पान न कर सके।

प्रतिपद् के दूसरे दिन भ्रातृद्वितीया को परम आनन्द के साथ प्रभात में नन्दनन्दन यमुना-स्नान करने आये। यमुना के तट पर उपनन्द महाराज की कन्या ने बड़े प्रेम से बलदेवजी सहित अपने भैया दामोदर को भोजन का निमन्त्रण दिया। नन्दनन्दन ने सखाओं सहित उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। छोटी बहन पर वात्सल्य व्यक्त करते हुए जब वे उनके घर गये और भोजन करने बैठे तो उपनन्द-कन्या दया की मूर्ति धारण कर रसमय लड्डू मिठाई परोसने लगी। उस समय परिहासविशारद मधुमङ्गलजी नाना रसमय वचन कहने लगे।

बलदेवजी आनन्द के साथ हँसकर जब भोजन कर रहे थे तो मधु-मङ्गलजी बोले : 'जगदेक-मोहन कृष्ण! विधाता ने हमारे लिए सब तिथि भैयादूज ही क्यों नहीं बनायी? वर्ष में एक ही भैयादूज क्यों रखी? उनका यह विचार ठीक नहीं। अथवा तुम्हारा भी एक ही बहन करना ठीक नहीं। साल के दिनों के बराबर बहनें करते और एक-एक दिन एक-एक बहन के घर भोजन के लिए बाँट लेते तो हमारे लिए भी अच्छा होता। आज जैसा भोजन में आनन्द आता है, कल के भोजन में न था। कल तो उत्सव के आनन्द से ही जी भर गया था।'

नन्दनन्दन भी आनन्द के साथ जब भोजन कर चुके, तब उन्होंने अपनी बहन और उसकी सखियों को दिव्य वसन, भूषण आदि दिये। उपनन्द-कन्या ने भी अपने भाई और सखाओं को अनेक प्रकार के वसन-भूषण भेट किये।

इस प्रकार भ्रातृद्वितीया-उत्सव समाप्त होने पर अब देवराज इन्द्र के यज्ञ का भङ्ग होने से उनकी क्या अवस्था हुई, यह सुनिये। देवराज इन्द्र देव-ताओं की सभा के बीच बैठकर अपना यज्ञ भङ्ग होने से क्रोधित हो कहने लगे : 'बड़ी विचित्र बात है कि पशुओं के चरानेवाले इन गोप लोगों ने एक बच्चे की बात मान हमारा यज्ञ भङ्ग कर दिया। हमारी महिमा तो स्वयं देवगुरु बृहस्पति भी नहीं वर्णन कर सकते। मुझ जैसे शक्तिमान् की उपासना की इन लोगों ने तनिक भी परवाह नहीं की। निश्चय ही यह इनके हृदय में छिपे असीम अभिमान की बात है। अच्छा व्रजवासियो, देख लूँगा कि तुम्हारा कैसे मङ्गल होता है? कैसे निर्भय हो वास कर सकोगे? इस

विषय में भी मुझे कुछ सोचना होगा। मुझ शतमन्यु[१] का प्रभाव एक चञ्चल बालक कैसे मिटा सकेगा और तुम लोगों का जीवन कैसे रहेगा, इस विषय में भी तुमने कुछ सोचा ? मैं तुम लोगों से अच्छी तरह समझ लूँगा।'

क्रुद्ध देवराज ने तत्काल महाप्रलय करने में समर्थ 'संवर्तक' मेघों को बुलाया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे : 'तुम लोग अपने प्रभाव से सारे जगत् का नाश कर सकते हो। हमारी शक्ति में तुम ही प्रधान हो। आज मेरा आदेश पालन कर मुझे कृतार्थ करो। तनिक भी विलम्ब मत करो। तुममें सारे जगत् का नाश करने की शक्ति है और व्रज की तो थोड़ी-सी ही है। यहाँ से शीघ्र जाकर व्रजनगर में अच्छी तरह वर्षा करो।

जब संवर्तक मेघ गर्व के साथ व्रज में आने लगे तो व्रज के आकाश में सेवाल-सी मेघमाला दिखाई दी। पहले मेघ ने छोटा आकार दिखाया, फिर चारों ओर से अन्धकार ने घेर लिया। पश्चात् बड़े-बड़े हाथी के-से मेघ-खण्डों ने आकाश घेर लिया। उनको देख व्रजवासी सोचने लगे कि मैनाक[२] पर्वत तो उड़कर नहीं आया। मेघों के कारण ऐसा घोर अँधेरा छा गया, जैसे लोकालोक पर्वत अपने अँधेरे से ज्योतिषचक्र को ढाँक दे। मेघों ने अपने प्रभाव से ऐसा अन्धकार कर दिया कि माताओं को गोद का बच्चा भी दिखाई नहीं पड़ा। अँधेरा ऐसा छा गया कि कुठार से भी उसे नहीं तोड़ सकते।

संवर्तक के इतना प्रभाव दिखाने पर भी व्रजपुर-पुरन्दर-नन्दन ने अपने चरण-नखों की कान्ति से व्रजभूमि को आलोकित कर दिया। दशों दिशाओं में दशम (अँधेरा) छा गया। अन्धकारस्वरूप मेघ ने अपने नाम 'दशम' (न्यायशास्त्र में अन्धकार को 'दशम द्रव्य' कहकर पूर्वपक्ष रूप में स्मरण किया है) की सार्थकता दिखा दी।

उसी समय अकस्मात् ब्रह्माण्डरूप कढ़ाई फूट गयी और उसमें से मानो जल गिरने लगा। उसके साथ विद्युत् का भी प्रकाश होने लगा। वर्षा की धारा हाथी की शुण्डा से भी मोटी हो गयी। उस समय गायें अपने वत्सों को अपने शरीर के नीचे करके सिर हिलाकर वर्षा की धारा से उनके शरीर की रक्षा करने लगीं और कातरता के साथ अन्तर में नन्दनन्दन का स्मरण करने लगीं।

पहाड़ का बैलों के कूबड़-सा रूप देख मेघों को क्रोध आने लगा कि इतनी

१. क्रोध, इन्द्र का एक नाम।
२. इसका पंख इन्द्र ने काटा था।

जोर से बरसने पर भी यह पर्वत टूट न सका। तब वे मोटे-मोटे केले के पेड़-सी धारा गिराने लगे।

तब भय से भीत सभी व्रजवासी नन्दनन्दन के पास आकर निवेदन करने लगे :

'हे महाभुज कृष्ण! यह गोकुल तो तुम्हारा है। अब इसकी रक्षा करना तुम्हारे ही वश में है। यह देखो, साँप की जीभ-सी बिजली चमक रही है। जल के साथ ओले भी गिर रहे हैं, जिनसे हमारे घर और वृक्ष भी टूट गये हैं। व्रज में वडवानल-सी आँच दिखाई दे रही है। सिर पर मेघ का निष्ठुर गर्जन, तो नीचे प्रबल धारा से सब कुछ भर रहा है। कहाँ ऊँचा है और कहाँ नीचा, कुछ भी पता नहीं चलता। क्या आज प्रलय का समुद्र व्रज में आ गया है? उधर देखो, गैया अपने शरीर के नीचे बछिया को छिपा कैसे रक्षा कर रही है! कालियदह में दावानल से जैसे तुमने हमारी रक्षा की थी, आज इस प्रलय समुद्र से भी वैसी ही रक्षा करो। देखो, उधर तुम्हारे बैलों की क्या दुर्दशा हो रही है! आज तुम्हारे सिवा व्रजवालों का और कौन रक्षक है? सो हम तुम्हारी शरण में आये हैं।'

व्रजवासियों के ये वचन सुन और देवराज इन्द्र का यह सारा प्रभाव समझकर श्री भगवान् मधुर स्वर से कहने लगे : 'व्रजवासियो, आप लोग डरिये मत! यह तो मामूली-सी विपत्ति है।'

वैसे तो भगवान् अपने सङ्कल्पमात्र से ही साधकों के अनर्थ दूर कर सकते हैं, तथापि साधक लोग कल्पकाल तक जिस लीला का गान और स्मरण कर सकें, ऐसी लीला का प्रकाश करने की प्रभु हृदय में सोचने लगे। इसलिए तुरन्त ही जैसे बालक छाता उठाकर सिर पर लगाते हैं अथवा हाथी जैसे कमल को शुण्ड में धारण करते हैं, ठीक वैसे ही नन्दनन्दन ने अपने कर पर गिरिराज उठाने, धारण करने की इच्छा की। उसी समय व्रजवासियों ने देखा कि वह पहाड चट-चट शब्द करता ऊपर उठा और प्रभु के कर-कमलों में आ गया। उस समय इतने जोर की आवाज हुई कि सत्यलोक में ब्रह्माजी का ध्यान भङ्ग हो गया, पाताल में अनन्तदेव का सिर घूम गया। उस आवाज को सुनकर दिग्-हस्ती पागल हो गये।

नन्दनन्दन अपने कर में गिरिराज को धारण कर हँसने लगे। गिरिराज के उठने से उन पर के फूलों की वर्षा भगवान् पर होने लगी। गिरिराज ऊपर बढ़कर धीरे-धीरे पहले मेघों की पंक्ति तोड़ने लगे। फिर मेघ भेदकर स्वर्ग के

नन्दन वन में जा पहुँचे। सिंह जैसे हाथी को हटाते हैं, ऐसे गिरिराज ने मेघों को भगा दिया।

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जब अपनी कनिष्ठ उँगली पर गिरिराज धारण किया तो आकाश में संवर्तक मेघ सोचने लगा : यह कौन है, जो मेरे प्रभाव को आज हटा रहा है ! कैलाश पर्वत गिरिराज को बढ़ता देख कम्पित होने लगा। सुमेरु पर्वत के हृदय में अत्यन्त भय हो गया। समस्त दिग्-हस्ती भीत होकर गङ्गा के जल में जाकर डूब गये।

व्रजवासियों ने जब गिरिराज को नन्दनन्दन के वाम कर-कमल में विराजित देखा तो वह महारत्न के छत्र-सा दीख पड़ा, जो वज्र से भी नहीं टूट सकता हो। दामोदर का कर ही छत्र का दण्ड बन गया। चारों ओर जल की धारा बिखरती मोतियों की झालर की-सी उस छत्र में लग गयी।

इस तरह गिरिराज को अपने कर में उठा मनोहर-चरित्र श्यामसुन्दर व्रजवासियों को विश्वास दिलाने, आश्वस्त करने के लिए कहने लगे : 'माँ! चञ्चल मत हो। पिताजी ! हृदय में तनिक भी शङ्का न कीजिये। सखाओ ! हमारे कर से गिरिराज के गिरने का डर नहीं, कारण गिरिराजजी ने अपना दर्शन देकर तुम्हारी पूजा स्वीकार की है। उन्हींके प्रभाव से गिरिराज को हम धारण कर सके हैं। यद्यपि यह गिरिराज की आकृति बहुत बड़ी है और स्थावर-देह भी है, तथापि अपनी दिव्य शक्ति से जो कुछ कर रहे हैं, तर्क से आप उसे नहीं समझ सकते। फिर भी यह सच मानिये कि हमारे हाथ में ये गिरिराज रूई-से हलके लगते हैं। उठाने में तनिक भी कष्ट प्रतीत नहीं होता। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। गिरिराज महाराज तो स्वतन्त्र (स्वेच्छाचारी) हैं। इसलिए अपनी-अपनी गौओं और सब कुछ सम्पत्ति को सङ्ग लेकर इनके नीचे आकर सुख से रहिये। देवराज की वर्षा का यहाँ कोई भय नहीं है। महाप्रलय में भी नारायण भगवान् के अङ्ग में जो अनन्त जीव सूक्ष्म रूप से वास करते हैं, उनको भी इतना आनन्द नहीं, जितना यहाँ आप लोगों को है। देखिये, गिरिराजजी ने आनन्द के साथ ऊँचे उठते समय अपने चारों ओर मिट्टी की ऐसी बाड़ बना दी है कि वर्षा का पानी भीतर आ ही नहीं सकता। व्रज में गिरिराज के वन में विचरने से भी अधिक आनन्द यहाँ है। यहाँ आते ही सब कुछ दुःख आप भूल जाओगे।'

श्री गोवर्धनधारी नन्दनन्दन के अमृतमय वचनों को गले का हार बना सभी व्रजवासी अपने-अपने मित्र, स्त्री, पुत्र, गौ, पुरोहित और सम्पत्ति के साथ गिरिराज के नीचे प्रवेश कर गये। वहाँ वे अति सुख अनुभव कर

परस्पर कहने लगे : 'क्या यह स्वर्ग है, सत्यलोक अथवा उससे भी श्रेष्ठ कोई लोक है ? गौओं के लिए मैदान में कैसा कोमल तृण है ! कैसे निर्मल सरोवर हैं।' विविध भोग-सामग्री देखकर व्रजवासी विस्मित होकर हँसने लगे। बाहर के विस्तृत मण्डल में गौओं का स्थान था, जहाँ अधिक तृण थे। उसके पीछे ब्राह्मणों का स्थान। उसके बाद वृद्धा स्त्रियों के लिए स्थान। उसके बाद श्री राधा-प्रभृति कुलवधुओं के लिए स्थान। उसके पीछे धन्या आदि कन्यका-मण्डल के लिए स्थान। फिर नन्दनन्दन का स्थान उनके सखाओं सहित। नन्द-नन्दन के आगे व्रजराज-व्रजेश्वरी, मधुमङ्गल आदि थे।

व्रज से भी अधिक आनन्द-प्रदायक उस स्थान में आकर व्रजवासी प्रलय-काल की घन-घटा, वर्षा, बिजली, वज्रपात सारा दुःख भूल गये। जो जिस स्थान पर था, वहीं से गोवर्धनधारी को अपने आगे ही देखने लगा। व्रजवासी नराकृति परब्रह्म नन्दनन्दन को आशीर्वाद देकर आनन्दित होने लगे।

माता व्रजेश्वरी और श्री व्रजराज अपने पुत्र की विजय को देख उनका मस्तक सूँघने लगे। रोहिणी देवी अपनी वात्सल्यमयी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगीं। बलदेवचन्द्रजी ने अपने छोटे भाई को आलिङ्गन किया। श्री राधा आदि गोपियाँ तथा धन्या आदि कुमारियाँ अपनी अनुरागभरी दृष्टि से आलिङ्गन करने लगीं। आनन्द-रस से उन्मत्त होकर सखावृन्द प्रीति के साथ अपने सखा के दर्शन करने लगे।

इस प्रकार व्रजवालों के मिलने के बाद परिहास-विशारद मधुमङ्गलजी आनन्द के साथ अपने हाथों को उठाकर बोले : 'हे जगदेकवल्लभ ! मेरे प्रिय वयस्य ! ब्राह्मणों की महिमा देखो ! ब्राह्मण होते हुए भी हम प्रेम से तुम गोप-जाति का आदेश पालन करते हैं, यह तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है। हम तो तुम्हारे आगे ही खड़े हैं। यदि तुम्हें गिरिराज धारण करने में कष्ट हो तो मुझे दे दो। कहो तो अभी अपनी लकुटी पर गिरिराज धारण करूँ। तब तक तुम विश्राम करो।'

मधुमङ्गल के वचन सुनकर व्रजेश्वरी कहने लगीं : 'अवश्य, इन चञ्चल सखाओं ने तुम्हें यह राय दी थी। तुमने आज तक जिस देवराज का यज्ञ कभी भङ्ग नहीं हुआ था, उसे खण्डित कराया। यह ठीक नहीं हुआ। वत्स ! देवता की अवज्ञा कर कोई कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। असुरों के साथ देवताओं का विरोध है, मनुष्यों के साथ कदापि नहीं। अब तो तुम पर देवता-असुर दोनों का कोप हो गया। असुर तो पहले से ही उत्पात करते थे,

अब देवता भी करने लगे। इस प्रकार व्रज में सुख से हम लोग कैसे वास कर सकते हैं ?'

व्रजेश्वरी वात्सल्य के साथ अपने कर-कमल से पुत्र का अङ्ग लालन करने लगीं। उनका अङ्ग लालन करती वाम कर से उन्हें स्पर्श कर बोलीं : 'नवनीत से भी कोमल इस भुजा ने गिरिराज का बोझ कैसे धारण किया ? हे गिरिराज महाराज ! आज आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि आप यदि सत्य ही देवता हो, तो अपने स्वरूप को बहुत ही लघु बना लो, जिससे मेरे पुत्र को कुछ भी दुःख का अनुभव न हो।'

मधुमङ्गल बोले : 'माताजी ! ऐसा न कहो। सखा को दुःख कहाँ है ? आज तो देवराज इन्द्र ने महाप्रलय काल के मेघों को व्रज में भेजकर व्रजवासियों पर बहुत उपकार किया है। गिरिराज धारण करने में जैसा माधुर्य प्रकट हुआ, ऐसा माधुर्य तो और कभी पहले हमने नहीं देखा।'

व्रजेश्वरी बोलीं : 'मधुमङ्गल ! तुम्हारे हृदय में बड़ा साहस है। क्या इसका नाम माधुर्य है ? ऐसा मत कहो। देखो, गिरिराज को धारण करने से पुत्र के ललाट के श्रम-जल-कण चूर्ण कुन्तल को भिगो रहे हैं। वदन-कमल सूख गया है। गिरिराज के बोझ से कर व चरण-युगल लाल हो गये हैं। माता पुत्र का ऐसा दुःख कैसे सह सकती है ?'

श्रीकृष्ण बोले : 'जननि ! आज मेरे लिए बहुत कौतुक है। आप अपने हृदय में ऐसी शङ्का न कीजिये। मुझे इसमें कुछ भी दुःख नहीं है। गिरिराजजी तो अपने प्रभाव से स्वयं ही आकाश में विराजित हैं। मैं तो उँगली से स्पर्शमात्र कर रहा हूँ। गिरिराज धारण करने में मुझे तो निमित्तमात्र ही समझो।'

यह सुनकर यशोदाजी बोलीं : 'वत्स ! फिर भी एक हाथ से ७ दिन ७ रात खड़े रहने से क्या तुम्हें श्रम नहीं हुआ है ? हे परम चतुर ! हम तुम्हारी इस बात का तभी विश्वास कर सकते, यदि तुम्हारे हाथ को भी बिना स्पर्श किये गिरिराज आकाश में रह सकते।'

मधुमङ्गल बोले : 'हे गोष्ठेश्वरी ! मुझ ब्राह्मण के मन्त्र के प्रभाव से मेरा यह एकमात्र प्रियपात्र अपने कर-कमल पर गिरिराज धारण किये है। इसी कारण सखा को कुछ कष्ट नहीं है। सखा पर गिरिराजजी की बहुत कृपा है।'

फिर श्री यशोदाजी बोलीं : 'मधुमङ्गल ! क्या प्रलाप कर रहे हो ? हमारे प्राण तो निकले जा रहे हैं। इस समय तुम्हारे परिहास वचन हमें अच्छे नहीं लगते।'

व्रजराज बोले : 'अयि ! मधुमङ्गल का क्यों तिरस्कार कर रही हो ? इस जगत् में यशस्वी को दुष्कर कर्म करते समय उनके मित्र लोग अपने वचनों से ऐसा ही उत्साह बढ़ाते हैं। इसलिए मधुमङ्गल के यह वचन समयोचित हैं। यह ठीक ही है, क्योंकि हमारे पुत्र पर उनका स्वाभाविक अनुराग है।'

उधर इस अवसर पर नन्दनन्दन के चारों ओर खड़े होकर उनका माधुर्य दर्शन करते हुए व्रजवासी आपस में कहने लगे : 'अपने जन्म में तो हम लोगों ने इतना माधुर्य कभी भी नहीं देखा। देखो, देखो ! कैसे एड़ी ऊँची कर केवल उँगली से भूमि को स्पर्श कर रहे हैं। जङ्घा थोड़ी वक्र हो रही है। वक्षःस्थल का दक्षिण भाग कुछ हिल रहा है और गले की माला भी उसी तरफ लटक रही है। वाम भुजा को ऊँचा रखने से वाम पार्श्व भी दिखाई दे रहा है। दक्षिण कर कमर से लगाकर त्रिभङ्गी खड़े हैं। स्वेद-विन्दु गण्डस्थल पर चमक रहे हैं। श्रवण-युगल में छोटे नील कमल धारण किये हैं। नयन-युगल अनुराग से भरे हैं। आज गिरिराज धारण करते समय कुछ अपूर्व माधुर्य दिखायी दे रहा है।'

दूसरी ओरवाले बोले : 'देखो ! चरण-युगल का माधुर्य ! उनमें नूपुर मूक हैं। वे ऐसे लगते हैं, जैसे कमल के आगे दो निद्रित हंस शोभित हों। कभी दक्षिण कर को उठाकर, कभी वाम कर को थोड़ी देर को उठाकर पूर्व स्थान में स्थापित करने के समय चरण के नूपुर वजकर गमन की शङ्का प्रकट करते हैं।'

फिर दूसरे लोग कहने लगे : 'कभी दाहिने कर में वंशी धारण कर मृदु-मृदु स्वरों में वजा रहे हैं। अपने इस वेणु-वादन से वे सखाओं को यह जनाते रहे कि मुझे इसमें कुछ भी श्रम नहीं है।' बीच में ही मधुमङ्गल कहने लगे : 'सखा ! वंशी मत वजाओ। तुम्हारा मुरली-नाद सुन गिरिराज घहर पड़ेंगे या विगलित हो जायँगे तो फिर व्रजवासियों की रक्षा कैसे कर सकोगे ? तुम्हारी मुरली का यह प्रभाव है कि पत्थरों को पिघला देती और नदियों को जमा देती है। यह तो केवल अनर्थ ही अनर्थ करती है।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'कुसुमासव ! गिरिराज ने हमारी रक्षा के लिए ही अपना विग्रह ऊँचा उठाया है। यह जानकर धीर-गम्भीर जनों की तरह स्वस्थ रहो। तुम्हारी शङ्का व्यर्थ है। अच्छी तरह से वेणु-नाद सुनो और उसका आनन्द अनुभव करो।'

दूसरी ओर के लोग कहने लगे : 'यह देवराज कैसा मूर्ख है कि समस्त जगत् के सुहृद् नन्दनन्दन से वैरभाव रखता है। नन्दनन्दन तो गोत्रोन्नेता (वंश-रक्षक या पर्वत-रक्षक) हैं, जब कि देवराज गोत्र-क्षय-कर (पर्वत-विनाशकारी

या वंशनाशक) हैं। देवराज जगत् का नाश करते हैं तो नन्दनन्दन उसकी रक्षा। देवराज तो पूर्वाशा (पूर्व दिशा) के ही स्वामी हैं, उसीका पालन करते हैं, पर नन्दनन्दन सभी आशाओं (दिशाओं या मनोरथों) को पूर्ण करनेवाले हैं। यही क्यों, देवराज और कृष्ण दोनों का 'हरि' यह नाम-साम्य है। फिर भी तनिक भी परवाह न करते हुए वे निर्लज्जता से अपनी धृष्टता ही दिखा रहे हैं।'

दूसरे लोग कहने लगे : 'बड़ी विचित बात है कि प्रलयकालीन पवन, संवर्तक मेघ, इतना भीषण दुर्दिन और ऐसी वारिधारा बरस रही है, फिर भी हमें इनसे कोई हानि नहीं हुई ! क्या यह जो कुछ हम लोगों ने देखा, वह इन्द्रजाल ही तो नहीं था ?'

दूसरी ओर से मधुरता के साथ श्यामलाजी बोलीं : 'अयि सुमुखी राधे ! जब तक तुम्हारे प्रियतम गिरिराज धारण करते रहें, तब तक तुम अपने कटाक्ष उनकी ओर न डालो। नहीं तो उनको कम्प होगा और गिरिराज गिर पड़ेंगे।'

मधुर परिहासभरी श्यामलाजी की यह चुटकी सुनकर लज्जा के साथ श्री राधाजी बोलीं : 'अयि मृगनयनी ! अपने हृदय के भाव का दूसरे पर मत आरोपण करो। तुम ही अपनी आत्मा को अच्छी तरह उपदेश दो।'

श्री राधाजी की एक सखी बोली : 'जिसने अपनी शक्ति से महान् गिरि-राज को गेंद-सा कर-कमल में धारण कर लिया, उसके धैर्य को कौन हरण कर सकता है ?'

दूसरी सखी ने बात काटते हुए कहा : 'निश्चय ही गिरिराज को धारण करने की नन्दनन्दन में शक्ति है, फिर भी तुम्हारा अङ्ग-माधुर्य देखकर धैर्य धारण करने में वे अशक्त ही हैं।'

दूसरी एक सखी बोली : 'अब हास-परिहास छोड़ नागरेन्द्र का अपूर्व माधुर्य दर्शन करो। देखो-देखो, वाम कर में गिरिराज धारण किये दक्षिण कर से कैसी मृदु वंशी बजा रहे हैं ! व्रजवासियों की मधुर दृष्टि देख और सखाओं के परिहास-वचन सुन कैसे सिर हिला रहे हैं !'

दूसरी सखी श्री राधिकाजी से कहने लगी : 'तुमसे ठीक कह रही हूँ कि नन्दनन्दन की दृष्टि यद्यपि सब पर है, तथापि जब वे तुम्हारे वदन-कमल का दर्शन करते हैं तो आनन्द से विमुग्ध हो नाना विकार प्रकट करने लगते हैं।'

सखी के ये वचन सुन दूसरी बोली : 'तुम्हारे वचन तो हमारे कण्ठ का

हार बन गये। श्री राधा के वदन-कमल के दर्शन से नन्दनन्दन के वदन में कम्प, स्वेद आदि विकार देख व्रजवासी और सखागण यह समझने लगते हैं कि यह श्रम के कारण हो रहा है। फलस्वरूप वे स्नेहवश अपने-अपने हाथ की लकुटी उठा चौंड़ के तौर पर गिरिराज के नीचे लगा रहे हैं।'

सखियों की यह बात सुन चन्द्रवदना वृषभानुनन्दिनी ने एक बार गिरिवरधारी का वदन-कमल निहारा और आँचल से मुख ढाँककर हँसने लगीं तो मधुमङ्गल बोले : 'हे व्रजवासियो, आप लोग मत डरिये ! लट्ठियों से गिरिराज अच्छी तरह धारण कीजिये। और कुछ नहीं तो कम-से-कम गिरिराज की खुजलाहट ही इनसे मिट जायगी। हमारे कृष्ण को तो परिश्रम कुछ नहीं है। वे तो प्रचुर शक्तिशाली हैं।'

मधुमङ्गल की बात सुनकर व्रजराजनन्दन अपना दन्त-माधुर्य और अधर-शोभा दिखाते हुए मधुमङ्गल से कहने लगे : 'मधुमङ्गल ! यह तो व्रज-वासियों का स्वभाव है। इनका परिहास क्यों कर रहे हो ? हमारे शरीर में कितना भी वल क्यों न हो, पर ये लोग उस शक्ति को नहीं मानते। सदैव वात्सल्य से ही हमें देखते हैं। सो उनकी यह चेष्टा वहुत ही अच्छी है।'

फिर व्रजवासियों की ओर देखकर कहने लगे : 'आप लोग तो महादेव के समान मेरे पूज्य हैं। इसलिए इतना कष्ट न कीजिये। गिरिराज धारण करने में मुझे कोई श्रम नहीं।'

इस पर पुत्रवत्सला माँ यशोदा बोलीं : 'बहुत समय से तुमने कुछ नहीं खाया। तुम्हारा शरीर सूख गया है। उदर कमर में जा लगा है। वड़े स्वेच्छा-चारी हो। पर देखो, तुम्हारे भोजन न करने से कोमल तृण आगे पड़ा रहने पर भी गायें उसमें से एक तिनका भी नहीं खा रही हैं। इसलिए मेरी बात मान लो। वेणु बजाना छोड़ दो और हमारे हाथ से कुछ भोजन कर लो। जब जैसी अवस्था हो, उस समय वैसा ही आचरण करना उचित है। यह देखो, तुम्हारे लिए माखन, मिश्री, पुआ, दही हाथ में लिये खड़ी हूँ। अपने बड़े भाई और सखाओं के साथ तुम्हारा भोजन करना उचित है।'

मधुमङ्गल बोले : 'सखा ! यह भोजन का समय है। मुझे भी बहुत भूख लगी है। माँ का आदेश पालन करो।'

तब रसमय नन्दनन्दन बोले : 'हमारे लिए तो यही आनन्द का मुहूर्त है। अच्छा, गुरुजन की यदि ऐसी ही इच्छा है तो हम भोजन कर लेंगे।'

माता व्रजेश्वरी अपने पुत्र को भोजन कराने लगीं।

इधर तो यह हो रहा है, उधर गिरिराज के ऊपर स्वर्गलोक में क्या हो रहा है, जरा इसे भी सुनिये।

अत्यन्त क्रुद्ध देवराज ऐरावत गज पर सवार हुए और हाथ में वज्र ले यह देखने के लिए कि संवर्तक आदि मेघों ने क्या किया, व्रज के आकाश में आ पहुँचे। वहाँ आने पर उन्होंने देखा कि गिरिराज अपने शिखरों से घनघटा भेदकर ऊपर खड़े हैं। उन पर कुछ भी वर्षा के चिह्न नहीं दिखाई पड़े। उन शिखरों के आश्रित पशु-पक्षी भी आनन्द से विराज रहे थे। गिरिराज के काले तट पर मेघ-माला जो जलधारा बरसा रही थी, उससे तो गिरिराज पर मोतियों का छाता-सा तन गया था। यह देख गर्व में भरे इन्द्र मेघों को फटकारने लगे। उनके तिरस्कार-वचन सुन सारे मेघ मिलकर अपनी पूरी शक्ति से वर्षा करने लगे। उनके साथ प्रलयकाल के 'प्रवह', 'आवह' पवन भी अपना प्रभाव दिखाने लगे। गिरिराज के ऊपर तो प्रबल वर्षा, पवन, शिलापात तथा विद्युत् थी, किन्तु उनके नीचे नन्दनन्दन अपने अङ्ग का कान्ति-सुधा की वर्षा से व्रजवासियों का मन हर रहे थे।

गिरिराज के बाहर जैसे मेघ था, वैसे ही नीचे नव जलधररूपी नन्दनन्दन थे। जैसे बाहर बिजली थी, वैसे ही भीतर स्वर्ण-कान्ति व्रजाङ्गनाएँ। जैसे बाहर इन्द्रधनुष था, वैसे ही भीतर मोरपिच्छ। जैसे बाहर जल की वर्षा थी, वैसे ही भीतर लावण्य की वर्षा हो रही थी। इस प्रकार तो बाहर-भीतर समान थे, पर भीतर कौस्तुभ का सूर्य-सा प्रकाश था, किन्तु बाहर घना अँधेरा। भीतर की बाहर से यही विशेषता थी। नन्दनन्दन आनन्द के साथ मुरली बजाते थे। इस रसानन्द से गिरिगुहा में किसीको समय का पता न चलता था।

व्रजवासियों का मन तो केवल नन्दनन्दन पर ही आकृष्ट था। किसीके मन में विस्मय था, किसीका मधुर भाव था, तो कोई हँस रहा था। कोई उत्साह दे रहा था, तो किसीके हृदय में कौतुक था। अपने-अपने भाव में सभी मग्न थे। किसीको कुछ भी खबर न थी।

किन्तु अपने वात्सल्यभाव से जननी व्रजेश्वरी कुछ भी सुख अनुभव न कर सकीं। माता यशोदाजी अपने कर में पान का एक बीड़ा लेकर बोलीं : 'वत्स! मुरली-वादन छोड़ो। मुरली बजाने से पेट न भरेगा। श्रम दूर करने के लिए यह मनोहर ताम्बूल खाओ। देर मत करो, बहुत समय चला गया। अगर देर करोगे तो तुम्हारे बड़े भाई भी न खायेंगे।' इतना कहकर सुबल

के हाथ में ताम्बूल देकर बोलीं : 'सुबल ! तुम्हारी बात तुम्हारा सखा कभी नहीं टालता। सो यह ताम्बूल तुम ही उसे खिला सकते हो।'

सुबल ने यशोदाजी से पान लेकर सखा से वंशी छीन ली और अपने वसन के अञ्चल की कोर से नन्दनन्दन का पसीना पोंछ उनको ताम्बूल खिलाया।

बाहर देवराज इन्द्र के आग्रह से मेघों के इतना बरसने पर भी गिरिराज के कटि-तट से केवल धूलि ही हटी। एक भी वृक्ष अथवा लता-तृण को भी हानि न पहुँची। जगत् के समुद्र में जल बहुत बढ़ गया।

बहुत देर तक मेघ वर्षा कर शान्त हो गये। पवन की गति क्षीण हो गयी। सात दिन और सात रात की वर्षा से भी व्रजवासियों का कुछ अनिष्ट न हुआ। तब तो संवर्तक आदि को इन्द्र ने बिदा करा दिया और आप लज्जित होकर अपने भवन चले गये। इन्द्र को ये सात दिन सात युग के समान लग रहे थे, पर व्रजवालों के लिए तो सात घण्टे-से। भगवान् का ऐसा ही प्रभाव है, जिसे ब्रह्माजी भी नहीं जान सकते।

अब व्रज से सारा उपद्रव हट गया। इन्द्र की वर्षा से व्रज में अपूर्व शोभा प्रकाशित हुई। व्रज के आकाश का मानो दूसरा जन्म हुआ हो। दशों दिशाएँ अङ्कुरित होने लगीं। अदिति देवी के गर्भ से मानो सूर्यदेव का जन्म होने लगा। उसी समय आदिवराह भगवान् ने पृथिवी का उद्धार किया और उनकी कृपा से तरु, गुल्म, लता बढ़ने लगे। पवन उन्माद रोग से मुक्त हो गया और नदियाँ पतिव्रता की तरह अपने पति समुद्र को अपनी सारी जल-सम्पत्ति अर्पण कर पूर्वरूप में आ गयीं। व्रज में जब ऐसा सुख-समय प्रकट हुआ, तब श्री गोवर्धनधारी बोले : 'पूज्यपाद ! अब तो वह प्रलय का मेघ नहीं रहा। वर्षा भी बन्द है। अँधेरा भी हट गया है। व्रज में कीच भी नहीं है। सूर्य सात दिन मूर्च्छित रहकर आज ही चैतन्य अवस्था को प्राप्त हुए हैं। सो अब व्रज को लौटना ठीक होगा।'

भगवान् के ये वचन सुनकर व्रजवासी आनन्द के साथ गिरि-गुहा से गौओं को निकालने लगे। यद्यपि उस समय गौएँ बाहर जाने के लिए बहुत चाहती थीं, तथापि भगवान् के रूप-माधुर्य का पान करना छोड़ नहीं सकती थीं। इसलिए वे गिरिगुहा के भीतर ही नन्दनन्दन को घेरकर थोड़ी देर तक खड़ी रह गयीं। पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र की नयनों की प्रेमल दृष्टि से आज्ञा पाकर बाहर निकलने के लिए चल पड़ीं।

बाहर निकलती गौओं की ऐसी अवर्णनीय शोभा थी, मानो पाताल से अनन्तदेव के फणों की ज्योतियाँ ही बाहर निकल रही हों। अथवा गिरिराज की स्फटिक मणिमय जड़ें नीचे से ऊपर उठ रही हों। श्रीकृष्णचन्द्र के वचन सुनकर गोप लोग निर्भय होकर गिरिगुहा के बाहर आये। उस समय उनकी शोभा ऐसी दीखी, जैसे पृथिवी के बीच से प्रकाशमय सिद्ध ओषधि-लता प्रकाशित हो रही हो। अथवा महा दिव्य रत्नावली नीचे से ऊपर आ रही हो। अथवा सर्प की मणि ऊपर आ रही हो। बाहर आते समय सभी की नन्दनन्दन पर दृष्टि गड़ी थी। जब सब लोग बाहर चले आये, तब गिरिराज से हाथ बढ़ाकर नन्दनन्दन ऐसे बाहर आये, जैसे कोई फूल की गेंद नीचे रखे। उन्होंने अपने वाम अङ्ग से गिरिराज को यथास्थान स्थापित कर दिया।

नन्दनन्दन द्वारा गिरिराज को यथास्थान स्थापित कर देने के बाद व्रजेश्वरी उनका मस्तक चूमने लगीं। बलदेवजी ने आलिङ्गन किया। यशोदाजी अपने कोमल कर से उनके वाम बाहु और करतल का लालन-चुम्बन करने लगीं। श्री रोहिणीजी ने मणि-दीपक से नन्दनन्दन की आरती उतारी। ब्राह्मण और ब्राह्मणियों ने दही-दूर्वा नन्दनन्दन के मस्तक में लगाकर उनको आशीर्वाद दिया। उपनन्द, सनन्द आदि ने वात्सल्य से आलिङ्गन किया और उनका मस्तक सूँघने लगे। अनुरागिणी व्रजसुन्दरियाँ केवल अपने प्रबल अनुराग से प्रियतम के दर्शन करने लगीं। मधुराधर व्रज-युवराज पर देवी-देवता कुसुमों की वृष्टि करने लगे। सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, किंपुरुष लोग नन्दनन्दन का स्तव-गान करते कहने लगे :

'हे नन्दात्मज ! तुम्हारी जय हो ! हे वृन्दावन-रसकन्द ! अनन्त कल्याण-गुणगणों के समुद्र ! आपके चरण-कमलों से चैतन्य-मकरन्द निकलता है ! नखों की कान्ति आकाश के चन्द्रमा को जीत लेती है। आपने अपने अद्भुत कर्म से व्रजवासियों के हृदय को विगलित कर दिया। शोक हटा दिया। हे व्रजवल्लभ ! आपकी महिमा व्रज में फैल गयी है। हे श्याम-शरीर ! जन्म-भर में एक बार भी कोई कह दे कि 'मैं तुम्हारा हूँ' तो तुम उसकी सदैव रक्षा करते हो। आपके चरण-कमल की शरण जा भक्तजन जन्म-मृत्यु का दुःख दूर कर लेते हैं। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त पार्षद सदा आपकी चरण-सेवा करते हैं। हे गोकुलेन्द्र-पुत्र ! आपके चरित्र विचित्र हैं। आप देवों के भी देव हैं। आपके चरणों में हमारा नमस्कार है।

देवराज इन्द्र ने क्रुद्ध हो अपने भृत्य संवर्तक आदि मेघों को व्रज का

नाश करने के लिए भेजा था, पर आपने अपनी वाम भुजा से लीलापूर्वक गिरिराज को धारण कर लिया, मानो आपके कर-कमल गिरिराज की शय्या हो और देवराज इन्द्र का सारा गर्व हरण कर लिया। हे व्रजजनवन्धो! करुणासिन्धो! इस जगत् में हम लोग आपकी माया में ऐसे फँस रहे हैं कि स्वयं प्रकट विहार करने पर भी आपको नहीं भजते। हे गोपीजनवल्लभ! आपका विग्रह सुखमय है। उसमें महत्तत्त्व, प्रकृति, अहङ्कार आदि कुछ भी विकार नहीं है। करुणा ही आपके अङ्ग का आभरण है। परमहंस लोग सदा आपके गुण-गान करते हैं। आपके निज जन ही सुख प्राप्त करते हैं। आपका यह स्वरूप जगत् के लिए नित्य-नव पदार्थ है। इस स्वरूप से आप व्रज-जनों का अनुरञ्जन करते हैं। जिसमें सुख हो, ऐसा करते हैं। आपके अङ्ग नवीन जलधर के-से हैं। आपका स्वरूप रसमय है। इस स्वरूप ने पृथिवी पर प्रकट हो उसका सारा दुःख हर लिया और अपना यश भी प्रकट किया है। हे कृष्ण! आपकी जय हो! अनुरागियों पर आपकी बड़ी तृष्णा रहती है। जिसने आपके चरण-कमल के मधु का एक वार भी पान कर लिया, वह फिर मोक्ष की भी आकांक्षा नहीं करता। धर्म, अर्थ, काम में भी उसकी चित्त-वृत्ति नहीं जाती। फिर उनका अपने स्त्री, पुत्र, गृह, सुहृदों की क्षणिक सुखमय बातें सुनने में जी क्यों लगे? आप ही उनके भवन, सम्पत्ति, सुहृद्, गुरु, यश सब कुछ हैं। आपकी कृपा निरुपाधिक है। हम आपका कैसे स्तवन कर सकते हैं? आप स्तुति से परे हैं। शब्द आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं, फिर भी अनुरागी जन अपनी आर्ति से सब कुछ कह सकते हैं।

हे कमलनयन! आपके अङ्ग-माधुर्य का हम क्या वर्णन करें? आपके दन्त मोती की पंक्ति अथवा फल की श्रेणीसदृश हैं। आपके कर में सदैव वंशी विहार करती रहती है। सोने के कुण्डल गण्ड-स्थल में नृत्य करते हैं। आपके विशाल वक्षःस्थल पर हारों के साथ वनमाला विलास करती है। लक्ष्मीजी स्वर्ण-रेखा वन आपके वक्षःस्थल में अधिष्ठित हैं। आपकी अङ्ग-शोभा को देखकर कन्दर्प का दर्प चूर्ण हो जाता है। हाथी के शुण्ड-सा आपके भुज-युगल का विलास अद्वितीय है। जगत् में आप ही श्रेष्ठ पुरुष हैं। परम गुणवान् देवराज का गर्व आप ही दमन कर सकते हैं।

नन्दनन्दन! कृपा करके हमारा पालन कीजिये। देवता आपका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। आप त्रिभुवन का दुःख हरण करते हैं। भक्तों के चित्त में सदैव वास करते हैं। संसार का प्रभाव खण्डन करते हैं। आपके

केश में मोरपिच्छ विराजित है। यमुना-तट-कुञ्ज के तमाल को आपका वर्ण निन्दित करता है। हम आपको बार-बार भजते हैं।'

प्रथम शाखा जब ऐसे स्तव-गान कर चुकी, तब दूसरी शाखा ने स्तव शुरू किया : 'भगवन्, तुम्हारी जय हो! हम पर कृपा करो! जिस तरह आपके चरणों की शरण ले सकें, ऐसी बुद्धि हमें प्रदान करो। हमारा संसार-भय दूर करो। हमारा कल्याण करो। हे कुञ्ज-विहारी, परिहास वचन में परम दक्ष! भक्तों के भावों को भलीभाँति समझनेवाले आपके वचन श्रवण के लिए रसायन-तुल्य हैं। आपके नयन-युगल अति मनोहर हैं। आपके नयनों को देख मन्मथ का चित्त भी फिर जाता है। आपकी कृपा से सारे ताप मिट जाते हैं। जिस भाव से जो आपका भजन करते हैं, आप उसे वैसा ही अपना रूप दिखाते हैं। यमराज-सा देवराज का क्रोध आपने खण्डित कर दिया। आपने अपने वाम कर में गिरिराज को उठाकर व्रजवासियों को निर्भय कर दिया। आपके रूप की उपमा इस जगत् में कोई नहीं। आपने अपने कर में कमल-सा गिरिराज को धारण कर लिया। आपके चरित्र विचित्र और परम पवित्र हैं। आपने चराचर, स्थावर, जङ्गम, खेचर, भूचर सबको अपनी इस लीला से विस्मित कर दिया। यह आपका महान् प्रभाव है। हे गोपवल्लभ! गोकुल की रक्षा में आप अति निपुण हैं। आपकी दया की तुलना नहीं हो सकती। आप जीवों की सभी अभिलाषाएँ पूरी करते हैं। आपका विग्रह सच्चिदानन्दघन है। इस विग्रह से आप शत्रु का निग्रह और साधक पर अनुग्रह करते हैं। अङ्ग में पीत वसन धारण करते हैं। आपने महागर्वित देवराज को पराजित कर गोकुल की रक्षा की। आपकी जय हो!'

तृतीय शाखा ने स्तवन किया :

'हे देव! आपने पूतना, बकासुर, वत्सासुर का गर्व खण्डन किया। कालिय नाग का बल हरण किया। शत्रुओं का विनाश किया। ब्रह्माजी भी आपके चरणों का वन्दन करते हैं। आपने दावानल को शान्त कर दिया। व्रजवासियों पर आपकी परम प्रीति है। व्रजगोपियों का केवल आप पर ही अनुराग है। उनके वस्त्र हरण करते समय आपने नाना हास-विलास किये। याज्ञिक-ब्राह्मणियों के प्रेम का आपने उत्सव के साथ अङ्गीकार किया। उनका स्वादु अन्न आप और आपके सखाओं ने बड़े प्रेम से भोजन किया। आपने हठपूर्वक देवराज इन्द्र का यज्ञ नष्ट कर दिया। फलस्वरूप पुरन्दर ने रुष्ट हो प्रबल वर्षा की, पर आपने गिरिराज को धारण कर महान् उत्सव मनाया। ब्रह्माण्ड के जीवों का क्रोध आप नष्ट करते हैं।

हे जनलोचनरोचन विभो ! आपकी जय हो ! आपने गिरिराज गोवर्धन के शिखरों पर नन्दनवन से जड़मूल उखाड़े वृक्षों को सुशोभित कर दिया। हे सज्जनानन्द-वर्धक ! हम किंपुरुष* आपका क्या मङ्गलमय स्तव-गान कर सकते हैं ! हे भगवन् ! आपके गुणों को कौन भलीभाँति जान सकता है ? आपके गुण तो केवल आपके स्वरूप में ही हैं। आप अपने करुणा गुण से दुर्गत, हीन सुदीनों का जैसे पालन करते हैं, वैसे ही आज कृपा करके हमारी भी रक्षा कीजिये। अभक्त आपकी यह महिमा नहीं जान सकते। जिस तरह हम आपकी कृपा से आनन्द के सिन्धु में डूब सकें, ऐसी हमें बुद्धि दीजिये। आपकी जो भक्ति करते हैं, वे तमोगुण से रहित हो जाते हैं। हमारी कुमति का खण्डन कीजिये। आपके चरणों में वार-वार प्रणाम हैं ! हे ईश ! आपकी अङ्ग-कान्ति अप्रमेय है। जगत् में उत्तम जीवों के चित्तों में आप विहार करते हैं। शत्रुओं का विनाश करते और साधुओं की रक्षा करते हैं। प्रतिक्षण आनन्द देते तथा अहङ्कारियों का गर्व खण्डन करते हैं। आपकी कृपा से व्रजभूमि पल रही है। व्रजेश्वर और व्रजेश्वरी की आप प्रीति-मूर्ति हैं। हम आपके उस विग्रह का भजन करते हैं। हे श्री बलदेवजी के छोटे भाई ! आप महान् सुख प्रदान करते हैं। आपके चरित्र सर्वश्रेष्ठ व अप्राकृतिक हैं। आपकी सेवा से दुष्कृत्य भाग जाते हैं और जीव संसार से मुक्त हो जाते हैं। हे बन्धन-मोचन ! इतने दिन आपका भजन न करने से हमारे हृदय अनुतप्त रहे हैं। आप विनाश और रक्षा दोनों ही कर सकते हैं।

इस जगत् में श्रेष्ठ गोप-कन्याएँ सबसे अधिक सौभाग्यवती हैं। उनमें भी श्री राधिका सर्वाधिक सौभाग्यवती हैं। श्री राधिका के साथ विलास में कन्दर्प का गर्व यथार्थतः आपने विनष्ट कर दिया। अपने अनुगत जीवों के हृदय में आप सदा उत्सवरूप से प्रकट रहते हैं। हे सर्वदत्त (सब कुछ देनेवाले) ! ब्रह्मादिक देव सभी आपका पूजन करते हैं। आप साधकों को अभीष्ट फल का दान करते हैं। आपकी मूर्ति तुष्टि, पुष्टि और हर्ष प्रदान करती है। आपकी कीर्ति-कथा से दुःख नाश होकर सुख प्राप्त होता है, उत्कण्ठा खूब बढ़ती है। स्वयं कन्दर्प व्रज-गोपियों के नूपुरों और किङ्किणियों की ध्वनि सुनकर अपना अहङ्कार त्याग बैठता है। अनन्तदेव भी आपकी महिमा नहीं जान पाते। फिर हम जैसे अधम आपको कैसे जान सकते हैं ? आप जगत्

---

* कुत्सित पुरुष या देवयोनि-विशेष।

का उद्धार करने के लिए ही इस भूमण्डल पर आये हैं। आप सुख की मूर्ति हैं। आपका स्तवन कौन कर सकता है? आपका तत्त्व विज्ञों की बुद्धि से भी अगम्य है। आप अनिर्वचनीय और अपरिच्छिन्न* हैं।

हे हितकारी! आपके हृदय के भाव को हम नहीं जान सकते। हे देव! स्वयं महादेवजी भी आपके अन्तर का भाव नहीं जान पाते, फिर स्वर्गवासी देवता कैसे जान सकते हैं? फिर जड़ (जल और धन) में वास करनेवाले वरुण-कुवेर आपको कैसे जान सकते हैं? हे प्रभो! हमारे हृदय में वास कीजिये। इस जगत् में जितने असुर हैं, उनका नाश कर जगत् का कल्याण कीजिये।

आपकी अङ्ग-कान्ति कज्जल का भी तिरस्कार करती है। व्रज में अप्राकृत नव कन्दर्प का प्रभाव आपने ही बहाया है। आपके चरणों में बार-बार नमस्कार है!'

इस प्रकार स्तवन करते-करते जब सिद्ध-गन्धर्व आदि के शब्द दशों दिशाओं में भर गये, तब व्रजवासी विस्मित हो व्रजपुर के रक्षक नन्दनन्दन के पास आकर व्रजराज से निवेदन करने लगे :

'हे व्रजाधीश! हृदय में कुछ संशय है। आप कृपा करके प्रश्न का उत्तर देकर उसे दूर कीजिये। आज देवराज इन्द्र ने अपना यज्ञ भङ्ग होने पर संवर्तक आदि मेघों को व्रज के विनाश के लिए भेजा। उस समय उस उपद्रव को हटाने के लिए आपके इस बालक ने कौतुक के साथ ही अपने कोमल वाम कर में गिरिराज को कैसे उठा लिया? मेनका-दुहित्री-नाथ के लिए दुर्धर, ऊपर और चारों ओर बहते जल से युक्त पुष्कर (कमल) को मदमत्त गजेन्द्र की तरह आपके इस पुत्र ने कमलवत् गिरिराज को ७ दिन और ७ रात तक धारण किया। इसलिए हम पूछते हैं, यह कौन है? और देखिये, आपके इस पुत्र ने जनमते ही छठे दिन अपने अधरों से विषमिश्र स्तन का पान कर पूतना के प्राण हर लिये तथा उसके अङ्ग को भी पवित्र कर दिया। तीन महीने में शकटासुर का भञ्जन किया। उसके बाद तृणावर्त को नष्ट किया। पश्चात् अघासुर, बकासुर, वत्सासुर, कालिय नाग पर भी विजय पायी। असुरों के साथ लड़ाई करने और उन्हें मार गिराने में इनको जरा भी श्रम नहीं होता।

व्रजवासी आपके पुत्र को अपने पुत्रों से भी अधिक क्यों प्यार करते हैं?

* परिमाण-रहित और व्यापक।

यही नहीं, उनकी वह प्रीति दिन-दिन बढ़ती है और स्वाभाविक पायी जाती है। हम यह सब ठीक से जान नहीं पाते। सो आपसे पूछते हैं कि इसका क्या कारण है? कृपा कर बताइये।'

व्रजवासियों के ये वचन सुनकर तनिक हँसते हुए व्रजराज बोले: 'हे गोपगणो! हमारी बात सुनकर हृदय का संशय दूर कीजिये। हमारे पुत्र के नामकरण के समय श्री गर्गाचार्य ने यहाँ आकर इसके विषय में जो कुछ कहा था, उसे सुनकर हमारे सारे संशय दूर हो गये। गर्गजी बोले थे:

तुम्हारे पुत्र के सौभाग्य की हम थाह नहीं देखते। हमारी बात झूठी मत समझना। हम परमहंस विद्या के पार पहुँचे हैं, फिर भी इनके चरित्र को समझ नहीं पाते। तुम्हारे पुत्र के ४ युगों में ४ वर्ण हैं। सत्ययुग में शुक्ल वर्ण, त्रेता में रक्त वर्ण, द्वापर में श्याम वर्ण तो कलियुग में कृष्ण वर्ण, और विशेष कलियुग में पीत वर्ण! तुम्हारे इस पुत्र ने कभी वसुदेव के यहाँ भी जन्म लिया था। फिर भी इसकी तुम ऐश्वर्य-महिमा पर ध्यान न दो, यह समझो कि यह हमारा पुत्र ही है। तुम्हारे पुत्र को जो प्यार करेंगे, उनके हृदय में तनिक भी दुःख न रहेगा। तुम्हारा यह पुत्र जगत् में मङ्गल और सुख का विधान करेगा। सब नर-नारी की प्रीति तुम्हारे पुत्र पर होगी। कोई शत्रु आपके पुत्र पर प्रभाव न दिखा सकेगा। नारायण भगवान् तुम पर प्रसन्न हैं। वे तुम्हारे पुत्र में अपना शक्ति-संचार करते रहेंगे। तुम इनकी शक्ति देख हृदय में सम्भ्रम न लाना। किन्तु पुत्र-भाव से ही इसे देखना। आप अपने पुत्र को कभी नारायण न समझना। अपने पुत्र की महिमा श्रवण कर अपना वात्सल्यभाव कभी न खोना। यदि इस बालक पर तुम लोग कुछ सम्मान-आदरभाव, परकीय भाव रखोगे तो मन में दुःख पाओगे। यह सदा तुम्हारी दया का पात्र है। इसलिए आप लोग गर्गाचार्यजी के ये वचन हृदय में धारण कर अपने पुत्र-सा ही मेरे पुत्र को समझो।' व्रजवासी यह सुन प्रसन्न हो अपने-अपने घर चले गये।

इस तरह जब सब कोई निश्चिन्त हो गये, तब देवराज इन्द्र ब्रह्माजी के पास पहुँचे। जब ब्रह्माजी ने उनको नन्दनन्दन का तत्त्व भलीभाँति समझाया, तब उन्होंने अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगने के निमित्त ब्रह्मा की बात मान गो-लोक में (सुरभि-लोक, जो ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत है) सुरभिदेवी के पास पहुँचे। उधर सुरभिदेवी अपनी सन्तान की रक्षा नन्दनन्दन से होती देख उनके दर्शनार्थ बड़ी इच्छुक थीं। जब देवराज इन्द्र ने अत्यन्त लज्जित

होकर अपनी सहस्र आँखों से आँसू बहाते उसके समक्ष शरणागति ली, तब उनका साथ ले सुरभिदेवी व्रज में पधारीं।

इधर नन्दनन्दन व्रज में गिरिराज पर पहले से ही आ बैठे थे कि गिरिराज को वर्षा से कष्ट तो नहीं हुआ। श्रीकृष्ण अकेले (अद्वितीय) वहाँ आये। सुरभिदेवी ने आदर के साथ सामने आकर सरस्वती की तरह उनका स्तवन करना शुरू कर दिया :

'हे देव ! तुम व्रजराज की राजधानी के कस्तूरी-तिलक हो। हमारी यह विशेष बात सुनो। गौओं और व्रजवासियों के वध के लिए इन्द्र की चेष्टा से जितना सारा उपद्रव व्रज में हुआ, तुमने अपनी महिमा प्रकट कर सबसे व्रज की भलीभाँति रक्षा की। हम जो तुम्हारे पास आये हैं, सो ब्रह्माजी द्वारा प्रेषित आये हैं। उनकी आज्ञा है कि 'सुरभे ! तुम व्रज में जाओ। दैव से प्रेरित शतमन्यु ने क्रोध कर व्रज में जो भारी विपत्ति खड़ी कर दी, महा-करुणामय नन्दनन्दन ने उससे गौओं और व्रज की भलीभाँति रक्षा की। इस लीला को स्मरण कर श्री नन्दनन्दन का आनन्द के साथ 'गोविन्द' नाम के साथ अभिषेक करो।' ब्रह्माजी किन्नर, गन्धर्व आदि देवताओं को लेकर आपके इस अभिषेक-उत्सव की शोभा बढ़ाने पीछे-पीछे आ रहे हैं। आपके आगे यह अपराधी इन्द्र खड़ा है। अपने अपराधों के लिए क्षमा की भिक्षा माँगने आया है। घोर अपराधी होने से आगे नहीं आता। आज्ञा करें तो आपके चरणों के पास आकर अपने हृदय की बात कहें।'

सुरभि ने इङ्गित किया और देवराज गर्व छोड़कर मस्तक के मुकुट की मणियों की कान्ति तथा सहस्र नयनों की जलधाराओं से नन्दनन्दन के चरणों का प्रक्षालन करने लगे। कम्पित होते हुए उन्होंने उनके आगे दण्डवत् प्रणाम किया। बहुत देर के बाद उठकर अञ्जलि बाँधे अपराधी-सा मुँह नीचा कर प्रभु के नखचन्द्र की कान्ति का दर्शन करते-करते विनय के साथ स्तवन करने लगे :

'प्रभो ! आप सकल लोकपालों के नाथ हैं ! हे व्रजपुर-नाथ सुत ! आप परम स्वतन्त्र हैं। आपकी महिमा हम जैसे अधम कभी अनुभव नहीं कर सकते। हम तो गर्वरूप मदिरा का पान कर अन्धे हो गये थे, फिर आपकी महिमा कैसे जान सकते ? मेचक (उलूक) जैसे अपनी दृष्टि के दोष से सूर्य को नहीं देख पाता, हमारी भी वैसी ही अवस्था थी। गर्वरूप मदिरा से जिनकी दृष्टि विनष्ट हो गयी, उनको ऐसा ही दण्ड देना उचित है। आपका यह

दण्ड हमारे लिए उपकार (पथ्य) है। आज आपने यह दण्ड दे मुझ पर उपकार ही किया। किन्तु खल-प्रकृति हमने इसे अपकार ही समझा। (हमारा कहना ही क्या, जो रजोगुण से व्याप्त हैं।) सच तो यह है कि रजोगुण के पार जाकर भी मुनि लोग विषय की अभिलाष कर आप, आत्मस्वरूप को भूल जाते हैं। यदि आप अपनी ऐसी माया न दिखाते तो हमारा यह गर्व कैसे दमन होता ? हे व्रजपुरनन्दन, मङ्गलमय अवतार, आपकी जय हो ! इस जगत् में आप ही अपने नाम-रूप की उपमा हैं और नहीं। दामोदर, वासुदेव, सुदाम, सुबल आदि के बन्धो, हे दुर्गम ! आपके चरण-कमलों में हमारे बार-बार नमस्कार हैं। आप कृपा कर हमें अपने चरणों में स्थान दीजिये।

प्रभो ! आपके कटाक्ष दुर्घट को सुघट कर सकते हैं और सुघट को दुर्घट। हे जन्मरहित ! देवताओं के सुख के लिए आप अंश से अनेक बार अवतार लेते हैं तो कभी हमारे स्वर्ग में उपेन्द्ररूप से आते हैं। आज सुरभि-देवी का यह अभिषेक स्वीकार कीजिये। आपका 'गोविन्द' नाम यद्यपि नित्य-सिद्ध है, तथापि सदा गोचारण करने से आपकी गौ-प्रीति इस नाम से जगत् में विस्तृत हो, यही हमारी इच्छा है। हे गोपेन्द्रात्मज ! आज इस अभिषेक में अपने 'गोविन्द' नाम को अलङ्कृत कीजिये।'

देवराज ने अभिमान त्याग ऐसा स्तवन किया। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार चार पुत्रों के साथ ब्रह्माजी, पार्वतीजी के साथ महादेवजी, लोकपाल-गण, नारदजी, गन्धर्व-श्रेष्ठ तुम्बरु और महर्षि, अरुन्धती सहित सप्तऋषि तथा और भी अनेक लोकपालों के साथ सभी देव, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ सभी नन्दनन्दन के महाभिषेक का दर्शन करने आ पहुँचे। सुरभि ने अभिषेक किया। यह शुभ दृश्य देख सभी आनन्द का अनुभव करने लगे। उसी समय गिरिराज ने अपने अङ्ग से नाना प्रकार के रत्नमय सिंहासन प्रकट किये। वरुणजी ने सिंहासन के पीछे खड़े हो मोतियों का छत्र धारण किया। पवनदेव अपने हाथ में सफ़ेद चँवर लिये खड़े हो गये। चन्द्रदेव ने अपने अङ्ग को मणिमय दर्पण बनाया। पाञ्चजन्य शङ्ख अपना कायव्यूह बनाकर ध्वनि करने लगा। सुदर्शन चक्र अपनी ज्योति से स्थान को आलोकित करने लगा। कौमोदकी (गदा) अभिषेक-उत्सव में मणिमय युग-काष्ठ वन (बलि देने की जगह) विराजित हुई। सातों समुद्र तथा अनेक पुण्य-सलिला नदियाँ अपने-अपने पवित्र जल को मणिमय कलशों में भरकर सदेह वहाँ उपस्थित हो गयीं। पृथिवी देवी मणिमय भाण्ड में सात प्रकार की मृत्तिकाएँ ले आयीं। महोषधि

तथा सर्वोषधियाँ अपना-अपना विग्रह धारण कर वहाँ आयीं। वनस्पतियाँ अपनी-अपनी मूर्ति धारण कर आगे खड़ी हो गयीं। उनके हाथ में इन्द्रनील-मणि का पात्र और उसमें पञ्च कषाय हैं। वनदेवियाँ अपने-अपने हाथों में नारियल आदि नाना फल लेकर तथा गिरिदेवता अपने हाथों में पद्मराग आदि लेकर आये। शङ्ख आदि नव निधियाँ, आठों सिद्धियाँ, चिन्तामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष मनोहर रूपों से अपना-अपना श्रेष्ठ उपहार ले आगे खड़े हो गये।

सुमेरु पर्वत स्वर्ण आभरण ले आया। हिमालय मोतियों का हार और गन्धमादन मानस सरोवर के सोने के कमलों की माला बनाकर लाये। मलय पर्वत मलय चन्दन लेकर गिरिराज के पत्थर पर घिसने लगे। कैलाश पर्वत से गिरिजा पार्वती ऐसी रत्नमाला लायीं, जिसे महादेवजी ने भी कभी नहीं देखा। सूर्यदेवजी ने सप्त ऋषियों द्वारा आकाश-गङ्गा के कमल मँगवाये और उनकी माला बनाकर ले आये। वे कमल चन्द्रमा (जो दर्पण बना है) को देख मुकुलित (कली बन गये) हो गये। अग्निदेव सोने के धूपदान में, जिसमें पद्मरागमणि का ढक्कन लगा है और जिसमें हजारों छेद हैं, अगरु लकड़ी की धूप लाये। गरुड़जी ने अपने स्वर्णमय दोनों पंखों से उस धूप को विस्तारित किया और अनन्तदेव ने अपनी फणाओं से रत्नमयी पताका को धारण किया।

पहले तो वेद का श्रीसूक्त मन्त्र मूर्तिमान् हो उच्चारण करने लगा। उसके बाद पुरुषसूक्त वेदमन्त्र मूर्तिमान् हो अनुदात्त-उदात्त स्वरों से गान करने लगा। मुनिवृन्द 'साधु ! साधु !' कहने लगे।

अब सुरभिदेवी पञ्चगव्य अपने हाथों से बना लायीं। ब्रह्माजी ने पञ्चामृत बनाया। ऐरावत हाथी ने अपनी शुण्ड से मन्दाकिनी का जल लाकर प्रभुस्नपनार्थ इकट्ठा किया। देववृन्द नाना विधि के बाजे बजाने लगे। देवियाँ नन्दनन्दन पर फूलों की वर्षा करने लगीं। किंपुरुष, चारण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर आनन्द के साथ नृत्य करने लगे। अप्सराएँ नाटक के पञ्च अङ्ग (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण) दिखाकर नाटक करने लगीं। नन्दनन्दन को देख उर्वशी आदि अप्सराएँ मोहित हो गयीं और उसी दिन से उनकी भक्त बन गयीं।

पितामह ब्रह्मदेव सुरभि के पास आकर बोले : 'अयि सुरभि ! इसी समय अभिषेक का सुगम मुहूर्त है, सो अयि सरले ! विलम्ब न करो। महादेवजी का आदेश लेकर अभी उसे शुरू कर दो। हम जब तक कृष्णचन्द्र के पास नहीं

पहुँचते, उससे पहले ही अरुन्धती, अनसूया, लोपामुद्रा, वेदमाता पार्वती, देवमाता अदिति, गायत्री, सरस्वती, स्वाहा आदि देवी को साथ कर आप आगे बढ़ो। नन्दनन्दन का आदेश पाने के बाद हम भी तुम्हारे पीछे आते हैं।'

सुरभिदेवी ने जब नन्दनन्दन की आज्ञा प्राप्त कर ली, तब ब्रह्माजी ने सिंहासन पर नन्दनन्दन को बिठाकर, भक्तिभाव से अर्घ्य अर्पण कर उनके चरण-कमलों का प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् आचमन कराया। फिर मधुपर्क प्रदान किया। फिर सुरभिदेवी देवियों के साथ पञ्चामृत से अभिषेक करने लगीं। उसके बाद पञ्चगव्य श्रद्धा के साथ अर्पण किया। फिर सुरभि ने अपने दूध से अभिषेक किया। अभिषेक को देख देववृन्द अपने मन में विचार करने लगे : 'क्या यह नव नीरद (मेघ) की ज्योत्स्ना से अभिषेक हो रहा है ? (भगवान् = मेघ तो दूध सफेद) अथवा श्याम गुण को श्वेत गुण से अभिषेक किया जा रहा है ? अथवा इन्द्रनील मणि को शुद्ध स्फटिक मणि-कान्ति से, अथवा तमाल को मुक्ता से, अथवा नीलकमल को चन्द्रकान्त मणि से अभिषेक कराया जा रहा है ?'

उसके बाद गायत्रीदेवी, पार्वतीजी, अदिति और अरुन्धती ने भगवान् के अङ्गों में वात्सल्य भाव से अपने हाथों से सुगन्धित उबटन लगाया। अभिषेक की सब सामग्री को मन्त्र से शुद्ध कर और उसको आकाशगङ्गा के जल का छींटा देकर एक-एक वस्तु हाथ में ले सनकादिक तथा सप्त ऋषियों ने उनसे गिरिधारी का अभिषेक किया। उसके बाद सात समुद्र और नदियाँ अपना-अपना जल अपने करों में लेकर ब्रह्माजी को देने लगे। ब्रह्माजी सात्विक भाव से गद्‌गद होकर नन्दनन्दन का अभिषेक करने लगे। अभिषेक के बाद अरुण वर्ण सुगन्धित तेल अङ्ग में लगाकर पार्वतीजी आदि देवियों ने सुशीतल जल में कर्पूर डालकर सहस्रधारा से स्नान कराया। चिन्तामणि, कल्पतरु, कामधेनु आदि ने अपने-अपने प्रभाव से हजारों कुमारियों को प्रकट करके उनके हाथ में सूक्ष्म सफेद कोमल वस्त्र दे अङ्गों का अभिषेक-जल पोंछवाया। किसीने केश तो किसीने वदन का, किसीने वक्षःस्थल का तो किसीने भुजाओं का जल पोंछा। जल पोंछकर सूक्ष्म पीत रेशमी धोती कटि में धारण करायी, गीले वसन हटा लिये। उसके बाद देववृन्द जो आभरण और अनुलेपन लाये थे, कन्याओं ने अपनी चतुरता के साथ उनको यथायोग्य स्थान में धारण करा दिया। पार्वतीजी के आदेश से केशों की प्रसाधना करके उन्हें अच्छी तरह सँवार दिया गया।

नन्दनन्दन को यह उत्सव आनन्ददायक न था। कारण, वे देववृन्द के सामने अपनी गौओं, सखाओं तथा प्रियाओं से मिल नहीं सकते थे। केवल देवताओं के अनुरोध से उन्होंने सब पदार्थ स्वीकार कर लिये। मन में दुःख अनुभव होते भी महान् गम्भीर हृदय होने से हृदय का उद्वेग उन्होंने बाहर प्रकट होने नहीं दिया। बाहर तो भक्तवत्सलरूप धारण करके जिसने जो कुछ अर्पण किया, भगवान् ने सादर स्वीकार कर सुखी भाव ही प्रकट किया। चतुर्मुख आदि देववृन्दों ने स्नान के बाद अलङ्कार धारण किये देख आनन्द में भरकर कल्पतरुओं के बनाये हुए सर्वतोभद्र मण्डल में भगवान् को बिठाया और फिर उनका चरण-प्रक्षालन करने लगे।

ब्रह्माजी मन में पूजा के विषय में विचार करने लगे कि 'किस तरह नन्दनन्दन का दोष-रहित पूजन करें ? अर्चन का क्या मन्त्र हो ?' ब्रह्माजी को विचार-मग्न देखकर महादेवजी बोले : 'हे चतुरानन, चतुर लोग इतना नहीं सोचते, आपके आगे खड़े बालक भगवान् का अर्चन करें !'

महादेवजी की यह बात सुनते ही ब्रह्माजी ने अपने आगे गोविन्द-अभिषेक-योग्य 'गोविन्द' के नाम से अङ्कित अष्टादशाक्षर मन्त्र को मूर्तिमान् सामने देखा। उनके अङ्ग से अपूर्व कान्ति निकलती है, जो अभिषेक के आनन्द को बढ़ा रही है। ऐसा आनन्द देखकर ब्रह्माजी उल्लसित हुए और तब समझे कि यह महामन्त्र स्वयं आविर्भूत हुआ। मुझे पहले कुछ भी यह न मालूम था कि इस महामन्त्र के ऋषि श्री नारदजी हैं और गायत्री छन्द है। नारद, गायत्री तथा मन्त्र सभी इस समय यहाँ उपस्थित हैं। आज इस महामन्त्र से नन्दनन्दन का अर्चन करेंगे।

यह विचार करके ब्रह्मदेव ने सामग्री आगे ली। सनक आदि तथा देवर्षि नारदजी, भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादजी, भक्ति-रस में निष्ठावाले ध्रुवजी तथा अन्यान्य परम भागवतों को साथ लेकर भगवान् के आगे जाने से पहले सबने अपने-अपने पाद-प्रक्षालन किये। फिर उनके आगे जाकर पद्मासन पर बैठ चारों दिशाओं को मन्त्र से बाँध लिया। भगवान् की कृपा से उनकी पूजा के समय चारों तरफ चार मुखवाले ब्रह्माजी के चारों मुख एक ही तरफ अर्थात् प्रभु के सामने ही हो गये। सो आनन्दित होकर आठों नयनों से भगवान् का वे दर्शन करने लगे। भगवान् के चरण में अर्घ्य अर्पण करने के लिए शङ्ख में क्षीरसागर का पवित्र जल ग्रहण किया। उस शङ्ख के रखने को सुमेरु पर्वत ने सोने की त्रिपादिका दी। कैलास पर्वत ने अभिषेक के लिए स्फटिक म ण

की छोटी-सी लुटिया अर्पण की। हिमालय पर्वत ने पूजा की और विभिन्न अपरिमित सामग्रियाँ दीं। देवगणों ने उस समय नन्दनवन से पारिजात लाकर दिये और गन्ध, पुष्प, धान, जौ, कुश, तिल, सफेद सरसों यह अर्घ्य के जल में अर्पण कीं। पाद्य के जल में धान, अपराजिता फूल, कमल, आचमन में लौंग, इलायची, कपूर, जातिफूल (जूही) अर्पण किये। धरणीदेवी ने अपने अङ्ग में से श्रेष्ठ गन्ध भेट की। कल्पवृक्षों ने नवीन आभरण और श्रेष्ठ पीताम्बर दिये। मलय पर्वत ने अगर और मलयचन्दन का धूप दिया। आरती के लिए कपूर की बत्ती तथा सुरभिदेवी ने अपने दूध के माखन से घी निकालकर रूई की बत्ती बनाकर दी। कामधेनु ने पञ्चगव्य दिये। इसके सिवा देवियाँ भी पृथक्-पृथक् द्रव्य लायी थीं। शचीदेवी ने अपने हाथ में जाम्बूनदाभ (सोने-से) लाल ताम्बूल की बीड़ियाँ बनाकर दीं।

अभिषेक की यह दिव्यातिदिव्य सामग्री सामने देख ब्रह्माजी पूजा में विचक्षण होते हुए भी आनन्द से स्तब्ध हो गये। जब वे बैठे थे, तब मन्त्र के ऋषि तन्त्रधारक बन पूजा का क्रम बता रहे थे। मन्त्र उच्चारण कर जब भगवान् के चरण में अर्घ्य आदि अर्पण किया जाने लगा तो देव-दुन्दुभियाँ अपने-आप बजने लगीं। अप्सराएँ नवीन जन्म पाकर नाचने लगीं। गन्धर्व का गान नवयौवनयुक्त हुआ। चारणगण नवीन स्तव गाने लगे। वह समय ही अपूर्व दिव्य समय बन गया। चित्त भी नवीन हो गया। पूजा के समय कार्तिकस्वामी ने भगवान् के मस्तक पर छत्र धारण कराया। ब्रह्माजी ने आनन्द में विह्वल होकर मणि से मण्डित स्वर्णमुकुट मन्त्रों से शुद्ध करके भगवान् के मस्तक पर धारण कराया और कस्तूरी से भगवान् के ललाट पर महाराजाधिराज का तिलक लगाते हुए कहा : 'आज से आप सब देवों के देवेन्द्र 'गोविन्द' कहे जायँगे।'

भगवान् का 'गोविन्द' नाम सुनकर महर्षि तथा सनक-सनन्दन आदि हर्ष से स्तवन करने लगे : 'हे श्री वृन्दावन-मदन ! हे श्री नन्दात्मज ! आप अपने प्रिय वर्ग के साथ देववन-वृन्दावन में विलास कर रहे हैं। आपके चरण-कमल से चिदानन्द मधु बह रहा है। हे गोविन्द ! निखिल जगत् के आप ही मूल कारण हो। आपके चरण-कमलों में बार-बार नमस्कार है।'

स्तवन के बाद तुम्बरु के साथ नारदजी गिरिधारण-लीला को वीणा पर बजाकर गान करने लगे। नारदजी का गान सुनकर मन्दाकिनी में अवगाहन

करके जिनके अङ्ग से विभूतियाँ दूर हो गयी हैं, वे महादेवजी हड्डियों तथा नर-कपाल की माला और सर्परूप आभरण छोड़ मणिमय दीप हाथ में ले आरती करने लगे। अभिषेक के अङ्गरूप नीराजन के अन्त में मन्त्रपूत मही गन्ध, शिलाधान्य आदि का महर्षि लोगों ने श्री नन्दनन्दन के मस्तक से स्पर्श कराया और पुनः उन्हें सोने की डिबिया में रख दिया। फिर सब मिलकर मन्त्र के साथ भगवान् का महानीराजन करने लगे। तब गायत्री, अरुन्धती, देवमाता और देवपत्नियाँ भगवान् को घेर एक-दूसरी का हाथ पकड़े खड़ी हो गयीं। कोई किसीके दक्षिण हाथ को, तो कोई किसीके वाम हाथ को पकड़ी थी! हरएक के दूसरे कर में दीप था। इस तरह सबने प्रभु का नीराजन किया।

महोत्सव के अन्त में ब्रह्माजी ने भगवान् का प्रसाद पहले परम भागवत विश्वक्सेन तथा फिर गरुड़जी को दिया। फिर शङ्ख आदि नवनिधियाँ और कल्पतरु, चिन्तामणि, कामधेनु को आदेश कर देश-काल अनुसार भगवान् के महोत्सव की समाप्ति करायी। ब्रह्माजी की आज्ञा पर देवता, उपदेवता, उनकी पत्नी, वनदेवता, गिरिदेवता अच्छी तरह भगवान् को भूषण और वसन धारण कराने लगे। इसके बाद श्री गोविन्दजी की प्रदक्षिणा करके अनुरागी और परम विज्ञ लोकपितामह आदि विदा हुए। केवल देवराज इन्द्र सुरभि के साथ थोड़ी देर के लिए रह गये।

भगवान् का यह गिरिराज-धारण कोई विशेष विचित्र ऐश्वर्य नहीं है, सब कोई उनके अंश, अंशांश, कला-विभूति ही हैं, जिन्होंने भगवान् का आदर और सत्कार किया है। इसमें विस्मित होने की बात ही नहीं।

जब सब देववृन्द चले गये, तब अपने आगे खड़े देवराज को देखकर कौतुक के साथ भगवान् बोले : 'हे शतमन्यो! अब आपका क्रोध तो शान्त हो गया? आप हमारे आगे अपने हृदय का भाव नहीं छिपा सकते। हम आपके गर्व को तोड़ना नहीं चाहते। यह केवल हमारा आनन्द-कौतुकमय विहार है। हमारा एक स्वभाव है कि अपने जन के हृदय में गर्व को हम नहीं देख सकते, इसलिए अपने दास को आप ही दण्ड देते हैं।

हे शतमुख! तुम्हारे यज्ञ को जो हमने भङ्ग किया, उसमें भी तुम पर कृपा ही की है। आज से और किसीके गुण में दोष का आरोप मत करना। अब यहाँ से जाओ। अपने लोक में जाकर सुख के साथ अपना वैभव भोग करो।

आज तुम्हारे हृदय में जैसी भक्ति प्रकट हुई है, इसी भक्ति की शरण लो और कभी ऐसे उन्मत्त मत हो।'

इतना कहकर भगवान् ने मौन धारण कर लिया। देवराज इन्द्र ने भगवान् के चरण में साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और चार बार परिक्रमाएँ लगाकर अपने स्वर्गलोक को चले गये।

सुरभिदेवी व्रज की गौओं के ऊपर अपनी वात्सल्य दृष्टि देकर अपने (गो) लोक को चली गयी। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने अङ्ग से वसन-भूषण उतार और फिर पहला-सा वेश धारण करके सखाओं से जा मिले।



सोलहवाँ स्तवक

ब्रह्मलोक-दर्शन

जिनका चरित्र सुनकर हृदय पवित्र और श्रवण (कान) धन्य-धन्य होते हैं, जिनके गुण और लीला श्रवणकर्ताओं के मन हर लेते हैं, लक्ष्मीजी भी बड़े आदर से जिनके श्रीचरणों का लालन करती हैं, जिनके ललाट में कस्तूरी तिलक विराजित है, केसर-कुसुम मनोहर केश-कलाप में विभूषित हैं, अपनी स्वरूप-लीला से जो व्रज में गोपियों का सौभाग्य प्रकट करते हैं, जिन्होंने अपने रूप से कोटि कन्दर्पों को जीत लिया है, अपने प्रभाव से लोकपालों का गर्व हरण कर लिया है, महादेव आदि देववृन्द जिनके चरणों की उपासना करते हैं, वे व्रजपुर-पुरन्दर-नन्दन नन्दनवन के अधीश्वर देवराज इन्द्र का गर्व खण्डन कर गिरिराज को धारण करते हुए जगत् को 'गोविन्द' नाम से प्रकाशित करने लगे हैं। व्रजवासियों का उनमें दिन-दिन अनुराग बढ़ने लगा।

भगवान् सदैव की तरह नित्य अपने सखाओं के साथ वन में आते और वहाँ गोचारण तथा रसमय विहार कर शाम को अपने भवन पधारा करते।

एक दिन की बात है, व्रजराज ने अपनी बुद्धि की शुद्धि के लिए एकादशी का उपवास किया। व्रत की पूर्ति के लिए रात्रि के अन्त में अर्धकला द्वादशी देखकर एकादशी के बीच ही स्नानादि कृत्य समाप्त करने के अभिप्राय से रात्रि में ही तीन-चार बन्धुओं के साथ यमुना नहाने चले गये। आसुरी वेला में भगवान् के पिता व्रजराज यमुनाजी में नहाने लगे तो उन्हें उठाकर वरुण के भृत्य अपने महाराज के पास ले गये।

तटवर्ती व्रजराज के बन्धुगण घबड़ा उठे। बोले: 'हाय! यह क्या हो गया? हमारे महाराज कहाँ चले गये?' थोड़ी देर जल में ढूँढ़ने पर भी जब वहाँ उन्हें नहीं पाया, तो वे वहीं से श्रीकृष्ण का नाम लेकर ऊँचे स्वर से पुकारने लगे: 'आर्तबन्धो, असुर-नाशन कृष्ण! आओ, हमारी रक्षा करो! ब्रह्माजी के भी माननीय, आपके पिताजी को स्नान करते गर्वित वरुण-भृत्य न जाने कहाँ ले गये, पता नहीं! आकर अपने पिता का उद्धार कीजिये। आपके बिना इस विपत्ति को नष्ट करने की किसीमें शक्ति नहीं है।'

ब्रजवासियों के ऐसे करुण शब्द सुन नन्दनन्दन ने वरुण-भृत्यों का अत्याचार समझ वरुण महाराज का सौभाग्य बढ़ाने के लिए उसी समय यमुना में प्रवेश किया।

भगवान् जब वरुण के भवन में चले गये तो ब्रजाङ्गनाओं को बड़ा ही दुःख हुआ। यद्यपि वे अपने प्रियतम के सदैव दर्शन न कर पाती थीं, फिर भी यह जानकर कि एक ही ग्राम में बसते हैं सो मानो एक ही घर में वास है, इसलिए सन्तुष्ट थीं। पर जब श्रीकृष्ण वरुण-लोक गये तो प्रियतम के विदेश चले जाने से वे क्षण को युग मानने लगीं। उनकी यह अवस्था हो गयी कि कभी कान खुले होने पर भी शब्द न सुन पातीं, आँखें खुली होने पर भी देख न पातीं। वे न कुछ बोलतीं और न किसीके अङ्ग में कुछ स्पन्दन ही होता। ब्रजगोपियों के अन्तर भी मानो उनके प्रियतम के साथ चले गये। ब्रजेश्वरी राधिकाजी का चञ्चल जीवित भी निकलने लगा। फिर भी स्थिर प्रेम ने रासेश्वरी की देह को जिलाये रखा।

ब्रजेश्वरी के हृदय में इतना दुःख होते हुए भी उनके जीवन का विनाश क्यों न हुआ ? इसका कारण यही है कि इस करुण विप्रलम्भ रस में भी उनको सर्वज्ञ गर्गाजी के वचन स्मरण हो आते और फिर प्रियतम की प्राप्ति की आशा बँध जाती। वे सोचने लगतीं, 'हमारे प्रियतम जब वरुण-लोक से यहाँ आयेंगे, तब उन्हें हमारे सिवा और कौन सुख देगा ? हम अगर अपनी देह छोड़ देंगी तो प्रियतम की दशा क्या होगी ?' यह सोचकर उन्होंने प्राण नहीं त्यागा। प्रियतम के विरह में प्रियाजी की उनके प्रेम ने ही रक्षा की।

ललिता आदि सखियों ने कमल की शय्या बनाकर प्रियाजी को शयन कराया और खस के पंखे से हवा करते हुए चन्दन के जल से अङ्गों पर छींटे दिये, फिर भी प्रियाजी के अङ्ग से ताप न हटा। तब 'मूर्च्छा' नामक सखी ने आकर उनकी कुछ सेवा की, वे मूर्च्छित हो गयीं। प्रियाजी का श्वास चल रहा है या नहीं, यह देखने के लिए सखी ने नासिका के आगे तूल (कपास) रखा और जीवन धारण कराने के लिए कहने लगी कि 'तुम्हारे प्रियतम शीघ्र ही आ रहे हैं !' जब बार-बार सखी के ये वचन प्रियाजी के श्रवणों में पड़ने लगे, तब प्रियाजी ने आँखों को थोड़ा खोला तो ऐसा लगा, मानो अर्ध-विकसित कमल हों। प्रियाजी सोचने लगीं कि सखियों ने तो कहा कि 'अभी प्रियतम यहाँ आयेंगे', पर नहीं आये ! हमारे लिए तो एक-एक क्षण हजार युगों-सा होता जा रहा है। पर इसमें सखियों का क्या दोष ! थोड़ी

देर आँख खोले रखने पर भी जब उन्होंने प्रियतम को न देखा तो और भी परितप्त हो नेत्र मूँद लिये। नयनों से काजल के सङ्ग अश्रु बहने लगे।

उधर करुणावरुणालय जब वरुण-लोक में पधारे तो भगवान् का दर्शन कर वरुणजी ने दण्डवत् उनके चरणों में प्रणाम किया और अर्घ्य, पाद्य आदि महाराजोपचारों से उनका अर्चन करने लगे। अर्चन के बाद वरुणदेव सुखमय भगवान् का स्तव करने लगे :

'हे देवाधिदेव, देवकी-गर्भ-सम्भूत! आपके चरणों में बार-बार नमस्कार हैं। पृथिवी का भार हरने के लिए आपने अवतार लिया है। आपकी मूर्ति कोटि काम से भी मनोहारिणी है। आपका दर्शन कर आज हमारा जन्म सफल हुआ। परमानन्द नन्दतनय! आपके चरण रजोगुण को हरण करते हैं। आज उनसे हमारा भवन पवित्र हो गया। काल आपकी शक्ति है। माया और काल के प्रभाव से अन्ध होकर मैं आपकी महिमा कुछ भी न जान सका। छोटे कीट से लेकर ब्रह्माजी आदि तक इन्हीं दोनों के प्रभाव के अधीन हैं।

माधव! कृपा करके हमारे अज्ञानान्धकार को नाश कर आँखें खोल दीजिये। आज हमारे सेवकों ने आपके पिताजी को लाकर अपकार करके भी हम पर महान् उपकार किया। आपके चरण-कमल की रेणु से हमारा मस्तक भूषित हुआ और हृदय के सारे ताप मिट गये। नन्दनन्दन! आपके चरणों की बार-बार वन्दना करता हूँ।'

वरुणदेव ने भगवान् के चरण-युगल को अपने हाथों पवित्र जल से प्रक्षालित किया और वह पादावनेजन (तीर्थ) मस्तक पर रखा। उससे उनकी सारी विपत्ति भाग गयी और उसी समय से वे अनन्त सौभाग्य के अधिकारी बन गये। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि 'कृपा कर हमारे भवन में जितने रत्न हैं, उनमें से जिस रत्न में रुचि हो, स्वीकार करें। यह सम्पत्ति मेरी नहीं, आपकी है। स्वयं मैं आपका दास हूँ। बकारे! न जाने मेरे पूर्व जन्म का क्या सौभाग्य है कि जिसके फलस्वरूप क्षणभर के लिए आपकी चरण-सेवा का अधिकार मिला। आपके पिताजी सामने विराजित हैं। पृथिवी के अलङ्कार! हमारे भृत्यों ने जो अपराध किया, वह मेरा ही अपराध है। इसलिए उस अपराध का मुझे ही उचित दण्ड दीजिये।'

यह कहकर वरुण हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब श्रीकृष्ण बोले : 'पश्चिम दिशा के अधीश्वर! तुम्हारी शुद्ध बुद्धि देखकर हम परम सन्तुष्ट हुए। यह

सम्पत्ति तो हमारी ही है। फिर भी हम यहाँ से बहुत दूर रहते हैं। तब हमारी सम्पत्ति हमें देकर क्या करोगे? हम इसकी रक्षा का भार तुम पर ही सौंपते हैं।'

ऐसे मधुर वचन कहकर व्रज-पुरन्दर-नन्दन अपने पिताजी को आगे करके तत्क्षण यमुना-तट पर आ पहुँचे। भगवान् को पिता सहित देख वहाँ एक ही मङ्गल कोलाहल होने लगा। सखियों की आनन्द-ध्वनि सुन प्रियाजी भी चेतन हुईं।

व्रजराज अपने मित्रों से गले मिले। उन्हें वरुणदेव का ऐश्वर्य तथा उनके द्वारा किये गये अपने पुत्र के भव्यतम पूजन-स्तवन को वर्णन कर सुनाया। व्रजराज के वचन वेद-वचन समझ व्रजवासियों के हृदय में यह सङ्कल्प उठा कि परब्रह्मरूपी नन्दनन्दन क्या हम लोगों को भी अपना ऐसा ऐश्वर्य दिखायेंगे?

नराकृति, घट-घटवासी, परब्रह्म प्रभु ने व्रजवासियों का यह सङ्कल्प जान विचार किया कि ब्रह्मानन्द से भी मधुर और उत्कृष्ट व्रजलीला-रस दिखाकर इन लोगों के हृदय का सन्देह दूर किया जाय।

प्रभु-कृपा से उन लोगों ने ब्रह्म-साक्षात्कार के अत्यन्त निर्मल अचिन्त्य आनन्द का आस्वादन किया। फिर वह अद्वितीय अनानन्द उन्हें आनन्द-सदृश अनुभूत हुआ, क्योंकि श्रीकृष्ण के दर्शन-सुखानुभव में उनको वह बाधा के समान प्रतीत हो रहा था। वह तदाकार वृत्ति उनको ऐसी प्रतीत हुई, मानो मुक्तिरूपी महाराक्षसी के पेट में अचेत पड़े हों। तब करुणा करके अपने प्रिय सखाओं को सुख देने के लिए श्रीकृष्ण ने उन्हें ब्रह्माकार-वृत्ति से निकाल लिया, उन्हें श्रीकृष्ण-लीला दर्शन की अभिलाषा जो उत्पन्न हो गयी थी। यद्यपि जो मुक्त हो चुका, उसे पुनः मुक्तिरूपी घर से निकालना अनहोनी-सी ही बात है; फिर भी सर्वसमर्थ, शक्तियुक्त भगवान् के लिए यह सहज ही सम्भव था कि मुक्ति से निकालकर उन्हें अपने लीला-विग्रह-भजन का अवसर दें। सो उन्होंने अपने सखाओं को उस वृत्ति से खींचकर अपने वैकुण्ठ नामक लोक का दर्शन कराया। समाधि से उठे हुए के सदृश वे सखागण मूर्तिमान् ब्रह्मानन्द के सदृश, प्रकृति से परे, परम दिव्यधाम गोलोक का अवलोकन करने लगे। वे आश्चर्य करने लगे: 'अहो, क्या यही वैकुण्ठ है! यहाँ हम कैसे आ गये? हम तो गोकुल गाँव में रहते हैं।' वे वहाँ की वस्तुओं को देखना और छूना भी आश्चर्यमय समझने लगे।

यों तो प्रभु ने क्षणमात्र में व्रजवासियों को ब्रह्मकैवल्य और वैकुण्ठ के सुखों का अनुभव कराया, किन्तु वह क्षण उनको हजारों युगों के सदृश प्रतीत हुआ। क्योंकि क्षणभर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का मुखचन्द्र अवलोकन न करना उनके लिए युग-समान था। अर्थात् उससे उनको दुःख ही हुआ। वहाँ उनका जितना आनन्द बढ़ रहा था, उतना ही श्रीकृष्ण को विना देखे परिताप भी बढ़ रहा था। उन्होंने जब वैकुण्ठ को भी अपने लिए असार जाना तो करुणारस-विग्रह भगवान् ने उन्हें वैकुण्ठ से भी निकाल लिया।

तब उन्होंने पुनः महा-आनन्दरूप तरङ्गों से आच्छादित प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण का दर्शन किया तो सोचने लगे कि ब्रह्म-स्वरूप होने का आनन्द (सायुज्य-मुक्ति) और वैकुण्ठ धाम का सारा सुख श्रीकृष्ण की लौकिक लीलामय मनोहर सौन्दर्य-लावण्यमय मूर्ति के क्षणिक दर्शन-सुख पर न्योछावर है। उनका यह निश्चित सिद्धान्त वन गया कि यही परम रमणीय तत्त्व है।

सचमुच भगवान् ऐसे ही हैं, क्योंकि उनकी अद्‌भुत महिमा महा-महा ज्ञानवानों को भी समझ में नहीं आती। तब तर्क-वितर्क से कर्कश, मोहित बुद्धिवालों के लिए यह सम्भव कहाँ कि उसका कुछ विचार कर सकें। दुःशील, कुतर्की लोग उस महिमा का कथमपि अनुसन्धान भी नहीं कर सकते। जो अपने लीलामय कटाक्षों की विक्षेप-तरङ्गमात्र से सायुज्य आदि मुक्ति दे सकते हैं और फिर दुर्घट-घटना-विघटन-विधि से उन मुक्तियों से उन्हें छुटकारा भी दिला सकते हैं, ऐसे सर्वसमर्थ प्रभु की महिमा कौन समझ सकता है? यह महिमा स्वयं प्रभु नहीं करते, किन्तु उनकी लीलाशक्ति ही किया करती है।

सत्रहवाँ स्तवक

रास-क्रीड़ा के प्रकाश-स्थल

श्री ब्रह्माजी की सम्पूर्ण गर्व-गरिमा नष्ट करने के पश्चात् सौन्दर्यसुधानिधि श्रीकृष्ण ने कन्दर्प के दर्प-दमनार्थ अपनी प्रिय मुरलिका को धारण किया। विचित्र मुरलिका की कला के परीक्षार्थ उन्होंने दोनों भुजाओं में उसे पकड़ ललित रीति से मुखारविन्द पर धारण किया। उनकी वह मुरली क्या है? मानो अनुकम्पारूपा सखी है।

तदनन्तर श्रीकृष्ण ने अनेक रमणियों को एक साथ आलिङ्गन करने की इच्छा की, क्योंकि कात्यायनी देवी की उपासना कर जिन कुमारियों ने उनसे वरदान पाया था, उसका समय पूरा होने को आ गया था। यही समझ-बूझकर ब्रह्माजी ने भी शरद् की पूर्णिमा की रात्रि को अत्यन्त बड़ी कर दिया (मानो वह ब्रह्मा की ही रात्रि हो)। वह रात्रि विक्षेप-रहित सुन्दर सर्वगुणसम्पन्न थी। भगवान् की योगशक्ति के निक्षेप से वह (रात्रि) अक्षय आमोदमयी बन गयी। एकान्त की सभी विशेष रहस्यमयी कलाओं के नियोजन का सम्पूर्ण कार्यभार उन भगवती योगमाया को सौंपकर भगवान् ने रमण करने की इच्छा की।

सचमुच उस निशा की शोभा अवर्णनीय है। वह निशा सुखमय, अति शान्त, प्रकाशमय और महान् उत्सव से परिपूर्ण थी। जैसे ज्येष्ठ के दिनों में धूप खिली हो, वैसे ही उस रात्रि में तेज चाँदनी खिली थी। उसकी शोभा अपार थी। यह शरद् ऋतु अन्य ऋतुओं से अति उत्तम है, क्योंकि इस ऋतु में खिलनेवाले पुष्पों की शोभा अनुपम है। वन में मदोन्मत्त भ्रमर दिशा-दिशाओं में गुञ्जार कर रहे थे और कानों को आनन्दध्वनि से पूरित करते मधुर-मधुर शब्द से बोलते रहे। पवन मन्द-मन्द गति से वह रहा था। वह माधवी के फूलों की सुगन्धि से सुरभित था। नाना प्रकार के फूल प्रफुल्लित थे। चमेली की कलियाँ खिल गयी हैं। उन पर मत्त मधुप उड़ते हुए गुञ्जार कर रहे हैं। मानो शोभामय विहारोत्सव में ये भ्रमर शङ्ख बजा रहे हों। सरोवरों में सुन्दर निर्मल जल भरा हुआ था। आनन्दमग्न कलहंस

और सारस किलोल कर रहे थे। कुमुदिनी प्रफुल्लित हो रही थी और उनके मण्डल पर गन्ध के लोभी भ्रमर चञ्चलतापूर्वक केलि कर रहे थे।

सद्यः उदित अरुण चन्द्रमण्डल आकाश में ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे मानिनी लक्ष्मी के कोप से अरुण मुख की कान्ति से संपृक्त उनका कर्णफूल हो। चन्द्रमण्डल और उसमें से फूटती, उछलती किरणें मानो मानवती लक्ष्मीजी के कपोलों पर लटकते स्वर्ण-ताटङ्क (स्वर्णफूल) हों। अथवा चन्द्रमा की किरणों से युवतियों के हृदयरूपी पट रँगने के लिए कामदेव ने सरोवर में रंग घोल रखा हो। अथवा आकाशरूपी कुण्ड में शृङ्गार रस का समय निश्चित करनेवाली घटिका (घड़ी) का पात्र हो। अर्थात् रसमय शृङ्गार रस का समय बतानेवाली भगवान् की घड़ी हो। अथवा पूर्व दिशारूपी रमणी का सुन्दर मुख हो। अथवा कमल पराग (किरणों से घिरा) राजहंस (हंस या चन्द्रमा) पूर्व दिशारूपी सरोवर में तैर रहा हो। अथवा आकाशरूपी दधि-सागर में मथकर निकाला ताजा-ताजा नवनीत-पिण्ड हो। अथवा किरणों की डोरयों से रचा ऋतुराज (वसन्त) का श्वेत मण्डप तना हो। अथवा जगत् के मण्डपस्वरूप आकाश पर विराजित हो श्वेत कबूतर शोभारूपी रमणी के क्रीड़ा-निमित्त धीरे-धीरे चल रहा हो। अथवा शोभारूपी रमणी का ताम्बूल रखने की सुन्दर स्वर्ण-पेटिका (डिबिया) हो। अथवा आकाशरूपी समुद्र को पार करने के लिए कालरूपी व्यापारी की स्वर्णमयी नौका चल रही हो। अथवा रात्रिरूपी रमणी ने महान् महोत्सव में किरणरूपी पत्तों से सुसज्जित कर चाँदी का कलश स्थापित कर रखा हो। अथवा मूर्तिमान् कौतूहलरूपी हलधर का मणिमय कुण्डल चमक रहा हो। अथवा शरद्रूपी देवी की कीर्तिरूपी हंसिनी का अण्ड हो। अथवा कामदेव का कमल-दलों से बना वर्तुलाकार आसन हो। अथवा प्रभारूपी देवी का मालती कुसुमों से बना मुकुट हो। अथवा भगवद्भक्त जैसे भगवान् के चरणों को हृदय में धारण करते हैं, वैसे ही भगवान् का चरण-चिह्न इस चन्द्रमा ने धारण कर रखा हो।*

यह उदित चन्द्रमा मानो कामदेवरूपी चक्रवर्ती राजा का छत्र हो। अथवा शृङ्गाररूपी यज्ञ में यज्ञ-सामग्री रखने का श्वेत मणिमय यज्ञपात्र हो। अथवा आकाशरूपी समुद्र में मुक्ताओं को चारों ओर फैलाकर एक विशाल सीपी पड़ी हो। अथवा शोभारूपी देवी का मुख देखने का दर्पण हो। अथवा

---

* अर्थात् चन्द्रमा में कलङ्क नहीं, वह मानो प्रभु का चरण ही हो।

रात्रिरूपी रमणी का सुन्दर चन्दन-तिलक हो। अथवा सम्पूर्ण प्राणियों के नेत्रों को शीतल करने के लिए कपूर का डेला हो। अथवा आनन्दरूपी सरोवर से निकला कोई कमल हो। अथवा जलराशि पर माधुर्य का पिण्ड हो। अथवा सौन्दर्यरूपी देवता का श्वेत विमान हो। अथवा आकाशरूपी गङ्गा का मणिमय कङ्कण हो।

यह चन्द्रमा सर्व कलाओं से परिपूर्ण पुण्यवान् नृप के समान सुन्दर-मण्डल और शोभा देनेवाला है। भगवद्भक्तों के समान कुमुदों (कमलिनियों) को आनन्द देनेवाला या पृथिवी के आनन्द को बढ़ानेवाला (कुमुदामोदकः) है। उपदेष्टा के समान सन्ताप का हरण करनेवाला है। मदन के समान सदा ओषधियों का पोषक स्वामी (मदनपक्ष में सदोषधी = दूषित बुद्धियों का ईश) है और रति का वर्धन करनेवाला है। विवेकी के समान पृथिवी का अहङ्कार दूर करनेवाला और सुग्रीव के समान तारा[1] का स्वामी है। समुद्र के समान सदा हिमकर[2] है। ऐसे चन्द्रदेव अपनी किरणरूपी झाड़ू से वृन्दावन का मार्जन करने लगे।

इस प्रकार से उदित चन्द्रमा आकाश-मण्डल में स्थित हो वृन्दावन के वृक्षों को अपनी किरणों से छूने लगा। प्रत्येक वृक्ष के नीचे छन-छनकर आती चाँदनी की शोभा ऐसी प्रतीत होती, मानो सौन्दर्य छानने के लिए छलनी हो। ऐसा लगता, मानो देवताओं का श्वेत मण्डप तना हो, जिसमें उडुगणरूपी (नक्षत्र) मोती लगे हों और चन्द्रमा तारों के उस वितान के मध्य की मणि हो। अथवा कोई दण्डरहित छत्र तना हो, जिसमें चारों ओर नक्षत्र तथा बीच में चन्द्रमा कमल के सदृश विराजमान हो।

इस प्रकार सुन्दर छटा अवलोकन करके श्रीकृष्णचन्द्र ने देखा कि चन्द्रमा दिशारूपी रमणियों को अपनी किरणरूपी करों द्वारा श्वेत कर रहा हो और तारावलियों को तृप्त कर रहा हो। इस प्रकार चन्द्रमा का विहार देखकर सम्पूर्ण रमणियों के सुहृदय श्रीकृष्ण ने हृदय को परम प्रिय लगनेवाली मुरली बजायी।

यद्यपि वह वंशी-ध्वनि सबको आकृष्ट करनेवाली थी, लेकिन श्रीकृष्ण की इच्छा से उसकी ध्वनि को और किसीने नहीं, केवल गोपियों ही ने सुना।

---

१. यह श्लिष्ट पद है—नक्षत्र या वाली-पत्नी तारा ये दो अर्थ हैं।

२. सदा + हिमकर = सदैव हिमकिरणोंवाला, या सदा + अहिमकर = सर्प (अहि) और मगर (मकर) से युक्त है।

जिस समय जिसे बुलाया जाता, उस समय केवल वही उस वंशी-ध्वनि को सुनता। जब वे गौओं और खग-मृगों को बुलाने के लिए बजाते, उस समय केवल उन्हींको सुनायी पड़ती और गोपियों को मोहने के समय केवल गोपियों को ही। उसकी एक ही स्वर-सुगन्धि से श्रीकृष्णचन्द्र ने सब गोपियों के हृदय को अपने आकारसदृश बना लिया। ऐसे रम्य स्वर-आलाप से श्रीकृष्ण ने वंशी बजायी। उस मुरली की लहर-तरङ्ग के रङ्ग से अलौकिक भाव-भरे स्वरों द्वारा प्रभु ने अपनी व्यापक मोहशक्ति फैलाकर उन गोपियों को मोहित कर लिया।

वंशी की ध्वनि कानों में पड़ते ही उनके हृदय प्रफुल्लित हो उठे और बुद्धि उन्मत्त हो गयी। धृति दही की तरह फट गयी। दृष्टि लुप्त-सी हो गयी और तन में इस प्रकार कम्प उठा, मानो उन्माद हो गया हो। केवल मार्ग का अनुसन्धानमात्र उन्हें रह गया। उस भगवान् की मुरलिका के स्वर ने उन कामिनियों के हृदय में कामोन्माद उत्पन्न कर दिया।

वह वेणु-रव कोई अनुपम सर्वतन्त्रस्वतन्त्र मन्त्रसदृश था, जो संसार की शृङ्खलारूपी आचार को विघटित करने का तन्त्र था। वंशी का वह गीत अत्यन्त मधुर था। वह विलक्षण सूक्ष्मरूप धरकर उन गोपियों के पास गया और वहाँ पहुँचकर जैसे सरोवर में कमलिनियों को मत्त हाथी झकझोर डालता है, ऐसे ही उसने उन पर असर किया। फिर भी सर्वश्रेष्ठ साराधिका राधिका के समीप जाकर उस वंशी-ध्वनि ने दासी के सदृश उनके कान में कुछ कहा।

गोपियों का धैर्य-नाश हो गया। लज्जा का प्रलय हो गया। बुद्धि भ्रमित हो उठी और श्रवणों के द्वारा पिया हुआ वंशी-रवरूप मद उनको उन्मत्त बनाने लगा। उनके नेत्र धुले कमल की तरह हो गये। क्या यह हर्ष का भी हर्ष है ? क्या यह एकान्त क्रीड़ा की भी एकान्त क्रीड़ा है ? क्या यह प्रकाश का भी प्रकाश है ? अथवा श्रीकृष्ण के समीप जाने के मूर्तिमान् उत्सवरूपी उत्साह की शीघ्रता ही शीघ्रता है ? प्रत्येक गोपी ऐसा विचार करने लगी और उसमें अपने-अपने नाम स्पष्ट सुनने लगी।

यद्यपि वह वंशी-ध्वनि दूर थी, किन्तु अभिलषित मार्ग अत्यन्त समीप था। एक ही सूत्र में गुँथी पुतलियों की तरह सभी एक साथ चलने की तैयारियाँ करने लगीं और जैसे श्रीकृष्ण ने उनको खींचा, वैसे ही खिंचने लगीं। जब वे चलीं तो ऐसा प्रतीत होता कि मानो अनुपम बिजलियाँ मूर्तिमान् होकर पृथिवी पर उतर आयी हों और मेघमाला-सी अपनी माला

(गोल) चमचमाती चली हों। अनुरागरूपी बलवान् वायु के झकोरे से वे कनक-लता के समान हिलती प्रतीत होतीं। उत्साह और साहस उनकी गति से पदे-पदे सूचित होता। वे ऐसी लगतीं, मानो हाथी ने कमलिनियों को जोर से हिला दिया हो।

गोपियाँ ब्रज से ऐसे चलीं, जैसे किसी ग्राम से साक्षात् उत्कण्ठारूपी देवियाँ जा रही हों। अथवा स्वर्ण-प्रभा के सदृश अङ्गकान्तिवाली प्रकाशमान ज्योति-दीपिकाएँ ही चल रही हों। अनुराग की प्रबलता से कम्पायमान और मार्ग में किसीके मिलने के आशङ्कावश तेज चलनेवाली वे गोपिकाएँ ऐसी कला से चलने लगीं कि चलते समय अपने अङ्गों के आभूषणों की झङ्कार न होने पाये। पद-पद पर वे अपने कुण्डलों की चमक, कमनीयता और लावण्यता बरसातीं। इस प्रकार वे गोपियाँ मुरली की ध्वनि का अनुसन्धान करती चलने लगीं।

वहाँ उस समय अनेक प्रकार की गोपियाँ थीं। कोई कन्या थी, तो कोई नववधू। कोई कन्या अपने पिता की आज्ञा से गृह-कार्य कर रही थी तो उसे त्यागकर शीघ्रता से चली। इसी प्रकार कोई अपने चरणों में महावर लगा रही थी तो उसे आधा लगा त्यागकर उत्कण्ठापूर्वक शीघ्र चली। दूसरी भोजन परोस रही थी तो चतुरता से कोई बहाना कर परोसना छोड़ शीघ्रता से चली। अन्य गोपी बालक को खीर खिला रही थी, कोई दूध पिला रही थी तो वे भी बालकों को त्याग शीघ्र दौड़ीं। कई पूर्वकाल के तपस्वी-मुनि गोपों की वधुएँ थीं और अपने-अपने पति की सेवा कर रही थीं। वंशी सुनते ही पति-सेवा को त्यागकर वे क्षण को कल्प-समान मानती चल पड़ीं। कई चलते समय परस्पर हास्य करती चलीं। आनन्द के वेग से एक-दूसरे के हार छीनती, तोड़ती चलीं। कोई श्रुतिरूपा सखियाँ सखी द्वारा अपने स्तनों पर कस्तूरी, चन्दन आदि का लेप लगवा रही थीं, वे एक ही स्तन में लेप लगवाकर शीघ्र दौड़ चलीं। कोई अपने अङ्गों में चन्दनादि लगवाने के लिए अपनी चोली उतार चुकी थी और सखी से चन्दन लगवाना चाहती थी तो वह वैसी ही उठकर चल पड़ी।

नित्यसिद्धा गोपी और अनुरागसिद्धा गोपी वस्त्राभूषणों को उलटे-पुलटे धारण कर चल पड़ीं। उनकी कमर में किङ्किणी की जगह हार लटक रहा था और गले में किङ्किणी पड़ी थी। उन्होंने भुजाओं में नूपुर और पैरों में अङ्गद बाँध लिये। नीवी का बन्धन केशों में बाँध लिया था तो केशों का

बन्धन नीवी में। इस प्रकार आनन्द के उद्वेग से उलटा शृङ्गार कर परस्पर एक-दूसरे की ओर देखती-हँसती* चलीं।

किसी गोपी ने एक आँख में अञ्जन लगाया था। किसीने एक चरण में महावर लगाया था। किसीने एक अङ्ग में केसर लगाया था। वे मृगनयनी गोपियाँ वैसी ही दशा में अपने कान्त के प्रेमोन्माद में उन्मत्त हो महान् लाभ के लिए दौड़ चलीं। किसीने ओढ़नी ही पहन ली थी। किसीने पहनने का वस्त्र ही ओढ़ लिया था। जिस समय वे चलीं तो आपस में सख्यभाव से परस्पर सम्मान करती एक-दूसरी के खुले अङ्गों को ठीक करती चलीं। कटि में सोने की किङ्किणी और नूपुर, मणि-मालाएँ यत्र-तत्र हो रही थीं। ऐसा मालूम पड़ता, मानो मत्त गयन्दनी (हथिनी) जञ्जीर तोड़ भाग रही हो। चलने के वेग से वस्त्र ढीला हो जाता तो वे अपने कर-कमल ओढ़नी के नीचे से निकालकर नीवी-बन्धन को बाँधतीं, उस समय ऐसा प्रतीत होता, मानो नारायण की नाभि से निकले कमल की शोभा को उनके कर-कमलों ने जीत लिया हो।

किसी गोपी ने एक ही अङ्ग में शृङ्गार किया था, एक ही पैर में महावर था और एक ही कान में कुण्डल धारण किये थी। उस समय वह शङ्कर की अर्धाङ्गरूपिणी पार्वतीजी की शोभा को जीत रही है। कोई गोपिका वायु के झोंके के साथ अपने आँचल को उड़ाती चल रही थी, मानो लक्ष्मी ही एकान्त-केलिरूपिणी पताका फहरा रही हो। किसी गोपी ने अपने एक चरण-कमल में नूपुर धारण किया था तो उसके चलते समय एक ही पैर से मन्द-मन्द ध्वनि होती, मानो गूँगे के साथ वाद-विवाद करते समय प्रतिवाद-रहित विवाद चल रहा हो। किसी गोपिका की वाम भुजा में अङ्गद शोभित थे। उस समय उसके सम्पूर्ण अङ्गों की शोभा ऐसी प्रतीत होती, मानो दिव्य ओषधि का वृक्ष हो और वह अङ्गद ऐसा लगता, मानो बूटी चमक रही हो।

यद्यपि उन गोपियों ने सकल कलाओं के निधि श्रीकृष्ण द्वारा गाया मुरली का गीत कानों में धारण कर रखा था, फिर भी उनके सोने के कुण्डल बायें कान में सुशोभित हो रहे थे। (अर्थात् जब वंशी के गीत कानों में धारण कर लिये तो कुण्डलों की जरूरत ही क्या थी?) मण्डित-मण्डन की

---

* दूसरी के उलटे शृङ्गार पर तो हँसतीं, पर स्वयं के उलटे शृङ्गार पर ध्यान ही नहीं देती थीं।

इस भूल में और किसीका दोष नहीं, मुरली के गीत का ही दोष है, जिसने प्रियतम के पास जाने की उत्कण्ठा के कारण भ्रम पैदा कर दिया था।

इस प्रकार अपने-अपने भवन त्याग वन की ओर चलते समय उनका हृदय अत्यन्त उत्साहित होने का पराक्रम दिखा रहा था। उनके मनोरथ बढ़ रहे थे। जैसे मुक्ति की इच्छा करनेवाले मुनिजन मोक्ष-सुख की अभिलाषा से मार्ग में चलते समय परस्पर मिलकर एक-दूसरे की उत्कण्ठा-तरङ्गों को देखते चलें, ऐसे ही वे गोपियाँ अत्यन्त चपलता से चञ्चल नेत्रोंवाली होकर प्राणनाथ के सङ्गमरूपी महोत्सव के लिए चलीं। उनके नेत्रकमल-दल पुष्प-वर्षा कर रहे थे। वे मङ्गलमयी अङ्ग-शोभाओं को निर्विघ्न बरसाती हुई चलने लगीं।

इस प्रकार चलते समय ये गोपियाँ माता-पिता, बन्धु-बान्धवों द्वारा रोके जाने पर भी न रुकीं। भगवान् के अनुराग के कारण उनमें अनुपम साहस था। कई नित्यसिद्धा गोपियाँ जब जाने लगीं तो उनका अनुराग देख उनके घरवालों ने उनको प्रणाम ही किये। कई मुनिरूपा गोपियाँ, जिनके विवाह हो चुके थे, अनुराग द्वारा विधि-विधान को जीत भगवत्-अङ्ग-सङ्ग की अभिलाषा से निर्विघ्नतापूर्वक अपने तपोबल द्वारा भवन त्याग वन चलीं।

कोई-कोई गोपी दशम[1] दशा को प्राप्त हो गयी। उसका सौभाग्य विशेष था। वह सहज ही शीघ्र अपना सम्पूर्ण कर्म-विपाक नष्ट कर मुख्य फल प्राप्त करने के लिए दूसरा दिव्यशरीर धारण कर श्रीकृष्ण के पास पहुँच गयी। जिस समय उसका कठोर पति उग्र क्रोध कर भवन से निकलते समय उसे रोककर खड़ा हो गया, तो उस गोपी के अभिसार का रङ्ग ही भङ्ग हो गया। सब प्रकार से प्रयत्न कर जब वह हार गयी तो उसे निश्चय हो गया कि इस शरीर से न जाने पाऊँगी। फलस्वरूप वह श्रीकृष्ण के विरह से महान् दुःखी हुई। उस दुःख-ज्वाला में उसके सब पापकर्मों के बन्धन (संस्कार) भस्म हो गये। श्रीकृष्ण के ध्यान-आलिङ्गन के महान् सुख से उसके सारे पुण्यकर्म भी उपभुक्त हो गये। इस प्रकार जारबुद्धि से भी भगवान् में एकान्त प्रेम करने से उसके सब कर्म-बन्धन क्षीण हो गये, तब—जैसे सर्प केंचुल छोड़कर[2] सुखी

---

१. कम्प, रुदन आदि विरह के दस भावों में दशम अर्थात् मृत्युभाव या निश्चेतना (अन्तिम दशा)।

२. तब तक साँप अंधा-सा रहता है।

हो चलता है, वैसे ही—वह शीघ्र गुणमयी देह त्याग हर्षित हो दिव्य-रूप से गोपियों के साथ जा मिली और श्रीकृष्ण के अङ्ग-सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त करने लगी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि भगवत्प्रेम-में तादात्म्यभाव हो जाने का यही प्रभाव है, भगवत्प्रेम की वासना होने पर सम्पूर्ण वासनाओं का क्षय हो जाता है।

इधर जब श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी प्रियाओं की मण्डली आती देखी, तो श्रीकृष्ण—यद्यपि वे अनुकूल नायक थे, किन्तु—बाहर से कुछ प्रतिकूलता दिखाते और अपना पीताम्बर फहराते हुए बोले : 'आइये ! आइये !! स्वागत है तुम लोगों का ! कहो, सब कुशल-मङ्गल है न ? इस समय हम तुम लोगों का कौन-सा प्रिय कार्य करें ? कमलनयनियो ! आप लोग अपने-अपने भवनों में तो आनन्दपूर्वक थीं ही, इस समय आने का क्या कारण हुआ ? यदि कौतुक-वश वन में विचरने आयी हो तो आपका वेष तो ऐसा नहीं दीखता। भूषण-वसन अस्तव्यस्त हो रहे हैं। अङ्ग भी कुछ सम्भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं। यहाँ आकर भी विश्राम द्वारा थकावट मिटा नहीं रही हो। आप लोगों के श्रवणों के निकट से स्वेद-बिन्दु टपक रहे हैं। अलकों में पसीने की बूँदें मोती-सी छलक रही हैं। दीर्घ श्वास और कुम्हलाये अधर-पल्लव एवं कम्पायमान स्तन-युगल और ही मङ्गलमयी सूचना दे रहे हैं।'

गोपियाँ मौन ही रहीं। तब पुनः श्रीकृष्ण ने कहा : 'सखियो, कोई अहित की बात तो नहीं हुई ? कहीं तुम लोगों की चञ्चलतारूपी लता फलवती तो नहीं हुई ? इससे हम व्रज में अनिष्ट या इष्ट क्या समझें ? इस समय केवल कौतुक-विलास के लिए स्वच्छन्द हो तुम लोग बाहर निकल पड़ी हो, ऐसा तो हो नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे सम्बन्धियों के समूह से तुम्हारा निकलना और फिर गोल मण्डल बाँधकर आना कुछ और ही रहस्य सूचित करता है। यह रात्रि है फिर भयानक भी, क्योंकि इस समय जङ्गली पशु इधर-उधर भ्रमण करते ही रहते हैं। मैं ही इस वन में अकेला निर्भय विचरता हूँ। मेरे लिए तो यह आनन्द देनेवाली रात्रि है, किन्तु स्त्रियों को तो ऐसी रात्रि के नाम से ही भय लगता है। तो ऐसी रात्रि में तुम लोग यहाँ आयीं और तुम्हें कोई भय नहीं लगा, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इसलिए तुम्हारा शीघ्र यहाँ से सीधे लौट जाना ही कल्याणकारी है। मेरी बात मान लो।

खञ्जननयनियो ! यदि वन-शोभा देखने की इच्छा से तुम लोगों का आगमन हुआ हो तो यह बड़ी सुन्दर बात है। वन का दर्शन करो ! देखो, इधर

लताएँ फूली हैं। कैसे सुन्दर मत्त भ्रमर झङ्कार कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आपस में सख्य रस के उद्वेग से क्रीड़ा करते बातें कर रहे हों। पुष्प भ्रमरों को देखकर हँस रहे हों और कहते हों कि 'देखो, ये भ्रमर अपने घर जाने की इच्छा ही नहीं करते, मानो यहीं इनका घर हो।' हँस-हँसकर (खिलकर) मानो पुष्प उनको हटा रहे हों।*

और देखो गोपियो, इन वृक्षों और कुञ्जों की छटा! इनकी छाया में चन्द्रमा की चाँदनी कैसी छनकर आ रही है, लगता है, मोती बिखरे हुए हों। उनको पक्षीगण चावल जानकर खाने की इच्छा से चोंच मार रहे हैं। और देखो, इन प्रफुल्लित कमलों को! रात्रि के इन पुष्पों को आलिङ्गन करने के लिए यमुना की लहरें (जिनको कमलों के बार-बार आलिङ्गन का व्यसन लग गया है) बार-बार इच्छा करती हैं। ये लहरें घर जाने की इच्छा नहीं करतीं (अर्थात् शान्त हो नहीं ठहरतीं, बार-बार उठतीं)। और देखो, यह चन्दनवन की वायु! जो प्रत्येक वृक्ष के नीचे भीनी-भीनी सुगन्ध फैला रही है। नाना प्रकार के विचित्र वृक्षों की क्यारियों से सुशोभित विचित्र पत्तों एवं पुष्पों से चित्रित मनोहर वन की शोभा देख लो! सब देख चुकी हो न? अब लौट जाओ। तुमने हमारी बात सुन ली न! सुन ली न!

देखो! अपने सुहृदयों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। फिर तुम तो सुकुमार बालाएँ हो। अपने नन्हें-नन्हें बालकों को मत रुलाओ। जाओ, उनको दूध आदि पिलाओ। ऐसी उदार मत बनो। तुम्हारे माता-पिता, भ्राता आदि चारों ओर खोजते होंगे। तुम उन्हें मोह में मत डालो। इसलिए जाओ, यहाँ मत ठहरो।

हे कमलनयनियो! क्या कारण है कि तुम इस वन से नहीं जातीं? और क्या कारण तुम लोगों के आने का है? अगर तुम्हारा उद्देश्य कहीं मुझे ही देखना था तो देख ही लिया। मैं तुम्हारे सामने साक्षात् ही विराजित हूँ। फिर एक रहस्य बताता हूँ। देखो, मेरी रूपमाधुरी के ध्यान और श्रवण से जैसा आनन्द आता है, वैसा मेरे साक्षात् मिलने से नहीं। इसलिए हे कमलनयनियो, वापस जाओ। यहाँ ठहरकर अपने प्रेम को शिथिल मत करो!

मनोरमाओ! अपने घरवालों की सेवा छोड़ना मर्यादा के विरुद्ध है। यह श्रेष्ठ लोगों का धर्म नहीं। देखो, पति दुःशील हो, खल हो, दुःख देनेवाला हो, बहरा हो, अन्धा हो, सम्पूर्ण दोषोंवाला हो, मूर्ख, रोगी या निर्धन हो;

* उनका हिलना ऐसा लगता है कि कहते : जाओ हटो, घर जाओ!

फिर भी बुद्धिमती पतिव्रताएँ कभी ऐसे पति को भी नहीं त्यागतीं। यह लोक और वेद की नीति है। इस प्रकार लोक, वेद की मर्यादा का उल्लङ्घन कर तुम स्वतन्त्र हो मत विचरो। और परपुरुष* से अनुराग करना भयदायक है, दोनों लोकों के विरुद्ध और अयश देनेवाला है। विशेष कर तुम जैसी पतिव्रताओं के लिए तो महान् निन्दा की वात है। पति एक ही होता है, दूसरा नहीं। तुम लोगों की महिमा भुवन में विख्यात है, इसलिए मेरा परम प्रिय हितोपदेश मानकर अपने-अपने घर चली जाओ। मेरी वात मान लो।'

इस प्रकार प्रेम-परीक्षा लेने के लिए तत्पर भगवान् ने अपनी बातों से बाह्यतः ताप दिखलाया, पर उनके अन्तर में शीतलता भरी थी—जैसे कि शरद् ऋतु में मध्याह्न सूर्य के ताप से गम्भीर सरोवर का जल ऊपर-ऊपर कुछ गर्म-सा लगता है, पर नीचे रहता है शीतल! अथवा कोई कँटीले फल पर बाहर से तो काँटे होते हैं, पर भीतर से वह अत्यन्त पेशल और मधुर स्वादवाला होता है। अथवा जैसे नारियल ऊपर से तो अति कठोर होता है, पर अन्दर से अत्यन्त मृदुल-मिष्ट होता है। अथवा जैसे शहद के छत्ते में अन्दर तो मधु भरा रहता है, पर बाहर मक्खियाँ काटने दौड़ती हैं। अथवा गूजा या उसमें भरी जानेवाली घी में भूनी पञ्जरी अन्तर में अत्यन्त चिकनी और बाहर से रूखी होती है। श्रीकृष्ण के ये वचन ऊपर से पृथक्ताभरे (निषेधार्थक) होने पर भी भीतर से वैसे ही समन्वित (अनुरक्त) थे, जैसे किसी वाक्य के अक्षर (पद) ऊपर पृथक्-पृथक् आकार के होने पर भी भीतर से परस्पर आकांक्षा, योग्यतादि से युक्त होते हैं। परम कलाचतुर वनमाली ने कौतूहल उत्पन्न करनेवाले ऐसे अद्भुत वाक्यों से उनके पास दीवानी वनकर आयी हुई गोपियों के हृदय में सकृद्दर्शन में सन्ताप उत्पन्न कर दिया।

अत्यन्त अनुराग से अन्धी गोपिकाएँ उन शुष्क वाक्यों को सुन क्षणभर में कल्पभोग्य दुःखों का अनुभव करती महान् क्लेश को प्राप्त हुईं। उस समय वे वचन उन्हें ऐसे लगे, मानो सैकड़ों महाविष विच्छुओं ने डंक मार दिये हों। अथवा काल-भुजङ्गों ने डस लिया हो। अथवा महान् अग्नि ने अपनी लपटों से जला दिया हो। अथवा तीक्ष्ण छूरे की चमचमाती धार ने काट दिया हो। अथवा महा ज्वर ने अभिभूत कर लिया हो। अथवा शूल ने छेद डाला हो। अथवा विष लगे अस्त्र से घाव कर दिया हो। इस प्रकार सब गोपियों ने अपने को मरा हुआ-सा समझा। उस समय उन्हें सम्पूर्ण संसार

* श्लेष—दूसरा अर्थ परमपुरुष अर्थात् मैं श्रीकृष्ण।

अन्धकारमय दीख पड़ा। तीनों लोकों में कहीं अपनी शरण नहीं पायी और सम्पूर्ण विश्व को आनन्द से रीता अनुभव किया। सब दिशाएँ उन्हें दुःख से भरी दीखीं और सम्पूर्ण पृथिवी नीरस मालूम पड़ने लगी। समस्त भुवनों को जलते दावानल-सा देखा और अपने को परलोकगामी मृतक-सा माना। इस प्रकार मुहूर्तभर वे सारी गोपियाँ काठ की पुतलियाँ-सी खड़ी रहीं। उनका रूप उस समय जड़-सा प्रतीत हो रहा था। उनकी सहज कोमलता जाने कहाँ विलीन हो गयी थी।

तदनन्तर जैसे कोई मूर्च्छा से उठता है, इस प्रकार पुनः उनके अङ्गों में चेतना का सञ्चार हुआ। उस समय संवित् देवी (चेतना) ने ही उनकी सहायता की। तब उन्होंने अपनी दुःखमयी दशा का कुछ अनुभव किया। उनके अधर फड़कते और कपोलों पर पसीना छलक रहा था। नेत्रों से अश्रु-धाराएँ वह रही थीं। उनका मुख-कमल मुरझा गया और शरीर निर्बल हो गया था। उन सुन्दरी गोपियों की लावण्यमयी शोभा फीकी पड़ गयी थी। मणिमय कङ्कण (हाथ से) निकलकर गिर पड़ता था (क्षीण होने के कारण)। अपने प्राणप्यारे के उदासीनताभरे वचन सुन शीघ्र-से-शीघ्र प्राण क्यों न निकल गये, इस लज्जा से मानो वे स्वयं को उलाहना देती अँगूठे के नखचन्द्र की किरण-लहरी से पृथिवीतल पर लिखने लगीं : 'हे कोमलतर प्राणो ! प्यारे के रूखे वचन सुनकर तुम क्यों नहीं निकल गये, तुम तो उन वचनों से विशेष कोमल हो ?'

उस समय उनके प्राण प्रयाण तो करना चाहते थे, किन्तु उनके निकलते समय कण्ठ में भरकर आँसू रास्ता रोक लेते। वे आँसू जब अपना घनत्व त्यागकर लोचनों द्वारा द्रवित हो बाहर फूट पड़ते तो गोपियाँ मौन हो जातीं और क्षणमात्र आकाश में अनुराग-रेखा की तरह चित्र-सी खड़ी हो जातीं। जब गोपियों का सन्तापरूप हालाहल (विष) अन्दर नहीं समा पाता, तब आँखों द्वारा काजल-मिश्रित अश्रुओं के साथ वह निकलता और जलते स्तन-मण्डलों पर गिरता। यह विष हृदय के पास गिरकर भी प्राणों को हरण करने के लिए उद्यत न होता था। गोपियों के अत्यन्त तीव्र निःश्वास चल रहे थे, मानो नासा-रूपी छिद्रों से वायु निकलकर अधररूपी दलों को दल देना चाहता हो। विचित्र बात यह थी कि गोपियों के मुख कमल के समान थे और उनकी नासिका के मोती ऐसे झलक रहे थे, मानो उनमें से गलित होकर लावण्यामृत की रसमयी बूँदें टपक रही हों। उन पर गोपियों के नेत्रों से काजलभरे अश्रु ढलकर उस बेसर को मलिन कर रहे थे।

इस प्रकार अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार प्रत्येक गोपी चित्र-विचित्र छवि से अपने भाव दरसा रही थी। विविध हृदय-भावों के कारण प्रत्येक की शोभा विविध प्रकार की थी। किसी मुख्य गोपी का मुख दुःख के कारण व्यथित होकर कुछ-कुछ रोने जैसा अव्यक्त शब्द कर रहा था, मानो गुञ्जार करते भ्रमरों के स्वर से अपना रुदन-स्वर मिला रही हो। किसीके नेत्रों से अञ्जनमिश्रित जल-धाराएँ वह रही थीं, मानो वह इस तरह सभी दिशाओं को श्यामाकार बना रही हो। उसकी वाणी गद्गद हो रही थी।

कोई गोपी बोलने के लिए तैयार हुई। उसका मुख-कमल दन्त-कलिकाओं के गुच्छों से विभूषित था। भ्रमर उसके मुख की सुगन्ध से मदान्ध हो रहे थे। अपने आँचल से भ्रमरों सहित उन कलियों को तिल-चावलों की तरह श्रीकृष्ण के सन्मुख रखकर वह बोलने को उद्यत हुई।

कोई गोपी अनुराग-रस से परिपूर्ण स्वर, शब्दार्थ आदि से अलङ्कृत मृदुल मञ्जुल वाणी से सरस्वती के समान वचन बोलने को उद्यत हुई।

कोई अत्यन्त चञ्चल लोचनोंवाली गोपी नील-कमलों का वन तैयार करती (अर्थात् अपने नेत्र-कमलों को चहुँओर घुमाती) दाँतों की किरणों द्वारा उसे प्रकाशित करती कुछ रोषपूर्वक बोलने को उद्यत हुई।

मद से अरुण कटाक्षों से देखती, कुटिल भृकुटि टेढ़ी करती और मुख पर श्रम-कण छलकाती कोई गोपी श्रीकृष्ण से बोलने को उद्यत हुई।

कोई गोपी अत्यन्त विनयपूर्वक अति अनुराग की शोभा दिखलाती अत्यन्त मृदुल गद्गद स्वर से प्रार्थना करने के लिए उत्कण्ठित हुई।

कोई कुमारिका केवल अपने नेत्र के काजल से मिश्रित अश्रु-बिन्दु से अपने तप्त वक्षःस्थल को स्नान कराती अनुराग और उत्साह से भरी मैना की तरह मृदुल वाणी बोलने को उद्यत हुई।

इस प्रकार प्रत्येक गोपी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार हाव-भाव दिखलाती हृदय का दुःखरूपी विष दूर करने के लिए बोलने को उद्यत हुई।

कवि कहता है, यद्यपि बृहस्पति भी अपनी वाणी से गोपियों का महान् रहस्य यथार्थ रूप से नहीं कह सकते, तब हमें उसका कैसे साहस हो ? इसलिए मेरी इस चेष्टा पर सन्त-जन निश्चय ही हँसेंगे। फिर भी सन्त-जनों की रस-ज्ञानरूपी कण्डू मिटाने के लिए यह लिख रहा हूँ। मेरा यह अपराध न माना जाय। मैं उसी क्षुद्र प्राणी की तरह हूँ, जो दुर्लभ, पर इष्ट पदार्थ (भगवान्) की प्राप्ति की अभिलाषा करता है।

हाँ, तो अपने-अपने अङ्गों में इस तरह की विविध शोभाएँ धारण करने के पश्चात् एक गोपी बोली : 'हाय ! गोपीजन के प्रिय होकर भी तुम्हारा ऐसे निष्ठुर वचन कह हमें दुःख देना उचित नहीं है। मेघ जगत् की तृप्ति के लिए हर्ष से घनरस का ही वर्षण करता है, कभी विष नहीं बरसाता। आपको पहले यह विचार कर लेना था कि हम लोग अपने सारे वन्धुओं को अन्धकूप-सा समझकर घनरस की आशा से आपके पास आयी हैं। जैसे चातकी कुण्ड, सरोवर, नदियों का जल छोड़ जलधर के जल में अपनी आशा सँजोये रहती है, वैसे ही हम आपकी आशा लगाये हैं।'

दूसरी गोपी ने रोष और परिहास से कहा : 'अपने पति, पुत्र, बन्धुओं की सेवा स्त्रियों का धर्म है' कहकर हमें जो आपने उपदेश किया, सो तो आप जगद्गुरु हो ! पर कृपा कर पहले स्वयं इसका ऐसे समय पर अनुकरण करके दिखायें। (अर्थात् जिसके प्राण पर आ गयी, वह कैसे इसका पालन कर सकता है ?) हम इसके पालन में असमर्थ हैं। आपका ऐसा व्यवहार देखकर तो असुर भी हँसेंगे। जिन्होंने जन्म से आज तक जगत् में किसीको भी अपने अन्तर की प्रीति का विषय नहीं बनाया है, हे पुरुषेश्वर ! उसका इस जगत् के किसी पदार्थ से कैसे कोई सम्बन्ध हो सकता है ? हे रमा-लालित पाद-पल्लवधारी ! हे उत्तम रत्नाकर ! आपके सिवा व्रजसुन्दरियों का और कोई पति नहीं है।'

तीसरी गोपी बोली : 'इस जगत् में बुद्धिमती रमणियाँ नित्य-प्रिय त्रिभुवन-कमनीय आपसे ही प्रीति करती हैं। कारण इस जगत् के जितने पुरुष हैं, वे तो दुःख देनेवाले (आर्त) हैं, दुःख हरण करनेवाले नहीं और हैं क्षण-विनाशी। आप आर्ति मिटानेवाले और नित्य पदार्थ हैं। इसलिए हम लौकिक पति-पुत्र का भजन नहीं कर सकतीं। माया पर विजय पाये हुए साधुओं की यही रीति है कि वे नित्य पदार्थ से ही प्रीति बढ़ाते हैं। हम लोगों के लिए इतना विशेष है कि आप नयन और मन के उत्सवदाता और हम लोगों के पति हैं। आपके बिना अमृत भी हमारे सम्मुख निन्द्य है। इसलिए आप प्रसन्न हों और ऐसी माया न प्रकट करें। आपके वचन सुनकर हमारा उत्साह नष्ट होता जा रहा है। हमारी कोमल आशा-लता को अपने वचनरूप कुठार से न काटिये। जैसे शीत ऋतु में कमलिनी जड़ता को प्राप्त होती है, वैसे ही (हेमन्त ऋतु के आगमन समान) आपके वचन हम कमलिनियों के लिए हैं।'

चौथा यूथ बोला : 'आप हमें अपने-अपने घरों में जाने का आदेश कर रहे हैं। पर कैसे जायँ ? आपने तो पहले ही हमारा चित्तरूप रत्न हर लिया (जो सब इन्द्रियों का राजा है)! जाने की इच्छा रहने पर भी हमारा एक पग आपके चरण छोड़ आगे नहीं बढ़ता। अब हम क्या करें ? हे व्रजवधुओं के मनरूप रत्न को हरण करनेवाले नव-चोर! (व्रजवधु-मानस-हारी!) आप तो हमारे मानरूप सस्य (धान्य) को शोषण करनेवाले अवग्रह सरीखे हो रहे हैं।'

पाँचवाँ यूथ बोला : 'आप कौतुकरूपी पराग को हटाकर अपने अधरामृत का वर्षण कीजिये, जिससे आपके निष्ठुर वचन से टूटी हमारी आशा-लता पुनः उज्जीवित हो जाय। आपके उदासीन भाव से हमारे हृदय में जो सन्तापरूपी तुषानल* धधक रहा है, वह शान्त हो जाय। अगर आप ऐसा न करेंगे तो हम अपना-अपना शरीर छोड़ देंगी और निश्चय ही आपको स्त्री-वध का अनुताप करना पड़ेगा। वैसे तो व्रजगोपियाँ अपने शरीर अभी छोड़ सकती थीं, पर यह निश्चय नहीं कि क्या ऐसा करने से आपका विरहरूपी भय जाता रहेगा ?'

छठा गोपी-यूथ बोला : 'हे मोरपिच्छधारी! जब से हमने आपके उत्सव-कन्दरूप चरण-युगल का स्पर्श किया, तभी से ही इस जगत् में हमारी किसीसे बात करने या सङ्ग करने की इच्छा जाती रही। सो अब बताइये, व्रजगोपियाँ क्या करें ? आपकी और हमारी आयु समान है। कृपा कर हम नवयुवती व्रजाङ्गनाओं के लावण्य-समाश्रय माधुर्य का आप अङ्गीकार कीजिये। यदि आप लोक-निन्दा की चिन्ता कर रहे हैं, तो वह उचित नहीं; क्योंकि हम लोग लोक के परे पहुँच गयी हैं। इसलिए हे वृन्दावन-प्रिय! ऐसी तुच्छ बात सोचकर हमें दुःख देना आपको उचित नहीं है।'

श्रुतिरूपा गोपी बोली : 'लक्ष्मीजी आपके वक्षःस्थल में वास करती हुई भी चरण-विलसिता तुलसीजी का सौभाग्य पाने की चेष्टा करती हैं। लक्ष्मीजी की यह चेष्टा देखकर ही गोपियों ने आपके चरण में अनुराग बढ़ाया है। हे शरणागत-पालक! आपके चरणों में व्रजगोपियों ने शरण ली है। आप हम लोगों का त्याग न कीजिये।'

मुनिरूपा गोपी बोली : 'करुणासागर! प्रसन्न हों! आपके चरण-कमलों के मधु का पान कर हम लोगों की बुद्धि कुछ बिगड़-सी गयी है (सो आपसे

* धान के छिलकों की आग, जो बाहर दिखाई नहीं देती, पर अन्दर जलती रहती है।

आकर मिली हैं)। पुरुष-भूषण ! उस दिन आपने जैसे कृपा-दृष्टि प्रकट कर हम लोगों के वसन हरण किये थे, वैसे ही कृपा-दृष्टि करके आज अपना उदासीन भाव त्याग दें। उस दिन जैसे मुस्कान के साथ अधर-शोभा दिखा वचनामृत का दान किया, वैसे ही आज भी हमें अपना वचनामृत सुनाइये। हम तो आपके चरणों की दासी हैं। अपनी दासियों पर इतने उदासीन न हों।'

मुनिरूपा के तुल्य वासनावाली गोपियाँ बोलीं : 'आपके सुमधुर गण्डस्थल पर मणिमय कुण्डल चञ्चल भाव से विहार कर रहे हैं, आपके अधर-मण्डल पर मुस्कानरूप अमृत विराजित है। ऐसे आपके वदनचन्द्र के दर्शन कर हम लोग आपकी दासी बन गयी हैं। अलकावृत आपका वदन-मण्डल तथा मधुर हास्य, आजानुलम्बित भुजयुगल और नयनों की दृष्टि का माधुर्य देख हम आपकी दासी बन गयी हैं। दासियों की प्रेम-आशा पूर्ण करने के लिए आप व्रजसुन्दरियों पर अपना मन अनुकूल बनाइये।'

नित्यसिद्धा गोपी बोली : 'भगवन् ! माधुर्य के आश्रय ! हे गुणरत्नों के नृत्य-मन्दिर ! व्रजगोपियों का आपसे प्रेम करने में क्या दोष है ? इस जगत् में ऐसी कौन रमणी है, जो आपकी मधुर वंशी-ध्वनि सुनकर अपना स्वभाव, कुल आदि लौकिक-पारलौकिक सभी धर्म छोड़ नहीं बैठती ? इसमें दोष तो आपका ही है, कारण आपके स्वरूप—त्रिभुवन-लोचन-चमत्कार-कारण सारे सौन्दर्य की सीमा और श्रेष्ठ माधुर्य को धारण करनेवाले आपके अति मनोहर रूप को देखकर स्वयं पृथिवी देवी तथा खग, मृग, पशु सब अपने अङ्गों में रोमाञ्च धारण करते हैं।' (अर्थात् अचेतन पृथिवी आदि आपका रूप देखकर रोमाञ्चित हो जातीं।)

श्रुतिरूपा गोपी बोली : 'आप तो जगत् में व्रजवासियों की आर्ति हरण करने के लिए प्रकट हुए हैं। आदिपुरुष भगवान् देवलोक में अवतीर्ण हो जैसे देवताओं की रक्षा करते हैं, आपको भी वैसा ही करना योग्य है। इसलिए हम लोगों को आप किसी प्रकार त्याग नहीं सकते। हे आर्तबन्धो ! अपना ऐसा उदासीन भाव और न दिखायें। करुणानिधे ! अपने कर-कमल हम किङ्करी व्रजगोपियों के वक्षःस्थल पर धारण कीजिये। बात बढ़ाने की क्या आवश्यकता है ? व्रजगोपियों के मन को आनन्द प्रदान कीजिये। आपकी जय हो, जय हो !

आपकी वंशी-ध्वनिरूप बंसी (मछली पकड़ने का काँटा) ने पहले ही

'हे बकुल (मौलश्री), नन्दनन्दन के वदन-चन्द्र का दर्शन कर तुम तो विह्वल हो गये। कृपा कर कहो कि क्या तुम्हारे नीचे पड़े फूलों को वीनकर वनमाली ने माला नहीं वनायी ?'

(दूसरी ओर जाकर आम्र का वृक्ष देखकर) : 'अये सखि सहकार (आम्र), तुम्हारे अङ्गों से हमारे प्रियतम ने जो वौर तोड़े, उसीके हर्ष से तुम मधु-धारा के छल से अश्रुपात कर रहे हो ! तुम्हारा ऐसा करना उचित ही है।'

(आगे कदम्ब का वृक्ष देखकर) : 'हे नीप ! हरि ने वन में जाते समय तुम्हारे अङ्गों से सटकर थोड़ी देर अवश्य विश्राम किया होगा, फूल तोड़ने के लिए तुम्हारी शाखा नीची कर तुम पर चढ़े होंगे। इसलिए तुम्हारे नीचे इतने पत्ते और कुछ कलियाँ भी पड़ी दिखाई पड़ती हैं। एक भी भ्रमर तुम्हारे पास नहीं आता। वे प्रियतम के अङ्ग की गन्ध से लुब्ध हो तुम्हें त्याग उनके पीछे लगे होंगे। इसलिए तुम ही हमारे प्रियतम की खवर कह सकते हो।'

(आगे कुछ वढ़कर यमुना के तट पर वृक्षश्रेणी देख) : 'हे यमुना-तट-निवासी ! कृष्ण-दर्शन की लालसा में तुम अपने शरीर से वहुत ही दुःख सहन करते हो। कृपा करके कहो, हमारे प्रियतम कहाँ गये ?'

(आगे वढ़कर) : 'अयि वनलता ! पूर्वजन्म में तुम लोगों ने कौन-से पुण्य कर्म और कौन-से शुभ अनुष्ठान किये, जिनके पुण्य प्रभाव से फलों के भार से भूमि पर लुण्ठित हो अपनी देह की उत्तम सम्पत्ति (फल) प्रियतम को अर्पण कर रही हो ?'

(आगे हरिणी को देखकर) : 'अयि सखि कृष्णसार-नारी ! तुम्हारे नयनों की शोभा हम क्या वर्णन करें ! निखिल व्रजनारी-रञ्जनकारी वृन्दावनविहारी हरि के मन को भी तुमने अपने नयनों से हर लिया है। पश्चात् प्रियतम की रूपमाधुरी से अपने नयन भर लिये। फिर भी तुम्हारा मन नहीं भरा (भले ही नयन भर जायँ)। इसीलिए तुम्हारे हृदय में अभी तक धैर्य नहीं है। सखि ! हम शपथ देकर पूछती हैं, वताओ कि अपने कर-स्पर्श से वृक्षों को सन्तोष-कारी, व्रजाङ्गना-चित्त-हारी किस रास्ते गये ? जाने के समय उन्होंने कैसा मधुर दृष्टिपात तुम पर किया ?'

हरिणी को अपने भाव में ग्रीवा हिलाते देख वे आपस में कहने लगीं : 'व्रज में जितनी पशु-जाति और लताएँ हैं, उनमें कृष्णसार-नारी दयावती है। इसीलिए वह अपनी ग्रीवा हिलाकर मालती लताओं के वन में प्रियतम के जाने का सङ्केत दे रही है।'

वे हरिणी के पीछे जाने लगीं। हरिणी भी कुछ आगे जाकर ठहर गयी। तब सखियाँ आपस में कहने लगीं : 'सखि ! यह हरिणी यहाँ आकर खड़ी हो गयी, इससे पता चलता है कि हमारे प्रियतम इसी वन में ही हैं। यह वन भी घना है। सखि, इसके बीच प्रवेश करना चाहिए।'

वन के भीतर जाकर एक कोयल को देखकर वे बोलीं : 'अयि कोयल ! तुम्हारे मधुर स्वर से यही अनुभव होता है कि प्रियतम की दृष्टि तुम पर पड़ी है। इसी कारण निखिल-जन-मनोहर हमारे प्रियतम के कण्ठ-स्वर-तुल्य तुम्हारे कण्ठ का स्वर है। तुम तो हमारे प्रियतम की मित्र हो। प्रियतम भी श्याम और तुम भी श्याम ! उनके नयन अरुण हैं तो तुम्हारे भी। उनको वन प्रिय है तो तुम्हें भी। प्रियतम के जैसे मधुर वचन हैं, ऐसे ही तुम्हारे भी सरस स्वर हैं। तुम्हारी आम्र के बौर में लालसा है तो प्रियतम को भी आम्र-रस की चाह है। प्रियतम विरहिणी को दुःख देते हैं तो तुम्हारी भी कूक सुन विरहिणियाँ दुःख पाती हैं। इसलिए हम खूब जानती हैं कि तुम अपने मित्र का पता न बताओगी।'

कोयल को छोड़ वे आगे बढ़ीं और हंसिनी को देख कहने लगीं : 'अयि सखि हंसिनी ! हमारे पास आओ। कहो, क्या सूर्य-नन्दिनी यमुना सखी ने तुम्हें यहाँ भेजा है ? तुम्हारे आने का कारण तो हम जान गयीं। यमुना-तट पर प्रियतम विराजित हैं, यह समाचार देकर तुम हमें वहाँ लिवा चलने आयी हो ? सखि ! जल्दी बताओ, किस मार्ग से होकर जाने पर वनमाली का तुरन्त दर्शन मिल जायगा ?'

(हंसिनी के पीछे-पीछे जाते समय सामने, वाम भाग में एक चक्रवाकी को देख) : 'हे चक्रवाकी ! क्या अपने प्रियतम के विरह-दुःख का अनुभव कर हम लोगों का दुःख दूर करने हमारे सामने उड़कर आयी हो ?'

उसी समय पवन की सौरभ अनुभव कर वे अपनी सखी से कहने लगीं : 'चक्रवाकी जो खबर लेकर आयी है, वह ठीक ही है। व्रजवधू-प्राणापहारी हरि निकट ही हैं, क्योंकि प्रियतम के कण्ठ में विराजित वनमाला और उनके अङ्ग की सौरभ से सुरभित मलय-पवन यहाँ बह रहा है।'

'सखि ! अब तो भ्रमर से पूछना चाहिए !' यह कहकर वे भ्रमर से बोलीं : 'हे भ्रमर ! सामने खिले फूलों को छोड़ तुम इधर कैसे आये ? इसका क्या कारण है ? क्या अपनी गुञ्जार से हमारा स्वागत करने को आये हो ?'

जब वे यह अनुभव करके कि निश्चय ही इस समय हमारे प्रियतम पास

करवाते। इस प्रकार प्रियतम अपनी प्रियाओं को अपनी अद्भुत शिल्प-कला (कारीगरी) दिखाने लगे।

व्रजसुन्दरियों ने भी केसर के फूलों की कलियाँ प्रियतम के श्रवण में धारण करायीं। केतकी फूलों से प्रियतम के कर के भूषण बनाये। मल्लिका फूलों के उत्तम हार पहनाये। चरणों में अशोक-पुष्प धारण कराये। जूही की माला, मौलसरी के अङ्गद-कङ्कण तथा काञ्ची धारण करायी। इस प्रकार विलक्षण रास-विहार में वन-विहार, रतोत्सव, नृत्यकला, जलकेलि आदि कार्यक्रम शुरू हुए।

जब वन-विहार प्रारम्भ हुआ, तब निर्जन वन में कोयल, मृग, कलहंस अपना मधुर शब्द करने लगे। व्रजसुन्दरियाँ आनन्द के साथ अपनी-अपनी यूथेश्वरियों के पीछे वन में विहार करने लगीं। पुन्नाग फूलों से पराग लेकर व्रजसुन्दरियाँ अपने-अपने कङ्कण की झङ्कार करती प्राणनाथ पर पराग फेंकने लगीं। तब नन्दनन्दन भी अपने हाथों नाना फूल तोड़कर उनकी गेंद बना युगपत् (एक ही समय) व्रजसुन्दरियों पर फेंकते।

जब श्री नन्दनन्दन व्रजवधुओं के साथ कन्दुक-विहार करते तो उनके पक्ष के पक्षी जयजयकार करते।

सहचरियों के साथ श्री राधिकाजी पर विजय पाने के लिए जब श्रीकृष्ण-चन्द्र गर्वित हो उन पर गेंद फेंकने लगे, तो वे प्रियाजी के नयनों के कटाक्षों से मुग्ध भाव को प्राप्त हुए। यह देख प्रियाजी के पक्ष के पक्षी प्रियाजी की जयजयकार करने लगे। इस प्रकार प्रतिक्षण नव-नव भाव और नवीन कौतुक के साथ विहार करते समय जब श्री राधिकाजी केसर फूल तोड़ने लगीं और भृङ्गों की बाधा से चकित होकर अपने हस्त-कमल को झाड़ने लगीं तो उनकी ऐसी चेष्टा देखकर सब नीचा मुँह कर हँसने लगे।

कलावती व्रजसुन्दरियाँ प्रियतम के आभरण-योग्य फूल तोड़कर प्रीति से सने नयनबाण अपने प्रियतम पर फेंकने लगीं। प्रियाजी ने जब ऊँची लता से फूल तोड़ने की इच्छा से अपने चरण-कमलों की एड़ी उठायी, तो प्रियतम ने पीछे से आकर प्रियाजी को ऊँचा कर दिया। उस समय श्री राधाजी लज्जित हो गयीं।

ऐसे वन-विहार में प्राणनाथ के साथ विहार करते हुए किसी व्रजसुन्दरी के नयन में जब फूलों की पराग लगी और वह भीता होकर हाथों से नयनों को मलने लगी, तो उस समय प्रियतम उसके पास जाकर अपने मुख-कमल से फूँक दे उसके दुःख मिटाने लगे।

ऐसे कुसुम-महोत्सव में रसमय समय में जो फूल बहुत ऊँचे लगे थे, उनके हृदय में दुःख हुआ और वे भी अपनी-अपनी शाखा को सखी भाव से नीचे कर गोपियों के कर-कमल के स्पर्श का सुख अनुभव करने लगे।

श्री नन्दनन्दन ऐसा वन-विहार कर यमुना के पुलिन पर पहुँचे, तो वहाँ जल में असंख्य फूल खिले थे। उन फूलों का सौरभ लेकर पवन वहने लगा। यमुनाजी ने लहररूप करों से अपनी तटवर्ती भूमि का संस्कार (संमार्जन) कर दिया। उस भूमि पर सुधाकर (चन्द्रमा) की किरणें पड़ीं, जिससे शोभित कर्पूर-सा रेत दिखने लगा। ऐसे यमुना-तट पर दामोदर विराजित हुए। उस समय चन्द्रमा की किरण की और यमुना-पुलिन की शोभा एक समान थी। अपने-अपने छाया-भेद से ही उनके पार्थक्य का निश्चय किया जा सकता था।

यमुना के तट पर व्रजसुन्दरियों ने प्रियतम के गुणों का कीर्तन करते हुए कुछ देर तक विहार किया और फिर तट के निकटवर्ती अति मनोहर नाना कुञ्जों में चली गयीं। व्रजसुन्दरियाँ अपने स्वभावों और अवस्था-भेद से अपने-अपने वैदग्ध्य (रसिक) भाव को प्रकट कर दामोदर को मोहित करने लगीं। कुञ्जों में जब प्रियाओं के साथ प्रियतम विराजित हुए, उस समय अनुरागिणियों के मन में प्रियतम से मिलने की महान् अभिलाषा होते हुए भी वचनों से वे विरुद्ध ही भाव प्रकट करने लगीं। (यह उन्होंने अपनी बुद्धि से नहीं किया, इसमें स्त्रियों का स्वाभाविक विलासभाव, 'विव्वोक' नामक भाव ही कारण था।) उनके करों में लज्जा का विलास होने लगा। नयनों की दृष्टि प्रणय-कोप की कल्पना करने लगी। शब्द-प्रेम नयनों में अश्रु बन छलकने लगा। कभी वे प्रियतम को कटु वचन तो कभी अमृतमय वचन कहतीं और कभी अपने कर को कम्पित करतीं। सारी चेष्टाओं से वे अन्तर का अनुराग दिखा रही थीं। जैसे कमलों में भ्रमर विहार करते हैं, रसिकशेखर नन्दनन्दन अनन्त व्रजसुन्दरियों के साथ वैसे ही विहार करने लगे। अप्राकृतिक नवीन मदन के समुद्र में श्री राधा-माधव और उनकी सखियाँ तैरने लगीं।

जब ऐसी आनन्द-चन्द्रिकाओं से व्रजसुन्दरियों का हृदय अहङ्कारवश फूलने लगा, तो अमृत के समुद्र से सहसा कालकूट विष की तरह श्री भगवान् के प्रियाजी के साथ अन्तर्धान का व्यसन अकस्मात् उभर उठा। भगवान् का यह अन्तर्धान होना अत्यन्त सुगन्धि नवीन अग्निशिखा (केसर) की पंक्ति में नवीन अग्निशिखा (अग्नि की ज्वालाएँ) फेंकने जैसा लगा।

गोपियों पर आकाश में मेघ न होते हुए भी वज्र-सा गिर पड़ा। साँपों के न होते हुए भी हालाहल विष का अनुभव होने लगा। गोपियाँ जिस बात की कल्पना तक नहीं कर सकती थीं, निखिल कलाओं के सृष्टि-कर्ता नन्दनन्दन के देखते-देखते यमुना-तट से अन्तर्धान हो जाने पर उन गोपियों को उन दुःखद बातों का प्रत्यक्ष अनुभव करना पड़ा। वे अत्यन्त विह्वल और व्याकुल हो उठीं।



अठारहवाँ स्तवक

श्रीकृष्ण-अन्तर्धान

भगवान् सामने से अन्तर्हित हो जाने पर भी व्रजसुन्दरियों के अन्तर में विराजित ही रहे। फिर भी बाहर प्रियतम के परिहास-वचन प्रेमकातरा व्रजसुन्दरियों को सुनने को नहीं मिले तो वे बाहर तरु, लता आदि का स्फुरण देख आपस में विचार कर कहने लगीं : 'सखि ! सामनेवाले कुञ्ज को भलीभाँति देखो, क्या कोई सखी प्रियतम को वहाँ छिपाये तो नहीं है ? अपनी चातुरी से वह पश्यतोहर (आँखों के सामने चोरी कर लेनेवाले) सुनार की तरह हमारे देखते-देखते प्रियतम को हरकर ले गयी ! उसने नन्द-नन्दन को नहीं, व्रजसुन्दरियों के नयनों के हृदय-मणि को हर लिया !'

वे यह विचारकर कि किसने इन्हें हरा और कहाँ ले गयी, एक-एक कुञ्ज ढूँढ़ने लगीं। प्रियतम के अन्तर्धान होने के विरह से व्रजाङ्गनाओं को अपने कण्ठ की पुष्प-माला काली भुजङ्गिनी-सी लगने लगीं। वे सरल स्वभाव से यही समझतीं कि प्रियतम किसी सखी के साथ किसी कुञ्ज में विहार कर रहे होंगे। सो हमें कुञ्जों में से ही उन्हें ढूँढ़ निकालना चाहिए।

वे कौतुक के साथ प्रति कुञ्ज में प्रवेश कर नन्दनन्दन के चरण-कमलों के स्पर्श से कुञ्जों के आँगन को प्राप्त सरस भाव देख परस्पर कहने लगीं : 'प्रियतम ! क्या हमसे परिहास करने यहाँ विराज रहे हो ? हम जान गयीं। हमें भुलावा नहीं दे सकते।' इस प्रत्येक कुञ्ज में बार-बार ढूँढ़ने पर भी जब किसी भी कुञ्ज में मूर्तरूप में प्रियतम दिखायी न पड़े, तब तो गोपियों के हृदय में संशय उठने लगा। वे सोचने लगीं : 'क्या सचमुच प्रियतम हमें छोड़ चले गये ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। निश्चय ही यह उनका परिहास ही होगा।' जब वे कुछ निश्चय न कर सकीं तो दुःखी हो पुनः कुञ्जों में ढूँढ़ने लगीं। पुनः जब किसी कुञ्ज में प्रियतम के दर्शन नहीं पाये, तब वे यों विचारने लगीं : 'क्या सारी पृथिवी को अन्धकार ने घेर लिया ? शायद इसीलिए प्रियतम सामने होते हुए भी दीख नहीं पड़ते। उनके अङ्ग से स्पर्श होते हुए भी स्पर्श-सुख नहीं मिलता। प्रियतम बोलते हैं, पर उनके वचन कानों को सुनाई नहीं पड़ते। मन कहता है कि प्रियतम सामने विराजमान

हैं, पर नेत्र उनका दर्शन नहीं कर पाते। जो प्रियतम कानों के भूषण थे, अब वे श्रवण के बाहर चले गये। जो नयनों के आँजन वन रहे थे, अब नयनों से ओझल हो रहे हैं। जो वक्षःस्थल के नीलमणि थे, वे हृदय से अन्तर्धान हो चले।' व्रजसुन्दरियों को जगत् की कोई खबर नहीं रह गयी।

धीरे-धीरे गोपियों को मोह-दशा घेरने लगी। बावरी वन उन्होंने प्रलाप शुरू कर दिया : 'प्रियतम ! तुम तो एक ही थे, पर अब तो हम दशों दिशाओं में तुम्हें देख रही हैं। कभी तो आकर अपने कर-कमल से हमारे हृदय का स्पर्श करते हो, पर हाय, दुर्भाग्य यह कि हम तुम्हें स्पर्श नहीं कर पातीं। हृदय से हमारा आलिङ्गन करते हो, पर हमारा हृदय तुम्हारे हृदय से मिल नहीं पाता। जैसे कोई भित्ति पर चित्र अङ्कित करे, ऐसा स्तब्ध भाव हमें प्राप्त हो रहा है। चित्र को तो भित्ति का अवलम्ब होता है, किन्तु हमारी स्थिति सर्वथा निरवलम्ब है।'

प्रियतम के विरह ने व्रजसुन्दरियों की जिजीविषा (जीने की इच्छा) रूप लता को मानो जड़ से उखाड़ फेंक दिया। अथवा जैसे कोई अपने हृदय पर जलते अङ्गारे धारण करे, ऐसी उनकी अवस्था हो गयी। अथवा वे आग से भी अधिक दाह की वेदना सहने लगीं, मानो कालकूट उन्हें लपेटा हो। उनके हृदय की जलन भी इसी तरह की थी। अथवा मानो आरी से उनका हृदय चीरा जा रहा हो। अथवा जैसे सूखी लकड़ी आग में धू-धू जलती है, वैसे ही वे विरह-अग्नि में जलने लगीं। अथवा जैसे कोई हृदय में छूरा भोंक दे, ऐसा दुःख उनको हो रहा था। अथवा जैसे वक्षःस्थल में साँप काटे अथवा शरीर में तीव्र ज्वर चढ़ आये, ऐसी दुःखद अवस्था उन गोपियों को प्राप्त हुई। वेदना से उनकी नयनों की दृष्टि जाती रही। कानों से वे बहरी हो गयीं। वे इन्द्रियों से विषय ग्रहण करने में सर्वथा अशक्त थीं।

महाभाव को प्राप्त व्रजसुन्दरियाँ अब सारे जगत् को निराश्रय मानने लगीं। सारे लोक में कहीं उन्हें आलोक (प्रकाश) नहीं दीख रहा था। हृदय के दुःख से टकराकर पहाड़ों के पत्थर टूटकर गिरने लगे। (महाभाव के प्रभाव से) वृक्ष रोने लगे। लताएँ सूखने लगीं। चन्द्रिका में काली छाप लगने लगी। पक्षियों को मूर्च्छा आने लगी। जैसे चारों ओर दावानल जल रहा हो और उसके बीच कोई हिरणी घिर जाय, ऐसी उन सबकी अवस्था हो गयी।

ऐसी उन्माद की दशा में योगमाया के सङ्केतवश व्रजसुन्दरियाँ अपनी प्राणरक्षा के निमित्त परस्पर विचारने लगीं। विस्मित हो एक सखी बोली : 'अरी, आज तुम्हारे प्राणवल्लभ तुम्हें छोड़ अकस्मात् कैसे चले गये ?'

अन्तर्धान के कारण का कुछ निश्चय न कर पाने पर दूसरी कहने लगी : 'क्या हम यह स्वप्न देख रही हैं ? पर नहीं, सखि ! यह स्वप्न नहीं है, क्योंकि मुझे अब याद आ गया कि आज नन्दनन्दन की वंशी-ध्वनि सुनकर मैं वन में आयी थी। फिर प्रियतम के अपूर्व रूप-माधुर्य के दर्शन किये। पश्चात् उनके निष्ठुर वचन सुने। यह सब तो स्वप्न नहीं, सत्य ही है। उसके बाद मुझे उनकी करुणोक्ति (करुणामय वचन) याद है। फिर प्रियतम ने प्रसन्न हो हम लोगों के साथ अनन्त विहार किये। इसलिए यह हमारा स्वप्न नहीं, निश्चय ही कोई मोह-दशा होगी।'

थोड़ी देर इस प्रकार विचार कर गद्गद कण्ठ हो वे कहने लगीं : 'हम लोग वे (श्री राधा, चन्द्रावली आदि) नहीं हैं ? अथवा हमारे प्रियतम यहाँ से कहीं चले गये ? नहीं-नहीं, सखि ! यह सब झूठ है। वे ही हम हैं और प्रियतम भी हमें छोड़कर कहीं नहीं गये। फिर यह सब क्या है ? अथवा प्रियतम हमारे मन, इन्द्रियाँ आदि भी साथ ले गये, हम आज वे नहीं रहीं। हमारे पुराने मन, पुरानी इन्द्रियाँ, सब कुछ किसी दुष्ट विधाता ने दुःख देने के लिए हमसे हर लीं और ये इन्द्रियाँ तो नयी बना दी हैं।'

जब गोपियाँ प्रियतम के अन्तर्धान पर ऐसी-ऐसी नाना कल्पनाएँ करने लगीं ता श्रीकृष्ण-विषयक उन्माद-भाव ने उनकी मोह-दशा हटाने के लिए उनके हृदय में प्रवेश किया—उनमें कृष्णैकता (हम ही प्रियतम हैं, यह भाव) का भाव प्राप्त कराया। तब वे नन्दनन्दन के गमन-अनुगमन, अनुराग और परिहास के वचन, नयनों की दृष्टि आदि चेष्टाओं का अनुकरण करने लगीं और देह छोड़ भागनेवाले अपने प्राणों को किसी तरह रोक लिया। जब प्राण देहों में स्थिर हो गये, तब वे अपने प्राणेश्वर को ढूँढ़ने लगीं।

जैसे हवा कमल को इधर-उधर उड़ा ले जाती है, वैसे ही वे हृदय में गम्भीर वेदना लिये लीलामय सुकण्ठ से प्रियतम का गान गाती कभी सीधे मार्ग तो कभी टेढ़े मार्ग से चलीं और प्रियतम को ढूँढ़ने लगीं। गोपियों के पीछे-पीछे भगवती योगमाया भी छाया की तरह जाती और जहाँ काँटे रहते, वहाँ अपने मायामय कुसुम-शरीर बिछा देती। वह मार्ग के बीहड़ जंगलों को साफ कर उनकी सेवा-सुविधा करने लगी। फिर भी योगमाया की यह सेवा व्रजसुन्दरियों को मालूम न पड़ी।

गोपियाँ वे-रोक-टोक प्रतिवृक्ष, प्रतिलता के पास जा उनसे प्रियतम का पता पूछने लगीं : 'हे अश्वत्थ, कपित्थ, अशोक, वट ! तुम कुशल तो हो ? क्या तुम लोगों ने कहीं गोपराजनन्दन को देखा है ? हमें उत्तर दो, मौन क्यों हो गये ? हमसे कपट न करो, सच कहो, क्या नन्दनन्दन तुम्हारे सामने नहीं आये ? यदि नहीं, तो तुम लोगों के अङ्गों में ये स्तम्भ आदि सात्त्विक विकार कैसे दिखाई पड़ रहे हैं ?'

फिर वे आपस में सखियों से (वृक्ष पर अपने ही भाव आरोपण कर) कहने लगतीं : 'सखि ! ये वृक्ष तो नन्दनन्दन की लीला का ध्यान करने में ही आविष्ट हैं । वाहर का इन्हें काई अनुसन्धान ही नहीं । इसीलिए उत्तर नहीं देते । चलो, आगे पूछेंगे ।'

(कुछ आगे वढ़कर) : 'हे निष्पाप चम्पक, आम्र, साल, पुन्नाग ! इस रास्ते से होकर जाते श्यामसुन्दर के आपने अवश्य दर्शन किये होंगे । उन्होंने अपना दर्शन दे तुम लोगों के मन भी हर लिये । तव अपने पत्ते हिलाकर निषेध क्यों कर रहे हो ? झूठ न वोलो । अगर तुमने प्रियतम के दर्शन नहीं किये तो तुम्हारे शरीर में ये पुलक कैसे ?'

फिर भी जव कुछ जवाव न मिला तो अपनी सखी से वे कहने लगीं : 'सखि ! ये वृक्ष तो नन्दनन्दन का पक्ष लेकर निष्ठुर वन कुछ जवाव ही नहीं देते । चलो, दूसरे वन में चलकर पूछें !'

आगे तमाल वृक्ष को देख वे पूछने लगीं : 'हे तमाल ! तुम्हारे वर्ण के सुहृद् (तमाल की तरह श्यामवर्ण श्याम) तुम्हारे पास अवश्य आये होंगे । निश्चय ही तुम्हारा आलिङ्गन किये होंगे, क्योंकि तुम्हारे अङ्ग में से प्रियतम की अङ्ग-गन्ध निकल रही है, जिसे भ्रमर मुग्ध हो सूँघ रहे हैं ।'

(फिर सखि से) : 'अरी, यह तमाल तो अपने सखा के आलिङ्गन से सव कुछ भूल गया ! इसीलिए कुछ उत्तर नहीं देता । इस समय इससे कुछ पूछना ठीक नहीं । चलो, आगे चलकर किसीसे पूछें ।'

(आगे तुलसी को देखकर) : 'अयि मङ्गलमयी तुलसि ! तुमने कमलनयन श्री नन्दनन्दन के अङ्गों का स्पर्श किया है, इसलिए तुम धन्य हो ! जगत् में तुम्हारी कीर्ति की उपमा नहीं । हम पर प्रसन्न होओ । बताओ, तुम्हारे प्रियतम से हम कहाँ मिल सकती हैं ?'

(अपनी सखी से) : 'सखि ! कोई स्त्री अपने प्रियतम की खबर दूसरी से कैसे दे सकती है ? तुलसी के हृदय में हमसे सौतियाडाह है ।' (इतना कहकर पुनः तुलसी से कहने लगीं) : 'प्रियतम के कण्ठ से चरणों तक माला बन केवल

तुम ही वनमाली का वक्षःस्थल अपने शरीर से भूषित करती हो। तुम जैसा सौभाग्य व्रज में किसीको भी प्राप्त नहीं। आज तुमसे हम नम्र विनय कर पूछती हैं कि तुम्हारे वे प्रियतम हम लोगों के मन, बुद्धि और प्राण हरण कर इस रास्ते से किधर चले गये? करुणामयि! तुम तो हमारी सखी हो। सखी तो अपने प्राण देकर भी सखी की प्राण-रक्षा करती है।'

इतना कहने पर भी जब तुलसी से कोई उत्तर नहीं मिला तो बोलीं: 'सखि! प्रियतम तुलसी का भी मन हर ले गये। प्रियतम के स्पर्श के बाद उनके विरह में यह भी सब कुछ भूल गयी है। सो अब इससे भी पूछना ठीक नहीं। जिसके हृदय में दुःख है, वह दूसरे को दुःख नहीं देना चाहता, सो आगे चलकर पूछें!'

(आगे चलकर माल्ती लता को देख): 'सखि माल्ती! वनमाली ने अपने नयनों से क्या तुम्हारा आलिङ्गन नहीं किया? अगर प्रियतम की दृष्टि तुम्हें नहीं मिली, तो फूलों के विकास के बहाने हृदय का गर्व क्यों बाहर दिखा रही हो? सखि मल्लिके! व्रजराजनन्दन के दर्शन की बात हमारे आगे न छिपाओ। हमने अपनी आँखों तुम्हारे वदन में पुलक देखे हैं।'

'सखि जाति! तुम्हारा स्वभाव तो सरल है! तुम हमें न ठगोगी, इसका दृढ़ विश्वास है। प्रियतम के नखों के चिह्नों से तुम्हारे अङ्ग लाल-लाल हो रहे हैं।'

'सखि यूथिके! भ्रमर की ध्वनि से क्यों रो रही हो? क्या नन्दनन्दन ने जैसे हमारे मन को हरण किया है, वैसे ही वे अपनी दृष्टि से तुम्हारे मन को तो हरण नहीं कर गये?'

(जब लताओं ने कुछ भी उत्तर न दिया, तब दूसरे वन में जाकर पूछने लगीं): 'हे कुरुवक, हे अशोक! हमारे प्रियतम का पता बताकर अपना नाम सार्थक करो (हमें शोक-रहित कर दो)। हाय! झूठ मत कहो कि तुमने उनको नहीं देखा। तुम्हारे पत्तों में प्रियतम के नख-चिह्न अङ्कित हैं।'

(दूसरे वन में जाकर): 'हे कोविदार! हमें कैसे कृष्ण-दर्शन हों, इसका उपाय बताओ।'

(फिर आगे चलकर): 'हे पनस! कहो व्रजविहारी हरि कहाँ गये हैं, जिनको देखकर तुम्हारे फलों के अङ्गों में रोमाञ्च हैं? (कटहल में जो काँटे हैं, वे रोमाञ्च के सूचक हैं।) महानुभाव जम्बीर (बड़ा नींबू), हे बिल्व-वृक्ष! तुम्हारा शरीर धारण करना सार्थक है। तुम्हारे फलों पर प्रियतम ने अपने कर-कमल फेरे हैं।'

'हे बकुल (मौलश्री), नन्दनन्दन के वदन-चन्द्र का दर्शन कर तुम तो विह्वल हो गये । कृपा कर कहो कि क्या तुम्हारे नीचे पड़े फूलों को वीनकर वनमाली ने माला नहीं वनायी ?'

(दूसरी ओर जाकर आम्र का वृक्ष देखकर) : 'अये सखि सहकार (आम्र), तुम्हारे अङ्गों से हमारे प्रियतम ने जो बौर तोड़े, उसीके हर्ष से तुम मधु-धारा के छल से अश्रुपात कर रहे हो ! तुम्हारा ऐसा करना उचित ही है ।'

(आगे कदम्ब का वृक्ष देखकर) : 'हे नीप ! हरि ने वन में जाते समय तुम्हारे अङ्गों से सटकर थोड़ी देर अवश्य विश्राम किया होगा, फूल तोड़ने के लिए तुम्हारी शाखा नीची कर तुम पर चढ़े होंगे । इसलिए तुम्हारे नीचे इतने पत्ते और कुछ कलियाँ भी पड़ी दिखाई पड़ती हैं । एक भी भ्रमर तुम्हारे पास नहीं आता । वे प्रियतम के अङ्ग की गन्ध से लुब्ध हो तुम्हें त्याग उनके पीछे लगे होंगे । इसलिए तुम ही हमारे प्रियतम की खबर कह सकते हो ।'

(आगे कुछ बढ़कर यमुना के तट पर वृक्षश्रेणी देख) : 'हे यमुना-तट-निवासी ! कृष्ण-दर्शन की लालसा में तुम अपने शरीर से बहुत ही दुःख सहन करते हो । कृपा करके कहो, हमारे प्रियतम कहाँ गये ?'

(आगे बढ़कर) : 'अयि वनलता ! पूर्वजन्म में तुम लोगों ने कौन-से पुण्य कर्म और कौन-से शुभ अनुष्ठान किये, जिनके पुण्य प्रभाव से फलों के भार से भूमि पर लुण्ठित हो अपनी देह की उत्तम सम्पत्ति (फल) प्रियतम को अर्पण कर रही हो ?'

(आगे हरिणी को देखकर) : 'अयि सखि कृष्णसार-नारी ! तुम्हारे नयनों की शोभा हम क्या वर्णन करें ! निखिल व्रजनारी-रञ्जनकारी वृन्दावनविहारी हरि के मन को भी तुमने अपने नयनों से हर लिया है । पश्चात् प्रियतम की रूपमाधुरी से अपने नयन भर लिये । फिर भी तुम्हारा मन नहीं भरा (भले ही नयन भर जायँ) । इसीलिए तुम्हारे हृदय में अभी तक धैर्य नहीं है । सखि ! हम शपथ देकर पूछती हैं, बताओ कि अपने कर-स्पर्श से वृक्षों को सन्तोष-कारी, व्रजाङ्गना-चित्त-हारी किस रास्ते गये ? जाने के समय उन्होंने कैसा मधुर दृष्टिपात तुम पर किया ?'

हरिणी को अपने भाव में ग्रीवा हिलाते देख वे आपस में कहने लगीं : 'व्रज में जितनी पशु-जाति और लताएँ हैं, उनमें कृष्णसार-नारी दयावती है । इसीलिए वह अपनी ग्रीवा हिलाकर मालती लताओं के वन में प्रियतम के जाने का सङ्केत दे रही है ।'

वे हरिणी के पीछे जाने लगीं। हरिणी भी कुछ आगे जाकर ठहर गयी। तब सखियाँ आपस में कहने लगीं : 'सखि ! यह हरिणी यहाँ आकर खड़ी हो गयी, इससे पता चलता है कि हमारे प्रियतम इसी वन में ही हैं। यह वन भी घना है। सखि, इसके बीच प्रवेश करना चाहिए।'

वन के भीतर जाकर एक कोयल को देखकर वे बोलीं : 'अयि कोयल ! तुम्हारे मधुर स्वर से यही अनुभव होता है कि प्रियतम की दृष्टि तुम पर पड़ी है। इसी कारण निखिल-जन-मनोहर हमारे प्रियतम के कण्ठ-स्वर-तुल्य तुम्हारे कण्ठ का स्वर है। तुम तो हमारे प्रियतम की मित्र हो। प्रियतम भी श्याम और तुम भी श्याम ! उनके नयन अरुण हैं तो तुम्हारे भी। उनको वन प्रिय है तो तुम्हें भी। प्रियतम के जैसे मधुर वचन हैं, ऐसे ही तुम्हारे भी सरस स्वर हैं। तुम्हारी आम्र के बौर में लालसा है तो प्रियतम को भी आम्र-रस की चाह है। प्रियतम विरहिणी को दुःख देते हैं तो तुम्हारी भी कूक सुन विरहिणियाँ दुःख पाती हैं। इसलिए हम खूब जानती हैं कि तुम अपने मित्र का पता न बताओगी।'

कोयल को छोड़ वे आगे बढ़ीं और हंसिनी को देख कहने लगीं : 'अयि सखि हंसिनी ! हमारे पास आओ। कहो, क्या सूर्य-नन्दिनी यमुना सखी ने तुम्हें यहाँ भेजा है ? तुम्हारे आने का कारण तो हम जान गयीं। यमुना-तट पर प्रियतम विराजित हैं, यह समाचार देकर तुम हमें वहाँ लिवा चलने आयी हो ? सखि ! जल्दी बताओ, किस मार्ग से होकर जाने पर वनमाली का तुरन्त दर्शन मिल जायगा ?'

(हंसिनी के पीछे-पीछे जाते समय सामने, वाम भाग में एक चक्रवाकी को देख) : 'हे चक्रवाकी ! क्या अपने प्रियतम के विरह-दुःख का अनुभव कर हम लोगों का दुःख दूर करने हमारे सामने उड़कर आयी हो ?'

उसी समय पवन की सौरभ अनुभव कर वे अपनी सखी से कहने लगीं : 'चक्रवाकी जो खबर लेकर आयी है, वह ठीक ही है। व्रजवधू-प्राणापहारी हरि निकट ही हैं, क्योंकि प्रियतम के कण्ठ में विराजित वनमाला और उनके अङ्ग की सौरभ से सुरभित मलय-पवन यहाँ वह रहा है।'

'सखि ! अब तो भ्रमर से पूछना चाहिए !' यह कहकर वे भ्रमर से बोलीं : 'हे भ्रमर ! सामने खिले फूलों को छोड़ तुम इधर कैसे आये ? इसका क्या कारण है ? क्या अपनी गुञ्जार से हमारा स्वागत करने को आये हो ?'

जब वे यह अनुभव करके कि निश्चय ही इस समय हमारे प्रियतम पास

में हैं, धीरे-धीरे पैर बढ़ाने लगीं तो उन्होंने पृथिवी को तृणाच्छादित देखा। बस, उन्हें पृथिवी के रोमाञ्च ही मानकर कहने लगीं : 'अयि पृथिवी ! तुम्हारी महिमा का हम क्या वर्णन करें ? तुम तो सदैव कृष्ण-चरण-कमलों को अपने अङ्गों में धारण किये हो। यह महिमा क्या वामन भगवान् की कृपा से तुम्हें मिली अथवा वराहदेव की कृपा से ? अयि धरणी देवि ! जगत् में तुम ही धन्य हो, जो सदैव प्रियतम के चरण चुम्बन करती हो। तुम्हारी प्रीति से प्रियतम का गमन भी मन्द पड़ जाता है।'

इस प्रकार श्रीकृष्ण के विरह में प्राप्त उन्माद-दशा में किसी गोपी के अन्तर में प्रश्न तो किसीके संशय, किसीके निश्चय, किसीके विकल्प आदि भाव रह-रहकर अभिव्यक्त होते। उसके बाद अब उनके हृदय में नन्दनन्दन की स्फूर्ति से 'मैं कृष्ण हूँ' यह भाव उदित होने लगा। इसी आवेश में वे भगवान् की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। लीला में जो सजातीय भाव (अनुकूल भाव) था, उससे सखियों के मन द्रवित हो चले तो विजातीय लीलाओं में हृदय नीरस होने लगा। सजातीय भावदशा में ही विजातीय भाव के अनुकूल सामग्री योगमाया अपने अद्भुत स्वरूप से प्रकट करने लगीं। माधुर्य में वात्सल्यभाव नहीं हो सकता, पर वह विजातीय भाव योगमाया अपने स्वरूप से अभिव्यक्त करने लगीं अर्थात् योगमाया ही यशोदा, पूतना आदि बनीं। पूतना की आकृति देख कोई व्रजसुन्दरी अपने को बालगोपाल मान बैठ गयी। योगमाया ने यशोदाजी के रूप में सामने आकर उन्हें गोद में उठा लिया। पूतना ने आकर उसकी गोद में से बालगोपालरूपी गोपी को हर लिया और उसे स्तनपान कराने लगी।

इस लीला में गोपियों का नन्दनन्दन से तादात्म्यभाव नहीं है। फिर भी जहाँ-जहाँ कृष्णभाव की लीला है, वहाँ नन्दनन्दन उनके अन्तर में प्रवेश कर यह लीला दिखाने लगे।

इसके बाद योगमाया शकट का आकार धारण कर आगे खड़ी हो गयीं। एक गोपी बालगोपाल-भाव से रोने लगी। ज्यों ही कृष्णभावित गोपी ने उसे अपने चरण का स्पर्श किया, त्यों ही शकट पलट गया।

गोपियों के हृदय में कृष्ण-भाव रहा, पर बाहर उनकी अपनी ही आकृति थी। हृदयस्थ भाव ने प्रबल हो उनको अपने देह की स्मृति भी भुला दी।

गोपियों की आकृतियाँ उस समय ऐसी शोभित हो रही थीं, मानो

विद्युत् के भीतर जलधर हों, अथवा ज्योत्स्ना के भीतर मेघ घुस गया हो। अथवा सोने की कमलिनियों के भीतर भ्रमर घुस पड़ा हो। अपने-अपने अन्तर में नन्दनन्दन का प्रतिविम्ब देख व्रजसुन्दरियों की वृत्ति तदनुगत हो गयी।

ऐसे ही भाव से जव तृणावर्तरूपी योगमाया को उन्होंने देखा, तव किसी व्रजाङ्गना ने वालगोपाल-भाव धारण किया। जव तृणावर्त उसे हरण कर ले चला तो वह गोपी तृणावर्त को असुर जान यह कहने लगी कि 'हम इसको मारेंगे।'

कोई व्रजसुन्दरी रेंगन-लीला के आवेश में अपने जानु को भूमि पर रख-कर हाथों से धीरे-धीरे चलती और पीछे मुँह को फेरकर देखने लगती। कभी शङ्कित, तो कभी निर्भय हो वालकृष्ण की रिङ्गण-लीला प्रकट करने लगी।

कोई सखी माखन-चोरी करके भीत हो जव पास में खड़ी हो गयी तो योगमाया ने यशोदा का रूप धारण कर सामने आ दामों से उसका कटितट वाँध दिया।

उसके वाद दो सखियाँ ऊखल खींच सामने दो पेड़ों के वीच जाकर उसकी जड़ उखाड़ने लगीं।

कोई सखी वत्स-पालकरूपी कृष्णभाव से वलदेवचन्द्र के साथ वन में जाती और वत्सासुर को हनन करने लगती।

कोई सखी अपने कर में वेणु धारण कर वंशी पर उँगलियाँ चलाने लगी और शवरी, धवली, धूमे, काली आदि गौओं के नाम ले-ले उनको पुकारने लगी।

कोई सखी अपनी सखी के गले लगाकर कुछ आगे वढ़कर कहने लगी: 'मैं कृष्ण हूँ, मेरे गमन-माधुर्य का दर्शन करो!' पर प्रियतम के विरह में निमग्न होने के कारण व्रजसुन्दरियाँ इस लीला का भलीभाँति अनुकरण न कर सकीं। तव नन्दनन्दन उनके हृदय में प्रवेश कर उनसे यह लीला कराने लगे।

कोई सखी यमुना-तट पर जाकर 'कृष्ण मैं हूँ' इस अभिमान से कालिय-मर्दन-लीला का अनुकरण करती कहने लगी: 'हे भुजङ्गाधम कालिय! हमारी लीला-स्थली इस यमुना को छोड़ चले जाओ।' उस समय योगमाया ने कालिय का रूप धारण किया और कृष्णभावभावित गोपी उसके फणाओं पर चढ़कर नाचने लगी।

इसके वाद कोई सखी कृष्ण-भाव से चारों ओर दावानल देख उसकी शान्ति

के लिए अपने सखाओं से कहने लगी : 'सखागणो ! डरो मत ! हम दावानल से तुम्हारी रक्षा करेंगे ! तुम अपनी-अपनी आँखें मीच लो।' यह कहकर वह दावानल का पान करने लगी।

उसके वाद गोप-कुमारिकाओं के सङ्कल्प पूर्ण करने के लिए यमुना के तीर पर आकर दो-चार वसन ले एक गोपी कदम्ब के पेड़ पर चढ़कर वोलने लगी : 'अयि कुमारिकाओ ! एक-एक कर तुम लोग हमारे पास आओ ! अथवा सब मिलकर भी एक साथ आ सकती हो। इसी तरह आकर अपने-अपने ही वसन लो, अन्यथा हम नहीं देंगे। तुम्हारे क्रोध से हम नहीं डरते।'

उसके वाद किसी गोपी ने याज्ञिक-ब्राह्मणियों को दर्शन देने के लिए अशोक-कानन में जाकर अपने सखाओं को ब्राह्मणियों के पास भेज दिया। फिर ब्राह्मणियाँ वहाँ आ गयीं तो मधुर स्वर से वह वोलने लगी : 'हे कल्याणी ! तुम्हारा स्वागत है। हम पर जो तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति है, उसे हम जानते हैं। हमारे दर्शन को तुम आयी थीं सो कर चुकीं। अव यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं। मेरे चरित्र के श्रवण, कीर्तन और स्मरण से तुम्हारा भाव जितना वढ़ेगा, उतना यहाँ रहने से नहीं।'

इसके वाद किसी सखी के अन्तर में गोवर्धन-धारण की लीला स्फूर्त हुई तो वह चारों ओर वनघटा देखने लगी। ब्रजवासी लोग उसके आगे आकर अपना दुःख निवेदन करने लगे। तव वह (कृष्णाविष्ट गोपी) वोलने लगी : 'डरो मत ! धैर्य धारण करो। हम अभी अपने कर-कमलों में गिरिराज को धारण कर लेते हैं। गिरिराज धारण करने पर यह शङ्का हृदय में न लाना कि वे हमारे हाथ से गिर पड़ेंगे। गिरिराज अपनी कृपा से हमारे हाथ में अपने-आप ही विराजित रहेंगे।' उसने अपने अङ्ग का उत्तरीय वसन ऊँचा धारण किया और दक्षिण कर से पृथिवी को स्पर्श करके कहने लगी : 'आप लोग गिरिराज के भीतर चले आइये। यहाँ गिरिराज ने अपने प्रभाव से आपके लिए सव प्रवन्ध कर रखा है।'

अनन्तर कोई ब्रजाङ्गना नन्दनन्दन के आवेश में मुरली वजाने लगी, तो अन्य ब्रजसुन्दरियाँ अनुराग में भरी उसके आगे आकर खड़ी हो गयीं। पूर्ण चन्द्रमा को देख वह नन्दनन्दन के-से परिहास-वचन वोलने लगी : 'अयि साध्वी ! तुम्हारा स्वागत है। वैठो, हम तुम्हारी क्या सेवा करें, सो कहो। सव कोई मिलकर यहाँ रात में क्यों आयी हो ? हाय ! तुम लोगों ने चरण के भूषण कण्ठ में और कटि के भूषण गले में क्यों धारण किये हैं ? इससे मालूम

होता है कि जब घर से तुम निकली थीं तो तुम्हारे हृदय में भाव की बड़ी गम्भीरता थी। यह अँधियारी रात है और यहाँ घना जङ्गल है। वन में बड़े-बड़े हिंसक पशु हैं। यहाँ तुम लोग कैसे ठहर सकती हो ? इसलिए अपने-अपने घर जाओ ! क्या वन में फूलों की शोभा अथवा चन्द्रमा का प्रकाश अथवा यमुना की शोभा देखने आयी हो ? सो तो देख चुकीं, अब अपने-अपने भवन चली जाओ। घर में जाकर मेरे गुणों का श्रवण-कीर्तन और ध्यान करती रहो। उससे मुझ पर शीघ्र भाव बढ़ेगा।'

कृष्ण-भावाविष्ट गोपी ऐसे मधुर वचन कहकर सोचने लगी कि इस समय तो अन्तर्धान होना चाहिए। जब वह अन्तर्धान का अनुकरण करने लगी तो उन सबकी स्मृति जाग उठी। उस समय गोपियों के हृदय में से नन्दनन्दन की तादात्म्य-निद्रा टूट गयी और वे जाग्रत हो अपने-अपने मन आदि इन्द्रियों को प्राप्त कर प्रियतम के विरह का निम्नलिखित प्रकार से अनुभव करने लगीं। नन्दनन्दन के अकस्मात् छोड़ जाने से चारों ओर कातरता के साथ देखने लगीं। तन्मय भाव भूलकर अत्यधिक अधीर हो उठीं।

उस समय पवन ने नीचे के पत्ते हटाकर जब श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमलों के चिह्न दिखाये तो गोपियाँ उनको देख समझने लगीं कि ये हमारे हृदय से बाहर निकल आये हैं ! अथवा वनदेवी ने अपने हाथों ये चिह्न अङ्कित किये हैं ! अथवा ब्रह्मादि देवताओं ने नन्दनन्दन के उपासनार्थ यह चित्र-पूजा के लिए अङ्कित किया था और वे पूजन कर चले गये हैं ! अथवा यह लताओं के कोई नवीन पत्र हैं, जिनमें श्रीकृष्ण-चरण-चिह्न विराजित हैं।

उन चरण-चिह्नों का दर्शन कर जब उनके अङ्गों में रोमाञ्च होने लगे तो विस्मित हो वे आपस में कहने लगीं : 'सखि ! आज हमारा बड़ा सौभाग्य है ! तभी तो प्रियतम के ध्वज, कमल, वज्र, अङ्कुश आदि चरण-चिह्न आगे दिखाई पड़ रहे हैं। सखि ! चन्द्रमा ने हम पर प्रसन्न होकर इतनी किरणें प्रकट की हैं, जिनसे इन चरण-चिह्नों को हम अच्छी तरह देख पाती हैं। देखो, इन चरण-चिह्नों में उँगलियाँ दबी हुई हैं। मध्य प्रदेश जरा ऊँचा है। चरण का ध्वज-चिह्न जगत् में हमारे प्रियतम की उत्कर्ष-महिमा घोषित कर रहे हैं। कमल-चिह्न पृथिवी को शीतल कर रहे हैं। चरण में जो वज्र-चिह्न है, वह तो ब्रजाङ्गनाओं का वध करने के लिए है। अङ्कुश-चिह्न

हमारे हृदय को खोदने के लिए ही हैं। आपस में जिनका विरुद्ध स्वभाव है, ऐसी वस्तुओं की यह एकत्र स्थिति कैसी शोभा प्रकट कर रही है और किस तरह हमारे मन-नयनों को हर रही है। सखि ! इन चरणों में कितना माधुर्य है ! और आज पृथिवी की कितनी ही महिमा है ! इन चिह्नों को देख भ्रमर मुग्ध हो गये हैं। उनका फूलों में अनुराग नहीं रहा। ये महाभाग्यवान् हैं। सखि, इन परम भागवत भ्रमरों का हमें जय-गान गाना चाहिए।

व्रज की यह रज भी धन्य है, जिससे पृथिवी का दुःख मिट जाता है। यह रज महात्मा लोगों का धैर्य हर लेती है। श्री गोविन्द-पदारविन्द की इस रज को ब्रह्मा महादेव आदि देवताओं को साथ लेकर वन्दन करते हैं। स्वयं लक्ष्मीजी भी इस रज के स्पर्श की अभिलाषा करती हैं। सखि, हम लोग भी अपने-अपने हृदय का सन्ताप दूर करने के लिए रसिक-शेखर की यह चरण-रज हृदय में धारण करें।'

इतना कहकर जब एक सखी चरण-रज लेने लगी तो दूसरी सखी कहने लगी : 'सखि ! रज मत उठाओ ! रज उठाने से यह चरण-चिह्न मिट जायँगे। यहाँ खड़ी होकर इन चिह्नों के दर्शन कर नयनों का सुख प्राप्त करो।'

इतना कहकर चरण-चिह्नों का दर्शन करती वे जब कुछ दूर आगे आ गयीं तो प्रियतम जिसके साथ अन्तर्धान हुए थे, उन मादनाख्य महाभाववती श्री राधा के चरण-चिह्न देख एक सखी कहने लगी : 'सखि ! यह क्या, प्रियतम के चरणों के साथ ये किसके चरण-चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं ? जहाँ-जहाँ प्रियतम के चरण-चिह्न हैं, उनके पास में ही ये चरण-चिह्न हैं। इससे मालूम होता है कि प्रियतम के कन्धे पर हाथ रखकर कोई प्रियतमा वन में विहार कर रही है। व्रज में वही परम सौभाग्यवती है, जिनसे अनुगत होकर प्रियतम अकेले हम लोगों से छिपकर उनके साथ विहार कर रहे हैं।'

फिर कुछ विचार कर कहने लगीं : 'सखि ! जगत् में यह रमणी धन्य है। व्रज में जितने वधू-रत्न हैं, उनमें यही उत्तम रत्न है। सौभाग्य और उत्सव की यह जन्मभूमि है। जगत् की समस्त सुकृतियाँ इसमें ही वास करती हैं। जैसे ज्योत्स्ना चन्द्रमा को छोड़ नहीं रहती, वसन्त ऋतु को छोड़ कोयल की मधुर वाणी नहीं निकलती, बिना मेघ के बिजली नहीं चमकती, इनका भी ऐसा ही स्वभाव है।'

सुहृदयपक्षा श्यामलाजी के ये वचन सुनकर चन्द्रावली की सखी पद्मा (विपक्षा) कहने लगी : 'सखि श्यामे ! तुम्हारी प्यारी सखी राधा रात्रि में

वन में तुम सबको मैल की तरह त्यागकर, प्रियतम को छिपा अकेले ही विहार करने लगीं। इससे तुम पर उसकी प्रीति है, यह कैसे मानें?'

श्यामलाजी ने कहा: 'सहजमत्सरमते (स्वभावतः मात्सर्य रखनेवाली) पद्मे! सुन। हमारी प्रिय सखी राधा कृष्ण-प्रेमरूप अमृत-सरिता में जन्म से ही अपने अङ्ग समर्पित कर चुकी हैं। सो उनमें अब स्वतन्त्रता नहीं रही। बलवती प्रेम-नदी वेग से जब कहीं, जहाँ कहीं उनको उठाकर ले जाती है। हमारी प्रिय सखी नदी के उस वेग को रोक नहीं पातीं। वह तो जल में तृण जैसी हैं। इसलिए प्रिय सखी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, अपितु उनका अनुराग अनुभव करके अपने अन्तर से स्तव-गान करना चाहिए। चम्पक की कली और उसका डंठल एक साथ जन्म लेते और बढ़ते हैं, उनमें आपस में कोई भेदभाव नहीं होता। तब भी समय आने पर चम्पक कली को विकसित करता और डण्ठल को त्याग देता है। इसमें चम्पक के फूल का कोई अपराध नहीं। इसी तरह हम लोगों को अपने प्राणों के तुल्य मानती हुई भी रसवती श्री राधिका ने प्रियतम की रस-पुष्टि के लिए हमें जो त्याग दिया, इसमें उनका कोई अपराध नहीं।'

तब चन्द्रावली का पक्ष ले दूसरी सखी उत्तर देने लगी: 'सखि! श्यामला ने अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए जो कहा, वह ठीक नहीं है, क्योंकि तुम्हारी सखी सबमें प्रधाना है। उसका यह एकाकी चारण (सबको छोड़ अकेले चले जाना) ठीक नहीं। इससे यही मालूम होता है कि तुम्हारी सखी में कुछ भी दया नहीं है। दामोदर की अधरचन्द्र-सुधा सबके लिए है, केवल उन्हींके लिए नहीं, यह जानते हुए भी स्वयं अकेली ही चकोरी बन उसका पान करना प्रधाना के लिए योग्य नहीं। इसलिए तुम्हारी प्रिय सखी के चरण-चिह्न हमारे नयनों को सुख नहीं देते।'

कुछ आगे बढ़ने पर जब व्रज-रज में श्री राधाजी के चरण-चिह्न नहीं दिखायी दिये तो सुहृदयपक्षा सखियाँ विचारने लगीं: 'यह क्या बात है? यहाँ तो श्री राधाजी के रमणीय पद-चिह्न नहीं, केवल नन्दनन्दन के ही चरण-चिह्न अङ्कित हैं और वे भी बहुत दबे दीखते हैं। इससे यही लगता है कि प्रिया के चरण में व्रज के तृण गड़ते होंगे, यह अनुभव कर प्रियतम नन्दनन्दन ने उन्हें अपने हृदय में धारण कर लिया हो। सखि! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, ये चरण-चिह्न ही प्रमाण हैं। सखि! प्रियतम का अपनी प्रिया पर कितना अनुराग है, यह बात ये चरण-चिह्न ही प्रकट कर रहे हैं। घर से

तो हम लोग एक साथ ही आयीं। प्रियतम के दर्शन भी एक साथ किये। उनके निष्ठुर वचन भी एक साथ ही सुने। उसके बाद रसमय विहार में भी एक साथ ही रहे। किन्तु हे सखि राधिके ! इस समय प्रियतम तुम्हें ही हृदय से लगाकर हम लोगों को तृण-सा त्यागकर चले गये। सखि ! फल से ही अपना-अपना सुकृत-दुष्कृत मालूम पड़ता है।'

कुछ आगे जाकर और भी चरण-चिह्न देखे तो एक गोपी कहने लगी : 'सखि ! यहाँ तो प्रियतम ने अपने वक्षःस्थल से प्रियाजी को उतारा है। प्रिया-प्रियतम एक-दूसरे के सामने खड़े हैं। ये चरण-चिह्न हमें यह बता रहे हैं कि प्रिया-प्रियतम वन में विहार कर थक गये और श्रम दूर करने के लिए परस्पर आलिङ्गन कर रहे हैं।'

यह सुनकर विपक्ष-पक्षीया गोपियों के हृदय में असूया-भाव उत्पन्न हुआ और स्वपक्षीया अपनी प्रिय सखी का सौभाग्य अनुभव करके आनन्दित होने लगीं।

इस प्रकार सोचती-विचारती सब सखियाँ मिलकर चलीं और यमुना-तट की ओर प्रियतम के चरण-चिह्न देखती यह अनुमान कर कि प्रियतम इधर ही गये होंगे, आगे बढ़ीं। किन्तु वहाँ उन्हें ध्वजा, वज्र आदि कुछ भी चिह्न नहीं दिखायी दिये। केवल चरण की अङ्गुलिमात्र के चिह्न थे। इस पर उन्होंने विचारा कि इससे यही प्रतीत होता है कि प्रियतम ने फूल तोड़ते समय एड़ी उठायी है। वे अपनी प्रियाजी के लिए फूल तोड़ने लगे हों। उन चरण-चिह्नों के पीछे कुछ दूर जाकर जब उन्होंने विचित्र चिह्न देखे, तो कहने लगीं : 'सखि ! देखा, कपूर के-से इस रेत पर प्रियतम के चरणों के पृष्ठ भाग के चिह्न हैं। लगता है, यहाँ प्रियतम ने पीताम्बर जमीन पर बिछाकर अपनी प्रिया को गोद में ले फूलों के अलङ्कार धारण कराये हों।'

सखियाँ उस स्थान से आगे चलीं और वहाँ की स्थिति देख विस्मित भाव से कहने लगीं : यहाँ श्री राधिकाजी के चरणों के आघात से अशोक-फूल खिले हैं* और कुछ पृथिवी पर गिरे हैं।

सखि ! देखो, यह वृक्ष के मूल में नवीन पत्र का उद्गम हो रहा है। यहाँ तो हमारे प्रियतम निधि-सा जिसे संग लेकर चले थे, उसे छोड़कर अन्तर्धान हो गये हैं।

---

* साहित्य में यह वर्णन आता है कि उत्तमा रमणी के चरण के आघात से अशोक खिल जाते हैं। इसे 'कविसमय-प्रसिद्धि' कहा जाता है।

इधर पद्म-कोमल-हृदया श्री वृषभानुनन्दिनी प्रियतम के विरह में विलाप करने लगीं : 'प्रियतम से मैंने ऐसा व्यवहार क्यों किया ? वे तो व्रजनारी-वल्लभ हैं। उनके विरह में मेरी सखी ललिता कैसे जीवन धारण करती होगी ? (यह सोचकर वे कुछ वाम भाव दिखाने लगीं, जिससे मालूम पड़े कि प्रियतम अभी बहुत दूर नहीं जा सके हैं और पीछे आनेवाली सखियों से भी कदाचित् उनका मिलाप हो जाय।) हमने तो यही सोचकर कहा था कि प्रियतम और आगे न जायँ। पर मेरे वचन सुनकर उन्होंने कहा कि 'प्रिये ! हमारे कन्धे पर आ जाओ' और देखते-देखते अन्तर्धान हो गये।'

प्रियतम के वचन-माधुर्य को स्मरण कर वृषभानुनन्दिनी के हृदय में विषमयी नदी का प्रवाह बहने लगा। अङ्ग में धारण किये मृगमदमिश्र चन्दन का सौरभ (गन्ध) प्रियतम की अङ्ग-गन्ध के सम्पर्क के बिना जलते अङ्गारे-सदृश प्रतीत होने लगा। वे नयनों का काजल विषमिश्रित काजल समझने लगीं। कण्ठ का मोती का हार सर्प की तरह उन्हें डस रहा था। अङ्ग के अन्य आभरण कालकूट विष-से मालूम पड़ने लगे। प्रियाजी गद्‌गद कण्ठ हो नयनों से गर्म-गर्म विरह-अश्रु बहाने लगीं। अश्रु-धारा वक्षःस्थल पर आती हुई ऐसी लगती थी, मानो (लकड़ी चीरने के लिए) विधाता ने उन (श्री राधा) के हृदय को विदीर्ण करने के निमित्त दो काली रेखाएँ खींची हों।

थोड़ी देर बाद वे मुक्तकण्ठ से विलाप करने लगीं : 'हा नाथ ! हा रमण ! हा प्रेमसिन्धो ! हा प्रियतम ! कहाँ हो ? कृपा कर मुझे अपने दर्शन दो ! जानती हूँ कि तुम यहीं हो, किन्तु नयन इसे नहीं मानते और प्राण बड़ा दुःख पा रहे हैं। जब तक यह चञ्चल जीवन इस देह को छोड़ बाहर न चला जाय, तब तक मेरे नयनों के आगे पधारो। नहीं तो मेरी जीवन-हीन (अचेतन) देह तुम्हें अपने कन्धों ढोनी पड़ेगी।

मैंने तो तुम्हारा कुछ ऐसा अपराध नहीं किया ! हृदय में कुछ क्रोध भी नहीं था। किन्तु प्रिय सखियों के लिए कुछ विलम्ब कराने को ऐसे वाक्य कह दिये थे कि 'नहीं चल पा रही हूँ।'

हा प्रियतम ! मेरी प्रिय सखियों द्वारा तुम्हारी इस प्रियतमा की ऐसी दशा देखने से पहले ही अपना वदन-चन्द्र दासी के सम्मुख प्रकट करो। प्रिय ! क्या यह तुम्हें उचित है कि मुझे ऐसे वन में अकेले त्यागकर चले जाओ ? तुम्हारे हृदय में ऐसा विचार कैसे आया ? हम तो ऐसी रात्रि को धिक्कारते हैं, जो अपने अधीश (चन्द्रमा) से नहीं मिलती। ऐसी कमलिनी को धिक्कारते हैं,

जो सूर्य को नहीं देखती। ऐसे जीवन को भी धिक्कारते हैं, जो अपने प्राण-वल्लभ को नहीं पाता। रात्रि की चन्द्रमा से और कमलिनी की सूर्य से ही शोभा है।'

प्रियाजी यह कहकर जब प्रियतम के विरह-दुःख में बहुत कष्ट पाने लगीं तो मूर्च्छारूपी सखी ने उन्हें अपनी गोद में सुला लिया। उस समय प्रियाजी का श्वास भी नहीं चलता था। उनकी अङ्ग-लता यमुना की रेती पर मृणाल की तरह गिर पड़ी। उनके अङ्ग पर व्रज की लता अपने फूलों में से मधु-धारा बहाने लगी। भ्रमर पंख हिला हवा करने लगे। आकाश में खग घटा वन 'हाय-हाय' करने लगे। हिरणी के नयनों से अश्रु-धाराएँ निकलने लगीं। वन के अन्य पक्षी भी प्रियाजी के चारों ओर खड़े होकर 'हा-हा' करने लगे। चन्द्रमा ने अपनी किरणों से कमलदलसदृश कोमल शय्या बनायी। व्रज के वृक्ष अपने पत्तों को हिलाकर छाती पीटने लगे।

प्रियाजी जब ऐसी अवस्था में पड़ी थीं, उसी समय नन्दनन्दन के चरण-चिह्न देखती-देखती उनकी सखियाँ उधर आ निकलीं। दूर से ही प्रियाजी को देखकर वे विचारने लगीं : 'क्या यह पृथिवी पर आकाश से विद्युत् आ पड़ी है ? अथवा त्रिभुवन-शोभारूपी रानी के मुकुट में से स्वर्ण का हार यहाँ गिर पड़ा है ? अथवा पृथिवी अपने सौभाग्यरूप सोने की सम्पत्ति यहाँ प्रकट कर रही है ? अथवा वन-लक्ष्मी ने स्वर्णमयी कमलिनी यहाँ रखी है ? अथवा मदन-धनुष-सी चम्पक फूलों की माला है ? अथवा पृथिवी की गोरोचन-तिलक-रेखा है ?'

कुछ आगे बढ़कर अकेली प्रियाजी को देख एक सखी बोली : 'सखि ! यह तो वे ही हैं। मेघ जैसे विद्युत् को अपने साथ रखता है, वैसे ही प्रियतम इनको साथ ले हमें त्याग अन्तर्धान हुए थे। पर इनकी यह दशा देखकर यही लगता है कि प्रियतम बड़े निष्ठुर हैं। आखिर प्रियतम अपनी परम प्रिया को यहाँ अकेली कैसे छोड़ गये ? और हमारी प्रिय सखी भी इतनी देर तक अकेली यहाँ कैसे प्रियतम के दुःख में पड़ी हैं ? क्या सखी को जब नींद आ गयी तो प्रियतम हम लोगों के आगमन की शङ्का से पास की लताओं के कुञ्जों में जा छिप तो नहीं गये ? अथवा जैसे हमारे हृदय में गर्व-भाव को देख हमें अपने संग नहीं लिया, वैसे ही इनकी भी दशा तो नहीं हुई ? सखि ! इनके हृदय में तो वैसा गर्व नहीं आ सकता। तो क्या प्रियतम अपनी ही कठोरता के कारण अन्तर्धान हो गये ? अथवा यह श्री राधा हैं ही नहीं, कारण हम

कृष्णचन्द्र को इनके पास यहाँ नहीं देखते। (जहाँ राधा, वहीं कृष्ण, यह नियम-सिद्ध है।) या हम लोग जो यह समझ रही हैं कि यह श्री राधिकाजी हैं, यह हमारी समझ की भ्रान्ति है? या क्या हम लोगों का अहङ्कार मिटाने के लिए ही 'माधुरी' नाम की कोई देवी जगत् को मोहित करती अपना प्रभाव दिखाने यहाँ लेटी है? (प्रियाजी के और भी पास में आकर) सखि! यह क्या? इनके अङ्गों में तो तनिक भी स्पन्दन नहीं। क्या यह करुण-रस की मूर्ति हैं अथवा प्रिय के विरह से मूर्च्छा ने ही मूर्ति धारण की है?'

यह कहती हुई सखियाँ जब प्रियाजी के पास पहुँचीं तो उसी समय मूर्च्छा-सखी प्रियाजी को छोड़ भाग गयी। अब प्रियाजी गद्गद कण्ठ से 'हा मेरे प्रियतम, कहाँ हो?' यह कहती भावुक नयनों की पाश चारों ओर बिछाती प्रियतम को ढूँढ़ने लगीं। सब सखियाँ हर्ष और दुःख से भरी कहने लगीं: 'यह तो हमारी प्राणप्यारी सखी ही है!' जब वे उनसे मिलने लगीं तो ऐसा लगा, मानो सोने की कमलिनी के पास राजहंसिनी आयी हो। अथवा गङ्गाजी से अनेक नदियाँ आ मिलती हों। अथवा स्थायी भाव के साथ सञ्चारी भाव मिलते हों। अथवा सत्कवि की कविता में गुण, रस और अलङ्कारों का मधुर मिश्रण हो रहा हो। अथवा चन्द्रमा से चकोर-वधुएँ जा मिलती हों! नवीन वन की शोभा देख जैसे नाना पक्षी-वधुएँ आती हैं, वैसे ही सब सखियाँ उनके पास आयीं। कोई सखी कमल का पत्र लेकर उन्हें पंखा झलने लगी। कोई प्रियाजी के केश धो सँवारने लगी। कोई अपने करों से प्रियाजी का वदन मार्जन करने लगी। कोई पूछने लगी: 'सखि! तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हो गयी? तुम्हारे शठ प्रियतम कहाँ हैं? हम लोगों को छोड़कर तुम्हारे साथ प्रियतम हैं, यह अनुमान कर हमारा विरह-ज्वर किसी तरह शान्त हो गया था। किन्तु तुम्हारी यह दशा देखकर अब वह दुगुना हो रहा है। हमारा दुर्भाग्य है, जो तुम्हें इस दशा में हम देखती हैं। सखि! हम जानती हैं, तुम्हारा इसमें कुछ दोष नहीं। तुम्हारा मन बड़ा सरल है, वचन में भी कुटिलता नहीं है। व्रज में सब कोई जानते हैं कि गुणरूप रत्नों की खान तुम ही हो। तुम पर नन्दनन्दन का असीम प्रेम है, यह तो सभी जानते हैं। फिर तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई? अयि सुमुखी! तुम्हारे हृदय का दुःख हम लोग अन्तर में ही अनुभव कर रहे हैं। जो जहर किसी ओषधि से दूर नहीं होता, उसकी दवा एकमात्र महाविष ही है। सो तुम्हारे विरह के लिए हमारा प्रियतम का महान् विरह ही एकमात्र ओषधि है।'

एक सखी पूछ ही बैठी: 'सखि, यह तो बताओ कि नन्दनन्दन तुम्हें

छोड़ क्यों चले गये ?' तत्काल दूसरी सखी बोली : 'सखि ! यह क्या पूछ रही हो ? नन्दनन्दन के प्रेम का यही स्वभाव, यही हाल है। उनके प्रेम में जहर और अमृत दोनों मिले हैं। इसलिए कभी तो हृदय में सन्ताप देते, जिससे मूर्च्छादशा तक आ जाती है तो कभी अपने माधुर्य का अनुभव कराते प्रेमी जनों की जीवन-रक्षा करने लगते हैं।'

सखी के ये वचन सुनकर प्रियाजी ने नयनों से अश्रुओं की धाराएँ बहाते हुए सारा पूर्व का वृत्तान्त कह सुनाया।

प्रियाजी के वचन सुन सब सखियाँ विस्मित हो उठीं। श्री राधिकाजी को साथ ले वे सभी वन में चारों ओर प्रियतम को ढूँढ़ने लगीं। जहाँ वन में घना अन्धकार छाया हुआ था, वहाँ तक ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पहुँचतीं और फिर खाली हाथ वहाँ से लौट आतीं। फिर यमुना-तट पर आ कोमल रेती पर बैठ तन्मय हो मुखों से प्रियतम का आलाप और अङ्गों से प्रियतम की विविध चेष्टाएँ प्रकट करती विलाप करने लगीं।

उनका वह गान-माधुर्य विरह-रस का हृदय लगता। उस विरह-गीत को सुन वज्र भी पिघल उठता। तरु-लता और पहाड़ों के पत्थर भी आकृष्ट हो जाते। भला गोपियों के उस गान का कौन वर्णन कर सकता है, जिसके विषय में देवी सरस्वती का कण्ठ भी अवरुद्ध हो जाता है। फिर भी श्री शुकदेवजी के वचनानुसार तोते को जैसे बोलना सिखाते हैं, वैसे ही हम भी कुछ कहेंगे।



उन्नीसवाँ स्तवक

रास-लीला-प्रादुर्भाव

अनन्तर व्रजाङ्गनाएँ अपने कोमल-मनोहर स्वर से रोदन करने लगीं। उनका वह रुदन सुन व्रज के मृग-पक्षियों तक का हृदय विदीर्ण होने लगा। गोपियों के कल कण्ठ से नन्दनन्दन की गुणावलि सुन स्थावर-जङ्गमों का चित्त पिघलने लगा। वह गान नहीं, मूर्तिमान् विरह-रस प्रकट हो रहा था। उनके साथ स्वर, ताल आदि मिलाकर वे अपने हृदय के भाव और भी अच्छी तरह प्रकट करने लगीं :

'प्रियतम ! तुम्हारी जय हो ! तुम्हारे जन्म से जगत् में व्रजभूमि का अति उत्कर्ष प्रकट हुआ। जिस कारण स्वयं लक्ष्मीजी इस भूमि की शरण लेना चाहती हैं, आपके उस धाम में वास करते हुए भी हमारी यह दशा क्यों ? तुम अपनी अनुरागिणी व्रजाङ्गनाओं को वन में छोड़ क्योंकर अन्तर्धान हो गये ? कृपानिधे प्रियतम ! कृपा करके हमारे नयनों के आगे आ जाओ। हमने तो वन-वन और कुञ्ज तथा प्रतिवृक्ष और लता के पास जा-जाकर तुम्हें ढूँढ़ा, पर तुम नहीं मिले। हमें अपना जन समझकर सामने आ जाओ। प्रिय ! तुम्हारे नयनरूप वाणों से हमारा मन छेदा जा रहा है। क्या नयनों की दृष्टि से स्त्रियों का वध करना वध नहीं कहलाता ? यदि हम लोगों का वध ही तुम्हें अभीष्ट था, तो अब तक इतनी विपत्तियों से हमें क्यों बचाया ? जब दावानल चारों ओर से हमें जलाने लगा और जब देवराज इन्द्र प्रबल वर्षा द्वारा हमें बहा ले जाने पर उतारू हुए, उस दिन तो हम लोग अपनी इच्छा से मरने को तैयार थे, कालियदह में प्रवेश कर !

यदि कहो कि उस विपत्ति से तुम्हारी ही रक्षा करना मैं चाहता था, ऐसा नहीं। व्रजवासियों की रक्षा करना मेरा कर्तव्य था, इसलिए तुम्हारी भी रक्षा हो गयी, तब भी आज तुमने पहले निष्ठुर वचनों से हम लोगों को घायल कर पुनः बचाने का यत्न क्यों किया ? प्रियतम ! तुम्हें हमारा वध करना उचित नहीं। तुम तो परम स्वतन्त्र हो। यह तुम्हारा एक कौतुक है। पहले किसीको मारकर फिर अपनी 'अमृत-सञ्जीवनी शक्ति' से कैसे बचाया जा सकता है, यह कौशल दिखाने के लिए ही तुमने ऐसी चेष्टा दिखायी। हम जानती हैं कि तुम्हें

बचाने में कुछ भी श्रम नहीं लगता। पर हमारे हृदय में प्राण हैं ही कहाँ, वह तो तुम्हारे स्वरूप में ही अवस्थित हैं। तुम्हारे दर्शन से ही हम जीती हैं, अदर्शन में प्राण-धारण ही नहीं कर सकतीं।

प्रियतम! लगता है, आपका गोप-वंश में जन्म नहीं। कारण यदि गोप-वंश में जन्म लेते तो गोपियों का वध करने में कभी इतने निर्भय, निर्दय न होते। कोई अपने वंश का नाश नहीं करता। इस जगत् में सब किसीको अपने गोत्र, सम्पत्ति और पड़ोसियों पर सहज दया आती और वे उनकी रक्षा के लिए उद्यत दीखते हैं।

ब्रह्मा ने जगत् की रक्षा के लिए आपसे कभी प्रार्थना नहीं की होगी, क्योंकि अगर ऐसा होता तो क्या हम लोग विश्व के बाहर हैं? फिर आप हम लोगों की भी रक्षा करते, कदापि त्याग न करते।

तुम अपने जिस कर से जगत् को अभय देते हो, अनुरागिणियों की अभिलाषा बढ़ाते हो, कमलाजी जिस कर का स्वयं लालन करती हैं, वह हमारे मस्तक पर रख हमारा अङ्गीकार करो।

हे व्रजवासियों का दुःख हरनेवाले! हमारे हृदय का गर्व दूर करने के लिए आपका अन्तर्धान होना उचित नहीं। आपकी एक मुस्कान से ही यह काम हो सकता था। इसलिए निर्भय हो शीघ्र अपनी दासियों को अपना वदन-चन्द्र दिखलाओ।

आपके जो चरण-कमल भक्तों के सभी अपराध दूर करते हैं, उन्हीं चरणों से आप धेनुओं के पीछे चलते हो। क्या हम उस योग्य भी नहीं, जिस योग्य वे पशु हैं? प्रियतम, आप जिस पद-माधुर्य से सब जगत् का आकर्षण करते हैं, कालियनाग के मस्तक पर जिनको अर्पण किया, वे चरण-कमल हमारे हृदय में अर्पण करो!

आपके सुकोमल मधुर-मनोहर वचनामृत को न पाने से हम लोगों के श्रवण उपवास कर रहे हैं। प्राणवल्लभ! अपने वचनामृत से हमारे श्रवणों को तृप्त कीजिये। आपके विरहानल से व्रजाङ्गनाएँ जल रही हैं। केवल आप ही उनकी रक्षा कर सकते हैं।

आपके कथारूप अमृत का कवीश्वर-गण स्तव-गान करते हैं। वह संसार-ताप तथा आपके विरह-ताप से तप्त जीवों का जीवनस्वरूप है। अखिल पाप-हारी मृत्यु-सञ्जीवनी है। ऐसी कथा-लीला करनेवाले आप सबसे बड़े दाता हैं।

किन्तु हम अनुरागिणियों के लिए वही कथामृत कभी हलाहलसदृश होता है। कभी वह सुख देता है तो कभी भलीभाँति दुःख देता है। सो हम

नहीं कह सकतीं कि तुम्हारी कथा अमृत ही है। तुम्हारे चरित्र और कथा का स्वभाव एक-सा ही है। बाहर अमृततुल्य लगता है, पर भीतर अस्त्र की तेज धार-सा चूभता है। यह बात जो तुमसे प्रीति रखते हैं, अच्छी तरह समझते हैं। जब पहले हमने प्रीति से सनी तुम्हारे नयनों की दृष्टि के दर्शन किये, तब तो उसने हमारा सुख बढ़ाया, पर अब उसके ध्यान से हमें बहुत ही दुःख हो रहा है। तुम्हारी सारी चेष्टाएँ ऐसी ही हैं।

तुम्हें तो हम पर तृणमात्र भी प्रेम नहीं। तुम प्रेम-शून्य होकर सुखी हो, पर गोपियों की अवस्था यह है कि तुम्हारा थोड़ा-सा भी कष्ट देख नहीं सकतीं। तुम जब व्रज से वन में गाएँ चराते उनके पीछे-पीछे चलते हो, तो कोमल चरणों में कठिन तृणों के आघात की शङ्का से हमारे मन में बहुत ही दुःख होता है। कहाँ तुम्हारा नवीन कमलों से भी अधिक कोमल चरण और कहाँ व्रज के वे कठिन और तीक्ष्ण तृण ? सोचकर ही हम लोग मरी जाती हैं। हे व्रजरमण ! वन का तुम्हारा दुःख स्मरण करते-करते दिनभर हृदय में बहुत दुःख का अनुभव होता है।

सायङ्काल जब आप वन से व्रज लौटते हैं, तो उस समय गौओं के चरण की धूलि से आपकी मूर्ति धूसरित हो जाती है। चूर्ण कुन्तल मुखारविन्द को ढाँक देते हैं। अपने ऐसे मधुर वदन-कमल का हमें एक बार दर्शन कराकर आप अपने भवन में प्रवेश करते हैं। आपका वदन-माधुर्य देख हमारे हृदय में नाना सङ्कल्प उठते और मन को व्याकुल करते हैं। हम सोचती हैं, 'आज हमारे प्रियतम हमारे मन्दिर में अवश्य पधारेंगे', इस अभिलाषा से हम सारी रात्रि जागती रहती हैं।

आपने कभी भी किसी व्रजाङ्गना को कोई सुख नहीं दिया। कारण मिलन में तो बिछुड़ने का भय रहता ही है और विरह में तो ? आप आज ही देख सकते हैं।

(फिर दैन्य से कहने लगीं :) आपका पाद-पद्म शरणागत जनों की सभी अभिलाषाएँ पूर्ण करता है। ब्रह्माजी भी आपके चरण का वन्दन करते हैं। आपके चरण पृथिवी का अलङ्कार हैं, जिनके स्मरण से समस्त विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। ऐसे चरण-कमल हमारे हृदय में धारण कीजिये।

आपका अधरामृत रति बढ़ाता है, दुःख दूर करता है। मुरली को सौभाग्य प्राप्त कराता है। उससे अन्य विषयों की आसक्ति दूर हो जाती है। कृपा कर ऐसे अधरामृत का हमें पान कराइये। मुरली ने आपके अधर को

जूठा किया है, इसलिए हम पान न करेंगी, यह शङ्का न कीजिये। कारण इस जगत् में मधु को उच्छिष्ट जानकर भी सब कोई आदर से ही उसका पान करते हैं।

आप जब वन में दिनभर विहार करते हैं, तो आपके अदर्शन में हम एक क्षण युगतुल्य समझती हैं। फिर आप जब कभी हमारे नयनों के आगे आते हैं, तो पलक के गिरने का क्षण भी, जो आपके दर्शन में बाधक है, हमें युग-समान लगता है।'

अनन्तर पतिम्मन्य जिन गोपों ने गोपियों को घरों में रोक लिया था, वे उसी समय अपनी गुणमय देह छोड़कर श्रीकृष्ण के अङ्ग-सङ्ग जा मिली थीं प्रेममय देह पाकर। वे क्रन्दन करती कहने लगीं : 'हम लोग तो अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु को तृणतुल्य समझ उन्हें त्याग तुम्हारे पास आयी थीं। पर हे शठ! रात्रि में वन में हमें कैसे त्यागकर चले गये?'

फिर सब मिलकर गाने लगीं : 'तुम्हारा मधुर वदन, मृदु मुस्कान, मनोहारिणी दृष्टि तथा भुजयुगल का सौन्दर्य, वक्षःस्थल की शोभा और प्रेम-भरी बातचीत स्मरण कर हमारा हृदय व्याकुल हो उठा है। व्रजवासियों को सुख देने के लिए इस व्रज में तुम्हारा जन्म है, इस कीर्ति को वृथा क्यों नष्ट करते हो? इस कीर्ति की रक्षा के लिए गोपियों का दुःख दूर करना तुम्हें उचित है। तुम्हारे जिस चरण-कमल को भययुक्त हो हम लोग अपने कठिन वक्षःस्थल में धारण करती हैं, आज वे ही वन के कठिन तृणाङ्कुर से भारी दुःख का अनुभव नहीं करते होंगे?'

यदि कहो कि 'तुम्हारा वक्षःस्थल तो इतना कठिन है कि हमारे चरण-स्पर्श से भी वह कोमल नहीं होता, किन्तु व्रज के तृण-पत्थर हमारे चरण के स्पर्शमात्र से कोमल बन जाते हैं, इसलिए हमें तुम्हारा कुछ दुःख प्रतीत नहीं होता, तब तो तुम्हारा यह कर्तव्य ठीक ही है। फिर भी फूलों से भी कोमल तुम्हारा मन वज्र से भी कठिन गोपियों के हृदय से संग कर महा कठोर हो जाता है, यह हमारे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है।

आपके लिए यह ठीक नहीं कि एक साथ इतनी व्रजवधुओं का वध कर डालें। हमारे प्राण देह छोड़कर जाने को तैयार हैं। उनको रोकने की सामर्थ्य हममें नहीं। हे परम कौतुकी! हमारे हृदय में आविर्भूत होकर बाहर निकलनेवाले प्राणों की आप ही रक्षा करो। हम लोग तो आपको बहुत ढूँढ़ चुकीं।

हे प्राणनाथ! हमारे प्राण अब स्वयं ही आपकी खोज करने को उत्सुक हो गये हैं। अगर आप कहें कि हमारी इच्छा ही पर हमसे मिलन सम्भव है, सो न मिलने का अपना सङ्कल्प छोड़ दो। नहीं तो हमारे प्राण बाहर निकल जाने को प्रस्तुत हैं।

जीवननाथ! अगर हमारा जीव बाहर निकलकर ढूँढ़ने लगे तो यह ठीक ही है। तब निश्चय ही तुमसे वह मिल सकता है। प्रभो, अपने दासों पर तुम कभी विमुख नहीं हो सकते, हम जानती हैं।'

व्रजगोपियों के ऐसे मधुर कोमल कण्ठ-स्वर सुन वन के मृग-पक्षी और तरु-लताएँ भी रोने लगीं।

गोपीजन-वल्लभ उन लोगों के पास रहकर भी इतनी देर तक हृदय में कृत्रिम कठोर भाव धारण किये हुए थे। किन्तु अब वे भी उस भाव की रक्षा न कर सके। व्रजगोपियाँ प्रियतम की गुणावली स्मरण कर विलाप करती ऐसी दशा को प्राप्त हो गयीं, मानो प्राणनाथ की खोज में उनके प्राण प्रमाण ही कर रहे हों।

इसी बीच व्रजगोपियों के जीवन भगवान् अपनी अनुरागिणियों का दुःख जड़-मूल मिटाने के लिए साक्षात् मन्मथ के मन को मथनेवाली अपनी मुस्कानरूप चन्द्र-किरणों से व्रजगोपियों के मन का अँधेरा हटाते हुए उनके आगे आविर्भूत हो गये।

उनके मधुर माधुर्य की गम्भीरता से गोपीजनों को अपने पूर्व विरह का विस्मरण हो गया। वे हृदय में अपार आनन्द का अनुभव करने लगीं। विरह से व्याकुल हो वन-वन खोजने की अपनी आपबीती भी स्वप्नतुल्य मानने लगीं। वे जो विरह में उत्तप्त और कृश हो गयी थीं, अब शीतलता को प्राप्त हुए अङ्गों से स्तव करने योग्य हो गयीं। उनके प्राण स्थिर हो गये। कभी विरह भी हुआ था, यह वे एकदम भूल गयीं।

नन्दनन्दन तत्क्षण अकेले ही सबसे आलिङ्गन कर ऐसे भाव प्रकट करने लगे, मानो उनको यह आश्वासन मिले कि हर समय वे उनके पास ही थे और रहेंगे। अपने पीताम्बर का छोर पकड़ दोनों हाथों अञ्जलि बाँध खड़े हुए, मानो कहते हों कि मैं अपराधी हूँ, मुझे माफ कर दो। प्रियाजी द्वारा धारण करायी माला अब भी उनके कण्ठ में पड़ी हुई थी। गोपिकाएँ नन्दनन्दन को अपने बीच आविर्भूत देख ऐसी अवस्था को प्राप्त हुईं, जैसे पूर्ण सुधाकर को देख कुमुदिनी की अवस्था होती है! अथवा बहुत दिनों बाद नवीन

मेघ देख चातकी की होती है ! अथवा दावानल से जलते वन के बीच में जलभरे मेघ को देख हिरणी की होती है !

जो व्रजसुन्दरियाँ इतनी देर से बैठकर विलाप करतीं, अब आनन्द से एक साथ उठ खड़ी हो गयीं और सारा दुःख भूल बड़ी उत्कण्ठा से प्राणनाथ के पास चलीं।

किसी गोपी ने नन्दनन्दन के दक्षिण कर-कमल को अपने दोनों हाथों के बीच धारण कर लिया। किसीने अपने कन्धे पर प्रियतम का वाम भुज रख लिया। किसीने आगे खड़े हो चर्वित ताम्बूल के लिए प्रार्थना की। किसीके हाथ में सेवानिमित्त स्वर्ण का पीकदान था।

कोई प्रियतम के सामने बैठकर उनका दक्षिण चरण-कमल पकड़ अपने हृदय में धारण करने लगी। कोई व्रजसुन्दरी नयनों को कुटिल कर दूर से ही अपाङ्ग दृष्टि से देखने लगी। कोई अपना अधर-ओष्ठ अपने ही दाँतों काटने लगी।

कोई गोपी त्राटक से (पलक न पड़नेवाली दृष्टि से) प्राणबन्धु का मुख-माधुर्य पान करने पर भी नयनों की तृष्णा शान्त न कर पायी। उसके उस पान से प्रियतम के माधुर्य में कणमात्र भी कमी नहीं हो पायी।

किन्हीं गोपियों ने नयनरूप द्वार से प्रियतम को अपने हृदय में रखकर इस शङ्का से कि कहीं फिर उनको छोड़कर प्रियतम बाहर न चले जायँ, अपने नेत्र मूँद लिये। उस समय उनके अङ्गों में रोमाञ्च होने लगा। वे हृदय में देर तक प्रियतम की मूर्ति का मन से आलिङ्गन करतीं। कई गोपियाँ दूर से ही प्रियतम के दर्शन करने लगीं। हवा लगने से जैसे पत्ता कम्पित होता है, ऐसे ही उनके भी अङ्ग कम्पित होने लगे।

कोई चकोर-नयना दोनों हाथों की उँगलियाँ जोड़ मण्डलाकार मुद्रा कर पुनः सिर पर अर्धचन्द्र-सा आकार बना प्रियतम को अपना चन्द्रमुख दिखलाने लगी।

कोई गोपी अपने ही हाथों अपनी वेणी दबाती नेत्र मूँदकर रोमाञ्चित होने लगी। कोई कमलनयना कर में लीला-कमल धारण कर नन्दनन्दन की आरती उतारने लगी, मानो उसके द्वारा प्रियतम की अङ्ग-गन्ध ले उसे सूँघना चाहती हो। उसमें सात्त्विक विकार प्रकट होने लगे। गण्डस्थल में पुलक प्रकट होने लगा। तब वह उस लीला-कमल का चुम्बन करने लगी।

कोई अपनी वेणी खोल यह विचार करती कि इस काले में कहीं मान तो नहीं घुसा है, उसे इधर-उधर देखने लगी। कोई अपने वाम श्रवण में

बायें हाथ की कनिष्ठ अङ्गुलि देकर लीला-कमल घुमाने लगी। तब उनके मन में यह भाव था कि इस बार के सङ्गम में हम विजय प्राप्त करेंगी।

उस समय व्रज की लताएँ अन्तर में प्रफुल्लता न समा पाने से फूलों के रूप में उस उत्सुकता को बाहर प्रकट करने लगीं।

प्रिया-प्रियतम के इस मिलन-दर्शन-उत्सव में फूलों की वर्षा होने लगी। व्रजगोपियों के नयनों से आनन्द की धाराएँ बहने लगीं, नयन अश्रुओं से भर गये। वे नयनों से कहने लगीं कि 'सचमुच तुम धन्य हो, जो प्रियतम के दर्शन करते हो।' गोपियों का मन नयनों का यह सौभाग्य देखकर उनसे आलिङ्गन करने लगा। नन्दनन्दन के दर्शन कर एक व्रजसुन्दरी स्तम्भभाव को प्राप्त हो गयी तो ऐसा लगा, मानो वन में कोई स्वर्ण-प्रतिमा विराज रही हो। कदम्ब के पेड़ में नीचे से ऊपर तक फूल खिलने लगे। उन्हें देख लगता कि उनके सर्वाङ्ग पुलकित हो रहे हैं! अथवा प्रियतम के विच्छेद-काल में कन्दर्प ने जितने बाण उनके हृदय में मारे थे, नन्दनन्दन चुम्बक मणि का रूप धारण कर मानो उन्हें बाहर निकाल रहे हों।

प्रियतम के दर्शन के कारण व्रजसुन्दरियों की अश्रु-धाराएँ बन्द न हो रहीं थीं। वह शोभा देखकर लगता कि श्यामसुन्दर तो चन्द्र और व्रजाङ्गनाएँ चन्द्रकान्त मणियाँ हों।

श्रीकृष्ण के दर्शन कर कोई गोपी ऐसे कांपने लगी, जैसे भूकम्प में धरती काँप रही हो। किसीका कण्ठ रुँध गया। जिसकी बड़ी मधुर कोमल वाणी थी, उसका स्वर भी बहुत गम्भीर हो गया।

कोई व्रजसुन्दरी अपनी वेणी को गोद में ले साँप समझ भीता-सी प्रियतम के पास भाग जाने लगी। किसीने अपने नयनों के आगे भृङ्ग को देख घूँघट से अपना वदन ढँक लिया।

किसीने अपना स्थान न छोड़ा, एक पग भी आगे न बढ़ी, अन्तर का आनन्द तनिक भी बाहर न दीखने दिया। कुछ भी न बोलते हुए दूर से उसने सीमन्त (बालों के बीच की रेखा) पर अपनी अञ्जलि धारण कर (असूया भाव से) श्री नन्दनन्दन को प्रणाम किया।

कोई एक ही बार प्रियतम का दर्शन कर अपनी प्रिय सखी के कन्धे पर बायीं भुजा रख कुछ बोलने लगी, किन्तु उसका भाव समझ में न आया।

कोई गोपी अपनी ओढ़नी पकड़कर उसीके छोर से प्रीतिपूर्वक प्राणेश्वर को हवा करने लगी।

'कमल से भी अति कोमल आपके चरण-युगल वन में इतनी देर कैसे डोलते रहे ?' यह कहकर कोई गोपी प्रभु के चरणारविन्दों का संवाहन करने लगी।

इस प्रकार प्रियतम से मिलने के कारण व्रजसुन्दरियों के हृदय में नाना भाव उदित होने लगे। उनके भावों के वर्णन वाणी-अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी नहीं कर सकती। देवगुरु बृहस्पति भी इसके लिए स्वयं को हारे मानते हैं।

तब व्रजराजतनय व्रजरमणियों के साथ यमुना-तट पर पधारे, जहाँ चन्द्रमा की किरणों से पुलिन शीतल-कोमल हो रहा था। वहाँ नयनाकर्षक फूल खिले थे। उन पर भृङ्ग गुञ्जार कर रहे थे। मन्द-मन्द मलय पवन बह रही थी। जहाँ ऊपर ताराएँ चन्द्र को परिवेष्टित किये थीं, वहीं नीचे यमुना-तट पर गोपीजन श्रीकृष्णचन्द्र को वेष्टित कर विराज रहा था। उस समय स्वयं भगवान् नन्दनन्दन अपनी आनन्दरूपिणी शक्तियों के साथ विशेष शोभा प्रकट करने लगे।

व्रजगोपियों के बीच साधनसिद्धा, नित्यसिद्धा, श्रुतिरूपा, ऋषिचरी, ये चार प्रकार के भेद थे, फिर भी किसीके मन में अपनी महिमा का अनुभव न था। यमुना-पुलिन पर व्रजगोपियों ने अपने-अपने वक्षःस्थल की कञ्चुकी उतार श्यामसुन्दर के लिए त्रिभुवनकमनीय आसन बनाया। जब उस पर प्रियतम को बिठाया, तो वे इतने निखर उठे, जितने श्रेष्ठ-श्रेष्ठतमों के हृदय-कमल में बैठकर भी नहीं निखरते। वे लक्ष्मीजी के साथ रत्न-सिंहासन पर बैठकर भी उतने शोभित नहीं होते। नन्दनन्दन जब यमुना-पुलिन पर ऐसे अनुराग-रञ्जित आसन पर बैठे थे, तो यही मालूम होता कि आज उनका यौवराज्याभिषेक है। उस समय भगवान् के आगे कई चतुरा सहचरियों ने उनके चरण संवाहन करते हुए हृदय के मधुर भाव प्रकट करने की सोची और उसके लिए प्रश्नोत्तरमय प्रसङ्ग यों आरम्भ किया :

गोपी : 'व्रज में किसकी बुद्धि निर्मल है ?' श्रीकृष्ण : 'जिसकी बुद्धि में कोमलता है !' गोपी : 'अपचय (हानि) किसका नाम है ?' श्रीकृष्ण : 'क्रोध का।' गोपी : 'व्रज में मधुरा कौन है ?' श्रीकृष्ण : 'राका (पूर्ण चन्द्रयुक्ता पूर्णिमा)।' गोपी : 'बलशाली कौन है ?' श्रीकृष्ण : 'एकान्त भजन करनेवाला !' गोपी : 'जगत् में सन्त कौन है ?' श्रीकृष्ण : 'जिसके हृदय में सदा सुख विराजमान है।'

अब श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियों से प्रश्न करने लगे :

श्रीकृष्ण : 'व्रज में उपास्य कौन है ?' गोपी : 'जिसमें रस है।' श्रीकृष्ण : 'सरस कौन है ?' गोपी : 'जो प्रेम का आश्रय है।' श्रीकृष्ण :

'प्रेम किसका नाम है ?' गोपी : 'जिसमें विरह नहीं है।' श्रीकृष्ण : 'विरह क्या है ?' गोपी : 'जिसके होने पर जीवन धारण नहीं कर सकते।' श्रीकृष्ण : 'दुःख क्या है ?' गोपी : 'प्रियतम का विरह।' श्रीकृष्ण : 'प्रिय कौन है ?' गोपी : 'व्रज में जो अत्यन्त दुर्लभ है।' श्रीकृष्ण : 'दुर्लभ क्या है ?' गोपी : 'निखिल चेष्टा से भी जो अप्राप्त हो।'

इस प्रकार शब्दार्थ-चातुरी द्वारा कुछ देर तक प्रश्नोत्तर रूप में अपने भाव प्रकट करने से व्रजबालाओं के हृदय का कपटमय पट हट गया। वे हृदय का वास्तविक भाव प्रकट करती हुई कहने लगीं : 'हमारे नयनोत्सव ! अच्छी तरह सुनिये और विचार कर उत्तर दीजिये ! जगत् में कोई अपना भजन करनेवालों का भजन करता है, कोई भजन न करनेवालों को भी भजता है तो कोई भजन करने और न करनेवाले, दोनों को नहीं भजता। आखिर क्या बात है ? पीताम्बरधारी ! आप तो सब कुछ जानते हैं। इसका ठीक-ठीक उत्तर दीजिये।'

व्रजपुर-पुरन्दर-नन्दन को प्रश्न का उद्देश्य समझते देर न लगी। चारों ओर मधुर दृष्टि से देख वे सरस शब्दों में कहने लगे : 'प्रिये ! जगत् में भजन करनेवालों का जो भजन करते हैं, उनमें प्रेम या सौहार्द कुछ भी नहीं होता। प्रत्युपकारस्वरूप उनका किसीको भजना तो ऋण-परिशोधन के तुल्य है। पर जो न भजनेवालों को भजते हैं, उनमें स्वाभाविक प्रीति होती है। जैसे माता-पिता अपनी सन्तान को भजते हैं, उनका पालन-पोषण करते हैं।'

दो प्रश्नों के उत्तर देकर प्रभु कुछ देर विचार करने लगे। पुनः बोले : "जो भजनेवालों को ही नहीं भजते, वे न भजनेवालों को क्यों भजने लगे ? ऐसे व्यक्ति चार प्रकार के हैं : १. आत्माराम, २. आप्तकाम, ३. अकृतज्ञ और ४. गुरुद्रोही। आत्माराम और आप्तकाम के हृदय तो स्वरूपानन्द से परिपूर्ण रहते हैं, इसलिए दोनों ही उत्तम हैं। मात्र पिछले दो अधम हैं।'

भगवान् के ये वचन सुन जब व्रजसुन्दरियाँ प्रियतम को देख मुस्कराने लगीं, तो उनका अभिप्राय जान प्रभु मनोहर शब्दों में कहने लगे : 'व्रज-सुन्दरियो ! क्या तुम लोग यह सोचती हो कि मैं इन चारों प्रकारों से बाहर हूँ। तुम लोगों के भजने और न भजने पर तुम्हें न भजने के कारण मैं दो प्रश्नों के बाहर तो पहले ही हो गया। तीसरे प्रश्न में आनेवाले चार भेदों से भी अधिक हूँ। मैं आत्माराम नहीं हूँ। यदि होता तो तुम्हारा करुण विलाप सुनकर यहाँ क्यों आता ? आप्तकाम भी नहीं, यदि ऐसा होता तो तुम्हारे साथ विहार की कामना कर आप्तकामता की हानि क्यों करता ?

मैं अकृतज्ञ भी नहीं। यदि होता तो यहाँ न आता। चौथे भेद गुरुद्रोही में भी नहीं आता। इस विषय में प्रमाण तो तुम्हारा हृदय ही हो सकता है।

तुम लोग पूछोगी कि तब फिर मैं तुम्हें क्यों नहीं भजता? तो इसका भी उत्तर सुन लो। निरन्तर भजनेवालों का हम साक्षात् भजन नहीं करते (अर्थात् सदैव उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देते), ताकि उनकी उत्कण्ठा बढ़े। निधि मिल जाने के बाद उसकी कोई उत्सुकता, चिन्ता नहीं रहती। जब तक वह नहीं मिलती, तभी तक उसकी उत्सुकता बनी रहती है। मैं चाहता हूँ कि मेरा भक्त सदा मेरे चिन्तन में मग्न रहे।'

नन्दनन्दन के ये वचन सुनकर भी जब व्रजगोपियों ने किसी तरह बाहरी प्रसन्नता प्रकट नहीं की, तो कमल-नयन श्रीकृष्ण पुनः बोले : 'मेरा यह नियम तो साधारण जगत् के लिए है, पर तुम लोग तो उत्कण्ठा की चरम सीमा को प्राप्त कर चुकी हो, तुम्हारे लिए यह नियम नहीं। महत्तम पदार्थ (प्रेम) की कभी वृद्धि नहीं होती! क्या महत्तम परात्पर भगवान् से भी कुछ श्रेष्ठ है? हम देख रहे हैं कि तुम्हारे हृदय में प्रेम अपनी चरम दशा में प्रतिष्ठित है, इसके आगे उसकी दशा ही नहीं। तुम्हारा अनुराग सीमा तक पहुँच गया है। जैसे गन्ने के रस से गुड़ बनता है, गुड़ से मिश्री और मिश्री से शीतोपला (कन्द), पर उससे ऊपर कुछ नहीं, वैसे ही तुम लोग भी प्रेम की सीमा प्राप्त कर चुकी हो। इसीलिए हम तुम लोगों को छोड़कर कहीं नहीं गये थे। इतनी देर तक लता के मध्य छिपकर तुम लोगों का प्रेममय विलाप सुनते रहे। अगर छोड़कर चले जाते तो क्या तुम लोगों की देह प्राणों को धारण कर सकती थी? तुम्हारा मुझ पर कितना प्रेम है, यही सुनने के लिए मैंने यह चाल चली। फिर भी हमने जो कुछ किया, उसके लिए तुम लोगों से हम क्षमा माँगते हैं। मेघ द्वारा विद्युत् की सेवा न करने पर भी विद्युत् के अन्तर में उसके प्रति असूयाभाव नहीं आता। जहाँ स्वाभाविक प्रेम है, वहाँ तो प्रियतम की प्रतिकूलता को भी अनुरागिणी अनुकूलता ही मानती है। सूर्य भगवान् जितनी अधिक प्रखर किरणें कमलिनी पर डालते हैं, वह उतनी ही अधिक खिलती है। मेरा इतना ही कहना है कि हम पर जितना तुम लोगों का अनुराग है, उसके अनुरूप भजन मनुष्य के एक जन्म की बात क्या, ब्रह्मा की दो परार्ध आयु में भी हमें मिल जाय तो भी लोगों से उऋण नहीं हो सकते। इसलिए हम सदैव तुम लोगों के प्रेम से ऋणी हैं। अब तो तुम ही लोग अपने गुणों से मुझे मुक्त करने में समर्थ हो।'



बीसवाँ स्तवक

रास-विहार-लीला

प्राणप्रिय, राधारमण, श्री नन्दनन्दन के मुखचन्द्र की इस सुदुर्लभ वचन-सुधा का पान करके गोपिकाएँ पिछला सारा दुःख भूल गयीं। वे हर्ष से प्रमत्त हो प्रियतम के नयनोत्सवकारी श्री अङ्ग के माधुर्य का दर्शन करने लगीं।

अनन्तर किसी नर्तक द्वारा पूर्व में अनाविष्कृत, मुख्य रास-विहाररूपी भरतमुनि द्वारा अभिनीत 'हल्लीशक' नामक नृत्य* को ताल, बन्ध और मण्डलभेद से नवीनतम 'रास' के रूप में अभिनीत करने की इच्छा प्रकट करते हुए गोपीजन-वल्लभ ने रमणी-सभा में कहा : 'अयि दयिता-मण्डल! अब तुम लोग अपना मण्डल बनाकर विराजित हो जाओ और हम जैसे कहें, आनन्द के साथ वैसा ही करो। देखो! सामने अति सुन्दर यमुनाजी का पुलिन है। यह पुलिन नहीं, मानो यमुनाजी ने अपना निरङ्कुश कुशलमय हृदय ही बिछा रखा है। हम यह देखना चाहते हैं कि तुम लोगों का यह मण्डल इसमें समा पाता है या नहीं?'

प्रियतम के ये वचन सुनते ही प्रत्येक व्रजाङ्गना यही सोचने लगी कि मैं तो अपने प्रियतम के साथ रहना चाहती हूँ। मण्डली रचने में यही बड़ा विघ्न है।

श्रीकृष्णचन्द्र यह ताड़ गये। बोले : 'पहले तुम लोग मण्डली में खड़ी तो होओ। फिर मेरा नृत्य-कौशल देखो कि प्रत्येक के पास हर समय नृत्य करता विराजित रहूँगा।'

इतना सुनते ही व्रजाङ्गनाएँ निःशङ्क हो प्रियतम का अद्भुत नृत्य-कौशल देखने अपने-अपने यूथ की मण्डली बना खड़ी हो गयीं। उनके ऊपर चन्द्रमा ने भी लगे हाथ अपनी किरणों की चादर डाल दी। मण्डली की शोभा देख मन में यह लगता कि कृष्ण-मनोरथरूप वृक्ष के नीचे प्रणयरूप अमृत का आलवाल (व्रजाङ्गनारूप क्यारी से) लगा हुआ है। या सोने का आलबाल है। अथवा कृष्णरूप मद-मत्त कलभ (गजशावक) को बन्दी बनाने के लिए

---

* जो नृत्य अनेक स्त्रियों द्वारा किया जाय, उसे 'हल्लीशक' कहते हैं।

विलासरसरूप सम्राट् ने सोने का सिक्कड़ बनाया हो। अथवा नन्दनन्दन के मनरूप मत्स्य को पकड़ने के लिए कुसुमशर कामदेव द्वारा फैलाया वलयाकार सोने का जाल फेंका हो। अथवा नन्दनन्दन को रोकने के लिए गोपियों के वदनचन्द्रों से निकलती ज्योत्स्नाओं से भरे कनकमय घटों से शोभित और चपल वेणीदण्डरूप काली-काली पताकाओं से घिरा कौमुदी-दुर्ग हो। अथवा भूवलयरूप विलासलक्ष्मी के कानों का कनकमय ताटङ्क (कर्णभूषण) हो। अथवा सूर्यनन्दिनी यमुना के पुलिनरूप वक्षःस्थल पर सुशोभित वलयाकार चम्पक-कुसुम की माला हो। अथवा कृष्णरूप रत्नपर्वत को चारों ओर से स्वर्णिम पर्वत घेरे खड़ा हो। अथवा कृष्णरूप चन्द्रमा को चारों ओर से घिरा परिवेष (परिधि) हो। अथवा रतिरसकलारूपी कुलाल का नृत्यरूप घट बनाने का चक्र हो। अथवा यमुना के पुलिन में उसी समय आविर्भूत सोने की कल्पलता हो। वह रमणी-मण्डल शब्दालङ्कार की तरह सदाश्लेष[1], छेक-वृत्त्यनुप्रास[2] और नयन की तरह मध्यकृष्ण[3] था।

उसी समय योगमाया ने रासोचित भूषण लाकर सबको धारण करा दिये। व्रजाङ्गनाओं को इसका पता ही न चला।

मण्डली में सबसे पहले असामान्य मान्य श्री वृषभानुपुत्री प्रियतम के साथ मिलकर मण्डली को देखने लगीं। मण्डली ने सिकुड़कर अपने मण्डल को छोटा बना लिया। यह देख रसिक-शेखर नृत्य करते-करते कभी किसीके आगे तो कभी किसीके पीछे हो उनका कण्ठ पकड़ने लगे और अलातचक्रवत् (लुकाटी) की तरह नृत्य करने लगे। नृत्य के अद्भुत कौशल से प्रत्येक व्रजाङ्गना श्रीकृष्ण को अपने ही पास समझने लगी। कभी-कभी दो-दो व्रजाङ्गनाओं के बीच एक-एक नन्दनन्दन तो कभी एक-एक नन्दनन्दन-विग्रह के दोनों ओर दो गोपियाँ दीख पड़तीं।

रास-लीला का यह माधुर्य दर्शन करने को तारा-मण्डल (ज्योतिष चक्र) भी नीचे उतर आया। देवता, चारण, सिद्ध, किन्नर, विद्याधर, गन्धर्व आदि आकाश में उपस्थित हो लीला-दर्शन करने लगे। मधुर मृदङ्ग और पखावज

---

१. सदाश्लेष = एक शब्दालङ्कार अथवा सदा आश्लेष = आलिङ्गन से युक्त। २. छेक और वृत्ति नामक दो भेदोंवाले अनुप्रास नामक शब्दालङ्कार। दोनों शब्दों के अलङ्करण हैं। अथवा छेक वृत्ति = विदग्ध (चतुर) का व्यवहार, प्रास = हाथ-पैर आदि का सुन्दर विन्यास। ३. मध्य = नेत्र के मध्य कृष्ण = काली पुतली। अथवा गोपियों के मध्य कृष्ण।

बजने लगे। पणव, दुन्दुभि और आनद्ध अपने-आप बज उठे। नन्दनवन की देवियाँ रासमण्डल पर पारिजात आदि पुष्पों की वर्षा करने लगीं। गन्धर्व अप्सराओं के साथ हर्ष से यशोदानन्दन का यश गाने लगे। नन्दनन्दन और व्रजसुन्दरियों के सुमधुर नूपुर, कङ्कण, किङ्किणी और वलय के तुमुल शब्द से सारा वातावरण गूँज उठा। वह शब्द देवताओं के श्रवणों को भी अमृत का स्वाद देने लगा।

(कवि कहता है :) उस मण्डली की शोभा कैसे वर्णन करूँ? व्रजबालाओं की घूमती, रास करती वह मण्डली, जिसमें एक-एक गोपी के बाद कृष्ण की मूर्ति दीखती थी, लगता था कि कोई दिव्य माला हो, जो ज्योत्स्ना और तिमिर से गुँथी हो, अथवा स्थिर चपला (बिजली) और मेघ से गुँथी हो, अथवा नील कमल और चम्पक पुष्पों से गुँथी हो।

कभी प्रियतम मण्डली से बाहर आकर अन्य प्रियाओं के साथ चक्राकार घूमने लगते। उस समय वे अपना सिर दोनों ओर हिलाते तो व्रजसुन्दरियों की काञ्ची, किङ्किणी, कङ्कण झनक उठते। प्रियतम कभी पास आ जाते तो कभी दूर चले जाते।

व्रजसुन्दरियों के साथ भलीभाँति नाचने के लिए प्रभु की इच्छा जग उठी तो विद्या की अधिष्ठात्री देवताएँ वहाँ प्रकट हो गयीं। बहुत दिनों तक उन्होंने नृत्य, गीत, वाद्यरूप संगीत-शास्त्र के अनेकानेक प्रकारों का अभ्यास कर रखा था। मानो उसी शिक्षा-कौशल को दिखाकर वे देवियाँ अपना जीवन सार्थक करने के लिए वहाँ पधारी हों।

अब व्रजगोपियाँ किन-किन भङ्गिमाओं से नाच रही थीं, इसे भी सुनिये। उन भङ्गिमाओं के कुछ भेद ये थे : १. ललित-पताका* (पदार्थ की आकृति प्रकाशित करना)। २. त्रिपताका (अनामिका उँगली टेढ़ी कर तीन उँगलियों को ऊपर उठाना)। ३. हंसास्यललिता (एक उँगली और तर्जनी, मध्यमा और अङ्गुष्ठ मिला दो उँगलियाँ अलग रखना; तब हथेली उल्टी रहेगी)। ४. कर्तरीमुख-शोभा (तर्जनी और मध्यमा उठाकर तीन उँगलियों

---

* ललित-पताका से अर्धचन्द्र पर्यन्त सभी भाव-भङ्गिमाएँ सङ्गीतशास्त्र-प्रसिद्ध संयुत, असंयुत और नृत्यभेद से कथित हस्तकों के बीच असंयुत हस्तक के भेद हैं। संयुत हस्तक = दोनों हाथों को मिलाकर आकृति अर्थ प्रकाशित करना। असंयुत हस्तक = एक हाथ से अर्थ प्रकाश करना। नृत्यहस्तक = कभी दोनों हाथों को मिलाना तो कभी नहीं।

को नीचे करना)। ५. शुकतुण्डाभा (तर्जनी, मध्यमा और अङ्गुष्ठ वक्र कर मिलाना और बीच की उँगली ऊपर उठाना)। ६. सदंशाकृष्टा (तर्जनी और अङ्गुष्ठ मिलित तथा आगे से थोड़े कुञ्चित करके शेष उँगलियाँ विरल रूप में ऊपर की ओर करना)। ७. खटकामुखा (मध्यमा नीचे करके तर्जनी-अङ्गुष्ठ मिलाकर दो उँगलियाँ अलग रखना)। ८. पद्मकोशोत्कण्ठिता (धनुर्लता की तरह अग्रभाग कर अङ्गुलियाँ मिलाना)। ९. अहितुण्डिका (पताका में मध्य को निम्न करना)। १०. सूचीमुख (अङ्गुष्ठ और मध्यमा सटाकर तर्जनी ऊपर उठा कनिष्ठिका एवं अनामिका को मिलाकर ऊपर ले जाना)। ११. मृगशीर्ष (अङ्गुष्ठ, मध्यमा और अनामिका नीचे कर ऊपर की ओर दो उँगलियाँ उठाना)। १२. अर्धचन्द्रा (पताकाङ्गुष्ठ को अन्यतः आकृष्ट करना)।

व्रजसुन्दरियाँ परम अनुराग से नृत्यशास्त्र के विविध भेद प्रकट करती नाचने लगीं, तो उनकी सेवा करने के लिए गानों के देवता—राग-रागिनियाँ उपस्थित हुईं। रागों में मालव, मलार, भैरव, केदार, सारङ्ग, नट, कर्णाटक, कामोद, गन्धार, सामदेश, वसन्त, बंगाल राग और गुर्जरी, वराटी, देशिका, भैरवी, विलावल, रामकली, वासिका, श्रीपाली, गौरी, टोडी, कल्याणी, पौरवी, सैन्धवी, आसावरी, देशवराड़ी, गोंड षट्मञ्जरी, ललित, कौशिक प्रभृति रागिनियों के साथ २१ प्रकार की मूर्च्छनाएँ, ३ ग्राम तथा उनकी १८ जातियाँ और २२ श्रुतियाँ अपनी-अपनी मूर्तियों से व्रजराजनन्दन की सेवा करने लगीं। वंशी, मुरली, पदिका तथा वीणा, महती, कविलास विपञ्ची, स्वरमण्डली, कच्छपी, रुद्र-वीणा आदि तथा मृदङ्ग, डमरू, डफ, मँजीरा आदि वादित्रों के देवता भी रासमण्डल में आकर सेवा करने लगे।

सङ्गीत की द्रुत, विलम्बित और मध्य तीन प्रकार की लयों के वहाँ पहुँचने पर रासविहारी ने कृपा करके उनका अङ्गीकार किया। तत्पश्चात् मण्डलिका, विपञ्चिका, महती, रूपवती, तुम्बरी, कविलासिका आदि से अपने-आप स्वर प्रकट होने लगे। वेणुवादिनी हाथ में वेणु धारण कर और पखावज-वादिका पखावज लेकर बजाने लगीं, तो कोई-कोई अपने हाथ से ही ताल देने लगीं। कभी तो गान चलता तो कभी बीच-बीच में सम्बद्ध विषय पर भाषण ही होने लगता। उत्तम नर्तिकाएँ शुद्ध भाव से नृत्य करती थीं। शास्त्रीय और देशी दोनों प्रकार के गायन के यन्त्र जब बजने लगते तो सभी उल्लासपूर्वक उनके साथ ताल देने लगते। मृदङ्ग की ताल (थैया तथ थैया, तथ, तथ, थैया

तथत्ति तथ थैया, थैया तथ तथ थैया थग थग थग थगतिथ दिगताथैः) के शब्द ग्रहण करके लघु, गुरु और प्लुत (१-२-३ मात्राएँ) द्रुत और विराम मात्र लेकर मँजीरा बजने लगते। कभी हाथ मिला सीधा करके तो कभी ऊपर-नीचे हाथ कर मूरज (मृदङ्ग) बजानेवाली गोपी ताल के शब्द को मृदङ्ग द्वारा प्रकट करने लगती। वीणा बजानेवाली गोपी सभी तारों के स्वर मिला स्वरों के सात भेद, श्रुतियाँ और मूर्च्छनाएँ प्रकट करने लगती। कई तो ३,१७,९०० तान और १८ जातियाँ और ३ राग विशुद्ध और संकीर्ण (मिश्रित) भाव से बजाने लगतीं। कण्ठ से उन श्रुतियों के भेद नहीं सुनाये जा सकते, जो ब्रह्माजी की चल और अचल दो प्रकार की वीणाओं पर भी नहीं बताये जा सकते। फिर भी आश्चर्य की बात यह कि आज रासलीला में व्रजसुन्दरियों ने अपने कण्ठ से वे स्वर प्रकट कर दिखाये।

प्रबन्ध-पाठ (ऋतु तथा चन्द्रमा का माधुर्य-वर्णन) के बाद गोपियाँ पुनः नृत्य करने लगीं। उस समय उनके मुख-कमल से गान, पाणिपद्म से अभिनय, ग्रीवाप्रदेश से वाद्यादि का आस्वादसूचक कम्पन, चरणों से ताल, नयनों से दोलन, आँखों की पुतलियों से दायीं-बायीं ओर के गति-स्खलन, दृष्टि से नन्दनन्दन पर प्रेम, एक ही काल में मन में ये सारे भाव आविर्भूत हो उठे। कभी घुटनों से, कभी नन्दनन्दन के चारों ओर घूमकर व्रजाङ्गनाएँ नृत्य करती हुई भी प्रियतम के पास से एक पग भी दूर न हटीं, मानो वे मध्यवर्ती श्रीकृष्ण की कान्तिलहरीरूपी सूत्र में ग्रथित-सी हों ! वे गान के ताल देते समय चरणों के नूपुर बजा जोर-जोर से चरण स्थापन करतीं। यन्त्र को बजानेवाली गोपियाँ ताल के साथ धीरे-धीरे नाचने लगीं। ऐसा लगता, मानो कोई एक ही सूत्र में सबकी देह पिरोकर नचा रहा हो। इस तरह वे देर तक अपनी नृत्यकला से गोपीजनवल्लभ की सेवा करने लगीं। वाद्ययन्त्र व्रजसुन्दरियों के नृत्य के अनुगत हो बजते तो गान प्रियतम से अनुगत होता था। गोपियाँ तो कभी अपने प्रियतम का नाम, कभी रूप, कभी गुण-गान करतीं और श्री नन्दनन्दन चन्द्रमा, ऋतु और वनों की शोभा गाते। इतनी गोपियाँ नृत्य करतीं, फिर भी पुलिन पर का एक रज-कण भी न उड़ता। कारण कदाचित् गोपियों के चरण-कमलों से बरसनेवाली मधु-धारा से पुलिन भींग गया हो अथवा रास-विहार देख जड़ बन गया हो। नृत्य के समय व्रजसुन्दरियों के कपोलों पर नन्दनन्दन के वदन का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था।

जब गोपियाँ एक नृत्य को पूरा कर दूसरी नृत्य-कला का अभिनय प्रारम्भ करने जा रही थीं तो प्रियतम का आलिङ्गनरूप मङ्गल उत्सव प्राप्त

कर उनके कण्ठ रुद्ध हो गये। किसी तरह इस रोध को त्याग दूसरा राग अलापकर फिर वे नृत्य करने लगीं। उस राग को सुनकर तो सङ्गीत-शास्त्र की अधिष्ठात्री देवी भी मूर्च्छित होने लगी। गोपियों का गान-माधुर्य सुन स्वयं अखिल-कलागुरु श्री नन्दनन्दन भी 'साधु-साधु', 'धन्य हो, धन्य हो' कहने लगे। मृदङ्ग जब ता धिक् ता धिक् (उसको धिक्कार, उसको धिक्कार) बजने लगा तो स्वर्ग की नर्तिकाएँ अपनी निन्दा सुनकर भी आनन्दित ही होने लगीं।

गोपियाँ जब स्वतन्त्र भाव से नृत्य कर चुकीं, तो श्यामसुन्दर रसमयी श्री राधिकाजी के साथ नृत्य-कला-कौतुक दिखाते नृत्य करने लगे। सखियों को वह युगल जोड़ी ऐसी दीखने लगी, जैसे बिजली के साथ मेघ अथवा स्वर्णलता के साथ तमाल वृक्ष संयुक्त हो। श्री राधिका का चुम्बक मणि-सा और श्रीकृष्ण का लोहे-सा भाव देख गोपियाँ अपने प्रियतम को अच्छी तरह नचाने के लिए अपने-अपने यन्त्र बजाने लगीं। उस नृत्य-माधुर्य के दर्शन कर उर्वशी दासी बन गयी और अप्सराएँ लज्जित होने लगीं। चारण-वधुओं ने अपने हृदय का गर्व वन में ही फेंक दिया। गन्धर्व, देव और मुनियों की पत्नियाँ भी माधव पर फूलों की वृष्टि करने लगीं। श्री राधा और कृष्ण अपने-अपने स्वर मिला जिस-जिस राग को गाने लगे और जैसी नृत्य-कला दिखाने लगे, वैसी कला शास्त्र या लोक में भी नहीं दीखती। ताल छेड़ते समय श्री हरि अपनी प्रियतमा के वक्षःस्थल पर दक्षिण कर-कमल रखते तो श्री राधिकाजी अपना वाम कर-कमल प्रियतम के वक्षःस्थल पर रखतीं। श्री राधा-माधव नृत्य करते-करते कभी मण्डली के बीच प्रवेश करते तो कभी उनसे पृथक् हो नृत्य करने लगते।

इस तरह नृत्य व गान-रस में बहुत रात बीत गयी। तब एक-एक गोपी का नृत्य-माधुर्य देखने के लिए श्यामसुन्दर बोले : 'अयि व्रजसुन्दरियो! थोड़ी देर के लिए अपना-अपना गाना-बजाना बन्द करो। हम पृथक्-पृथक् एक-एक का नृत्य-माधुर्य देखना चाहते हैं।'

प्रियतम के ये वचन सुन सभी यमुना के पुलिन में बैठ गयीं। उसी समय नन्दनन्दन ने सखियों के साथ पुलिन-भोजन की इच्छा की, जैसे पहले सखाओं के साथ किया था। फिर देर क्या थी? अपने परिजनों के साथ सेवा में निपुण वृन्दादेवी तथा योगमाया ने श्यामसुन्दर एवं व्रजसुन्दरियों को मानो उनके प्रेम का पुरस्कार लेने के लिए पलाश के पत्ते का चषक—जो मणिमय चषक का तिरस्कार करता था—हाथ में ले सबको बाँट दिया। फिर वे मधुर रसयुक्त नाना विधि के फल, पुष्पों के रस (मधु) तथा माला, चन्दन, ताम्बूल की बीड़ी ले आयीं।

आकाश में देवतागण कौतुक-दर्शन के उत्सुकतावश अपना-अपना स्थान न छोड़ और हृदय में किसी तरह के अपराध की शङ्का भी न कर सखियों के सङ्ग भगवान् का निर्जन भोजनोत्सव देखने लगे। फिर भी भोजन के समय व्रजसुन्दरियों की ओढ़नियों ने हवा से उड़-उड़कर परदे डाल दिये, जिनके कारण व्रजसुन्दरियों का भोजन करना देवता न देख पाये। भोजन के समय सखियाँ नाना प्रकार के परिहास प्रकट करने लगीं। थोड़ी देर के लिए उनके हृदय से सारी लज्जा और सङ्कोच हट गया और वे प्रवल प्रेमानन्द-सरोवर में विहार करने लगीं।

फल-फूलों के रस आदि का पान कर वनदेवियों के हाथ से पानी ले जब व्रजसुन्दरियों ने आचमन कर लिया तो वृन्दादेवी अपने हाथों गोपियों के अङ्ग में चर्चन करने लगीं और उनकी दासियाँ ताम्बूल देने लगीं। श्री राधा-माधव आपस में एक-दूसरे को अपना-अपना ताम्बूल देने लगे। सूर्यतनया अपने प्रवाह में खिले फूलों का सौरभ पवन में सञ्चारित कर सेवा करने लगी। जलचर पक्षी अपना मधुर गान सुनाने लगे। इन विविध सेवाओं से सखियों के साथ श्री राधा-माधव सन्तुष्ट हो उठे और पुनः रास-विहार में प्रवृत्त हो गये।

श्यामसुन्दर ने पहले जिन रागों को नहीं अलापा, वे राग अब अपनी वंशी में बजाने लगे। ये राग अच्छे-अच्छे गायकों के लिए भी दुर्गम थे। गान्धार ग्राम (ग) में गान चल पड़ा। गोपियाँ हाथ में वाद्य-यन्त्र ले राग से संवादी स्वर बजाने लगीं। कण्ठ और वाद्य के स्वर मिलकर वातावरण गूँज उठा। वंशी के गान के साथ श्री प्रियाजी की एक सखी अपना वाम घुटना जमीन पर रख अर्धचन्द्राकृति नृत्य-भङ्गी दिखाने लगी। नृत्य करते-करते उसके अङ्गों में सात्त्विक स्वेद प्रकट होने लगा। ऐसा लगता, मानो धोकर नवीन अङ्ग बनाये हों। कई अपने शरीरों का भार एड़ी पर देकर (उँगली उठा) ग्रीवा पीछे की ओर मोड़कर वेणी का चरणों से स्पर्श कराती हुई नृत्य करने लगीं। कई दोनों घुटने जमीन पर रख दोनों हाथों नृत्य-कला दिखाने लगीं। कभी कई गोपियां चरण की उँगलियों पर शरीर का भार देकर, तो कई बैठकर हाथों की मुट्ठी बनातीं। कभी कई ताल-पाठ के साथ नृत्य-कला दिखाने लगतीं। नृत्य के समय कोई सखी प्रियतम के वदन में ताम्बूल अर्पण करने लगती। उसके चरण के नूपुर खुल जाने पर सहचरी उन्हें बाँध देती।

इस तरह बहुत देर तक नृत्य करके जब सखियाँ विश्राम करने लगीं, तो सौन्दर्य में श्रेष्ठा, उम्र में ज्येष्ठा एक सखी ने अपनी तर्जनी हिलाकर नाचना शुरू किया और दूसरी एक सौन्दर्य में मध्यमा किसी सखी ने अनामिका उठाकर तथा सौन्दर्य में कनिष्ठा सखी ने कनिष्ठिका दिखाते नाचना शुरू किया। तीनों सखियाँ मिलकर अपने-अपने करों से गीत के भाव दिखातीं और सोने के कङ्कण झङ्कारतीं। कभी भ्रमी नृत्य तो कभी कूदकर तीनों नृत्य-माधुर्य दिखातीं। उस समय दूसरी सखियाँ फूलों के पराग का वर्षण करतीं। नृत्य के समय जब वे ऊँचे उठतीं तो लगता, मानो ज्योति की लता लावण्यदेवी पृथिवी से बिना चरण-स्पर्श करती आ रही हो। वह ऐसी दीखती कि कोई बिजली स्थिर भाव को प्राप्त हो गयी हो, उस समय मेघ उसे घेरे न हों और निकट में स्थित मन्द पवन उसे चालित कर रहा हो। बीच-बीच में हुङ्काररूप मेघ का-सा गर्जन हो रहा हो। इतने सारे पदार्थों का एक साथ संयोजन यदि कहीं सम्भव हो, तब इस सखी के नृत्य की शोभा के औपम्य का वर्णन हो सके।

सखी अन्तरिक्ष में खड़ी रहकर अपने चरण-विन्यास दिखाती थी। हवा कमलिनी को जैसे पलट देती है, ताल देते समय वह भी ऐसे ही अपने शरीर को पलटने लगी। लघु-गुरु-प्लुत-अर्धद्रुत भेद से चरण-न्यास करने लगी। उसके चरण-नूपुर कभी धीरे-धीरे बजते, कभी करधनी में लगी क्षुद्र घण्टिकाएँ आधी बोलतीं तो कभी एक भी घण्टी से शब्द न होता था। सखियों का नृत्य देखकर श्री राधा-माधव ने 'धन्य-धन्य' करते हुए उनका आलिङ्गन किया।

इसी तरह अन्यान्य सखियाँ भी अपना-अपना नृत्य-माधुर्य दिखा कभी तो अकेले, कभी मण्डली बनाकर; कभी प्रियतम, तो कभी प्रियाजी के संग नृत्य करने लगीं। कोई सखी नृत्य करते-करते थक जाती तो अपनी भुजा प्रियतम के स्कन्धदेश पर रख देती। तब उसकी शोभा ऐसी लगती, मानो तमाल के स्कन्ध पर सोने की लता हवा चलने से स्थिर हो गयी हो। अथवा मूर्तिमती रतिदेवी मूर्तिमान् श्रृङ्गार-रस के साथ परिरम्भण कर रही हो। कोई सखी अपनी किङ्किणी बजा प्रियतम के वाम स्कन्ध पर अपनी वाम भुजा स्थापित कर ज्यों ही गाने-नाचने लगी, त्यों ही श्रीकृष्ण भी गाने-नाचने लगे। वह सखी कभी प्रियतम के वसन अपने बायें कर-कमल में धारण कर आगे-पीछे नृत्य करती प्रियतम को भी नचाती। नन्दनन्दन की मुरली के गान के साथ नृत्य करती सखी का यदि कभी प्रियतम कौतुकवश ताल भङ्ग

कर देते, तो सखी अपने को सँभालकर नयनों की दृष्टि से यह भाव दिखाने लगती कि 'क्या आप इन सखियों के बीच मेरी निन्दा कराना चाहते हो ?' कोई सखी अपने हाथ में वीणा लेकर मधुर गान के साथ बजाने लगी और उस ताल पर प्रियतम को नचाने लगी। उस सखी ने भी कौतुक कर बीच में ही वह ताल छोड़ दिया, तो नन्दनन्दन का अपने ताल पर, सम पर आने में बहुत ही परिश्रम करना पड़ा।

नन्दनन्दन किसी सखी का आलिङ्गन, किसीका चुम्बन, किसीका अधर-पान करते-करते सब गोपियों के साथ विहार करने लगे। रासमण्डल में ऐसी कोई सखी न थी, जिसने नृत्य न किया हो और न ऐसा ही हुआ कि किसीके नृत्य का नन्दनन्दन ने दर्शन न किया हो। नन्दनन्दन की दृष्टि भी ऐसी नहीं हुई, जिसमें विशेष भाव न हो।

अब सखियों के ललाटों पर पसीने के बिन्दुओं की मौक्तिक लड़ी दीखने लगी। तब प्रियतम के चारों ओर बैठकर वे विश्राम करने लगीं। उस समय किसीके हृदय में लज्जा न थी। वे असङ्कोच भाव से प्रियतम के साथ विहार करतीं। कोई सखी प्रियतम की दक्षिण भुजा अपने स्कन्ध पर धारण कर सौरभ पा रोमाञ्चित हो उसी भुजा का चुम्बन करने लगी। किसी सखी के कपोल पर नन्दनन्दन ने अपना कपोल स्थापित कर दिया तो वह बहुत परिश्रम के कारण दीर्घ श्वास लेने लगी और उसके वक्षःस्थल पर का हार नृत्य करने लगा। धीरे-धीरे मणिमय नूपुरों ने मौन धारण कर लिया। सखियों का परिश्रम देखकर आभरणों के हृदय में दुःख होने लगा। उस समय भी कोई सखी धीरे-धीरे गान करती ही रही। कोई प्रियतम के साथ पुनः उठकर नृत्य करने लगी। ब्रह्मा को रात्रि बीत गयी, परन्तु अनुरागिणी व्रजसुन्दरियों के हृदय से रास-विहार-तरङ्ग की वासना पूरी न हुई। अपनी कान्ताओं के साथ नन्दनन्दन ऐसे परिरम्भण, अधरपान, रस-आलाप आदि विहार कर रहे थे, जैसे अपनी छाया के साथ बालक विहार करता हो। अर्थात् प्रभु अपनी शक्तिरूप व्रजाङ्गनाओं से वैसे ही विहार कर रहे थे और उसमें कोई दोष नहीं था। अथवा ऐसा लगता कि श्री नारायण के भी अंशी स्वयं भगवान् अपनी शक्ति के साथ विहार कर रहे हों। उस समय व्रजसुन्दरियों ने नन्दनन्दन के अङ्गरूप सुख-सिन्धु में अपनी बुद्धि डुबा दी। उनकी इच्छाओं के स्रोतों में अपनी-अपनी देह की रूपलताएँ बहा दीं। उस समय गोपियाँ अपने-अपने केशपाश न सँभाल पायीं। पता न रहा कहाँ कञ्चुकी गयी, किधर वसन। उन्हें किसी वस्तु की कुछ खबर न रही।

इस प्रकार के अलौकिक विहार से निखिल जगत् की रमणियों का मन हरण कर जब अपार-माधुर्यशील-सागर भगवान् व्रजराजनन्दन विश्राम करने लगे, तो ब्रह्मा आदि देववृन्द अपने सहस्रों मुखों से विहार-महिमा का स्तवगान करने लगे। आकाश में स्थित देवियाँ रह-रहकर मूर्च्छित होने लगीं। चन्द्रमा रास के प्रारम्भ से अब तक एक ही स्थान पर स्तब्ध हो खड़ा रहा। यही कारण है कि रात्रि इतनी बड़ी हो गयी। जिस व्रजसुन्दरी का नन्दनन्दन पर जितना अनुराग था, इस रास-रजनी में रसिकशेखर श्रीकृष्ण ने तदनुरूप प्रति गोपी के साथ उतना-उतना ही विहार कर उसकी अभिलाष पूर्ण कर दी। श्रेष्ठ नायक की प्रीति की यही मर्यादा है। उस समय प्रियतम ने अपने पीत वसन से गोपियों के वदन-कमल के श्रम-विन्दु पोंछ दिये। पर पोंछते समय उनके कर-स्पर्श से पुनः गोपी-मुखों पर सात्त्विक विकार प्रकट हो उठते। आखिर जब प्रियतम उनके मुखस्वेद पोंछ न सके, तो सखियों ने अपने ही हाथों वसनों से उन्हें पोंछा। उस समय गोपियाँ चेष्टाओं से ही प्रियतम के सौन्दर्य, माधुर्य और लावण्य का गान करने लगीं।

विश्राम के वाद भ्रमर गाने लगे। कमल, कुमुदों का सौरभ लेकर पवन वहने लगी। तव श्री नन्दनन्दन ने अपनी प्रियाओं के साथ जल-केलि करने के लिए यमुनाजी में प्रवेश किया।

यमुना के जल में जितनी कमलिनियाँ, मृणाल थे, वे और चक्रवाकों तथा हंस आदि के विलास गमन, सभी व्रजवधुओं से पराभूत हो गये। कारण, उनकी मुखचन्द्र की शोभा ने कमल-वनों को, भुज-लता ने मृणाल-श्रेणी को, स्तन-कलशों ने चक्रवाकों को, गमन-माधुर्य ने हंसों की गतियों को परास्त कर दिया। वे यमुना के जल पर स्वर्ण-कमलसदृश प्रतीत होतीं। उनकी भुज-लताएँ मनोहर मृणालश्रेणी की तरह पानी के ऊपर तैरने लगीं। व्रजसुन्दरियों का अङ्ग-परिमल पाकर भृङ्ग कमलिनी को त्यागकर उनकी ओर आने लगे। वह भृङ्गों का आगमन नहीं, मानो तरणि-तनूजा यमुनाजी आदर के साथ विविध रूप ले अनुरागिणियों का स्वागत कर रही हों। हंसों की उड़ान से मानो उन पर यमुनाजी चँवर डुला रही हों। व्रजसुन्दरियों के मुख-मण्डल के चारों ओर भृङ्गों का काला परदा वन गया। ऊपर से देवियों का पुष्प-वर्षण ऐसा लगता कि शामियाने के चारों ओर मुक्ता की लड़ियाँ लटक रही हों।

अब व्रजसुन्दरियाँ परस्पर हाथ पकड़कर यमुना-जल का ताड़न करने लगीं। उनके वीच प्रियतम विराजित थे। ताड़ना से जो जल उछलता, वह मानो यमुना की पुलकें हों। आलोड़ने से जल में तरङ्गें उठने लगीं और वे

धीरे-धीरे प्रियतम का वक्षःस्पर्श करने लगीं। गोपियाँ अञ्जलि को पिचकारी सदृश बना जल उछाल प्रियतम के अङ्ग पर बरसाने लगीं, मानो मन्मथ वरुणास्त्र से श्रीकृष्ण का अभिषेक कर रहा हो। प्रियतम ने भी उन वरुणास्त्रों का प्रतीकार जानते हुए भी निश्चेष्ट हो जल में गोता लगाया और जल के भीतर से ही व्रजसुन्दरियों के नीवी-बन्धन खोलने लगे। अपनी उस लीला में बाधा देख गोपियाँ प्रियतम के साथ द्वन्द्व-युद्ध में प्रवृत्त हुईं। प्रियाजी ने पीछे से धीरे-धीरे आकर प्रियतम के कण्ठ से उनका हार चुरा लिया। जब वे और भूषण हरण करने लगीं, तो श्रीकृष्ण उस सखी को छोड़ प्रियाजी के पीछे-पीछे चलने लगे। कमल तोड़ने के छल से प्रियाजी जब गम्भीर जल में चली गयीं और प्रियतम को देख जल की गम्भीरता से व्याकुल हो भय का भाव प्रकट करने लगीं तो श्रीकृष्ण प्रियाजी को वक्षःस्थल पर धारण कर उठा लाये। जल में छोटी मछलियों ने जब प्रियाजी का चरण-स्पर्श किया, तो उन्होंने डरकर प्रियतम का कण्ठ आश्लिष्ट कर लिया। श्री नन्दनन्दन प्रियाजी का आलिङ्गन पाकर उस मछली का भूरि-भूरि स्तवन करने लगे।

कभी कई सखियाँ आपस में ही कमल ले-लेकर फिर मृणाल से लड़ने लगीं। फिर सब मिलकर प्रियतम पर कमल, मृणाल फेंकने लगीं। नन्दनन्दन जब चक्रवाक-युगल का आकर्षण करने लगे, तो सखियों ने अपने कण्ठ के आगे भुजाओं से स्वस्तिक चिह्न धारण कर लिया। मुख-कमल का घ्राण लेने चले तो सखियाँ अपने कर-कमलों से उन्हे ढँकने लगीं। जल-विहार से व्रजसुन्दरियों के अङ्गों का चन्दन-चर्चन मिट गया। मोतियों के हार-सूत्र टूट गये। नयनों से काजल धुल गया और होंठों की लाली धुल गयी। मेखला की ग्रन्थियाँ खुल गयीं। केशपाश मोक्षदशा को प्राप्त हो गये*।

* निर्लेपः कुचमण्डलो मृगदृशां हारावली निर्गुणा
नेत्राम्भोरुहमञ्जनेन रहितं नीरागमोष्ठाधरम्।
निर्ग्रन्थिर्मणिमेखला कचततिर्मोक्षं गता काचन
श्रीरासीद् द्विगुणैव सा घनरसे मग्नस्य योग्यं हि तत्॥

यहाँ श्लेष है। मोक्ष-दशा के लिए योगी को निर्लेप होना आवश्यक है। यहाँ चन्दन लेप के अङ्ग से छूट जाने की तुलना निर्लेप से सूचित की गयी है, मोतियों के हार की डोरी के खुलने को निर्गुण से, नेत्राञ्जन छूटने को निरञ्जन अवस्था से, ओष्ठ का राग छूटने को नीराग से, मेखला की ग्रन्थि के खुलने से निर्ग्रन्थी अर्थात् हृदय-ग्रन्थि का भेदन सूचित किया गया है। 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः…' इस वचन के अनुसार मोक्ष के सभी लक्षण सूचित किये गये हैं।

जल-केलि के अन्त में गोपियाँ जल में जलमण्डूकवाद्य (पानी के थपेड़ें व कङ्कण मिली) की झङ्कार कर खेल के समाप्ति की सूचना देने लगीं।

स्नान करके यमुना के तीर पर आ जब व्रजसुन्दरियाँ अपने-अपने केशों का जल पोंछने लगीं, तो उनके मुखचन्द्र के पीछे केश ऐसे लगते थे, मानो चन्द्रमा गहन (कानन) में आ रहा हो। उन केशों से गिरते पानी की बूँदें ऐसी लगतीं, मानो रोते-रोते चन्द्रमा विदा ले रहा हो।

योगमाया ने अपनी सेवा का समय जानकर योग्य वस्त्र, अलङ्कार, अनु-लेपन आदि लाकर रखे, तो गोपियों ने उन्हें स्वप्न में मिला-सा माना। वस्त्राभूषण धारण कर वे निखिल सौन्दर्य का सार अपने अङ्गों से प्रकट करने लगीं। यमुना के उपवन के कुञ्ज के प्राङ्गण में जलचर पक्षी मधुर शब्द कर रहे थे। प्रियाजी प्रियतम को साथ ले सखियों के बीच बैठ गयीं। वृन्दादेवी ने अपनी दासियों के साथ मणिमय घट में स्वादिष्ट-स्वच्छ, बहुत सुगन्धित फूलों का रस, जिसकी सुगन्ध से भृङ्ग उन्मत्त होकर घटों के चारों ओर उड़ रहे थे, उत्तम मधु सखियों के आगे लाकर रख दिया।

यमुना-पुलिन विगलित चाँदी की तरह चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से उज्ज्वल हो रहा था। वहाँ स्फटिक मणि का चषक-पात्र जब वृन्दा की सखियों ने रखा तो पुलिन की ज्योत्स्ना से वह ऐसा सफेद हो गया कि सखियों को देखकर भी पता नहीं चलता था कि पान-पात्र सामने है या नहीं, टटोलकर वे उन्हें जान पाती थीं। मधुपान के उत्तम पान-पात्र हाथ में ले गोपियाँ पहले अपने प्रियतम को उसका पान कराकर फिर स्वयं मधुपान करने लगीं। किन्तु उनमें से कोई-कोई गोपी मधुपान में प्रवृत्त न हुई, कारण मधुपान के बाद प्रियतम के साथ सखियों की चित्त-विभ्रम-माधुरी (उन्मत्तता) देखने की उनकी अभिलाषा थी। वह माधुरी कैसी थी? पहले उनके नयन-युगल से अरुणिमा झलकी, वाणी द्वारा विवश भाव प्राप्त हुआ, फिर हँसी के विषय में भय और भय के विषय में हँसी आने लगी। फिर उन्हें प्रियतम से परिहास करने की इच्छा हुई। प्रियतम के साथ गोपियाँ मधुपान में जब प्रवृत्त हो गयीं, तो आपस में खूब बातें होने लगीं। ये सखियाँ मौन धारण कर उसे सुनने लगीं।

एक सखी चषक में प्रतिबिम्ब देखकर बोली : 'चन्द्रमा मेरा मधुपान कर रहा है।' दूसरी उससे कहने लगी : 'सखि! क्या हानि है, उसे पीने दो। तुम भी उसके साथ पीओ।' एक और सखी बोली : 'यह चन्द्रमा तो चोर है। तुम्हारी वदन-कान्ति चुराये ले रहा है, इसलिए इसका कण्ठ पकड़कर फिर मधुपान करो और अपने दाँतों उसके अङ्ग भङ्ग कर दो।' दूसरी ने कहा :

'चन्द्रमा के अङ्ग अमृतमय हैं, उनका अनिष्ट नहीं हो सकता। फिर सखी! उसका जूठा पान हम कैसे करें?' तीसरी बोलने लगी : 'हाय! आकाश नीचे कैसे गिर रहा है? प्रियतम! पृथिवी घूम रही है। मुझे पकड़ो, नहीं तो गिर जाऊँगी। देखो, मेरे अङ्ग काँप रहे हैं।' यह कहकर वह सखी प्रियतम से चिपक गयी। कोई सखी मधु के ऊपर भृङ्ग का प्रतिबिम्ब देख मधु में कुछ मैल है, यह समझकर कपड़े से उसे छानने लगी।

प्रियाजी का प्रियतम के साथ मधुपान करने से चित्त-विभ्रम हो गया, जिससे प्रियतम जब किसी सखी का नाम ले पुकारते तो अपने को वह सखी समझ बोल उठती थीं। जब प्रियतम बोले : 'आली!' तो प्रियाजी कहने लगीं : 'प्रियतम! मेरे ऊपर प्रसन्न हो!' फिर जब प्रियतम ने कहा : 'तुम्हारा नाम क्या श्यामला है?' तो प्रियाजी ने उत्तर दिया : 'नहीं! श्यामला तो तुम्हारे पास आ रही हैं, मैं तो उनकी सखी हूँ।' ऐसे मधुपान की उन्मत्तता से श्री राधा-माधव नाना लीला प्रकट कर विहार करने लगे। सुखघनविग्रह रसिकशिरोमणि श्यामसुन्दर ने अपनी 'आनन्द' नामक शक्ति के साथ रासविहार से काम को कृतार्थ किया।

जब आकाशरूप विटङ्क (छत्री) पर स्थित चन्द्ररूप पारावत (कबूतर) द्वारा तारारूप खील चुगने के बाद केवल दो-चार दाने रह गये, तब देवियाँ (दिशाएँ) उन्हें भी फूल समझ फूलों के साथ वर्षण कर हटाने लगीं। चन्द्रमा के साथ रजनीरूपा रमणी का विहार करते-करते जब देवछन्द (हार-विशेष) टूट गया, बिखरे मोती एक-एक कर वे उठाने लगीं और एक भी मोती (तारा) न रहा, तब चन्द्रमा आकाशरूप समुद्र में द्वीप-द्वीपान्तर के लिए चल पड़ा और पश्चिम दिशारूप दिग् के पास पहुँच गया। रजनीरूपी रमणी ने भावी भगवद्-विरह-दुःख से अपना शरीर त्यागने की इच्छा की, प्रभात होने लगी।

उस अवस्था को देखकर देवियों के हृदय में भी बहुत दुःख होने लगा। अन्तरिक्ष लोक में स्थित देवता, गन्धर्व आदि अपने-अपने स्थानों को चलने लगे। बड़ी रात्रि के अवसान में पतिम्मन्य गोपों के घर विवाही गोपियाँ चली गयीं। गोपियों पर गोपों का असूया भाव न था। कारण, योगमाया ने सदा उनकी छाया-मूर्तियाँ उनके पास रख छोड़ी थीं।

वैसे तो गोपियों के लिए भगवान् कभी परपुरुष नहीं हो सकते, न व्रजसुन्दरियाँ परनारी कही जा सकतीं, फिर भी भगवान् परपुरुष (श्रेष्ठ पुरुष)

व व्रजसुन्दरी परानारी (श्रेष्ठा नारी) ही हैं। व्रजसुन्दरियों के साथ भगवान् का यह विशेष विहार सदा के लिए सिद्ध है और इसका प्रवाह नित्य है। जगत् पर कृपा करने को केवल कभी-कभी जगत् में यह लीला प्रकट करते हैं, जिसको श्रद्धा के साथ श्रवण करने तथा वर्णन करने का माहात्म्य हमारी वाणी का विषय नहीं है, वह परम सौभाग्य है।

इक्कीसवाँ स्तवक

मुरली-चौर्य-लीला

लोकाचार के अनुकूल जब फाल्गुन मास आया, तो होलिका-लीला करने की अभिलाषा से व्रजमण्डल में निरन्तर बसनेवाला आनन्द उछलने लगा। वंशीधर और हलधर नवीन उत्साह के साथ उस उत्सव में वृन्दावन की शोभा बढ़ाते हुए चतुरतापूर्वक क्रीड़ा करने लगे। अनुरागवती गोपियों ने अपना मण्डल बना मनोरम गान प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने रंग-बिरंगे, सुन्दर, अनुपम वस्त्र धारण किये। चन्दन, कस्तूरी आदि का अङ्गों में लेपकर सुगन्धित पुष्पां की मालाएँ पहन लीं। चारों ओर चमत्कारमयी शोभा बिखरने लगी। सभी वन-वीथियों से सब मनोहर राग, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि से युक्त होकर वे तरह-तरह के गान गाती चल रही थीं। वे श्रवण-सुखकर करताल बजातीं और चञ्चल कङ्कणों की झङ्कार करतीं, मधुर बाजे बजातीं, चाञ्चरी राग गातीं, अपने अत्यन्त शोभापूर्ण मुखचन्द्रों की चन्द्रिका छिटकाने लगीं। उनकी घन-गम्भीर गान-ध्वनि सुन वन के मयूर भी अति उत्सुक हो नृत्य करने लगते।

मद-मत्त नेत्र और मणिमय कुण्डल धारण किये हलधर बलदाऊजी भी अपने ऊपर अनुरागवती गोपियों के साथ गान गाते नृत्य करने लगे। बलरामजी नील अम्बर धारण किये थे। उनकी स्वाभाविक गौर-वर्ण देह पर वह नीलाम्बर छवि ऐसी मालूम होती, मानो अन्धकारसहित अर्ध चन्द्रमा शोभित हो रहा हो। वे क्षणभर नृत्य करते तो दूसरे ही क्षण ठहरकर चाञ्चरी राग गाने लगते। उन्मत्त और विह्वल हो वे मानो मूर्तिमान् मद ही प्रतीत होते। क्षण में हँसने लगते तो क्षण में ही गोपियों के साथ फूलों की रज और कुङ्कुम ऐसे फेंकने लगते, जैसे कामदेव का हाथी धूलि उड़ाता हो।

उधर चन्द्रावली अपनी प्रिय सखियों के साथ, श्री राधाजी अपनी प्राणप्रिय ललिताजी आदि के साथ और श्यामा सखी अपनी सखियों के साथ मण्डल बनाकर आयी थीं। वे एक-दूसरे के साथ हास-परिहास करतीं और हाथों में सिन्दूर, कुङ्कुम तथा फूलों की रज लेकर विलासपूर्वक एक-दूसरे पर उछालतीं। वीणा आदि बाजे बजा रसपूर्वक गाती वे मत्त नेत्रों से श्रीकृष्ण की ओर देख रही थीं। इधर श्रीकृष्णचन्द्र भी मधुर मुरली का निनाद करते उन

गोपियों के बीच विराजमान हो सुरीले कण्ठ से बहुत दिनों से सञ्चित गान-कला दिखलाते, गाते और केशर की रेणु ले गोपियों पर उछालते रहे। मुग्ध सुन्दरियाँ झङ्कार करते करों से श्रीकृष्ण पर चारों ओर से गुलाल फेंक रही थीं। जैसे मत्त गजराज का किशोर निश्चल खड़ा रहता हो, वैसे ही श्रीकृष्ण उनके बीच चाञ्चरी राग वंशी पर गाते निश्चल भाव से क्रीड़ा करते रहे।

इस प्रकार इधर श्रीकृष्णचन्द्र क्रीड़ा में विक्रम दिखलाते आश्चर्यमय रति करते रहे तो उधर से बलदेवजी की प्रिय गोपियाँ भी सिंहसदृश बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण के निकट आ गयीं। वे गोपियाँ गाती-बजाती, नाचती और अपने नूपुरों तथा किङ्किणी की झङ्कार करती बलरामजी से आसक्त हो कटाक्षों से श्रीकृष्ण की ओर देखने लगीं। वे लौकिक रीति के अनुसार कौतुकवश अपने देवर श्रीकृष्ण के अङ्गों पर भी गुलाल फेंकने लगीं। तब श्रीकृष्ण का कटाक्ष-सङ्केत पाकर सखावृन्द भी—जो लाल, सफेद और पीली पगड़ी बाँधे हुए थे—कुङ्कुम, केसर, सुगन्धित पुष्पों की धूलि आदि ले उन बलरामजी की प्यारी गोपियों पर फेंकने लगे और गम्भीर-मधुर भावों से उल्लसित होकर हास्य करते वंशी बजाने लगे। यह देख श्रीकृष्ण की प्रिय सखियाँ उच्च स्वर से हँसने लगीं।

इस प्रकार जब श्रीकृष्ण की प्रिय सखियों ने कोमल कर-पल्लवों से ताली बजा 'हा-हा, ही-ही' करते परिहास प्रारम्भ किया, तो उसे सुनकर बलरामजी क्रोधित हो गये। गजराज-शावक के समान मद-मत्त होकर रोहिणीनन्दन भी गुलाल और कुङ्कुम ले-लेकर जोरों से चलाने लगे। विवश हो श्रीकृष्ण की प्रिय सखियों ने सिंहावलोकन न्याय* से पीछे छोड़ी हुई लज्जा को निहारा और उसे साथ बुलाकर विजय की आकांक्षा से वहाँ से हटना चाहा। तत्काल श्रीकृष्ण ने सखाओं को हँसते हुए इशारा कर बलरामजी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

सखाओं ने केलि-धूलि फेंकना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने जब बलरामजी की एक भुजा पकड़ ली तो वे दूसरी भुजा उठा मुट्ठी भर-भरकर धूलि चलाने लगे। उन्होंने कृष्ण के सखाओं से जबरदस्ती अपने को छुड़ाया और सम्पूर्ण सखाओं के साथ अकेले ही खेल के कौतुक में भरकर सबके मुखों को गुलाल से आच्छादित करने लगे। उनकी यह विवशता देख दशन-चन्द्रिका से अपने

* सिंह पीछे की ओर देखता आगे चलता है, इसलिए यह एक न्याय ही बन गया।

अधरों को स्नान करानेवाले (हँसते हुए) नन्दकुमार कीं ओर देख कहने लगे : 'क्या मुझ अकेले अपने अग्रज को अन्याय से हराना चाहता है ?'

बड़े भैया के ये शब्द सुनते ही श्रीकृष्णजी ने अपने सखाओं को इशारे से निवारित किया। बलरामजी श्रीकृष्ण की अपूर्व शोभा देख मन ही मन आनन्दित हो रहे थे। वे ऐसे लगते, मानो कमल-पराग से जैसे हीरे का खम्भा छाया हो। अथवा जवाकुसुम की द्युति से रञ्जित महास्फटिक का अङ्कुर हो। अथवा हिमालय के हिमाच्छादित शिखर पर बालसूर्य की किरणें पड़ रही हों। अथवा सरोवर में कमलों की कान्ति पड़ रही हो। अथवा सन्ध्याकालीन पूर्ण चन्द्रमण्डल हो। गुलाल से रञ्जित, मदोन्मत्त, कौतुकी बलरामजी की यह झाँकी देख उनकी अनुरागिणी गोपियाँ आमने-सामने खड़ी होकर उनके साथ नृत्य करती गाने-बजाने लगीं।

मुरली-चौर्य-लीला

इस प्रकार विहार करती गोपियाँ जब थक गयीं, तो एक गोपी परम उन्मत्तता से अन्य गोपियों को सम्बुद्ध कर कहने लगी : 'सखियो ! इन श्रीकृष्ण की ये भुजाएँ सर्प-सी हैं और उँगलियाँ फण के समान हैं। उन उँगलियों में सुन्दर वंशी विराजमान है। किसी प्रकार इस वंशी को चुरा लिया जाय। वंशी के वियोग में उल्लास घटकर श्रीकृष्ण की छबि कैसी होगी, यह हम देखना चाहती हैं।

देखो, इसी वंशी को लेकर ये बड़े गर्वित रहते और खूब बजाते हैं। हम इतना गान-कौशल दिखलाती हैं, फिर भी वंशी-ध्वनि से हमारा सब चातुर्य विंध जाता है। इसलिए निश्चय ही इसे चुरा लेना चाहिए। ये सदैव वंशी के वश में रहते हैं। सो हमें अपनी-अपनी चतुरता, प्रवीणता दिखलानी ही चाहिए। बिना मुरली के ये हमारा आकर्षण नहीं कर सकेंगे। पर यह बताओ कि इनके करों से इसे हरण कैसे किया जाय ? ये इसे कभी अपने हाथों से छोड़ते ही नहीं, इसलिए इसका हरण कैसे हो सकता है ?' इस प्रकार एक-दूसरी के पास जा परस्पर कानाफूसी, सलाह-मशविरा करने लगीं।

इस प्रकार चुपके-चुपके सलाह कर सभी गोपियाँ श्री वृषभानुनन्दिनी के पास गयीं और बोलीं : 'स्वामिनीजी ! आपने श्रीकृष्ण को वश में कर रखा है। यदि किसी प्रकार उनकी वंशी चुरा ली जाय तो बड़ा काम बन जायगा। हम उस वंशी को वश में करना चाहती हैं। श्रीकृष्ण की वंशी बजाने की चतुरता चली जायगी, तब देखेंगी कि वे कैसे सङ्गीत-कला से हमें आकृष्ट कर लेते हैं ?'

(व्रजसुन्दरियाँ विचारने लगीं : सखी ! हम तो मुख से गाती हैं और ये वंशी से गाते हैं। तब इनके गाने का मुकाबला हम कैसे करें ? पर यदि वंशी को ही चुरा लें तो फिर देखें, कैसे ये हमें पराजित करते हैं !)

श्रीकृष्ण-सखा कुसुमासव गोपियों के इशारों से उनकी इस कानाफूसी को समझ गया। उसने भयभीत हो शीघ्र आकर श्रीकृष्ण से कहा : 'प्रियसखा, सारी गोपियाँ मुरली-गान के समान सुन्दर गाने में असमर्थ होने से लज्जित हो मुरली ही चुरा लेने की सलाह कर रही हैं, इसलिए यह वंशी मुझे दे दो, मैं इसे गले में बाँध लूँगा। देखो, मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे ब्रह्मतेज के कारण इनमें से कोई भी मेरे निकट नहीं आ सकती।'

श्रीकृष्ण बोले : 'सखाजी ! तुम्हारे ब्राह्मणत्व का प्रभाव तो हमनें वसन्तोत्सव ही में देख लिया। फिर बताओ, मुरली की रक्षा कैसे कर सकोगे ? तुमसे मुरली की रक्षा होने में मुझे सन्देह है।'

कुसुमासव बोला : 'मित्रवर, देखो, मुझ जैसे मन्त्री के मन्त्र से आप सर्वश्रेष्ठ गुणशाली हो गये, तो क्या मैं मुरली की रक्षा नहीं कर सकता ? नहीं, अवश्य कर सकता हूँ। मेरी ओर कोई देख भी नहीं सकता। मुझ पर अविश्वास क्यों करते हो ?'

श्रीकृष्ण बोले : 'इस महामहोत्सव में मदोन्मत्त गोपिकाओं द्वारा घिर जाने पर यदि तुम्हारे हाथों से मुरली छिन जाय तो क्या करोगे ?'

कुसुमासव बोला : 'तब देखना मेरा तपःप्रभाव !' ऐसा कहकर शीघ्रता से श्रीकृष्ण के हाथ से मुरली छीन उसने अपनी फेंट में खोंस ली और बोला : 'सखाजी, अब यों ही कण्ठ से गाओ ! अच्छा, जरा शुरू करो तो !'

श्रीकृष्ण मधुर कण्ठ से गाने लगे। जब उन्होंने अत्यन्त कला के साथ चरचरी राग गाया तो उसे सुन कालिन्दी का जल स्थिर हो गया और वृक्ष, लताएँ आनन्दाश्रुओं की वर्षा करने लगीं। वीणा की ललित ध्वनि को जीतनेवाले कण्ठ से गाये गये गीत को सुन हिरणियों की श्रेणी आकर खड़ी हो गयी और मुग्ध होकर सङ्गीत की अलौकिक माधुरी का रसास्वादन करने लगी।

श्रवणों को प्रिय लगनेवाले विचित्र गान को सुन गर्व में भरकर कुसुमासव बोला : 'ललिताजी ! देखो, हमारे प्रिया सखा ने बिना मुरली के ही ऐसा सुन्दर चरचरी-गान गाया कि ऐसा गान-कौशल आज तक कहीं सुना न होगा। तुम लोग अपने गाने का बड़ा अभिमान करती हो। भला तुम ऐसा गा सकती हो ?'

यह सुनकर सङ्गीत-विद्या सखी बोली : 'अरे गँवार ! क्या कहता है ? हमारी प्रिय सखी ललिता इससे भी सुन्दर गाने की शक्ति रखती है। यदि मुरली की बाजी लगाओ तो हमारी सखी गाकर दिखाये ।'

कुसुमासव बोला : 'मैं गान-कला समझता हूँ, किन्तु मुरली तो तुम स्वप्न में भी नहीं पा सकती ।'

सङ्गीत-विद्या बोली : 'ब्राह्मणकुमार ! तुम तो केवल वेद-गान करते हो। यह वेद-गान नहीं। तुम सङ्गीत-कला क्या जानो ? तुम तो केवल वेद की बातें समझते हो, सङ्गीत-कला नहीं ।'

इसी बीच श्रीकृष्ण ने कुछ इशारा किया। उसे समझकर कुसुमासव फिर बोला : 'सङ्गीतविद्ये ! फिर तुम ही बताओ कि गाने का कैसे तौल-नाप करोगी ? देखो, ऐसा नाप हो सकता है। जब श्रीकृष्णजी ने वंशी बजायी तो यमुना-जल स्तब्ध हो गया था। वृक्षों में आनन्दाश्रु तथा पुलक उभर आये और हिरण मन्त्रमुग्ध हो निकट आ गये थे। यदि तुम्हारी सखी हमारे प्रिय सखा की बराबरी करना चाहती है तो ऐसा ही गान गाकर दिखलाये। यदि तुम मुरली को बाजी में रखना चाहती हो तो मैं पूछता हूँ, कि तुम हार गयी तो क्या दोगी ? तुम अपनी प्रिय सखी श्री राधा को ही दाँव पर लगाओ ।'

यह सुनकर ललिताजी बोलीं : 'अरे कुमनोरथी, कुबुद्ध गँवार ! रस को क्यों विरस कर रहा है ? देख, जितनी भी बाजियाँ होती हैं, बराबरी में लगायी जाती हैं। कहीं काँच और कञ्चन की भी बराबरी हो सकती है ?'

कुसुमासव बोला : 'हमारे प्रिय श्रीकृष्ण की मुरली क्या काँच हो गयी और तुम्हारी सखी राधा क्या कञ्चन ?'

ललिताजी बोलीं : 'इसमें क्या सन्देह ? अगर तू समता से बाजी लगाना चाहता है तो श्रीकृष्ण को ही रख !'

कुसुमासव बोला : 'अच्छा, गाओ ! मैं अपने सुन्दर सर्वशिरोमणि सखा श्रीकृष्ण को बाजी पर लगाता हूँ ।'

यह सुन ललिताजी आनन्दित हो उठीं और उत्साह से गाने को तैयार हुईं। उन्होंने केदार राग गाना शुरू किया। गन्धर्व-कला-अनुसार मधुर-से-मधुर कण्ठ से जब वे गाने लगीं तो उनकी भृकुटि नाच रही थी। वे उठकर खड़ी हो गयीं और लज्जा त्यागकर अत्यन्त मनोहारी नृत्य करने लगीं। नृत्य के समय उन्होंने शूरसेनी तान के अनुसार राग गाया। वह गीत लय से भरा था। जब वे गाने लगीं तो उनका विग्रह नृत्य करता तीन ओर से झुक

जाता और तब वृन्दावन की सम्पूर्ण सुन्दरियाँ उनकी कला पर मोहित हो उठती थीं।

मुग्धतावश कुसुमासव गर्वित हो कहने लगा : 'तुम्हारा गान सुन्दर नहीं है।' और ताली बजाकर बोला : 'तुम हार गयीं।'

जब उसने हाथ ऊपर उठा ताली बजाना और हँसना प्रारम्भ किया तो ललिताजी ने नृत्य की चातुरी से उसके निकट आ उसकी फेंट से मुरली निकाल ली। उधर वह बहकाता ही रहा, उसे पता भी न चला। ललिताजी ने दूसरी सखी को वंशी दे दी और उसने तीसरी को! इस तरह मुरली चुरा ली गयी। चातुरीवंश सखियों ने मुस्कराया तक नहीं और उलटे सभी मनसुखा को चिढ़ाकर कहने लगीं : 'कैसे ललिताजी का गान 'अच्छा नहीं' कहते? बड़े वाचाल हो तुम! अभी तो पूरी गान-कला दिखायी ही कहाँ गयी? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम्हारे सखा को हमारी ललिताजी ने जीता। तुम्हारे श्रीकृष्ण हारे और हमारी ललिताजी जीतीं।'

कुसुमासव बोला : 'तुम अपने को सङ्गीत की बड़ी पण्डिता समझती हो। अजी, हार तुम्हारी हुई, क्योंकि यह होली का समय है, सो कृष्ण ने चाञ्चरी राग गाया। पर तुम्हारी ललिताजी ने केदार राग क्यों गाया? सो निश्चिय ही तुम हार गयीं।'—कहते हुए हँसने लगा। सखियाँ भी उससे कहने लगीं : 'नहीं, तुम ही हार गये।' दोनों में होड़ लग गयी।

सखियाँ कहने लगीं : 'अरे मूर्ख! चाहे हमारी ललिताजी ने चाञ्चरी या जंवरी या केदारा कोई भी राग गाया तो इससे क्या? रागों के नाम से क्या होता है? देखनी चाहिए ताल-कला-मूर्च्छना! देखो, ललिताजी के गान की महिमा! उनके पास खड़ी हम सब जड़ वृक्ष-सी हो गयी थीं। पुनः हमारी स्तब्धता देखना चाहते हो तो फिर इनसे गवाओ। देखो, हम जड़-सी हो जाती हैं या नहीं? इसलिए जीत हम लोगों की ही रही। तू कहता है कि 'कृष्ण के गान से वृन्दावन के वृक्षों में चैतन्य छा गया!' तो इसमें क्या बड़ी बात है? वृन्दावन के सब वृक्ष तो चेतन हैं ही। इसलिए भी हमने तुम्हारे सखा को जीत लिया। अब शीघ्र अपने सखा को लाकर हमें दो।'

यह सुनकर सुबल सखा बोल उठा : 'अरी सङ्गीत विद्ये! यह तो बताओ, तुम लोगों में जड़ता कैसे आ गयी? यदि तुममें जड़ता आती तो तुम इस तरह बातें कैसी बोल पातीं? इसलिए हमारा सखा श्रीकृष्ण हारा, यह नहीं माना जा सकता। दूसरे, श्रीकृष्ण तो स्वामी हैं। उनको एक सेवक बाजी पर कैसे लगा सकता है? तुम्हारा न्याय गलत है।'

इतने में श्रीकृष्ण बोले : 'कुसुमासव ! क्यों बहुत व्यर्थ की बातें कर रहे हो ? देखो, पहले उस वसन्तोत्सव में इन मदमत्त गोपियों द्वारा तुम हार गये थे और अपने को छुड़ाने में समर्थ न हो सके। व्यर्थ का ऊधम मचाते फिरते हो। लाओ, मेरी मुरली दे दो, नहीं तो उसे भी गँवा बैठोगे।'

कुसुमासव बोला : 'प्रिय सखा ! मैंने अपने प्रभाव से सखियों की प्रिया श्री राधाजी को आपके लिए जीत लिया है। इसलिए प्रसन्न होकर उन्हें ले लो।'

ललिताजी बोलीं : 'अरे निरे पशु ! तू गान-कला क्या जाने ? पहले प्रतिज्ञा कर फिर हार गये। अब व्यर्थ अपने को विजयी कहता फिरता है।'

कुसुमासव बोला : 'अच्छा ! प्रिय सखे श्रीकृष्ण ! यदि ये सखियाँ मर्यादा त्यागकर सिद्धान्त-विरुद्ध न्याय कर लोभ से तुम्हें ले लेना ही चाहती हैं तो मैं क्या करता ? अच्छा लो, मैं तुम्हारी मुरली दिये देता हूँ।'

जब उसने मुरली को फेंट से निकालना चाहा, तो उसे वहाँ न देख आश्चर्यचकित हो उठा और चारों ओर देख कहने लगा : 'मेरी मुरली, मेरी मुरली !' फिर श्रीकृष्ण से बोला : 'प्रिय सखा ! मालूम होता है, मुरली भी डर गयी है, सो कहीं भागकर छिप गयी होगी।' (वह भय से सखी के पास नहीं जाना चाहती।) यह सुन सब सखियाँ ठहाका मार हँसने लगीं।

इसी बीच कुछ दूर पर, जहाँ बलरामजी अपनी गोपियों के साथ गान-वाद्य में मग्न हो रहे थे, गोपियों की सुन्दरता पर मुग्ध होकर शङ्खचूड़ नामक कुबेर का सेवक यक्ष आ लपका। देवतापन का अभिमान रखनेवाला वह बलवान् यक्ष अपने आभूषण की मणियों से वातावरण को प्रकाशित करता हुआ ऐसे झपटा, जैसे सर्प की मणि लेने के लिए मेंढ़क झपट रहा हो। अपने हाथों अपनी मृत्यु का आह्वान करने के लिए ही उसने बलरामजी की प्रिय गोपियों का हरण करने की इच्छा की।

उस विशाल बलवान् यक्ष को समीप आता देख भय से व्याकुल हो सभी गोपियाँ घबराने लगीं। उसके मस्तक पर चमकती मणि को देख वे और चकित हो उठीं और डरती हुई पुकारने-चिल्लाने लगीं कि 'हे बलरामजी ! रक्षा करो, रक्षा करो।'

बलरामजी तो गाने में ही मस्त थे। सो उन्होंने उनकी पुकार नहीं सुनी। शङ्खचूड़ जब सहसा गोपियों को पकड़कर ले जाने लगा तो श्रीकृष्ण की उधर दृष्टि गयी। वे दौड़े तो पीछे-पीछे बलरामजी भी दौड़ पडे। इस प्रकार वीर-

प्रवर बलराम-कृष्ण को अपने पीछे दौड़ते देख यक्ष डर गया और गोपियों को वहीं त्याग भाग खड़ा हुआ।

बलराम और कृष्ण कहते ही रह गये कि 'अरे, ठहर जा, ठहर जा!' किन्तु वह भागता ही गया। तब श्रीकृष्ण ने दिव्य गति से दौड़कर उसे पकड़ लिया। जैसे बाज झपटकर पक्षी को पकड़ लेता है, या जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है, ऐसे ही शङ्खचूड़ के लहराते बालों को श्रीकृष्ण ने पकड़ लिया। कमठ की पीठ से भी कठोर उसके मस्तक पर प्रभु ने अपने कोमल कर-कमल की मुष्टि बाँध दे मारी और मस्तक से मणि खींचकर उसके प्राण ले लिये। विजय से प्रसन्न श्रीकृष्ण ने आकर सब गोपियों के सामने बड़े भैया बलरामजी को वह मणि समर्पित कर दी।

इधर महोत्सव के बीच विघ्न आ जाने से श्रीकृष्ण की प्रिय गोपियाँ, सहचर और सखागण हतोत्साह हो गये थे। जैसे अन्धकार में एकाएक दीपक जला दिया जाय, या सूखे हुए तालाब को जल से भर दिया जाय, अथवा टूटे-फूटे मकान का जीर्णोद्धार कर दिया जाय, वैसे ही श्रीकृष्ण ने पुनः उनके बीच आकर सबको आनन्दित कर दिया।

चित्त स्थिर होने पर कुसुमासव को मुरली की पुनः याद आयी। वह सखियों से अपनी मुरली माँगने लगा। चन्द्रावली सखी तथा अन्य सखियों से कहने लगा : 'देखो, बहुत मदमत्त मत बनो। मेरी मुरली तुमने चुरायी है, उसे सीधे से दे दो।' वह एक-एक गोपी को अलग-अलग चोरी लगाने लगा। जब वह किसी गोपी का अञ्चल उठाकर मुरली खोजने लगा, तो सभी सखियाँ उसकी हँसी उड़ाने लगीं। जिस सखी का अञ्चल उठाया, वह तो क्रोधित होकर डाँटने लगी : 'अरे, तू सचमुच गँवार है। क्या तेरी मुरली तेरे हाथ से उड़कर मेरी ओढ़नी में छिप गयी है? स्वयं ही मुरली को बाजी पर लगाया और अब उसे देना नहीं चाहता। तुमने ही उसे कहीं छिपा दिया होगा। खैर, अगर मुरली खो भी जाय तो क्या बात है? कौस्तुभसहित कण्ठहार ही, जो श्रीकृष्ण ने पहन रखा है, बाजी पर लगा दे।'

चन्द्रावली बोली : 'कुसुमासव! तुम तो बड़े बलवान् हो और हम हैं अबला! सो तुम्हारे हाथ से हम लोग मुरली छीन ही कैसे सकती हैं? अकारण हम स्त्रियों को परेशान कर रहे हो। डरते नहीं? बड़े ढीठ, निःशङ्क हो गये हो।'

कुसुमासव बोला : 'तुम लोगों ने यदि मुरली नहीं चुरायी है तो प्रमाण बताओ! मैं और तुम सभी यहाँ थे, दूसरा कोई न था। फिर यह कैसे

कह सकती हो कि हमने नहीं चुरायी ? यदि कहती हो कि मैंने नहीं चुरायी है तो इसका प्रमाण बताओ ।'

चन्द्रावली बोली : 'एक-दो नहीं, सब गोपियाँ इसमें प्रमाण हैं ।'

कुसुमासव बोला : 'ये सब मेरे विपक्ष की हैं, इनका प्रमाण कैसे माना जा सकता है ?'

चन्द्रावली बोली : 'तुम्हारा सखा ही प्रमाण है । इनकी तो मानोगे ?'

कुसुमासव बोला : 'नहीं, वह भी नहीं । कहीं तुमने उन्हें कुछ घूस देकर अपने में मिला लिया हो तो ? और कुछ नहीं, तुमने ही हमारी मुरली चुरायी है ।'

कहने को तो कुसुमासव ने यह कह दिया, पर अब उसे श्रीकृष्ण का डर भी लगने लगा । श्रीकृष्ण ने कहा : 'सखाजी ! तुम्हारे कर-कमल से मुरली को सङ्गीत-विद्या ने ही चुराया है, और किसीने नहीं ।'

सङ्गीत-विद्या यह सुन चौंक पड़ी, क्योंकि मुरली उसीके पास थी । कपट-भरी दृष्टि से देखते हुए उसने धीरे से वंशी को ललिताजी के वस्त्रों में छिपा दिया । ललिताजी ने उसे सँभालकर रख लिया ।

सङ्गीत-विद्या का हाव-भाव देख कुसुमासव समझ गया । वह बोला : 'प्रियसखे कृष्ण ! मुरली की चोर वही है, जिसे तुम बता रहे हो । निश्चय ही मुरली अपनी अधिष्ठात्री देवी सङ्गीत-विद्या के पास गयी होगी ।'

यह सुनकर सब हँसने लगीं । सङ्कोच को दूर कर सङ्गीत-विद्या बोली : 'क्या चोर के ये ही लक्षण होते हैं ?'

वह बोला : 'तुमने ललिताजी को मुरली चुपके से दे दी होगी ।'

यह सुनकर वे गर्व से चले जाने के लिए खड़ी हो गयीं और मुस्कराते हुए बोलीं : 'रे विप्रकुमार ! क्या कहता है ? इस महोत्सव के समय खेल में कपट कर रहा है ? कब और कैसे मैंने तेरी मुरली चुरायी ? मैं मुरली लेकर क्या करूँगी ? झूठ ही दोष मढ़ रहा है । अरे वाचाल ! दयावश हम तुझे कुछ नहीं कहतीं, नहीं तो इसका मजा चखा देतीं ।' यह सुनकर सब मुस्कराने लगीं ।

इस प्रकार जब साहस के साथ अबलाओं ने कुसुमासव पर ज्यादती प्रारम्भ की, तो परम रसिक वनमाली श्रीकृष्ण रसामोद लेने की इच्छा से स्वयं उठे और सखा का प्रिय करने के लिए अपने कोमल करों से एक-एक सखी की तलाशी लेने लगे । इस प्रकार जब ललिताजी की तलाशी लेने लगे तो मुस्कराते हुए उन्होंने अपने पास की वंशी झट से श्री राधा के करों में फेंक

दी। यह कला-चातुरी देख सङ्कुचित होते हुए श्रीकृष्ण राधाजी की ओर मुड़े।

राधाजी के सुखद स्पर्श की भावना से मदमत्त हो मुसकराते हुए श्रीकृष्ण जब श्री राधाजी के सामने खड़े हो गये तो वे बोलीं : 'मैं निर्दोष हूँ। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? यदि तुम मुझे छूने की इच्छा करोगे तो तुम्हारा सारा मतवालापन बिगाड़ दिया जायगा। देखो, मेरे पास मुरली नहीं है। मैं झूठ नहीं बोलती।' उन्होंने अपना आँचल झाड़कर दिखा दिया और अपने दाँतों की किरणें छिटकाते मुसकराते हुए बोलीं : 'स्मरण करो, जब तुम मदोन्मत्त शङ्खचूड़ के पीछे दौड़े थे, तो पृथिवी पर कहीं मुरली गिर पड़ी होगी। व्यर्थ ही स्त्रियों को चोरी लगाते हो और उनसे छेड़खानी कर रहे हो।'

कुसुमासव बोला : 'नहीं, राधाजी ने नहीं चुरायी है।'

श्रीकृष्ण बोले : 'तुमने तो बड़ी चतुरता दिखलायी। किन्तु मैं बलरामजी के कारण थोड़ी लज्जा करता हूँ। राधे ! फिर समझाता हूँ, मेरी मुरली दे दो।'

श्री राधाजी ने कहा : 'अगर मेरे पास वंशी न निकली, तो मैं वही मणि ले लूँगी, जो तुमने अपने बड़े भैया को अर्पण कर दी है।'

श्रीकृष्ण ने कहा : 'अच्छा, दिखलाओ तो सही !'

प्रसन्न हो राधाजी खड़ी हो गयीं और दोनों हाथ झटक दिये। किन्तु चतुराई से दबा रखने पर भी ओढ़नी से वंशी गिर ही पड़ी।

सब सखागण हँसने और तालियाँ बजाने लगे। एक ही कोलाहल मच गया। कुसुमासव ने वंशी उठा ली और कहने लगा : 'ओहो ! यह वृषभानुकुमारी तो बड़ी नवीन चौर्यविद्यापण्डिता निकलीं, जो सबका मन चुरानेवाली मुरली को भी चुरा लेती हैं। लो सखे श्रीकृष्ण ! अपनी मुरली लो ! मैं तुम्हारी चीज तुम ही को सौंपे देता हूँ।' इस प्रकार जब वंशी मिल गयी तो श्रीकृष्णचन्द्र उल्लासपूर्वक उसे अधरों पर रख मधुर स्वरों में बजाने लगे। महा-महा हाव-भावों द्वारा आनन्द-सिन्धु में हिलोरें लेती हुई सखियाँ गाने लगीं। इस प्रकार बड़े उत्साह से महोत्सव होने लगा।

बाईसवाँ स्तवक

दोलोत्सव

इस तरह मधुर रात्रियों में भगवान् के महारास के ये पूर्ववर्णित विलास सचमुच तीनों लोकों के लिए दुष्प्राप्य थे। वे त्रिभुवनदुर्लभ रमणीजनों के लोकोत्तर आमोद-प्रमोद से मेदुर (व्याप्त) थे और थे सर्वथा दुराराधा श्री राधा आदि प्रमुख गोपीजनों के लोकोत्तर विलासों से सम्पन्न। इन्हीं विलासों के बीच सर्वाधिक रसवासना से सनाथ जो लीला रही, वह था दोलोत्सव। बकारि श्रीकृष्ण ने उन प्रेम-पगी गोपियों के साथ जो यह दोला-लीला की, उसका सरस वर्णन भी यहाँ कैसे भुलाया जा सकता है ? हाँ, तो लावण्यवती गोपियों के साथ सहर्ष श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जो दोलोत्सव-लीला की, वह इस प्रकार है।

श्री वृन्दावन में ही एक दोलोत्सव की स्थली बनी हुई थी, जिसके चारों ओर समान आकार-प्रकार के कल्पवृक्षों की पंक्तियाँ लगी हुई थीं। उनकी शाखाएँ चारों ओर से एक-दूसरे से मिल जातीं और बीच की जगह खाली हो जाती। वहाँ किनारे-किनारे हरितमणि की दीवारें बनी थीं और उन पर लम्बी-लम्बी मुक्ताओं की मालाएँ लटक रही थीं। वहाँ नाना रत्नों, फलों, फूलों तथा पक्षियों के समूह थे, जो प्रकाश, सौगन्ध्य और कलरव बिखेर रहे थे। बीच में चौकोर स्वर्णवेदिका बनी हुई थी। वेदी के चारों कोनों पर चार सुन्दर हरिचन्दन के वृक्ष सौन्दर्य की सार लक्ष्मी को लिये खड़े थे। जिन शाखाओं से चार द्वार बन गये, उनसे वह स्थल चार द्वारों और चार खम्भोंवाला एक ऊँचा-सा मण्डप ही दिख पड़ने लगा। शाखाओं के आगे लम्बी-लम्बी और मोटी-मोटी सोने की जञ्जीरें लगी थीं, जिनमें झूले पड़े थे। झूले चारों ओर से ऐसे प्रतीत होते, मानो चारों ओर आमने-सामने बैठकर चारों दिशारूपी लक्ष्मियाँ एक-दूसरे को देख रही हों।

उस रत्नमयी वेदिका के बीच अत्यन्त मनोहर, हरित वर्ण, मणिमय कल्पवृक्ष-से दो वृक्ष थे। उनकी शाखाओं में सुन्दर दोल (झूला) लटकते रहे। उनमें भी सुन्दर काञ्चन की चार जञ्जीरें पड़ी थीं, जो एक समान थीं। मण्डप के बीच चारों ओर चिन्तामणि के समान प्रकाशमान वृक्षों की छटा बिखरती रही। वहाँ आकर मृगगण तरह-तरह की क्रीड़ा करते और अपना प्रतिबिम्ब

देख अनेक भाव दिखाते। मण्डप में पत्रों और पुष्पों का एक चँदोआ-सा तना हुआ था। लगता था, मानो ऊपर प्रकाशमान स्वर्ण और मूँगों का जाल-सा तना हो। रात्रि में जब उस पर चन्द्रमा की चाँदनी पड़ती तो छाया में उसकी किरणें नीचे ऐसी भली मालूम होतीं, मानो तिल और चावल बिछे हों। हरिणियाँ भ्रम से उन्हें चावल आदि समझकर धान्य खाने के लिए अपने मुख आगे बढ़ातीं। यह मण्डप दिव्य प्रकाशमान मणियों से ऐसा बना था कि देवताओं को भी दिक्-भ्रम होता था।

दोलोत्सव के शोभामय मण्डप के चँदोआ की छाया पृथिवी पर ऐसी सुन्दर प्रतीत होती, मानो दिशारूपी सुन्दरी वृन्दावन को प्रणाम कर रही हो और पवन आकर उनकी त्वरा से खुल गयी मुक्ताओं से जड़ी चोलियाँ पहना रहा हो! अथवा पृथिवी पर आकर तारागण ही वृन्दावन की भूमि की वन्दना कर रहे हों! वितान-मण्डप पर ऊपर से जब वायु बहती तो ऊपर लटकती मुक्तामणि की मालाएँ और पत्ते झङ्कार कर उठते जिससे मालूम पड़ता, मानो वृन्दावन की रेणु की अभिलाषा से आकाश में आकर खड़ी लक्ष्मियों के वृन्द की नूपुरों की ही झङ्कार हो रही हो। वे हवा से डोलती मौक्तिक मालाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो चाँदनीरूपी तालाब के उदर से उड़कर हंस-पंक्ति आकाश में जाकर उड़ रही हो। किंवा श्वेत कमलों की मालाओं के टुकड़े-टुकड़े कर बन-देवताओं ने इधर-उधर चढ़ा दिये हों। कल्पवृक्षों आदि से उड़नेवाली रेणु ऐसी लगती थी, जैसे दिशारूपी सुन्दरी के रोम-कूपों में से धूप और अगर से निकले हुए सुन्दर धूम में कर्पूर की तृणरेणु (सूक्ष्म कण) हों। देवी-देवता भी अत्यन्त उत्साह के साथ विचित्र-विचित्र बाजों को लेकर और सिद्धगण, विद्याधर, चारण, किन्नर आदि भी अपने-अपने साज-सामान के साथ पहले से ही विमानों पर चढ़कर अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक उस उत्सव को देखने के लिए आकाश में विराजमान थे। तदनन्तर वन-देवताओं ने अत्यन्त प्रेम के कारण दोलोत्सव के लिए आवश्यक विविध वस्तुएँ लेकर वृन्दादेवी का सखीभाव धारण करते हुए उस दोला-मण्डप को सजाने में पूरा सहयोग दिया।

आमने-सामने कृष्ण-लीला-अवलोकन रस के रसज्ञ पक्षिगण भी आकर उस दोलास्थली के वृक्षों की प्रत्येक शाखा और प्रत्येक पत्ते पर चारों ओर विराजमान हो गये। वे सन्तों के समान कृष्ण-दर्शन की लालसा से अपने कूजन से मानो कृष्ण-गुण गाने लगे। सम्पूर्ण जातियों की हरिणियाँ और उनके बच्चे बड़े कौतुक से आ-आकर प्रत्येक लता-कुञ्ज के आँगन में विचरने लगे। उस समय उनका दृश्य विचित्र प्रतीत होता था। इसी बीच अकस्मात् अनेक मृगनयनी

सुन्दरियाँ आती दिखायी दीं। उन्हें न तो वेणु ने आकृष्ट किया था और न वे गुरुजनों के विरोध से घर त्यागकर आयी थीं। वे ऐसी लगतीं, मानो कला-केलि प्रकट करनेवाली चिन्तामणियाँ प्रकाशित हो उठी हों। अथवा कल्पवृक्ष ने ही सहसा उन्हें प्रकट कर दिया हो। उनकी कटियाँ बड़ी मनोहर थीं, जिन पर आकर्षक सूक्ष्म रेशमी वस्त्र धारण कराया गया था। वक्षःस्थलों पर कञ्चुकियाँ बड़ी मनोहर मालूम देती थीं। किङ्किणियों की झङ्कार से मुखर सुन्दर नीवियाँ बड़ी फब रही थीं। किन्हींके पुष्पों के धनुष की तरह चपल कन्धे थे और वे अपने करों से बाणों के समान पुष्प के लाल गेंद उछालती रहीं। उनके कौतुकमय क्रीड़ा-कौशल से ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो देवता युद्ध कर रहे हों। कोई गोपी, जिसका वस्त्र कुङ्कुम की धूलि से भरा था और सोने की किङ्किणी जङ्घाओं पर मनोहरता से बँधी थी, बहुत दिनों से सञ्चित अपनी रति-कला-चातुर्यविद्यारूपी धन लेकर श्रीकृष्ण की मनरूपी मणि खरीदने के लिए उत्साह से आती मालूम पड़ी। कोई गोपी अगर, कस्तूरी, कर्पूर की रेणु, चन्दन आदि सुगन्धि द्रव्यों को मिलाकर कुमकुमा बना थाली भरकर वहाँ अपने हाथों में लेकर आयी। कोई गोपी केसर घोलकर उसमें चन्दन, कस्तूरी और पुष्पों के रस से भरा स्वर्ण-पात्र और साथ ही सोने की पिचकारियाँ भी लेकर आयी। इस प्रकार मदन की सेना का सौभाग्य हरण करनेवाली वे देवियों की शिरोमणि गोपियाँ 'मैं आगे चलूँगी' 'मैं आगे चलूँगी' ऐसी अहमहमिका करती, आगे-पीछे चलती हुई खेल-चातुर्यपूर्ण चित्र-विचित्र कण्ठध्वनियाँ और हास्य करती आनन्द बिखेरते आ पहुँचीं।

उसी समय भुवनमोहन श्रीकृष्णचन्द्र श्री राधिकाजी के कन्धे पर करकलित वंशीयुक्त वाम भुजा रखे हुए चले आ रहे थे। वे दाहिने हाथ में अत्यन्त सुन्दर कङ्कण बाँधे उसी कर से लीलाकमल घुमाते रहे। उन्होंने सुनहले पुष्प के अन्दर की द्युति के समान वस्त्र धारण किये थे। उनके किरीट में मोर-पंख सुशोभित हो रहे थे और मकराकृति कुण्डल तथा उन कुण्डलों पर कमल धारण किये थे। उन कमलों के इधर-उधर भ्रमरों के समान अलकावली वायु से हिलोरे ले रही थी। वे वक्षःस्थल पर अत्यन्त महीन रेशमी दुपट्टा धारण किये थे। भुजाओं में केयूर तथा मणिमय कङ्कण चमक रहे थे। कण्ठ के निकट प्रकाशमान कौस्तुभ मणि की किरणें चारों ओर फैल रही थीं। हृदय पर सुनहले रङ्ग की मुक्ताओं तथा फूलों की मालाएँ विराजमान थीं। लीला-विलासपूर्वक चलते समय उनके मणिमय नूपुर और किङ्किणी की झङ्कार मन्द-मन्द शब्द कर मन हर रही थी। ललित अधरों पर पान की लालिमा

झलक रही थी। ऐसे मदमत्त-मूर्ति श्रीकृष्ण रासेश्वरी श्री राधाजी के साथ तेजी से उधर ही चले आ रहे थे।

उन्होंने आकाश-सुन्दरियों के चलने की वीथी (गली) के समान प्रकाशमान दोल-मण्डप की गली में अत्यन्त उत्साहपूर्वक प्रवेश किया। मण्डप के ऊपर बैठे पक्षीगण तार कूजन से जयजयकार कर उठे। वृक्षों को आन्तरिक आनन्द के कारण पुलक खड़े हो गये। वे मुकुलित हो रसराज का अभिनन्दन करने लगे। प्रेम से सहज पुष्पों की वर्षा करते हुए लताओं से आरती उतारने लगे। इसी बीच प्रिया के साथ श्रीकृष्ण झूले पर चढ़ने लगे।

उस समय श्री राधायुत श्रीकृष्णचन्द्र को विद्युत्सहित श्यामघन समझकर मयूरगण चारों ओर 'केओ केओ' शब्द करने लगे। आकाश-मण्डल से सिद्ध, चारण, गन्धर्वों की सुन्दरियाँ नन्दनवन के पुष्प बरसाने लगीं। पुष्पों के साथ आकाश के भ्रमर भी गिरते हुए बड़े भले प्रतीत हो रहे थे। सुरसुन्दरियाँ मधुर-मधुर बाजे ऐसे बजाने लगीं, जैसे सुरतरङ्गिणी (गङ्गाजी) की तरङ्गें परस्पर ध्वनित हो उठती हों।

झूले पर अत्यन्त सुकोमल श्वेत रेशमी वस्त्र बिछा हुआ था, मानो चन्द्रिका को मथकर फेन निकाल रखा गया हो। व्रजतिलकनन्दन नेत्रवानों को नेत्रवान् बनाते हुए सौन्दर्यमयी हिंडोले की शय्या पर विराजमान हो सुशोभित होने लगे। वनदेवताओं द्वारा जा दीर्घ काल से मधुर मङ्गल गान और महामणिमय दीपों द्वारा सजाया जा रहा था, उस अद्भुत शिल्पकलापूर्ण हिंडोले पर श्री राधा के साथ कौतुकी मुकुन्द विराजमान हो गये।

सुन्दरियों में शिरोमणि श्री राधाजी लीलापूर्वक श्रीकृष्ण के कण्ठ में हाथ डालकर जब उनके वाम भाग में बैठने लगीं तो उनके अङ्गों में आनन्द से पुलक हो उठे। वे आनन्द के अतिरेक से जब झूले पर से खिसक पड़ीं, तो सखियों ने सकौतुक उठाकर उन्हें पुनः झूले पर भलीभाँति विराजमान करा दिया। इस प्रकार नेत्रवानों में अत्यन्त सुन्दर, रमणीयता की खान श्री राधा देवीजी के प्रभु के साथ झूले पर विराजमान होने पर लावण्यामृत की नदी बह चली। जब वह नदी अत्यन्त माधुर्य की तरङ्गें उछालती गोपियों की धैर्य-मर्यादा को बहाती बढ़ने लगी, तो उस दृश्य के अवलोकनार्थ अत्यन्त उत्कण्ठित, व्याकुल देवाङ्गनाएँ और देवतागण आकाश-मण्डल में विमानों पर बैठ चारों ओर छा गये।

श्री राधा-कृष्ण की झूले पर विराजने की मधुर लीला देखकर प्रधान-प्रधान सखियाँ जल्दी-जल्दी जाकर अपने-अपने झूले की शय्या पर विराजमान

हो गयीं और सुन्दर स्वर से मङ्गल-गान गाने लगीं। चन्द्रावली आदि श्रीकृष्ण के सम्मुख और भद्रा अपनी सखियों के साथ दक्षिण की ओर तथा धन्या अपनी सखियों के साथ पीछे की ओर विराजमान हुईं।

इस प्रकार खेलने की अत्यन्त अभिलाषा से उल्लसित-हृदया वे गोपबालाएँ पेंग बढ़ाने लगीं त। ऐसा लगा, मानो श्रीकृष्ण से मिलने के लिए उनकी उत्कण्ठा चारों ओर दिशाओं में जा रही हा। अत्यन्त आश्चर्य छा गया, जब वे मधुर स्वर से रसमय गीत गाने लगीं। उनकी गान-कला और वीणा आदि वाद्यों से नाद-माधुरी की अजस्र वर्षा होने लगी। उस समय कानों को कितना अलौकिक आनन्द हो रहा था, कहा नहीं जा सकता! कनक-लता के समान कोई प्रधान सहचरी झूलते समय एक हाथ से हिंडोले की मनोहर रङ्गीन डोरी पकड़े रही। उसके सुगन्धित अङ्गों पर भ्रमर आकर बैठते तो वह दूसरे हाथ से अञ्चल से उन्हें हटाती। उस समय उसके मणिमय कङ्कण बज उठते। जब कमलनयनाएँ पुष्पों की धूलि, जो कि खेल के लिए झूले पर रखी हुई थी, मुट्ठी भर-भरकर एक-दूसरे पर फेंकतीं तो भ्रमर उनकी मुट्ठी में आ जाते, वहाँ से धूलि के साथ उड़ते एवं पृथिवी पर गिर पड़ते। पुष्पों की धूलि से आकाश-मण्डल छा गया। वातावरण धूलिमय हो गया। देवी-देवता बड़े दुःखी हुए, क्योंकि उनका दर्शन-सुख कम हो चला। व्याकुल हो वे धूलि को हटाने का बार-बार यत्न करते।

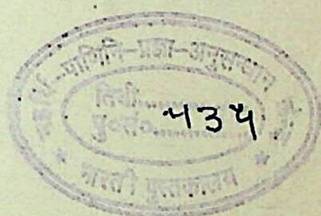
हिंडोले पर स्थित श्री राधा-कृष्ण भी क्रीड़ा में चञ्चल होकर पुष्पों की धूलि उड़ा रहे थे। उनकी प्रिय सखियाँ उन्हें झुलातीं और वृन्दा आदि सखियाँ उच्च स्वर से जयजयकार करतीं। झूलते समय प्रधान गोपियों ने जब देखा कि श्रीकृष्ण को हम पुष्पों की धूलि से न हरा सकीं तो अपने प्रियतम को हराने के लिए चारों आर से सुगन्ध भरे हुए कुमकुमे फेंकने लगीं। तब श्री राधा-कृष्ण के समीप चारों ओर खड़ी हुई चतुर सखियों ने भी सुगन्धित कुमकुमा उन प्रधान सखियों पर चलाना प्रारम्भ किया। उन गोपियों ने भी चतुरता से उनके ही फेंके कुमकुमे को पकड़कर वापस उन्हीं पर फेंका। यदि कोई किसी एक गोपी को निशाना लगाकर कुमकुमा मारती तो वह भी कौतुक में आकर उसे निशाना बना फेंकती। इस प्रकार एक-एक का युद्ध-सा छिड़ जाता। जिस समय वे गोपियाँ बड़े बड़े कुमकुमा बड़े जोर से चलातीं, तब उनके भीतर से चन्दन आदि के खण्ड निकल-निकलकर गिरते, जैसे अण्डे में से पक्षी के बच्चे निकलते हों। जिस समय कोई प्रधान गोपी वेग के साथ कुमकुमा फेंकती और जब वह कुमकुमा श्रीकृष्ण के झूले के निकट आता तो

श्री राधाजी लगने के भय से श्रीकृष्ण के पीछे छिप जातीं। यदि कोई कुमकुमा श्रीकृष्ण के लग जाता तो श्री राधाजी मुसकराती हुई श्रीकृष्ण के अङ्गों से रंग पोंछ देतीं। तब श्रीकृष्ण-स्पर्श से उनके अङ्गों में रोमाञ्च हो उठते।

इस प्रकार झूलते समय कौतुकियों का कौतुक देखते हुए चकोरियों (सखियों) के लोचनसमूह आनन्दोन्मत्त हो उठे। चारों विलास-चतुर मुख्य गोपियों के नेत्र आनन्दोत्साह और उन्मत्तता से बिना पंख उड़ने की इच्छा करने लगे। केलि-कला-निपुण दक्षिण दिशा में विराजित सखी झूलते समय अपने अरुण करों में पुष्प-रेणु लेकर उड़ाने लगी। उसका कर विजय-ध्वजा के समान सुशोभित हो रहा था।

उत्तर दिशा की ओर की सखियों की श्रेणी अत्यन्त प्रबल आनन्द के बल उछलने लगीं। पश्चिम दिशा की सखियाँ रस-विलास की आशा से झूमती कमल-दलों को तिरस्कार करनेवाले नेत्रों से अपने सदृश सुन्दर सखियों के साथ बड़े उत्साह से मनोरथों पर विचरने लगीं। पूर्व की ओर सुन्दरियाँ झूले पर झूलती और श्रेष्ठ आमोदवान् नेत्रों से देखतीं। वे उधर झूलती गुणाधिका राधिकासहित श्रीकृष्ण के साथ पुष्प-धूलि लीला करती आनन्द की पराकाष्ठा को प्राप्त हो गयीं। मुसकानयुक्त प्रफुल्लित मुख-कमल श्रीकृष्ण के मुख-कमल पर पड़ी कमल-रज विलक्षण रस-कौतूहल उत्पन्न कर रही थी।

श्रीकृष्णचन्द्र ने दोलोत्सव के समय एक और अद्भुत लीला की। वह यह कि प्रत्येक सखी की ओर ही मुख कर झूलते प्रत्येक को दीख पड़ते। पश्चिम दिशावाली सखी को उसीके सामने मुख किये दिखायी पड़ते, वैसे ही उत्तर आदि दिशावाली बालाओं को भी! झूलते समय डोलती उनकी वनमाला बड़ी मनोहर मालूम देती और शोभामय कुण्डल झूमते हुए बड़े मनोहर लगते। इस प्रकार विलास-सागर श्रीकृष्ण का नित्यप्रति एकान्त विलास चलता रहा। यहाँ तो उनकी नित्य होनेवाली प्रकट और अप्रकट लीलाओं का यथाशक्ति किञ्चित् ही वर्णन किया गया है।


पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथि
पु०सं० ५३५
भारती पुस्तकालय

